

शोध दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त
UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 55/3 जुलाई-सितंबर 2021 300.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 09557746346

ई-मेल : shodhdisha@gmail.com

वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा

डॉ० मीना अग्रवाल

ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुडगाँव (हरियाणा)

फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन०सी०आर०

डॉ० अनुभूति

सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स

बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा

फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार

डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक

गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन (दस वर्ष) : व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए

संस्थागत : छह हजार रुपए

वार्षिक शुल्क : आठ सौ रुपए

यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसेट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

परामर्श-मंडल

- डॉ० सुधा ओम ढींगरा, 101, Guymon Court, Morrisville, NC-27560 USA
- डॉ० सुरेशचंद्र शुक्ल, अध्यक्ष इंडो-नार्वेजियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
- प्रो० हरिमोहन, कुलपति, जे०एस० विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ०प्र०
- प्रो० खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म०प्र०) 462038
- डॉ० कमलकिशोर गोयनका, ए-98, अशोक विहार फ़ेज-1, दिल्ली 110052
- प्रो० अशोक चक्रधर, जे-116, सरिता विहार, नई दिल्ली
- श्री अनिल शर्मा जोशी, उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा (उ०प्र०)
- प्रो० पूरनचंद टंडन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ० एस०के० पवार, प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ 580003 (कर्नाटक)
- प्रो० नंदकिशोर पांडेय, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- प्रो० आदित्य प्रचंडिया, पूर्व आचार्य हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा
- प्रो० बाबूराम, पूर्व अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, चौ० बंशीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी (हरियाणा)
- डॉ० राजेंद्र मिश्र, 14/4 स्नेहलता गंज, इंदौर 452003 (म०प्र०)
- प्रो० हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
- प्रो० आनंदप्रकाश त्रिपाठी, अध्यक्ष हिंदी अध्ययन मंडल, डॉ० हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
- प्रो० अर्जुन चव्हाण, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महा०)
- डॉ० माया टाक, पूर्व प्रोफेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- प्रो० अनिलकुमार जैन, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
- प्रो० डॉ० सदानंद भौसले, अध्यक्ष हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे (महा०)
- प्रो० शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ०प्र०)
- डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ० अवनिजेश अवस्थी, हिंदी विभाग, पी०जी० डी०ए०वी० कालेज, नेहरू नगर, नई दिल्ली
- डॉ० अरुणकुमार भगत, अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन विभाग, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी
- प्रो० मंजुला राणा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- प्रो० हनुमानप्रसाद शुक्ल, हिंदी विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
- प्रो० चंद्रकांत मिसाल, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस०एन०डी०टी० महिला विद्यापीठ, पुणे (महा०)
- डॉ० मुकेश गर्ग, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- प्रो० जितेंद्र वत्स, प्रोफेसर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ० माला मिश्रा, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, अदिति कालेज (दिल्ली विश्व०), बवाना
- डॉ० दिनेशकुमार चौबे, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)
- डॉ० शहाबुद्दीन शेख, प्राचार्य, लोकसेवा कला व विज्ञान महा०, औरंगाबाद (महा०)
- डॉ० महेशचंद्र, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ०प्र०)
- श्री राकेशकुमार दुबे, पत्रकारिता और जनसंचार विभाग, उड़ीसा केंद्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट (उड़ीसा)
- डॉ० महेश दिवाकर, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी साहित्य एवं कला मंच, मुरादाबाद (उ०प्र०)
- डॉ० प्रणव शर्मा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत 262001 उ०प्र०

मरती-जीती फ़ाइलें

इस वक़्त में जहाँ हूँ, यह वह सड़क है, जो न्याय चाहने वाली जनता और न्याय देने वाले वर्ग के बीच शहर की भरी-पूरी आबादी में एक विभाजन-रेखा स्थापित करती है।

आज रविवार है और वर्षा की एक सुहानी सुबह का ब्रेकफ़ास्ट टाइम! रात की तेज़ वर्षा ने वातावरण को ठंडा बना दिया है। सड़के धुली-धुली-सी हैं। सड़कों के दोनों ओर खड़े पेड़-पौधे रात में नहा-धोकर नए-नए ताज़ा-ताज़ा-से दिखाई दे रहे हैं।

दाईं ओर देखता हूँ तो एक कोठी के अहाते में बरसाती गुलाब के फूल हवा की हलकी लहरों में धीरे-धीरे झूल रहे हैं। मैं कुछ और आगे बढ़ गया हूँ। अभी किसी आवास के द्वार पर लगी वह 'नेम-प्लेट' दिखाई नहीं दी है, जहाँ मुझे जाना है। पीछे से आती हुई एक आहट पर घूमकर देखता हूँ तो दूर तक लंबी-काली सड़क सलेटी रंग की पथरीली चादर ओढ़े लेटी है। मैं मुड़कर सड़क की तरफ़ देखता हूँ। सड़क कुछ कहती नहीं है।

लेकिन सड़क बहुत कुछ कहती है। सोचता हूँ, यह सड़क ही है, जो मुझे बताती है कि आदमी इसके एक छोर से दूसरे छोर तक विभिन्न श्रेणियों में बँटा खड़ा है। एक तरफ़ अधिकार हैं, दूसरी ओर अधिकारहीनता! एक तरफ़ न्यायविद् हैं और न्यायाधीश हैं, दूसरी ओर आशा-निराशा से भरी वे आँखें, जिन्हें संरक्षण चाहिए, क़ानून का सहारा चाहिए और जिन्हें चाहिए एक कवच, जो समस्त क़ानूनी व्याख्याओं का उपयोग कर असत्य को सत्य की भाँति सुरक्षित कर सके।

अभी सूरज अपनी दिन-भर की लंबी यात्रा में आसमान का बहुत छोटा भाग ही तय कर पाया है। धूप घने वृक्षों की शाखाओं और पत्तियों से गुज़रकर रात की ठंडी भीगी धरती का प्रेमपूर्वक आलिंगन कर रही है। वातावरण में वह उमस नहीं है, जो बरसात के मौसम में वर्षा होने से पूर्व होती है। बादलों के टूटे-बिखरे टुकड़े आसमान पर इधर-उधर तैर रहे हैं। एक-दूसरे की बाँहों में बाँहें डालकर ये फिर कब एकाकार होंगे, मैं नहीं जानता। मैं यह भी नहीं जानता कि बादल एक-दूसरे के साथ जुड़कर फिर कब अपनी भीगी चादर निचोड़कर धरती की चादर भिगोएँगे? लेकिन बादल मुझे अच्छे लगते हैं।

हाँ! शायद बादल मुझे बहुत अच्छे लगते हैं।

बादल इस और उस बस्ती के बीच कोई अंतर नहीं करते, जिसे मैं पीछे छोड़ आया हूँ। वर्षा की फुहार उसी उदारता से भीनी-भीनी चमेली के उस पौधे को सींचती है, जिसकी महक रात की निस्तब्धता में इस कॉलोनी के निवासियों को ही नहीं, उन व्यक्तियों की बासी आत्माओं को भी सुगंधित कर देती है, जो यदा-कदा इस ओर से गुज़रने के लिए विवश हो जाते हैं।

मुझे सूरज भी अच्छा लगता है, क्योंकि उसका प्रकाश बाँटा नहीं जा सकता, विभाजित नहीं किया जा सकता। यहाँ भी सूरज की वही धूप है, जिसे मैं उन लोगों की कॉलोनी में छोड़ आया हूँ जिन पर ज्ञान और क़ानून की रोशनी के द्वार अब तक खुल नहीं पाए हैं। मुझे रात की कालिमा भी अच्छी लगती है, क्योंकि इस अंधकार में कोठियाँ और झोंपड़ियाँ सुख और शांति की एक चादर ओढ़कर सो जाती हैं।

मुझे हवा अच्छी लगती है, क्योंकि मेरे नथुनों से लेकर विशिष्ट व्यक्तियों के नथुनों तक उसकी प्रवृत्ति बदलती नहीं है। जिस हवा में इस वक्त मैं साँस ले रहा हूँ, उसी हवा में क़ानून बनाने वाले और क़ानून का सहारा लेने वाले, दोनों एक साथ साँस ले रहे होंगे। प्रकृति उन लोगों के लिए भी अपनी सुख-सुविधाओं के द्वार बंद नहीं करती जो पापी हैं, अत्याचारी हैं, जिन्होंने अपने ही जैसे अन्य व्यक्तियों के साथ अन्याय किया है। क्यों? सोचता हूँ, क्या प्रकृति उन्हें एक और अवसर नहीं दे रही है अपने सुधार का, अपने-आपको परिवर्तित करने का? यह उदारता नहीं है प्रकृति की? क्षमादान नहीं है यह? यह तो एक सामाजिक छूट है, अपने-आपको जाँचने-परखने की, स्वयं अपना निरीक्षण करने की, यह सोचने की कि आदमी और आदमी के बीच मानवता का रिश्ता और संतुलन किस तरह बना रह सकता है।

शायद क़ानून हमें शिक्षा नहीं देता, अनुशासन नहीं सिखाता, वह तो मात्र हम पर एक अंकुश लगाता है कि उन सीमाओं से बाहर नहीं निकलना है, जिनके छोर अराजकता से मिल जाते हैं।

आदमी के समाज को क़ानून की जरूरत है। लेकिन पशुओं समाज को क़ानून की कोई आवश्यकता नहीं, सोचता हूँ तो आश्चर्य की एक तरंग मेरे मस्तिष्क से उभरती हुई रीढ़ की हड्डी में सनसनाने लगती है। सोचता हूँ कि मैं ही क्या, संभवतः संसार का कोई भी आदमी ऐसा नहीं है, जिसने हाथियों के समूहों में या भेड़ियों के समाज में कभी निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हुए इनमें से किसी को क़ानून के हवाले करते देखा हो।

क्या आदमी पशु-पक्षियों से भी अधिक मूर्ख है, जिसे शिक्षा और सभ्यता के ऊँचे शिखर पर पहुँचकर भी क़ानून के उस सहारे की जरूरत है, जिसकी उँगली थामकर वह अपना संतुलन बनाए रख सके और उन राहों पर न भटक जाए, जो असामाजिकता और अराजकता की तरफ़ जाती हैं।

मैं धीरे-धीरे चलता हुआ मुख्य चौराहे के उस टर्मिनल तक पहुँच गया हूँ, जहाँ से आदमी और वाहन सभी अपनी-अपनी दिशाओं में मुड़ जाते हैं। चौक के बीचोबीच राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की आदमक़द मूर्ति स्थापित है। मैं ध्यान से उसकी ओर देखता हूँ—

शांति,

धर्म,

साहस और

एक अपार सहनशक्ति का भाव लिए उसका चेहरा प्रभात की धूप में जगमग कर रहा है। बहुत-से लोग हैं, जो उस मूर्ति के नीचे से गुज़र रहे हैं, लेकिन कोई भी उसकी तरफ़ नहीं देखता। यह मूर्ति अब ऐसी अकेली है, जैसे आवश्यकताएँ पूरी होने के बाद वस्तुएँ अपनी उपयोगिता खो देती हैं। जैसे बच्चा उन पुस्तकों को भूल जाता है, जिनसे उसे जीवन का पहला पाठ पढ़ाया गया था।

सोच का गहरा सागर है, जिसमें कोई अनजानी शक्ति मुझे बार-बार डुबो देती है और मैं उभर-उभरकर बाहर निकल आता हूँ।

अचानक एक ज़बरदस्त धमाका!

मैं चौंककर आवाज़ की ओर ध्यान देता हूँ।

एक साइकिल-सवार सामने से आते हुए स्कूटर से टकरा गया है। साइकिल-सवार और स्कूटर-चालक एक-दूसरे से भिड़ गए हैं। लगता है, किसी को कोई खास चोट नहीं आई है। लेकिन ये लोग जो एक दुर्घटना से बच गए हैं, एक और दुर्घटना को आमंत्रित करने पर तुले हैं।

शोर—

गाली-गलौज,

हाथापाई,

इच्छा होती है कि आगे बढ़कर इनसे कहूँ, मैंने भेड़ियों और जंगली कुत्तों का समाज देखा है। वहाँ ऐसा टकराव नहीं होता। वे प्राणी इस प्रकार एक-दूसरे से गुथमगुथ्या नहीं होते।

तुम सिद्ध करो कि तुम उनसे श्रेष्ठ हो। तुम साबित कर रहे हो कि तुम उनसे अच्छे नहीं हो! मैं अभी और आगे नहीं बढ़ा हूँ कि देखता हूँ, पुलिस दोनों के बीच हस्तक्षेप कर रही है।

पुलिसकर्मी दोनों से मुट्ठी गर्म करने के प्रयास में है। लेकिन जोश से फटते हुए नौजवान उसकी तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं। पुलिसकर्मी ने शांति भंग करने का प्रयास करने के आरोप में दोनों का चालान लिख दिया है—

नाम, पता—

पिता का नाम —

निवास-स्थान—

और मेरी कल्पना में न्यायालयों के वे प्रांगण जाग उठे हैं, जहाँ सुबह दस बजे से शाम के पाँच बजे तक लोगों की भीड़ जुटती है, जहाँ न्याय की खोज में, अपने जीवन और अधिकारों की रक्षा के लिए, उन काले वस्त्रधारी क़ानूनविदों का सहारा लेने के लिए, जिनकी बगलों में क़ानून की मोटी-मोटी पुस्तकें हैं और जो क़ानून की बारीकियों से अधिक इस कला से परिचित हैं कि अदालत के चंगुल में फँसे व्यक्ति को किस प्रकार निचोड़ा जाता है, किस तरह उससे अपने स्वार्थों की सिद्धि की जाती है, किस प्रकार उसे सिखाया जाता है कि इंसान क़ानून में लिखे शब्दों से नहीं, पैसे से ख़रीदा जाता है; और पैसे के बिना अदालत के आँगन तुम्हारे लिए सूने हैं, निरर्थक हैं।

मुझे वह आलीशान बिल्डिंग अपनी ओर खींचती है, जिसके एक भव्य चैंबर में शहर का सबसे बड़ा अधिवक्ता आने वालों को अपनी संपन्नता का परिचय दे रहा है। इसके साथ ही मेरी कल्पना में वे सारे खँडहर उभर आते हैं, जिनके मलबे से यह भव्य इमारत निर्मित हुई है।

मैं सड़क को अपने क़दमों से नापता हुआ उस स्थान से आगे निकल आया हूँ, जहाँ पुलिसकर्मी एक साधारण-सी असावधानी का फ़ायदा उठाने का प्रयास कर रहा था।

कैसी जटिल हो गयी है ज़िंदगी! एक साधारण-सी असावधानी, हमारे बीच में उन हाथों को हस्तक्षेप करने की अनुमति दे देती है, जो बाद में गर्दन से पकड़कर उन गलियारों की ओर धकेल देते हैं, जहाँ आदमी को क़ानून का संरक्षण मिलता है और यह संरक्षण पाने के लिए युवावस्था इतनी लंबी अवधि तक भागती है कि उसके सिर के बाल सफ़ेद पड़ जाते हैं और कमर झुककर कमान की तरह दोहरी हो जाती है।

दोनों युवक, साइकिल-सवार भी और स्कूटर-चालक भी, पुनः मेरे स्मृतिपटल पर उभर आए हैं—मैं उनके जीवन के कई अगले बरस निरंतर न्याय-दीर्घाओं में घूमते और जूतियाँ घिसते देखता हूँ, तो मुझे उस आदमी पर दुःख होता है, जिसने बहुत कुछ सीखा है, लेकिन शिष्टाचार शायद अभी नहीं सीखा है।

मैं विचार के इस बिंदु पर खड़ा हूँ। तभी मुझे लगता है जैसे किसी ने धीरे से मेरे कंधों पर अपना हाथ रख दिया है, घूमकर देखता हूँ—

अरे, यह तो स्पेनोजा है! फ्रांस का यथार्थवादी दार्शनिक! उसकी धीमी लेकिन सशक्त आवाज़ मेरे कानों में गूँजती है—‘सभी आदमी शिष्ट और तर्कसंगत होते तो लोगों को क़ानून की ज़रूरत नहीं थी, तब वे क़ानून और अदालत के बग़ैर रह सकते थे, अधिक सुख और शांति से रह सकते थे।’

मैं अपने दार्शनिक मित्र स्पेनोजा से कहता हूँ, यदि सब शिष्ट और तर्कसंगत हों, तो दुनिया की यह सारी चहल-पहल, क़ानून बनाने वाली संस्थाओं की समस्त गतिविधियाँ, विधि-विधान का पालन कराने वालों के मठ, वैधानिक ज्ञान और क़ानूनी दक्षता बेचने वालों की सजी-सजाई दुकानें, इंसाफ़ और इंसाफ़ की परिभाषाओं से भरी मोटी-मोटी पुस्तकें, इन सबका क्या होगा? इन सबके बग़ैर यह संसार और जीवन कितना सुनसान हो जाएगा, मेरे मित्र...!

बूढ़ा दार्शनिक कुछ बोलता नहीं है, धीरे से मेरा हाथ थामकर यूनान की ओर ले चलता है। यह यूनान की राजधानी एथेंस है। शहर के बीचोंबीच काले पत्थर से तराशी हुई यह किसकी प्रतिमा खड़ी है? स्पेनोजा मुझे बताता है—

इसे देखो। यह दुनिया का सबसे पहला दार्शनिक सुकरात है। यह वही महान् व्यक्ति है, जो अपने शिष्यों से पूछा करता था—‘क्या तुम बता सकते हो कि अन्याय की परिभाषा क्या है? और क्या जिस क्रिया को तुम न्याय कहते हो, वह अपने अंत में जाकर एक पक्ष के लिए न्याय और दूसरे पक्ष के प्रति अन्याय नहीं हो जाती?’

बूढ़ा स्पेनोजा सुकरात की प्रतिमा के नीचे मुझे अकेला छोड़कर ग़ायब हो गया है। मैं दुनिया के इस पहले यथार्थवादी दार्शनिक से उसी का प्रश्न पूछने का प्रयास करता हूँ। लेकिन अचानक मेरी स्मृति मुझे ले जाती है उस अभागिन वृद्ध महिला के आँगन में, जिसके जवान बेटे को कुछ ही दिन पहले हत्या के अपराध में फाँसी की सज़ा हुई है।

मैं सोचता हूँ, अपराध की अनिवार्यता और उन परिस्थितियों के बारे में, जिसमें कोई विशेष आपराधिक घटना घटित हुई है। सोचता हूँ तो वह सवाल और भी मुखर होकर मेरे सामने आ खड़ा होता है, जो सुकरात अपने शिष्यों से किया करता था—‘तुम बता सकते हो, न्याय की परिभाषा क्या है और जिस चीज़ को तुम न्याय का नाम देते हो, क्या वह एक पक्ष के लिए न्याय और दूसरे पक्ष के लिए अन्याय नहीं है?’

यह मौलिक प्रश्न बिजली की भाँति बार-बार मेरे मस्तिष्क में कौंधता है और बार-बार उस वृद्ध महिला का आकृति मेरे स्मृति-पटल पर उभर आती है।

उसका इकलौता पुत्र पिछले सात साल से विचाराधीन कैदी के रूप में जेल में था। सात साल, सात लंबे साल, यानी एक आम भारतीय नागरिक की औसत आयु का एक बटे छह भाग।

विचाराधीन सज़ा की यह लंबी अवधि किस खाते में जाएगी? मैं अदालत से पूछता हूँ। लेकिन अदालत पत्थर की मूर्ति की तरह चुप है, एकदम ख़ामोश।

हत्या का दंड फाँसी? किंतु हत्या के मामले पर विचार करने का दंड? सवाल शून्य में भटक गया है। सात लंबे साल मेरी आँखों के सामने पहाड़ बनकर खड़े हो गए हैं।

मानता हूँ, युवक ने अपराध किया था, हत्या की थी। उत्तेजना के उन उग्र और उन्मादी क्षणों में उस गुंडे को मार डाला था, जो उसकी युवा बहन को बलपूर्वक उठाकर ले गया था और बलात्कार कर रहा था।

मैं यह भी मानता हूँ कि उत्तेजना के इन क्षणों में वह अपना मानसिक संतुलन किसलिए

खो बैठा और क़ानून को अपने हाथ में लेने का दुस्साहस उसने क्यों किया।

मानता हूँ, सज़ा देने का काम क़ानून का था, उसका नहीं था। भावनाओं की हत्या का और भावनाओं में किए गए अपराधों का क़ानून की दृष्टि में कोई औचित्य नहीं है।

मैं मानता हूँ कि क़ानून ने अपने हिसाब से उस युवक के साथ ठीक-ठीक इंसाफ़ किया है और मौत का हिसाब मौत से चुका दिया है—

लेकिन...?

लेकिन इस दोटूक फ़ैसले के बाद भी अपराध-पक्ष एक और अन्याय का शिकार हो गया है—इंसाफ़ द्वारा की गई नाइंसाफ़ी का शिकार।

मेरी स्मृति में उन दो महिलाओं की दुःखी आकृति उभर आई है, जिनमें से एक का भाई और एक का बेटा अपनी बहन की लाज बचाने के अपराध में फाँसी पर झूल गया है। और अब इन अनाथ महिलाओं के पास जीवित रहने का साधन नहीं है। दो जून की रोटी देने वाला अब कोई नहीं है घर में। चारों ओर दुःख है, निराशा है, अभाव है, भुखमरी है, और दुनिया है दरिदों और राक्षसों से भरी हुई।

ये राक्षस, ये दरिदे कहाँ ले जा रहे हैं इस युवती को, जिसकी लाज बचाने के लिए उसका जवान भाई कुछ ही समय पूर्व फाँसी पर झूल गया था। उसी रास्ते पर ना, जिसे वेश्यावृत्ति का रास्ता कहते हैं, उसी रास्ते जिसे जिस्मफ़रोशी का नाम देती है दुनिया—

पहले हविस के मारे लोग उसे बलात् उस रास्ते पर घसीट रहे थे, जो पाप का है और अब क़ानून ने अपने इंसाफ़ द्वारा उसे एक ऐसी खाई में धकेल दिया है, जहाँ वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त जीवन-यापन का कोई साधन ही नहीं बचा है शायद! न्याय के समय, क़ानून की शब्दों की पट्टी बँधी आँखें यह देख ही नहीं पाई थीं, 'मौत की सजा मौत' का नियम एक बूढ़ी औरत को भूखों मरने और एक मासूम युवती को अपनी देह बेचने पर भी विवश कर सकता है!

महान् दार्शनिक, एक बार फिर चीख़कर कहो—'आख़िर न्याय की परिभाषा क्या है? क्या एक पक्ष के साथ जिस क्रिया को तुम न्याय का नाम देते हो, वह दूसरे के साथ अन्याय नहीं हो जाता?'

प्रिय स्पेनोज़ा! दुःखी मत हो, जब तक लोग तर्कसंगत नहीं होते हैं, क़ानून एक पक्ष के साथ न्याय और दूसरे के साथ अन्याय करता ही रहेगा।

विचारों के सागर में बहता हुआ कहाँ आ गया हूँ? उस द्वार पर जहाँ मेरा वह मित्र निवास करता है, जो कुछ ही समय पूर्व मुंसिफ़ मजिस्ट्रेट होकर यहाँ आया है।

कमरा आधुनिक सुविधाओं की सभी आवश्यक वस्तुओं से सजा है। खिड़की से बाहर स्थापित ए०सी० अंदर के वातावरण को शीतल करने में व्यस्त है। कोने में बिछी एक बड़ी मेज़ पर अनेक फ़ाइलें क्रम से लगी हैं। उमस है लेकिन ए०सी० की ठंडी हवा इस उमस को मार भगाने का असफल प्रयास कर रही है।

बाहर उमस नहीं थी, यहाँ है। 'तो क्या जहाँ फ़ाइलें होती हैं, वहाँ उमस भी होती है? शायद, शायद।'

मैं अपने मित्र की ओर देखता हूँ और फ़ाइलों के अंबार की तरफ़ इशारा करते हुए कहता हूँ—'न्यायालय के समय में क्या यह सब काम नहीं कर पाते हैं आप?'

सोफ़ों के बीच बिछी मेज़ पर चाय की प्यालियों से गर्म भाप उठ रही है। मैं एक-एक

घूट गले से नीचे उतार रहा हूँ। मेरा मित्र खामोशी तोड़कर अनायास बोल उठा है—

‘लगभग डेढ़ हज़ार मुक़दमे लंबित पड़े थे, पिछले पंद्रह साल से। ऊपर से आदेश आया कि अगले दस महीनों में सभी प्रकार के विचारधीन मुक़दमों का निस्तारण कर दिया जाए।’

एक खोखला कहकहा मेरे कानों में गूँजता है। आवाज़ फिर मेरे कानों में आती है—‘पंद्रह साल का काम क्या केवल दस महीनों के भीतर पूरा करना संभव है? कैसे संभव है यह—?’

मैं पंद्रह साल की अवधि और डेढ़ हज़ार मुक़दमों का हिसाब लगाना चाहता हूँ, लेकिन लगा नहीं पाता। सवाल पूछता हूँ—‘इसमें दोष किसका है, वादकारियों का या अदालत की सुस्ती का?’ जवाब मिलता है, ‘दोष किसी का भी हो, फाँसी का फंदा तो मेरे गले में है। कुछ भी हो, काम तो निबटाना ही होगा।’

‘लेकिन कैसे?’ मैं आश्चर्य से पूछ रहा हूँ। मुझे लगता है, जैसे मेरा मित्र इस सवाल का जवाब देने के लिए तैयार नहीं है। जैसे वह कोई रहस्य छिपाना चाहता है। मेरा मस्तिष्क असमंजस में है। डेढ़ हज़ार फ़ाइलें दस महीने की अल्पावधि के भीतर किस प्रकार ठिकाने लगाई जाएँगी और इस जल्दबाज़ी में वादकारियों के प्रति न्याय हो सकेगा?

चाय की प्यालियाँ अपना महत्त्व खो चुकी हैं, वे ख़ाली हैं। लेकिन फ़ाइलें महत्त्वहीन नहीं हुई हैं, ख़ाली नहीं हुई हैं, कागज़ों से भरी हैं। मैं फिर कुरेदता हूँ...‘कैसे करोगे इतना काम दस महीनों में?’

‘अब करना ही क्या है, बहुत कुछ कर चुका हूँ, थोड़ा और बाकी है, वह भी हो जाएगा।’

‘लेकिन कैसे?’ मैं आश्चर्य से पूछता हूँ। और इस प्रश्न का जो उत्तर मुझे मिलता है, वह और भी अचंभे में डाल देता है मुझे।

‘सभी वादियों—प्रतिवादियों से बात हो गई थी। सारे मुक़दमे एक क़लम ख़ारिज कर दिए जाएँगे। चपरासी आवाज़ लगाएगा—‘अमुक पुत्र अमुक हाज़िर है?’ और हाज़िर होते हुए भी कोई हाज़िर नहीं होगा। तब पेशकार फ़ाइल पर नोट करेगा—‘अदम—पैरवी में मुक़दमा ख़ारिज किया गया’ यानी मामले का निस्तारण हो गया।’

‘तो क्या सभी डेढ़ हज़ार मुक़दमे ख़ारिज?’ मैं आश्चर्य से पूछता हूँ। ‘लेकिन...’

‘लेकिन क्या?’ मेरी बात बीच में ही काट देता है मुंसिफ़ मजिस्ट्रेट—‘लेकिन अन्याय किसी के साथ नहीं होना है। अगले ही दिन सब प्रभावित वादकारियों की ओर से पुनर्विचार याचिका दायर हो जाएगी, जिसे कोर्ट स्वीकार कर लेगी। यानी मुक़दमे का एक बार निस्तारण हो गया और फ़ाइल मरकर भी जीवित हो गयी। साँप भी मर गया, लाठी ही नहीं टूटी।’

मैं खोई-खोई दृष्टि से अपने मित्र की तरफ़ देखता हूँ—और वह पहला व्यक्ति मुझे मूर्ख दिखाई देता है, जिसने कहा था, ‘देर से मिलने वाला न्याय न्याय नहीं होता।’

मैं मन-ही-मन अपनी आत्मा की फ़ाइल पर अपना हलफ़िया बयान नोट करता हूँ।

‘मैं बहलफ़ बयान करता हूँ कि न्यायालय-जीवन से मेरा कोई सीधा संबंध नहीं है। एक घटना देखी थी, दूसरी सुनी है। अब इस फ़ाइल को उन लेखकों के सुपुर्द कर दिया जाए, जिनकी पैनी दृष्टि ने न्यायदीर्घा में घटने वाली अनेक घटनाओं को बारीकी से देखा है और यथार्थ का रूप देकर कोरे पन्नों पर उतारा है। अलविदा।’



डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

शिक्षक प्रशिक्षण की प्रमुख समस्याएँ एवं समाधान/ डॉ० जी०के० द्विवेदी, डॉ० श्रवण कुमार	13
सुर बंजारन : विलुप्त होती लोककलाओं की गाथा/ सुकेश कुमारी	19
नरेंद्र कोहली के साहित्य में राजनीतिक व्यंग्य/ जी० शुभारानी, डॉ० एल० तिल्लै सेल्वी	23
आदिवासी साहित्य और हिंदी कविता की परंपरा/ डॉ० सीमा चंद्रन	28
भूमंडलीकरण का प्रतिपक्ष और 'असुर' आदिवासी समाज/ डिम्पी बरगोहाई	34
हिंदी साहित्य में कालक्रमानुसार अभिजात्य एवं लोक का संबंध/ सचीन्द्रनाथ	38
शांताकुमार कृत 'वृंदा' उपन्यास में वन पर्यावरण रक्षा की यथार्थ अभिव्यक्ति/ डॉ० सविता शिवलिंग मेनकुदले	43
धार्मिक आडंबरों में पिसती नारी : संदर्भ 'सेज पर संस्कृत'/ डॉ० निशा जम्वाल	49
समकालीन हिंदी साहित्य के विविध आयाम : एक दृष्टि/ डॉ० आलोक रंजन श्रीवास्तव	53
'मैं पायल' उपन्यास में किन्नर व्यथा/ डॉ० सविता प्रमोद	57
कबीर के काव्य में मानवतावाद की उपादेयता/ कृपाशंकर	61
डॉ० छोटेलाल दीक्षित की लेखन-यात्रा/ डॉ० जयशंकर तिवारी	65
प्रेमचंद की कहानियों में दलित चेतना/ डॉ० श्रुति शर्मा	71
भारतीय जीवनदर्शन और संस्कृति में श्रीमद्भगवद्गीता का योगदान/ डॉ० वंदना यादव	76
हल्बा जनजाति की सामाजिक-आर्थिक जीवन पर विवाह-रस्म का प्रभाव/ डॉ० एल०आर० सिन्हा, सुरेश कुमार	82
भारत में किसान आंदोलन : हरित क्रांति के बाद/ सोहनलाल	88
हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श/ डॉ० सचिन कदम	94
हिंदी महिला उपन्यासों में तनावपूर्ण दांपत्य तथा विवाहेतर संबंधों की अनुगूँज/ डॉ० मुक्तिनाथ यादव	97
स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य निबंध साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ/ प्रा० जी० डी० गभाले	103
नाथूराम शर्मा 'शंकर' की रचनाधर्मिता/ डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया	106
अमीर खुसरो : व्यक्तित्व वैशिष्ट्य/ निगहत बेग	110
घनानंद की श्रीराम जन्म-बधाई/ अशेष उपाध्याय	115
भारतीय अतीत-विद्या-दर्पण लल्लूलाल जी/ डॉ० अशोक उपाध्याय	119
आषाढ का एक दिन : आधुनिक भावबोध और अस्तित्ववादी दर्शन का	

रंगमंचीय निरूपण/ डॉ० अनुपम आनंद	126
भारत में कंपनी सरकार की शिक्षानीति/ सुवाति	130
साहित्य और समाज/ डॉ० राजू प्रसाद अहरवाल	135
हनेरी लुईस विवियन डिरोजियो एवं डिरोजियन्स का पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान/ सरिता	140
वर्तमान परिदृश्य में सोशल मीडिया का नीतिगत अध्ययन/ डॉ० अनिल कुमार	146
कुँअर बेचैन : हिंदी जगत के एक सशक्त हस्ताक्षर/ डॉ० निर्भय शर्मा	155
श्री नरेश मेहता के खंडकाव्यों में नारी-छवि/ डॉ० सरला शर्मा, सुमित्रा यादव	160
भारतीय वाङ्मय में वक्रोक्ति का स्वरूप : एक अनुशीलन/ रूपेश कुमार	165
सिनेमा के कथानक में राष्ट्रवाद/ डॉ० अभिषेक मिश्र	171
स्वप्न से यथार्थ की यात्रा : माधवी/ डॉ० अनिता	176
भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का अंतर्संबंध/ डॉ० अशोक कुमार	181
रघुवीर सहाय का काव्य : नारी चेतना का संदर्भ/ दिगपाल सिंह, डॉ० गुड्डी बिष्ट	187
मोहन राकेश की कहानी फौलाद का आकाश और आखिरी सामान में विघटित दांपत्य जीवन/ जितेंद्र शर्मा	193
मीराकांत के नाटकों की वर्तमान में प्रासंगिकता/ डॉ० सरला शर्मा, मोनिका यादव	198
मीडिया में महिलाओं की बढ़ती भूमिका/ डॉ० राखी उपाध्याय	205
कहानी-संग्रह 'टीन के घेरे' का विश्लेषण विविध संदर्भ में/ अपसाना खान, डॉ० रेशमा अंसारी	211
विभाजन की विभीषिका का दर्द और कृष्णा सोबती की कहानियाँ/ राकेश प्रधान, डॉ० रेशमा अंसारी	216
कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों का विश्लेषण विविध संदर्भों में/ अपसाना खान, डॉ० रेशमा अंसारी	221
जीवन की सौंदर्यपूर्ण अनुभूति का आख्यान 'जिंदगीनामा'/ राकेश प्रधान, डॉ० रेशमा अंसारी	226
नागरिकता संशोधन कानून 2019 की संवैधानिकता और राजनीतिक परिदृश्य/ डॉ० अविनाश प्रताप सिंह	232
हिंदी साहित्य के उत्थान में पत्रकारिता का योगदान/ रश्मि सिंह	237
बाजारवाद और समकालीन हिंदी उपन्यास/ कमलेश	243
21वीं सदी के उपन्यासों में चित्रित नारी का बाह्य सौंदर्य/ संगीता राव, डॉ० आशा सहारन	259
वैश्वीकरण, हिंदीभाषा और समाचारपत्र/ शैव्य कुमार पांडेय	252
भारतीय नवजागरण में स्त्री-चेतना/ डॉ० नीतू बंसल	259
'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका/ डॉ० गौकरण प्रसाद जायसवाल	264

विवाहोपरांत परिवार में महिला स्वास्थ्य : हृदयेश के साहित्य के संदर्भ में/ ज्योति देवी, डॉ० सुधारानी सिंह	271
Conceptual Development of Sonepat- Kundli Urban Complex/ Ms. Vandana, Dr. Inder Singh	275
Study Based On Literature Review On The Effect Of Yoga On The Fitness Of Kho Kho Player/ Dr. B.S. Chouhan, Mr. Rakesh kumar	283
Indian New Education Policy 2020: A Critical Analysis/ Dr.Reenu Rani Mishra	288
The Role of ICT in Higher Education/ Dr.Reshma Devi	293
Nature of Existence in the Yogâcâra Buddhist School/ Rita Aggarwal	297
Crop Intensity And Crop Pattern Analysis In Nagpur District (During 1995-2015)/ Mahesh choudhary, Prof. Irfan mehar	302
Site Museum at World Heritage Site in India: A Critical Analysis/ Prof. Devendra Kumar Gupta, Ms. Kisha Shanker	306
Impact of Covid-19 on Goods & Services Tax (GST) Collection: A Study/ Prof. (Dr.) Narendra Kumar Thapak, Sushil Kumar Singh	310
ढाई आखर प्रेम के/ अवनीश सिंह चौहान	316

समीक्षा समिति

- प्रो० हरिमोहन, कुलपति, जे०एस०विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद (फिरोजाबाद) उ०प्र०
 प्रो० खेमसिंह डहेरिया, कुलपति, अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म०प्र०)
 प्रो० आदित्य प्रचंडिया, पूर्व प्रोफेसर हिंदी विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट,
 दयालबाग, आगरा (उ०प्र०)
 प्रो० अनिलकुमार जैन, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)
 प्रो० हरिमोहन बुधौलिया, पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय,
 उज्जैन (म०प्र०)
 प्रो० शंभुनाथ तिवारी, हिंदी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ०प्र०)
 प्रो० चंद्रकांत मिसाल, अध्यक्ष हिंदी विभाग, एस०एन०डी०टी० महिला विद्यापीठ, पुणे (महा०)

आलेख-संबंधी दिशा-निर्देश

- * अपना आलेख 'शोध दिशा' की ईमेल Shodhdisha@gmail.com पर भेजें।
- * आलेख कृतिदेव-10, 14 पॉइंट अथवा मंगल फॉन्ट में टाइप हो।
- * आलेख वर्ड फाइल तथा पीडीएफ फाइल दोनों में भेजना है।
- * आलेख अधिकतम 3000 शब्दों में हो।
- * आपसे आग्रह है कि आलेख भेजने से पूर्व यदि एक बार आप स्वयं उसे पढ़ लेंगे तो टाइप के कारण होने वाली त्रुटियाँ कम हो जाएँगी।
- * आलेख में लेखक का नाम व पद, संदर्भ, लेखक का डाक का पूरा पता (पिनकोड सहित), मोबाइल नंबर तथा ईमेल स्पष्ट रूप से लिखा जाए।
- * हमारे लिए राष्ट्र सर्वोपरि है अतः राष्ट्रविरोधी भावनाओं से संबंधित आलेख को पत्रिका में न भेजें।
- * अन्य सूचनाओं के लिए मो॰नं॰ 9557746346 पर डॉ॰ अशोककुमार से संपर्क कीजिए।

शिक्षक प्रशिक्षण की प्रमुख समस्याएँ एवं समाधान

डॉ० जी०के० द्विवेदी

वरिष्ठ सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्रा

उ०प्र० राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ० श्रवण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर (बी०एड०)

नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय),

प्रयागराज (उ०प्र०)

वर्तमान में शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें प्रारूप एवं परिचालन की व्यवस्था इसलिए की जाती है जिससे छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सके। पहले शिक्षण कार्य को शिक्षक केंद्रित माना जाता था जिसमें अधिक विकसित व्यक्ति कम विकसित व्यक्ति की शिक्षा के लिए प्रयास करता था। फिर धीरे-धीरे शिक्षण को अंतःप्रक्रिया माना जाने लगा जिसमें शिक्षक व छात्र दोनों के मध्य शाब्दिक या अशाब्दिक अंतःप्रक्रिया होती है। शिक्षण में शिक्षक व छात्र दोनों ही क्रियाशील होते हैं। इसमें शिक्षक को केवल पथ-प्रदर्शक माना जाता है और छात्र प्रश्नोत्तर द्वारा अपनी शंकाओं का समाधान कर सकते हैं। बी०ओ० स्मिथ के अनुसार, शिक्षण क्रियाओं की एक विधि है जो सीखने की उत्सुकता को जाग्रत करती है।'

वर्तमान समय में शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को एक कुशल शिक्षक बनने का प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे भविष्य में यही विद्यार्थी भावी शिक्षक के रूप में अपने देश की सेवा करते हैं। एक कुशल शिक्षक बनने के लिए गुरु-शिष्य के संबंधों और सही शिक्षण विधियों को जानने के साथ ही व्यवहार कुशल होना बहुत आवश्यक है। आज एन०सी०टी०ई०, यू०जी०सी०, ए०सी०ई०आर०टी०, डायट, एन०सी०ई०आर०टी० इस दिशा में तेजी से कार्य कर रहे हैं। निःसंदेह शिक्षकों की स्थिति समाज के अग्रगण्य व्यक्तियों के रूप में होगी।

कोई भी व्यक्ति बिना किसी प्रशिक्षण के सफलतापूर्वक अध्यापन कार्य नहीं कर सकता है। उच्चशिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ अध्यापन प्रणाली, शिक्षण के सिद्धांत, शिक्षा की समस्याएँ और उनका समाधान, पाठ्यक्रम, विद्यालय संगठन आदि का प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है। शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तरों पर जिस प्रकार न्यूनाधिक उच्च शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार प्राथमिक माध्यमिक और विश्वविद्यालय के अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण के अलग-अलग स्तर निश्चित किए गए हैं। भारतवर्ष में प्राचीनकाल में विद्यार्थी अपने गुरुओं से अध्यापन की कला सीखते थे और उसी के आधार पर स्वयं स्वतंत्र रूप से विद्यालय चलाते थे लेकिन शिक्षण प्रशिक्षण का अलग से कोई प्रबंध नहीं था। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद सरकार की ओर से शिक्षा विभाग द्वारा शिक्षण प्रबंध होने पर शिक्षण-प्रशिक्षण की समस्या उत्पन्न हुई। सर्वप्रथम 1881-82 में भारतीय शिक्षा आयोग ने शिक्षण-प्रशिक्षण का परामर्श दिया और प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए निम्नलिखित सुझाव रखे—

- * प्रशिक्षण विद्यालय ऐसे केंद्रीय स्थानों पर स्थापित किए जाने चाहिए जहाँ वे क्षेत्र के सभी प्राथमिक विद्यालयों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।
- * प्रशिक्षण विद्यालय सारे देश में समान भौगोलिक अंतराल पर स्थापित होने चाहिए।
- * स्नातक व उपस्नातक दोनों प्रकार के शिक्षकों के लिए भिन्न-भिन्न प्रशिक्षण व्यवस्था और पाठ्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिए।

‘भारतीय शिक्षा आयोग 1882 की उपर्युक्त सिफारिशों के बाद सन् 1904 में लार्ड कर्जन ने शिक्षा-प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत किसी भी शिक्षक को शिक्षण की अनुमति तब तक नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि उसके पास यह प्रमाण-पत्र नहीं है कि वह ऐसा कार्य करने के लिए योग्यता प्राप्त है। सन् 1919 कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की रिपोर्ट में इंटरमीडिएट व स्नातक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में शिक्षा विषय को स्थान दिया गया। बाद में हर्टाग समिति और मुदालियर समिति तथा राधाकृष्णन आयोग ने भी शिक्षक-प्रशिक्षण पर ध्यान दिलाया।’

शिक्षक प्रशिक्षण की प्रमुख समस्याएँ एवं समाधान

भारत में प्रशिक्षण विद्यालयों के संगठन पाठ्यक्रम तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण आदि के अन्य पहलुओं में मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

(1) **विद्यालयों एवं प्रशिक्षण-विद्यालयों में समन्वय का अभाव**—भारत में विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण विद्यालयों में जो प्रशिक्षण दिया जाता है उसका विद्यालयों में वास्तविक शिक्षण से समन्वय नहीं है जिसके कारण प्रशिक्षण में शिक्षक को वास्तविक शिक्षण से पर्याप्त व्यावहारिक सहायता नहीं मिलती। के०जी० सैयदन के शब्दों में, ‘उन सिद्धांतों का ज्ञान और विद्यालयों की कक्षा में व्यवहार एक-दूसरे को समृद्ध बनाने और एक-दूसरे में घुल-मिल जाने की अपेक्षा दो नितांत पृथक् वस्तुएँ बने रहते हैं।’

(2) **व्यवहार सिद्धांत में संतुलन का अभाव**—प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा सिद्धांत और व्यवहार में संतुलन होना चाहिए। खेद है कि अधिकतर प्रशिक्षण विद्यालयों में सिद्धांतों पर ही अधिक जोर दिया जाता है और शिक्षण का व्यावहारिक अभ्यास करने का अवसर नहीं मिलता है।

(3) **दोषपूर्ण पाठ्यक्रम**—प्रशिक्षण महाविद्यालयों में वही विषय पढ़ाए जाने चाहिए जिनको वास्तविक शिक्षण में शिक्षक को आवश्यकता पड़ती है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय यह सिद्धांत ध्यान में नहीं रखा जाता। इसके फलस्वरूप ऐसे अनेक विषय पढ़ाए जाते हैं जिनका अध्यापकों से कोई संबंध नहीं होता है।

(4) **मानवीय मूल्यों की उपेक्षा**—प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रतिदिन के कार्यक्रमों के सिवाय विद्यार्थियों को उचित दिशा अथवा दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए कुछ नहीं दिया जाता है।

(5) **सेवाकालीन प्रशिक्षण की समस्या**—आजकल शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षणों की जो योजनाएँ बनाई गई हैं, जैसे—रिपेशर कोर्स, अल्पकालीन सघन पाठ्यक्रम, सेमिनार इत्यादि उनकी समस्याएँ अलग-अलग हैं। ये समस्याएँ भर्ती पाठ्यक्रम सिद्धांत, व्यवहार में अंतर आदि को लेकर है।

(6) **स्वतंत्रता का अभाव**—प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षणार्थियों को पर्याप्त रूप से

स्वतंत्रता नहीं दी जाती जिसके कारण उनकी स्वतंत्र प्रतिभा का विकास नहीं हो पाता है और वे जैसे-तैसे परीक्षा पास कर लेने का ही ध्येय सामने रखते हैं।

(7) **चुनाव संबंधी दोष**—प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रतिदिन के कार्यक्रमों के सिवाय शिक्षार्थियों को उचित दिशा अथवा उचित दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए कुछ नहीं किया जाता है। बी०एड० की कक्षाओं में छात्रों की भर्ती इसका उदाहरण रहा है जिससे अनेक योग्य विद्यार्थियों को अवसर नहीं मिल पाता। यद्यपि वर्तमान समय में प्रशिक्षण हेतु चुनाव के लिए सभी प्रकार की उत्तीर्ण परीक्षा पर अलग-अलग अंक शासन द्वारा निर्धारित किए गए हैं जिनके आधार पर योग्यताक्रम सूची बनती है और इसी सूची के आधार पर छात्रों के चयन का प्रावधान है।

(8) **विभाजित उत्तरदायित्व की समस्या**—शिक्षक प्रशिक्षण के दो मुख्य रूप हैं—संख्यात्मक और गुणात्मक। संख्यात्मक पक्ष अर्थात् विस्तार का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर और गुणात्मक उन्नति का उत्तरदायित्व केंद्र सरकार पर है। केंद्रीय स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व बार निकायों के मध्य विभाजित है—शिक्षा मंत्रालय, योजना आयोग, एन०सी०ई०आर०टी० तथा यू०जी०सी०। 'शिक्षा मंत्रालय' शिक्षक प्रशिक्षण की योजनाओं का निर्माण करता है। 'योजना आयोग' उनमें से आवश्यक एवं महत्वपूर्ण को अपनी स्वीकृति प्रदान करता है, जो उसको कार्यान्वित करने के लिए धन देता है। एन०सी०ई०आर०टी० स्वीकृत योजनाओं को कार्यान्वित करती है। यू०जी०सी० यह निश्चित करता है कि उनका संबंध विश्वविद्यालय शिक्षा से है या नहीं है।

(9) **प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रमों में विभिन्नता की समस्या**—भारत की प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रमों और उनके संचालन की विधियों में आश्चर्यजनक विभिन्नता है। उदाहरणार्थ—1. शिक्षा विभाग द्वारा संचालित बुनियादी और गैर बुनियादी प्राइमरी ट्रेनिंग स्कूलों में सर्टिफिकेट का कार्यक्रम, 2. विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा विभागों द्वारा संचालित सेकेंडरी ट्रेनिंग स्कूलों में डिप्लोमा या सर्टिफिकेट का कार्यक्रम, 3. विश्वविद्यालयों और शिक्षा विभागों द्वारा संचालित ट्रेनिंग कालेजों में बी०टी०सी०, एल०टी०, बी०एड०, डी०पी०एड० का कार्यक्रम और शिक्षा के रीजनल कालेजों में 6 या 7 प्रकार से अधिक से कार्यक्रम।

इतना ही नहीं, इन कार्यक्रमों में भी विभिन्नता है। यह विभिन्नता एक वर्ष से लेकर 4 वर्ष तक की है। डिप्लोमा सर्टिफिकेट और उपाधि के कार्यक्रमों का काल एक या दो वर्ष का है। रीजनल कालेजों में विभिन्न कार्यक्रमों का काल एक से चार वर्ष का है।

प्रशिक्षण संस्थाओं में पाई जानेवाली इन विभिन्नताओं की ओर देश की सरकार और शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए शिक्षा आयोग ने लिखा है, 'प्राथमिक व माध्यमिक स्कूलों के लिए अध्यापकों को तैयार करने वाली संस्थाओं के पाठ्यक्रमों कार्य की दशाओं व प्रशिक्षित किए गए अध्यापकों में विलक्षण विभिन्नता परिलक्षित होती है।'

शिक्षक-प्रशिक्षण की समस्याओं का समाधान—शिक्षक प्रशिक्षण की उपयुक्त समस्याओं को लेकर विभिन्न शिक्षाशास्त्र और शिक्षा आयोगों ने निम्नलिखित सुझाव रखे हैं—

इस संबंध में कोठारी आयोग ने लिखा है कि व्यावसायिक शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए उसे एक ओर विश्वविद्यालय से और दूसरी ओर विद्यालय से जोड़ना पड़ेगा तभी एक-दूसरे का विकास हो सकेगा।' कोठारी आयोग ने शिक्षण-प्रशिक्षण के संबंध में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए थे—

1. डिग्री कक्षाओं के ऐच्छिक विषयों में शिक्षा को एक विषय के रूप में स्थान दिया जाए।

2. विश्वविद्यालय में शिक्षा विद्यालय खोले जाने चाहिए, जो प्रशिक्षण अध्यापक व अनुसंधान में सहायता दें।
3. प्रशिक्षण विद्यालयों और सामान्य विद्यालयों के मध्य व्यवधान को दूर करने के लिए प्रत्येक प्रशिक्षण विद्यालय में पूर्व प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर प्रसार सेवा विभाग खोले जाए। पाठ्यक्रम के विषय में समय-समय पर सुझाव देने के लिए पुरातन छात्रों को संस्था संगठित की जानी चाहिए शिक्षकों को मान्यता प्राप्त विद्यालयों में अभ्यास के लिए भेजा जाना चाहिए और निरीक्षण करने वहाँ व्यक्तियों का स्थानांतरण होते रहना चाहिए।
4. कला, शारीरिक शिक्षा एवं विशेष विषयों में व्यवधान दूर किया जाना चाहिए।
5. ट्रेनिंग कालेजों को विश्वविद्यालय के कालेजों के स्तर तक बनाया जाए।
6. राज्य स्तर पर शिक्षा के राज्य परिषद की स्थापना की जानी चाहिए।
7. माध्यमिक कक्षा के शिक्षा प्राप्त शिक्षकों को दो वर्ष का और स्नातक स्तर के शिक्षकों के लिए एक वर्ष के प्रशिक्षण का प्रबंध होना चाहिए।
8. सेवाकालीन प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री के०जी० सैयदेन ने अपनी पुस्तक, 'शैक्षणिक समस्याओं की पुनर्रचना' में शिक्षक प्रशिक्षण के विषय में निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए हैं—

1. शिक्षा विभाग की सहायता से प्रत्येक राज्य के ट्रेनिंग कालेजों में अधिक से अधिक पाँच वर्ष में एक बार पूरे प्रांत का सर्वेक्षण करके यह पता लगाना कि राज्य के समस्त विद्यालयों के कितने शिक्षकों शिक्षिकाओं की आवश्यकता है जिससे कि माँग के आधार पर भर्ती की जाए।
2. प्रशिक्षणहीन अनुभवी तथा पुराने अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण के अल्पकालीन पाठ्यक्रमों के व्यवस्था की जाए जिससे उनकी नौकरियाँ सुरक्षित रहे और उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि हो।
3. विश्वविद्यालय या कालेजों की शिक्षा समाप्त करके प्रशिक्षण विद्यालयों में भर्ती चाहने वाले व्यक्तियों में से प्रशिक्षण के लिए ऐसे व्यक्तियों को चुना जाना चाहिए जिनमें योग्य अध्यापक बनने की क्षमता हो।
4. उपर्युक्त चुनाव में परंपरागत तरीकों के आधार पर नई वैज्ञानिक विधियों के आधार पर काम लिया जाना चाहिए जिनसे प्रशिक्षणार्थियों के मानसिक नैतिक गुणों की अधिक जानकारी प्राप्त हो सके।
5. अध्यापन के व्यवसाय में जानेवाले व्यक्तियों को विश्वविद्यालय स्तर पर विषयों का चुनाव करते समय अध्यापन के व्यवसाय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए, जिससे कि वे ऐसा ज्ञानार्जन करने में समय नष्ट न करें जिसका अध्यापन के व्यवसाय से कोई संबंध न हो।
6. डिग्री की परीक्षा के लिए सभी विश्वविद्यालय में शिक्षाशास्त्र को एक वैकल्पिक विषय बनाया जाए।

शिक्षक प्रशिक्षण की समस्याओं को सुलझाने के लिए उपर्युक्त सुझावों के अवलोकन से स्पष्ट है कि इस दिशा में बहुमुखी सर्वांग दृष्टिकोण से काम किया जाना चाहिए जैसा कि एस०एन०

मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'एजूकेशन इन इंडिया : टूडे एंड टुमरो' में लिखा है, 'अध्यापक प्रशिक्षण का स्तंभ उठाने के लिए अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम का संगठन प्रशासन वित्त शिक्षण संस्थाएँ प्रवेश का चुनाव पूर्व सेवा शिक्षा अभ्यासात्मन् प्रशिक्षण सेवाकालीन शिक्षण अध्यापक प्रशिक्षण अनुसंधान तथा प्रकाशन कालेज के अध्यापकों की तैयारी तथा समय के अभाव को ध्यान में रखना चाहिए।

शिक्षक के व्यवसाय को उत्कृष्ट बनाने हेतु सुझाव

भारतवर्ष में समय-समय पर विभिन्न शिक्षा आयोगों ने शिक्षक के व्यवसाय स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकताओं पर विशेष जोर दिया है। कोठारी शिक्षा आयोग ने शिक्षक के व्यवसाय का स्तर ऊँचा करने के लिए प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय सभी स्तरों पर ऊँचे वेतनमान दिए जाने की सिफारिश की है। इनके साथ-साथ आयोग ने शिक्षकों की दशा में सुधार करने के लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए हैं—

1. विश्वविद्यालय में अध्यापकों के नियुक्ति के लिए मोडल एक्ट बनाया जाना चाहिए।
2. प्राथमिक विद्यालयों में प्रधानाध्यापक का पद प्रशिक्षित व्यक्ति को ही दिया जाना चाहिए।
3. योग्य प्रशिक्षित स्नातकों को स्नातकोत्तर वेतन क्रम दिया जाना चाहिए।
4. शिक्षक की योग्यता बढ़ने पर उसे अग्रिम वेतन वृद्धि की जानी चाहिए।
5. विश्वविद्यालय में विद्वान अध्यापकों के लिए अतिरिक्त पदों का आयोजन किया जाना चाहिए।
6. प्रत्येक पाँच वर्ष बाद वेतन व महँगाई भत्ते पर नए मूल्यों से संबंधित मामलों में विचार करना चाहिए।
7. शिक्षक कल्याण कोष की स्थापना हो जिसमें अध्यापकों का भी योगदान हो।
8. सभी वर्गों (प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च स्तर) के अध्यापकों को अवकाश की सुविधा दी जानी चाहिए।
9. विद्यालय, कालेजों में अवकाश ग्रहण करने की आयु क्रमशः 60 व 65 वर्ष होनी चाहिए।
10. प्रत्येक 5वें वर्ष शिक्षकों के भारत भ्रमण हेतु यात्रा भत्ता की सुविधा मिले।
11. शिक्षकों को नागरिक अधिकारों व चुनाव लड़ने की पूरी स्वतंत्रता दी जाय।
12. योग्य अध्यापकों को राष्ट्रीय सम्मान देने के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों की संख्या में वृद्धि की जाए।
13. कोठारी आयोग के उपर्युक्त जोरदार सिफारिशों के बावजूद देश के अध्यापन के व्यवसाय के स्तर को उत्कृष्ट बनाने के लिए पर्याप्त ठोस कदम नहीं उठाए जा रहे हैं। बहुत से विद्यालयों में आज भी शिक्षकों को एक निश्चित समय पर और पारिश्रमिक के आधार पर उचित वेतन नहीं मिलता है।

निष्कर्ष

शिक्षकों के चयन में आज भी पारदर्शिता का अभाव है। इस प्रकार असुरक्षा और निर्धनता के वातावरण में अध्यापन व्यवसाय में प्रतिभाशाली कविताओं का जाना और प्रतिभाओं का बने

रहना अत्यंत कठिन है। इसलिए इस विषय में सुधार के लिए सरकार और समाज दोनों का सुधार के लिए प्रयास करना चाहिए। अतः आज एन०सी०टी०ई०, यू०जी०सी०, एस०सी०ई०आर०टी०, डायट, एन०सी०ई०आर०टी० इस दिशा में तेजी से कार्य कर रहे हैं। निःसंदेह शिक्षकों की स्थिति समाज के अग्रगण्य व्यक्तियों के रूप में होगी।

संदर्भ

1. एल०के० ओड, शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, (2010)
2. एच० के० कपिल, अनुसंधान विधियाँ, हरप्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन, आगरा, (1995)
3. मोहम्मद अख्तर सिद्दीकी, इन सर्विस टीचर एजुकेशन आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
4. आर०ए० शर्मा, टीचर एजुकेशन, इंटरनेशनल पब्लिशिंग, मेरठ, (1992)
5. आर०ए० शर्मा, शिक्षा अनुसंधान, आर०लाल बुक डिपो, मेरठ, (1995)

डॉ० श्रवण कुमार मिश्र

8बी/7ए, शिवकुटी, तैलियरगंज

प्रयागराज 211004

मो० 9696959444

ईमेल : shrawanmishra2011@gmail.com

सुर बंजारन : विलुप्त होती लोककलाओं की गाथा

सुकेश कुमारी

शोधार्थी (नेट), हिंदी विभाग

गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड)

दादरा, ठुमरी, छनद, लावनी, बहरशिकस्त, सोहनी जैसे छंद जब-जब ढोलक की थाप और झील नक्काड़ की धमक पर गले को चीरते हुए रात के सन्नाटे में गूँजते हैं, तब लगता है मानो नटराज के दरबार में रागों की बारिश हो रही है। यह राग नृत्य, सांग परंपरा, नौटंकी हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान है, जो वर्तमान समय में धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। अतीत में इन लोककलाओं का बहुत महत्त्व रहा है। इसलिए यह हाथरस शैली की नौटंकी की एक अदाकारा का जीवन-वृत्त कहना भी बेमानी होगा, बल्कि यह लोक से संचित विरासत की एक प्रबल अदम्यता और जिजीविषा के लोमहर्षक आख्यान के रूप में हमारे सामने आता है। अपनी प्रखर संवेदना, पहले के उपन्यासों की तरह रंगीन किस्सागोई और अपनी बेधड़क भाषा के लिए सर्वमान्य कथाकार भगवानदास मोखाल की यह कृति एक अनूठी उपलब्धि है।

लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से है, जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। दीन-हीन, शोषित, दलित, बंजारे जंगली जातियाँ, कोल, भील, गोंड (जनजाति) सथाल, नाग, हूण, यवन, खस आदि समस्त लोक समुदाय का मिला-जुला रूप लोक कहलाता है। इन सभी की मिली-जुली संस्कृति लोक संस्कृति कहलाती है। देखने में इन सबका रहन-सहन अलग-अलग होता है। वेशभूषा, खान-पान, चाल-व्यवहार, नृत्य, गीत, कला, कौशल, भाषा आदि सब अलग-अलग दिखाई देते हैं। यही मोतियों की भाँति दिखाई देते हैं। यही लोक संस्कृति है। लोक संस्कृति कभी भी शिष्ट समाज पर आश्रित नहीं रहती बल्कि शिष्ट समाज लोक संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करता है।

लोककला स्थानीय समुदाय की समग्र कलात्मक गतिविधि के अलावा, जिसे लोक कला के लिए कला कहा जाता है, इसमें संगीत, नृत्य, किंवदंतियाँ, परियों की कहानियाँ, लोक कविता और लोक रीति-रिवाजों के पूरे कलात्मक पक्ष भी शामिल हैं।¹ हमारे समाज में नौटंकी, कठपुतली, आल्हा, लावणी, रागनी जैसी बहुत सी लोककलाएँ अब लगभग अंतिम साँसें ले रही हैं। बदलते समय के साथ-साथ मनोरंजन के नए-नए माध्यम आने के कारण देशभर की पारंपरिक लोककलाओं को सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा है। लोककलाएँ न सिर्फ मनोरंजन का साधन थीं, बल्कि अपनी संस्कृति, परंपरा, परिवेश और लोक के मानस का आइना भी थीं। 'सुरबंजारन' उपन्यास भी ऐसी ही एक मृतप्राय लोकविधा नौटंकी (हाथरस शैली) के विलुप्त होते सांस्कृतिक इतिहास को पाठकों से रूबरू कराता है।

किसी भी विधा के कलाकारों के लिए सबसे बड़ी तकलीफ की बात यह होती है कि उनकी विधा को सही मायनों के अनुरूप देखा-परखा नहीं जाता। यही 'नौटंकी' के साथ भी सबसे बड़ी विडंबना रही कि उसे कभी बहुत संजीदगी से नहीं लिया गया। खोखले सरकारी प्रयास इस विधा को न तो संरक्षित कर सके और न ही समाज में उसे सम्मानजनक जगह दिला

सके। यह बात नौटंकी के कलाकारों के मन में हमेशा टीस बनकर उभरती होगी कि नौटंकी शब्द ही मजाक का पर्याय माना गया। इसी तकलीफ को बयान करते हुए उपन्यास की नायिका रागिनी कहती है, 'मुझे तो यह भी बहुत बुरा लगता है कि अच्छे-भले संगीत या स्वाँग को लोग नौटंकी कहते हैं। सच्ची कहूँ मास्टर जी, पता नहीं क्यों मुझे तो इस नौटंकी लफ्ज़ से ही चिढ़-सी होने लगी है। नौटंकी लफ्ज़ तो एक तरह से मजाक का पात्र क्या, गाली बन गया है। बात-बात में जिसे देखो वही कहता मिलेगा 'यह क्या नौटंकी चल रही है', 'यह क्या नौटंकी है', मैं तो जब भी किसी को ऐसा कहते सुनती हूँ मास्टर जी, तो कलेजे में बरछी-सी खुबती चली जाती है। पता नहीं लोग इन नौटंकी वालों को इज्जत की निगाह से क्यों नहीं देखते।'² इस प्रकार 'नौटंकी' शब्द को मजाक समझा जाता है। यहाँ तक की नौटंकी कलाकारों की भी इतनी इज्जत नहीं होती। तब इन कलाकारों के मन में टीस उत्पन्न होती है। जबकि ये कलाकार स्वाँग, नौटंकी आदि कला के माध्यम से अभिनय प्रस्तुत करते हैं और लोगों का मनोरंजन करते हैं। इसलिए रागिनी को भी यह महसूस होता है कि कलाकारों की कला की प्रशंसा नहीं होती बल्कि उनका मजाक बना दिया जाता है।

पारंपरिक दृष्टि से देखा जाए तो लोकनाट्यों का मंच चारों ओर से खुला ही होता है। किसी चौराहे या मैदान में कुछ तख्त जोड़कर मंच तैयार किया जाता है जिसके चारों ओर दर्शक बैठकर प्रदर्शन का आनंद लेते हैं। पहले विस्तारक यंत्र नहीं होते थे। अतः पात्र मंच के चारों ओर अपनी ऊँची आवाज में संवाद गाते या बोलते थे, संगीत भी लोकनाट्य मंच है। जो जनसामान्य के लिए जनसामान्य ही तैयार करता है। बाद में मंच के एक ओर पर्दा लगाकर तीन ओर से दर्शकों के बैठने के लिए खुला छोड़ दिया जाता था। स्वाँग के लिए खुले मंच का ही प्रयोग किया जाता रहा है। पात्रों के सजने-सँवरने का काम पास के किसी घर में कर लेते थे। पहले रोशनी के लिए मशालों का उपयोग किया जाता था लेकिन बाद में गैस हंडों और गैस बत्तियों का प्रयोग किया जाने लगा और अब तो बिजली माइक आदि अत्याधुनिक साधनों का प्रयोग किया जाने लगा है। 'सुर बंजारन' उपन्यास हाथरस शैली नौटंकी की जीवित किंवदंती एक लोकप्रिय अदाकारा कृष्णाकुमारी माथुर के जीवन पर आधारित है। हाथरस नौटंकी की अदाकारा की जिंदगी को बयान करता यह उपन्यास अपने केंद्रीय पात्र के बहाने एक लोक विरासत की अद्भुत कहानी को प्रस्तुत करता है। गीत-संगीत की एक लुप्त हो चुकी परंपरा नौटंकी की गायिका के बहाने हाथरस शैली की नौटंकी का एक तरह से उन्होंने इतिहास दर्ज कर दिया है। यह उपन्यास कलाकार रागिनी की जीवनगाथा को ही प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि इससे ज्यादा यह इस नाट्यशैली के जन्म उत्थान और पतन की महागाथा को भी बड़े मार्मिक ढंग से हमारे सामने लाता है।

'हिंदुस्तान थिएटर के जमालपुर गौशाला मेले के पहले ही शो का हल्ला मच गया। शो खत्म होने पर हिंदुस्तान थिएटर द्वारा प्रस्तुत नाटक भगतसिंह की नायिका के इस अधपके सुर की तारीफ में इसके डायरेक्टर सूरजप्रसाद शर्मा को बधाइयाँ देने वालों का तांता लग गया। अपने द्वारा खोजकर लाए गए इस नायाब हीरे ने जिस धमक के साथ थिएटर कंपनी में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।'³ इस प्रकार रागिनी ने अपनी कला का परिचय दिया तथा चारों तरफ रागिनी के नौटंकी एवं सुरों की चर्चा होने लगी। लोग भीड़ में घुसकर नौटंकी देखने के लिए टिकट खरीदने लगे। बुकिंग विंडो पर भीड़ लगी रहती। लोगों के मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्धक जानकारी भी प्राप्त होती थी लेकिन आजकल तो मनोरंजन के विभिन्न साधनों का विकास होता जा रहा है। जैसे टी.वी., रेडियो, आधुनिक वाद्य यंत्र, इंटरनेट के माध्यम से भी लोगों का मनोरंजन होता है। जिस

कारण यह पारंपरिक कला विलुप्त होती जा रही है। वर्तमान समय में इस कला से बहुत कम ही लोग परिचित हैं। 'सुर बंजारन' उपन्यास में रागिनी अमरसिंह राठौर शो में हाड़ी रानी का किरदार निभाती तो लगता कि उसके गले में जैसे कोयल आकर बैठ गई हो। सुरों की ऐसी बंदिश, मुरकियों का ऐसा कमाल, गमक व भीड़ का अनोखा संगम और खटके का ऐसा नायाब इस्तेमाल कि किसी ने इससे पहले नहीं देखा। बहरतबील, चौबोला और शिकस्त को रागिनी जब-जब उठाती और अचानक भीड़ के साथ बीच-बीच में मुरको लेती, तो उन्हें सुनते हुए सुनने वाले का रोम-रोम खड़ा हो जाता। यह कला कलाकारों में एक अनोखी ही प्रतिभा होती है लेकिन आज के समय में इन सब कलाओं का महत्त्व कम होता जा रहा है।

यह उपन्यास दो कारणों से रेखांकित किया जाना चाहिए, एक नौटंकी नाट्यशैली की गायिका और कलाकर रागिनी की जीवनगाथा को तो प्रस्तुत करता ही है, इससे भी ज्यादा यह इस नाट्यशैली के जन्म, उत्थान और पतन की महागाथा को बड़े ही मार्मिक ढंग से हमारे सामने लाता है।⁴ हिंदी साहित्य में किसी लोककलाकार या लोकगायक की जिंदगी को आधार बनाकर शायद ही कोई कहानी और उपन्यास लिखा गया हो इस उपन्यास में रागिनी के जीवन वर्णन के साथ-साथ लोककलाओं का बहुत ही सुंदर वर्णन किया गया है। एक उपन्यास सुरेंद्र वर्मा द्वारा रचित 'मुझे चाँद चाहिए' में जरूर एक अभिनेत्री की जीवनगाथा के बहाने से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और आधुनिक हिंदी रंगमंच का गहराई से जायजा लिया था।

'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा आयोजित लोकपर्व समारोह में रागिनी कला मंच की यह प्रस्तुत नौटंकी देखी है। शो खत्म होने के बाद इन्फॉर्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग मिनिस्ट्री सचिव उर्दू के मशहूर ड्रामाटिस्ट अफसाना निगार, अनवर अली, दूरदर्शन के डीजी राजेंद्र रघुवंश, आल इंडिया रेडियो के डायरेक्टर और दिल्ली यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर संगीत मर्मज्ञ व शास्त्रीय संगीत को समर्पित संगीत संकल्प नामक संस्था के प्रमुख डॉ॰ मुकेश गर्ग सभी ने रागिनी और उसके ग्रुप रागिनी कला केंद्र की जमकर तारीफ की।'⁵

इस प्रकार रागिनी स्वयं अपने नाम से कंपनी खेलती है और रागिनी कला मंच में वह एक-एक कलाकार को इस संस्था का सदस्य बनाती है। ये कलाकार अपनी कला में बहुत ही निपुण होते हैं। जब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में 'हाड़ी रानी' का शो आयोजित किया गया तब यह शो देखकर वहाँ जो उपस्थित थे सभी सम्मानित लोगों ने इसकी प्रशंसा की और यह भी कहा कि ऐसा शो उन्होंने आज तक नहीं देखा। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा आयोजित लोक पर्व समारोह में, रागिनी कला मंच की इस प्रस्तुति नौटंकी 'अमरसिंह राठौर' को देखने वाले ज्यादातर दर्शकों के मुताबिक उन्होंने सचमुच पहली बार नौटंकी देखी है। टेलीविजन पर भी यह नौटंकी और साजों की आवाज को सुनते हुए ऐसा लगता, जैसे थोड़ी देर के लिए राजा साहब की हवेली का दालान और उसके सामने बिछी कुर्सियाँ किसी सभागार में बदल गया है।

नौटंकी की प्रस्तुति संवाद के माध्यम से की जाती है। संवाद गद्य में होते हैं। कलाकारों को इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने की छूट होती है। मुख्य गायक प्रथम लावणी के द्वारा पात्र का परिचय देता है और कहानी के मुख्य कथानक का सार बताता है। संगीतकार पीछे से टेक देते हैं। प्रायः पात्र पर टीका-टिप्पणी करते हुए उसकी दुर्बलताओं की ओर संकेत करते हैं और अगली लावणी कथा को और आगे बढ़ाती है। संवाद और लावणी के बीच-बीच में नायिका या अन्य कलाकार नृत्य भी करते हैं।

‘नौटंकी कला में संगीत रचनाओं की एक विशिष्टता यह है कि उनमें निश्चित राग योजना और देसी तथा लोक धुनों का एक साथ प्रयोग किया जाता है। हिंदुस्तानी रागों में रमन, भैरवी और पीलु अधिक प्रचलित हैं, किंतु और भी अनेक रागों का उपयोग किया जाता है।’⁶ नौटंकी के सुर, ताल और धुनों में पगे संवाद जब-जब काका हाथरसी के कानों से टकराते तो पूरी देह में झुरझुरी होने लगती। ‘हाड़ी रानी’ नौटंकी में मनोव्वल, मनुहार, शिकवा, गिला व तंज कसते हुए जब-जब मीड़, ममक, खटका के साथ हरकतें लेते हुए सुरों को पूरे गले से उठाती और दादरा व तुमरी में उन्हें नीचे लाती, तो महसूस होता है, जैसे कानों में फ़ज़ की अज्ञान के बोल या किसी देवालया में बजती घंटियों की मीठी आवाज घुल रही है।

संगीत पर आधारित कोई रचना हो, तो बरबस कुछ चीजों की सुध आती है। उस दौर का सांस्कृतिक परिवेश कैसा था? स्त्रियाँ अपने हुनर का इस्तेमाल घर की चाहरदीवारी से बाहर किस तरह कर सकती थीं? भाषा और संगीत के सहमेल से बनने वाली आवाजों के वृतांत कौन सहेज रहा था? और सबसे ज्यादा यह बात कि कहानी का उन्मेश किस सत्य या तर्क पर अपनी संरचना की संभावना तलाश रहा था, सुर-बंजारन के संदर्भ में इन सारी जिज्ञासाओं के कुछ-कुछ समाधान मिलते हैं और सुखद रूप से वह हल खुद नौटंकी की कलाकार के मार्फत लेखक की रचनात्मकता के बहाने सामने आते हैं। भारतीय इतिहास के सबसे अभागे राजकुमारों में से एक शाहजादे द्वारा शिकोह के बसाए एक छोटे-से शहर की, एक छोटी सी गली से निकला यह कमसिन सुर जहाँ हिंदुस्तान थिएटर में तपकर नौटंकी की दुनिया में अपनी गायन क्षमता प्रमाणित करता है, वहीं अपनी उम्र के आखिरी पड़ाव में आकर अभिव्यक्ति के संतोष में डूब, विडंबनाओं के बीच यह अपने-आपको नितान्त अकेला छोड़ देता है। इसकी नायिका रागिनी केवल एक पात्र नहीं है बल्कि ऐसे असंख्य अलक्षित सुरों का प्रतिनिधि चरित्र है, जो आज गुमनामी के अँधेरे में खोए अपनी-अपने सुरों के मीड़, मगक, खटका को तलाश रहे हैं। चौबोला, दौड़, दोहा, बहरतबील, दादरा, तुमरी, छंद, लावणी, बहरशिकस्त, सोहनी जैसे छंद जब-जब ढोलक की थाप और ढोल-नक्काड़े की धमक पर गले को चीरते हुए रात के सन्नाटे में गूँजते हैं। तब लगता है मानो नटराज के दरबार में रागों की बारिश हो रही है।

संदर्भ

1. कला संस्कृति का इतिहास (लोक कला), www.hisour.com
2. गायत्री आर्य, पुस्तक समीक्षा : सुरबंजारन (2018)
<http://satyagrah.scroll.in/article/117999/book-review-sur-banjaran>
3. भगवानदास मोरवाल, सुरबंजारन पृ० 23
4. मंजीत ठाकुर संध्या द्विवेदी, फरसत : नौटंकी की उद्भूत गद्य गाथा (2018)
<http://www.aajtak.in/india-today-hindi/story/books>
5. भगवानदास मोरवाल, सुरबंजारन, पृ० 290
6. डॉ० संयुक्ता थोरात, तमाशा लोककला इतिहास, विकास एक अध्ययन (आलेख), पृ० 566-571
मन० 32, गली नं० 5, ब्लॉक-ए, शीतला एन्क्लेव
नजदीक ग्लोबल अस्पताल, शीतला माता रोड
गुरुग्राम 122001 हरि०
मो० 8285150074
ई-मेल : sureshkumari1987@gmail.com

नरेंद्र कोहली के साहित्य में राजनीतिक व्यंग्य

जी० शुभारानी

शोधार्थी, हिंदी विभाग

अण्णामलै विश्वविद्यालय, अण्णामलै नगर

डॉ० एल० तिल्लै सेल्वी

सहआचार्या, हिंदी विभाग

अण्णामलै विश्वविद्यालय, अण्णामलै नगर

‘व्यंग्य’ संस्कृत भाषा का शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—वि +अंग=व्यंग जिसका अर्थ है—विकृत, विरूप या विकलांग। “संस्कृत साहित्य में ‘व्यंग्य’ शब्द का प्रयोग समूचे काव्यशास्त्रीय अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में ‘व्यंग्यार्थ’ के रूप में प्राप्त होता है। अंग्रेजी के इस ‘सटायर’ शब्द को लैटिन के ‘सैटुरा’ शब्द विकसित बताते हुए डॉ० उषा वर्मा ने इसका अर्थ ‘पूर्ण या भरा-पूरा’ किया है। उन्होंने माना है कि ‘इसके पश्चात इस शब्द का प्रचलित अर्थ ‘विविध भाँति की वस्तुओं का मिश्रण’ हो गया। संभवतः मौलिक रूप में यह शब्द खान-पान संबंधी शब्दावली का रहा हो। भोजन के साथ परोसा गया एक प्रकार का सलाद भी ‘सटूरा’ कहलाता था। इसी प्रकार बगीचे से उतारी जाने वाली फलों की प्रथम फसल, जिसे ईश्वर को अर्पित करने की रीति है, उसे भी ‘लैक्स सटूरा’ कहा जाता था। अतः ‘सटायर’ का मौलिक अर्थ हुआ—सर्वसाधारण की पसंद लिए हुए विविधता, यथार्थता, कुछ उजड्डता से युक्त : ग्रामीण सहृदयता से परिपूर्ण। व्यंग्य (व्यंग्य) के गुण हैं कि विविध हो, भरपूर हो, साथ ही सरल और मनोभावन हो।

व्यंग्य की व्याख्या पर भारतीय अभिमत

हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के समीक्षकों-लेखकों ने भी व्यंग्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि ‘व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।’

डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं, ‘आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।’

डॉ० इंद्रनाथ मदान के अनुसार, ‘परिवेश के प्रति असंतोष व्यंग्य का रूप धारण करता है। इसे खरी-खरी सुनाना भी कहा गया है।’

डॉ० प्रभाकर माचवे व्यंग्य को एक आवश्यक अस्त्र के रूप में स्वीकारते हुए कहते हैं, ‘मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज या अंदाज या लटका या बौद्धिक व्यायाम नहीं, एक आवश्यक अस्त्र है।’

डॉ० वीरेंद्र मेहँदीरत्ता ने व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार दी है, ‘शास्त्रीय दृष्टि से व्यंग्य मानव तथा जगत की मूर्खताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में डालकर उनके उपहास्य अथवा

घृणोत्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है।’

व्यंग्य की व्याख्या पर पाश्चात्य दृष्टिकोण

पाश्चात्य साहित्य में व्यंग्य प्र विस्तार से विचार किया गया है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान व्यंग्य की व्याख्या और स्वरूप-विश्लेषण में पश्चिमी विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। प्रमुख मत निम्नानुसार हैं—

पोट्स ने व्यंग्य का जन्म गाली-गलौज के रूप में हुआ माना है। उनके अनुसार व्यंग्य द्वारा लक्ष्य के विकृत रूप का सीधे-सीधे या व्याजोक्ति द्वारा उपहास उड़ाया जाता है। जम्स सदरह ने व्यंग्य को एक पवित्र अस्त्र माना है, जिसके द्वारा दुर्गुण और विकारों को दंडित कर समाज का भला किया जाना चाहिए। व्यंग्य का निहित भाव है व्यंग्यकार को आत्मतुष्टि देना और सामाजिक बुराइयों का असली रूप दिखाकर मानसिक बोझ से छुटकारा पाना।

मैथ्यू हॉगर्थ व्यंग्य को एक चेतावनी के रूप में लेते हुए कहते हैं कि मनुष्य वह खतरनाक जानवर है, जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की असीमित क्षमता है। व्यंग्य द्वारा यदि इस सत्य की अभिव्यक्ति कर दी जाती है तो वह पर्याप्त है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार, ‘व्यंग्य की साहित्यिक तथा ग्राह्य परिभाषा हास्यप्रद अथवा निंदक तथ्यों की मनोरंजक अथवा घृणोत्पादक अभिव्यक्ति के रूप में दी जा सकती है, उस अभिव्यक्ति में हास्य-तत्व स्पष्टतः परिलक्षित हो।’²

व्यंग्य न केवल एक स्वतंत्र, बल्कि सशक्त विधा है, उसकी अपनी संरचना, अपना शिल्प है और उसका अन्य विधाओं में भी लिखा जाना भी उसके विधा होने में बाधक नहीं है। समाज के हित के लिए व्यंग्य एक पवित्र अस्त्र के समान कार्य कर रहा है।

राजनीति का अर्थ एवं स्वरूप

डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री ‘मानक हिंदी शब्द कोश’ में राजनीति की परिभाषा इस प्रकार देते हैं, ‘राज्य की वह नीति जिसके अनुसार प्रजा का शासन और पालन तथा दूसरे राज्यों से व्यवहार होता है (पॉलिटिक्स) राजनीति के अनुसार लोगों का शासन एवं पालन तथा अन्य राज्यों से व्यवहार राजनीति के अनुसार किया जाता है इसे शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री ने राजनीति कहा है। प्राचीन भारत में धर्म का दृष्टिकोण बहुत व्यापक कहा है।’

इन आलोचनाओं का उत्तर हम 1966 ई० में प्रकाशित पी०एन० बनर्जी की ‘पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन एंशिएंट इंडिया’ के माध्यम से दे सकते हैं जिसमें उन्होंने कहा है कि ‘प्राचीन शासन पद्धति को संवैधानिक राजतंत्र की संज्ञा दी जा सकती है, यह सचिव तंत्र था। प्राचीन भारत में जिसे राजनीति एवं राजतंत्र की संज्ञा दी जाती थी वह सिर्फ सचिव तंत्र ही था।’

राजनीति एक अविरोध, कालातीत सतत परिवर्तनशील और सार्वजनिक कार्यकलाप है। जिसकी महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति ‘विषमावस्था’ आ पड़ने पर उसका समाधान करने के लिए निर्णय करने में होती है। यह एक विशेष प्रकार की क्रिया, मानव व्यवहार के रूप में प्रवाहित होती है।’

‘राजनीति’ शब्द के तीन अर्थ हैं—राजनीतिक कार्यकलाप, राजनीति की प्रक्रिया और राजनीतिक सत्ता। राजनीतिक कार्यकलाप के अंतर्गत प्रयास आते हैं, जिनसे विरोध की स्थितियों से निर्माण और समाधान ऐसे ढंग से किया जाता है, जिससे सत्ता के लिए संघर्षरत लोग अपने हितों की यथासंभव रक्षा कर सकें।

राजनीति को 'वनोन वान डायन' ने निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है—

1. यह उन इच्छाओं से संचलित होती है, जिनकी कुछ सीमा लोगों में भागीदारी होती है।
2. यह एक प्रक्रिया है जो समूहों में या उनके बीच होती रहती है।
3. इस क्रिया का एक अनिवार्य लक्षण यह है कि अभिनेताओं का संघर्ष ध्येय इच्छाओं की पूर्ति से है।

राजनीति सत्ता और उसके उपयोग के बारे में एक संगठित विवाद है जिसमें प्रतियोगी मूल्यों, विचारों, व्यक्तियों, हितों और माँगों के बीच पसंद अथवा अभिमान्यता निहित होती है। राजनीति के अध्ययन का संबंध उस तरीके के विवरण और विश्लेषण से है जिससे सत्ता प्राप्त की जाती है। उसका उपयोग किया जाता है। जिस तरीके से निर्णय लिए जाते हैं, वे कारक जो निर्णयों के निर्माण को प्रभावित करते हैं, उसे राजनीति कहा जाता है।

कोहली जी के व्यंग्यों में राजनीति

हमारे देश में अपने ही देशवासियों की सुविधाएँ नहीं मिलतीं। जो विदेशी लोग आते हैं उनको ही हमारे देश में सारी सुख-सुविधाएँ मिलती हैं। इस देश के सुपूत को ओढ़ने के वस्त्र भी नहीं मिलता इस पर कोहली जी व्यंग्य करते हैं—'उनका कहना है कि इस समय देश में विदेशी अतिथि आए हुए हैं। इसलिए सचिवालय पर केवल विदेशी कबूतरों को ही बीट करने की अनुमति दी जा सकती है।'³

भारत से गांधीवाद चल निकला (महात्मा) गांधी जी मूर्ति में बसते थे। अब अँग्रेजों में लाज-शरम थी। लेकिन गांधीजी के शिष्यों में कुछ नहीं हैं। इस पर कोहली जी कबूतर कहानी में ऐसा व्यंग्य करते हैं, 'वे तो देश को ऐसे चूस रहे हैं, जैसे कुत्ता हड्डी को चूसता है।'⁴

सारा देश तो गंदा हो गया। देश में बंदर-वृत्ति फैली हुई है। 'छीनो और खा जाओ' यही अब देशवासियों की मनःस्थिति है। इस पर कोहली जी व्यंग्य करते हैं, 'किसी दिन वे लोग तुम्हारे हाथ की यह लाठी भी छीनकर भाग जाएँगे।'⁵

देश में गांधीजी के पाँच शील को लोग भूल गए हैं। उन पर कोई आचरण नहीं किया जाता। इस पर व्यंग्यकार कहते हैं, 'इस खतरे को दृष्टि में रखते हुए हम इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि शीघ्र-से-शीघ्र पंचशील को खुले बाजार से हटा लिया जाए और वह केवल राशन की अधिकृत दूकानों पर राशन-कार्ड पर मिला करें।'⁶

'बाढ़ का नियंत्रण' कहानी में बाढ़ में फँसे दो लोगों को सरकारी अफसर कैसे बचाते हैं, इस पर व्यंग्य करते हुए कोहली जी लिखते हैं—'यहाँ पानी से धिरे हुए पेड़ पर टँगे हुए दो आदमी चिल्ला रहे हैं।'⁷ मैंने कहा 'लगाओ बे सीढ़ी' उसने अपने साथियों की ओर देखकर आज्ञा दी और फिर बड़बड़ाया, 'पता नहीं ये साले हिंदुस्तानी ऐसी जगहों क्यों चढ़ जाते हैं, जहाँ से उतर नहीं सकते। 'उधर से रूस-अमेरिका वाले चाँद से भी स्वयं ही उतर आते हैं।'⁸

व्यंग्यकार ने प्रजातंत्र पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि 'प्रजातंत्र में प्रजा के धन और धन की प्रजा को नित्य अपना बनाए रखना। मैं बहरा हूँ और तुम गूँगे, इसलिए आओ हम आपस में मिले और प्रजातंत्र को सफल बनाएँ।'⁹

प्रजातंत्र आखिर एक तंत्र ही है। विश्वबंधुत्व जैसे नारे तो बड़े लुभावने हैं परंतु दूर के ढोल की तरह। लेकिन ऐसा होने से प्रजातंत्र कभी सफल नहीं हो सकता। व्यंग्यकार इसी बात की

चेतावनी देना चाहते हैं। व्यंग्यकार ने चुनावी हथकंडों को बेनकाब करने का प्रयास किया है। प्रजातंत्र और चुनावों को झूठ-फरेब, राजनीतिज्ञों के झाँसे, झूठे वादे, आश्वासन और प्रतिज्ञाओं, कपटताओं पर निर्देश किया है। चुनाव के हथकंडों में शराब पहले क्रमांक पर है। डॉ० कोहली लिखते हैं, 'प्रजातंत्र का यह हाल किया कि एक बोतल शराब रात को पिलाकर सबेरे उसने अपनी पेट्टी में मत पत्र गिरवा लिया। न्याय को संस्थाओं ने खरीदकर जेब में रख लिया है। भ्रष्टाचार पकड़ने वाले सरकारी कर्मचारी को बरखास्त कर दिया। लुटेरों की रक्षा के लिए पुलिस तैनात कर दी और लूटने वालों को अध्यात्म सिखाने लगे। लायक को नौकरी नहीं दी और नालायक को ऊँचा पद दिया। पैसा लेकर नंबर बढ़ा दिए। चापलूसी को श्रेष्ठ पुरुष समझकर गले से लगाया।'¹⁰ आज की चुनाव व्यवस्था में प्रजातंत्र की यही स्थिति है।

भारतीय चुनावों में विकृति का आरंभ उम्मीदवारों के चयन से ही हो जाता है। यह विकृति सभी पार्टियों में विद्यमान है जितनी बड़ी पार्टी होती है उतनी ही बड़ी विकृति होती है। राष्ट्रीय हित के विरुद्ध क्षेत्रीय हित, अखिल भारतीय नेताओं के विरुद्ध राज्यों के नेता, पार्टी की एकता के विरुद्ध दूसरा गुट, जातिवाद के नाम पर उम्मीदवारों का चयन किया जाता है। व्यंग्यकार ने चुटकियाँ भरते हुए चुनाव में खड़े उम्मीदवारों के गुणों का बखान किया है, 'आप काँग्रेस के पुराने कार्यकर्ता हैं और सैंतालीस से आप काँग्रेस के साथ हैं...फिर भी काँग्रेस से टिकट नहीं मिला तो जनसंघ से भी बात की जा सकती है। आशा है इस मामले में सिद्धांत पर आपको पूरा अधिकार है कि आप असंतुष्ट हो जाएँ, और तब विरोधी पार्टी आपकी भावना का मान करेगी। इस मामले में थोड़ी पॉलिटिक्स चलनी पड़ेगी सो आप समर्थ हैं।'¹¹ व्यंग्यकार ने उम्मीदवारों द्वारा तरह-तरह के हथकंडे अपनाने, अनैतिक एवं भ्रष्ट आचरण की कुप्रवृत्ति पर प्रहार किए हैं।

चुनाव का प्रचार बहुत अधिक धूम-धड़ाके से बढ़ता जाता है। इसके लिए तरह-तरह के हथकंडों और तरीकों का प्रयोग किया जाता है। जलसे, सभाएँ, जुलूस-झोंकियाँ, सार्वजनिक स्थलों पर भाषण आम बात होती है। भाँति-भाँति के स्वाँग और खेल-तमाशे भी किए जाते हैं। विधान भवन एवं संसद भवन में समाज, राज्य तथा देश की समस्या का हल होना चाहिए, लेकिन वहाँ सिर्फ भाषणबाजी चलती है व्यंग्यकार ने संदर्भ में लिखा है, 'अब बिना विचार भाषण देने को जी करता है, विधानसभा से बेहतर जगह इसके लिए क्या हो सकती है? वहाँ कुर्सियाँ हैं, माइक लगे हैं, जो तबीयत आए बोलो जी गहरा विचार मन में उठे बाहर निकलो। न विचार आए तो भी बोलो।'¹² इस प्रकार बोलने के लिए कोई ठोस नहीं होता फिर भी नेता बोलने का प्रयास करते हैं।

जाँच समिति नियुक्त की जानेवाली पद्धति पर व्यंग्य देखिए, 'मैं सिर्फ इतना जानता हूँ कि सुबह मैंने हजामत बनवाई, नहाया और खाकर लोकसभा में आ गया। मूँछें है या नहीं, यह भी मैं नहीं कह सकता, सरकार जाँच करेगी। कारण सदन को तथ्य जानने का हक है।...तो मैं कह रहा हूँ कि एक समिति जाँच करेगी कि पहले मेरी मूँछें थीं या नहीं।'¹³

संसद और विधानसभा का हाल देखकर व्यंग्यकार लिखते हैं, 'बैलों ने हमारे देश में बड़ा योगदान दिया है। अब तक की सारी सरकारें बैलों की जोड़ी के आधार पर ही चुनाव जीतती रहीं। चुनाव के अतिरिक्त वैसे भी सरकार में काफी बैल हैं, जो यथाशक्ति फाइलों में खेतों को जोतते रहते हैं।'¹⁴ इस प्रकार काँग्रेस के प्रचार चिह्न पर व्यंग्य किया है।

निष्कर्ष

कोहली जी की कथावस्तु में वैविध्य है। यही उनकी उल्लेखनीय विशेषता है। कोहली जी के पात्र और चरित्र चित्रण में समाज और परिवार के विभिन्न तल के कथापात्रों का चित्रण किया गया है। उनकी कथावस्तु में वर्णनात्मक, विवरणात्मक, नाटकीय, मिथकीय जीवनीपरक शैलियाँ मिलती हैं। कोहली जी की राजनीतिक संवेदना बड़ी तीव्र है। उन्होंने वर्तमान राजनीति के तंत्रों, कुतंत्रों, का पर्दाफाश करके दिखाया है। आज भारत एक प्रभुतासंपन्न, लोकतांत्रिक गणराज्य है। चुनाव प्रक्रिया से लोग अपना नेता चुनते हैं। राजनीतिक दल अपने सिद्धांतों के अनुसार शासन चलाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। प्रजातंत्र की सफलता के लिए विपक्ष दल का होना अत्यंत आवश्यक है। संसद के लिए विपक्ष दल देश के विकास की दिशा तय कर सकते हैं। मंत्रालय का मुख्य कार्यालय राष्ट्रीय नीति का निर्धारण करना है। सचिवालय का मुख्य कार्य सदन की कार्यवाही की सही-सही रिपोर्ट तैयार करना है। शासन व्यवस्था विधायक के अनुसार कार्य करते हैं। इस प्रकार भारतीय प्रजातंत्र के अंतर्गत राजनीति के भिन्न-भिन्न अंग हैं।

संदर्भ

1. नरेंद्र कोहली, विचार और व्यंग्य, पृ० 32
2. वही, पृ० 38
3. नरेंद्र कोहली, मेरी प्रतिनिधि व्यंग्य रचनाएँ, पृ० 18
4. नरेंद्र कोहली, व्यंग्य की व्याख्या पर भारतीय अभिमत, पृ० 41
5. नरेंद्र कोहली, राजनीति का अर्थ एवं स्वरूप, पृ० 245
6. वही, पृ० 15
7. वही, पृ० 66
8. वही, पृ० 67
9. नरेंद्र कोहली, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ० 216
10. नरेंद्र कोहली, आधुनिक लड़की की पीड़ा, पृ० 387
11. नरेंद्र कोहली, देश के शुभचिंतक, पृ० 69
12. नरेंद्र कोहली, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ० 132
13. नरेंद्र कोहली, देश के शुभचिंतक, पृ० 300
14. वही, पृ० 335

G. Subarani
H.No. 17, Ashoknagar-1
opposite Neyveli Arch Gate vadakuthu
Kurinjiipadi Taluk Cuddalore District
607308 Tamilnadu

आदिवासी साहित्य और हिंदी कविता की परंपरा

डॉ० सीमा चंद्रन

सहायक प्राध्यापक

हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग

केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड, केरल

आदिवासी साहित्य में कविता की परंपरा बहुत पुरानी है। आदिवासी पुकार को माइने पहले पहल कविता के जरिए ही प्राप्त हुई थी। दलित साहित्य में स्वयं अथवा आत्म पर जोर दिया गया है। यही कारण है कि दलित साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन पर जोर दिया जाता है। यहीं पर आदिवासी दर्शन में किसी एक व्यक्ति या उसके आत्म पर बात न करके सामूहिकता और सामाजिकता पर जोर दिया जाता है। आदिवासियों की पुकार को अभिव्यक्त करने के लिए कविता ही सशक्त माध्यम हो सकती है जिसमें पुरखा या मौखिक साहित्य को पृष्ठभूमि के तौर पर रखा जा सकता है। वैसे भी कविता को आदिवासी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा के रूप में माना गया है। फादर हाफमेन, जगदीश त्रिगुणायत जैसे विद्वानों ने द्वारा संकलित पुरखा साहित्य में इसका जिक्र है। समकालीन कविता लेखन को जाँचें तो भी आदिवासी कविता की परंपरा पुरानी ही मिलेगी।

हिंदी की पहली आदिवासी कवयित्री सुशीला सामद हैं। इनके दो कविता-संग्रह 1930-40 के दशक में ही प्रकाशित हो चुके हैं। इनका पहला काव्य संकलन सन् 1934 में 'प्रलाप' नाम से प्रकाशित हुआ। सुशीला सामद के पश्चात् सन् 1966 में दुलायचंद मुंडा का कविता-संग्रह 'नवपल्लव' प्रकाशित। समकालीन आदिवासी कविता लेखन की शुरुआत 90 के दशक में देखते हैं। इस समय से हिंदी तथा अन्य भाषाओं में जो गैरआदिवासी भाषाएँ हैं, उसमें आदिवासी लेखन का क्रमिक विकास दिखता है। नब्बे के दशक में बलदेव मुंडा और रामदयाल मुंडा कविता के क्षेत्र में सक्रिय थे। बलदेव मुंडा का काव्य-संग्रह 'सपनों की दुनिया' 1986 में प्रकाशित हुआ। रामदयाल मुंडा के संग्रहों में 'वापसी', 'पुनर्मिलन तथा अन्य गीत' तथा 'नदी और उसके संबंधी तथा अन्य गीत' शामिल हैं। इन कवियों ने कविता के क्षेत्र में आदिवासी साहित्य की नींव रखी और एक नए तरीके की सोच रखी। किंतु प्रकाशन के बड़े बैनर का नाम नहीं होने के कारण इन कविताओं को उतनी शय नहीं मिली। वे वहीं दबी रह गईं। अतः आदिवासी साहित्य को निचोड़कर रस प्रदान करने वाली इन कविताओं का पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। रामदयाल मुंडा जैसे कवि आदिवासियत को कूट-कूटकर सँजोने वाले कवि हैं। उनकी नस-नस में आदिवासियत भरी पड़ी है। 'विरोध' नामक कविता में रामदयाल मुंडा ने आदिवासियों का बड़ा सच सहज ही सामने रखा है। उनकी कविताओं में सहजता दर्शनीय है—

बाँधकर ले जा रहे थे/ राजा के सेनानी
और नदी/ छाती पीटकर रो रही थी
लौटा दो, लौटा दो/ मुझे मेरा पानी।

प्रस्तुत कविता में प्रकृति के साथ सामंती सभ्यता के प्रति एक आदिवासी का विरोध दर्शाया गया है। यह आम विरोध नहीं है। यह एक पुकार है, मानवता के लिए एक साधारण मानव की, जो अपनी अंधी दौड़ सभ्य मानव जानकर भी झुठला रहा है। एक अन्य कविता 'चेतावनी' में कवि चेतावनी देता है—नदी और आग से/ मत कीजिए नादानी/ एक मारती है पानी से/ दूसरी बिन पानी।

इस कविता में भी कवि चेतावनी देते हैं कि हे मानव तू जो प्रकृति का अंधाधुन हनन कर रहा है इससे तेरा ही नाश होगा। हालाँकि आदिवासी किसी मामले के बीच में नहीं पड़ते, पर यदि प्रकृति हनन की बात आती है तो इस तरह की चेतावनी देते हैं। रामदयाल मुंडा का मानना है कि प्रकृति को बचाकर ही मानव सृष्टि को बचाया जा सकता है। अतः उनकी कविताओं के मूल में प्राकृतिक स्वर देखने को मिलता है। उन्होंने अपनी छोटी सी कविता 'गीत' में हवा के चलने में पहाड़ों का कितना हाथ है, उसे चरवाहे किस प्रकार महसूसते हैं, इस अहसास को बताने का प्रयास किया है। वे कहते हैं—

पहाड़ पर/ चरवाहे ने गीत गाया
गाँव में/ हल्के से किसी का
आंचल सरका।

आदिवासी कविताओं की बात की जाए और उसमें निर्मला पुतुल का नाम न आए, ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि निर्मला पुतुल एक ऐसी कवयित्री हैं जिनकी कविताओं के माध्यम से आदिवासी कविताओं का बाहरी पाठकों से विधिवत् संवाद होता है। हिंदीभाषा में उनके तीन कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'अपने घर की तलाश में', 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' और 'बेघर सपने'। ये सब कविताएँ, इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में प्रकाशित हुई हैं। इन कविताओं में इतनी शक्ति थी कि आज ये कविताएँ जानी-मानी हैं। अन्य अनेक भाषाओं में अनूदित भी हो चुकी हैं। अनेक भाषाई साहित्य रूपों का हिस्सा बन चुकी हैं। निर्मला पुतुल अपने एकांत पर चर्चा अपनी कविता 'मेरे एकांत का प्रवेश द्वार' में करती हैं—

यह कविता नहीं/ मेरे एकांत का प्रवेश द्वार है
यहीं आकर सुस्ताती हूँ मैं/ टिकाती हूँ यहीं अपना सिर
जिंदगी की भाग-दौड़ से थक-हारकर
जब भी लौटती हूँ यहाँ/ आहिस्ता से खुलता है
इसके भीतर का एक द्वार/ जिसमें धीरे से प्रवेश करती मैं
तलाशती हूँ अपना निजी एकांत।

आदिवासियों की परंपरा पर ध्यान दें तो पता चलता है कि उनके दर्शन में एकांत के लिए जगह नहीं है। तब इस कविता का एकांत हमें अजीब लगेगा। लेकिन जिस सामूहिकता को नारा बनाकर आदिवासी साहित्य चला है उसमें यहीं से आधुनिकता की छाप पड़ती है। एकांत का आना नई दुनिया का प्रवेश और नई सोच का आगमन है। यही कारण है निर्मला पुतुल अपने सृजन के लिए एकांत में जाना चाहती है। अर्थात् जब एक आदिवासी लेखक अपनी भाषा संधाली को छोड़ हिंदी में लिखने का प्रयास करता है तो अपने मूल्यों में बदलाव करने पर मजबूर होता है। ऐसा सिर्फ इसलिए कि अन्य भाषा का पाठक उसकी कविता को उसी भाव से आत्मसात् कर सके जिस भाव से कवयित्री अपनी संधाली में लिखती हैं। उनकी कविता में एकांत का अतिक्रमण भी होता है। वे उससे निकलकर बाहर भी आ जाती हैं।

आदिवासी स्त्री-पीड़ा को सर्वप्रथम दर्शाने का महान कार्य निर्मला पुतुल ने किया। उनकी कविताओं में स्त्री की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है। उनकी कविता 'क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए' पाठकों के दिलो-दिमाग पर छा गई। यह इतनी लोकप्रिय हुई है कि पाठक इसमें निर्मला पुतुल को ही स्त्रियों का प्रतिनिधि मान बैठते हैं। वे तमाम स्त्रियों के लिए पुरुष आबादी से सवाल करती हैं—

क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए/ एक तकिया
कि कहीं से थका-माँदा आया/ और सिर टिका दिया
...कोई डायरी/ कि जब चाहा/ कुछ न कुछ लिख दिया
खामोश खड़ी दीवार/ कि जब जहाँ चाहा/ कील ठोक दी
कोई गेंद/ कि जब तक/ जैसे चाहा उछाल दी
या कोई चादर/ कि जब जहाँ जैसे-तैसे/ ओढ़-बिछा ली?

यह व्यथा मात्र आदिवासी स्त्री की ही नहीं, बल्कि समस्त स्त्री जाति की व्यथा है। एक स्त्री की बुनियादी हलचल इस कविता में मौजूद है। निर्मला पुतुल नारीवादी विचारधारा से भी एक कदम आगे निकल जाती हैं। बिटिया मुर्मु के लिए लिखी कविता में वे आदिवासी स्त्रियों को जाग्रत करने का प्रयास करती हैं—

वे दबे-पाँव आते हैं तुम्हारी संस्कृति में
वे तुम्हारे नृत्य की बड़ाई करते हैं
वे तुम्हारी आँखों की प्रशंसा में कसीदे पढ़ते हैं
वे कौन हैं?
सौदागर हैं वे...समझो!
पहचानो उन्हें बिटिया मुर्मु...पहचानो!
पहाड़ों पर आग वे ही लगाते हैं
उन्हीं की दुकानों पर तुम्हारे बच्चों का
बचपन चीत्कारता है/ उन्हीं की गाड़ियों पर
तुम्हारी लड़कियाँ सब्जबाग देखने
कलकत्ता और नेपाल के बाजारों में उतरती हैं।

आदिवासियों की जागृति और चेतना ही उनकी कविताओं को पसंद करने का मुख्य कारण है। सरल भाषा में गहरी सोच कह देने का अंदाज पाठकों को भा जाता है। वे विकास के नाम पर हो रहे शोषण को नकारती हैं। कुछ देने के नाम पर सब-कुछ छीन लेने की आधुनिकता को स्वीकार नहीं करतीं। आदिवासियों को खोखली आधुनिकता से सतर्क होने का आह्वान करती हैं—

नहीं चाहिए हमें उनका अहसान
उठा ले जाँँ वे अपनी व्यवस्था
ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें
नहीं चाहिए ऐसा बदलाव
नहीं चाहिए!!

निर्मला पुतुल ने सीधे-सीधे उस व्यवस्था को नकार दिया है जो आदिवासियों के हित में नहीं है। ये व्यवस्था मात्र पैसे बनाने व माल बटोरने का हिमायती है। आदिवासियों को भी अमानवीय व्यवस्था का खुलकर विरोध करने की माँग कवयित्री ने की है। निर्मला पुतुल एक ऐसे

समाज का निर्माण करना चाहती हैं जो सभी चराचर को एक समान जीने का हक दें। वे अपनी कविताओं में आदिवासी जीवन के अनेक पहलुओं और विचारों को सामने रखती हैं। उनकी कविताएँ आदिवासियों की सच्चाई जन-जन तक पहुँचाने में सफल रही हैं। यथा—

उसी के संग ब्याहना जो
कबूतर के जोड़े और पंडुक पक्षी की तरह
रहे हरदम साथ
घर-बाहर खेतों में काम करने से लेकर
रात सुख-दुःख बाँटने तक
चुनना वर ऐसा
जो बजाता हो बाँसुरी सुरीली
और ढोल-मांदल बजाने में हो पारंगत
बसंत के दिनों में ला सके जो रोज
मेरे जूड़े के खातिर पलाश के फूल।

आदिवासी साहित्य जब हिंदी में लिखा जा रहा हो, तो सवाल उठता है कि हिंदी आदिवासियों की अपनी भाषा नहीं है, तो क्या आदिवासी चेतना से लैस अनूदित साहित्य रूप को आदिवासी साहित्य श्रेणी में रखा जा सकता है या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' ही है। क्योंकि आदिवासियों के हित के लिए, उनके दर्द को चाहे किसी भी भाषा में बयान क्यों न किया जा रहा हो, उसे आदिवासियों का अपना संसार ही कहेंगे। भाषा भले ही बदल जाए, पर जज्बात नहीं बदलते। आदिवासी कवयित्री कविता बड़ाइक पहले पहल अपनी मातृभाषा नागपुरी में लिखती थीं। बाद में हिंदी व नागपुरी दोनों भाषाओं में एक समान लिखना शुरू किया।

रोज केरकेट्टा, निर्मला पुतुल, ग्रेस कुजूर आदि की परंपरा को आगे बढ़ाने वाली सरिता ने अपने कविता-संग्रह 'नन्हें सपनों का सुख' के माध्यम से आदिवासी साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई थी। कविता-संग्रह के पहले भाग में सरिता ने नागपुरी में कविताएँ लिखी हैं जिसका हिंदी अनुवाद भी सरिता जी ने ही किया है। आर्यभाषा परिवार के कारण नागपुरी समझने में लोगों को दिक्कत नहीं होती, फिर भी उन्होंने स्वयं उन कविताओं का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कविता में नागपुरी भाषा की कविता देखिए—

छूछा के केउ नइ पूछा,/ 'नागपुरिया बोलबे तो/ बनबे गंवरिया
एहे तहे छाँटती इंगलिस शहरिया'/ 'सोचे थे बाबु बोलेक ले/
नागपुरिया/ लजाते बाबू कहायक ले/ झारखंडिया।

प्रस्तुत कविता में सपनों के झारखंड से असली झारखंड की यात्रा तय होती है। झारखंड का जिक्र मार्मिक है, क्योंकि झारखंड की अवस्था दारुण है। सरिता जी पहले भी झारखंड की स्थिति से संतुष्ट नहीं थीं और आज भी संतुष्ट नहीं हैं। यही वजह है कि कवयित्री भी अपने सपनों को चूर होते देखती हैं। पूँजीवादी भूख ने झारखंड के सपनों को चूर कर दिया है। इस साजिश में गैरआदिवासियों के साथ आदिवासी भी शामिल हैं। यही कारण है कि झारखंड के लोग काफी आहत हुए हैं। सरिता बड़ाइक की कविताओं में इंसान से लेकर प्रकृति के साथ भी गहरे रिश्ते को देखा जा सकता है। 'बेटी सहजन' कविता में बेटी के बढ़ने की तुलना पेड़ के बढ़ने से की गई है। यथा—

बढ़ेगी यही/ सहजन के पेड़-सी
फूल-पत्ते, डंठल-जड़, बढ़ेंगे सभी
होगी विदा एक दिन।

आदिवासी स्त्री की पीड़ा सरिता की कविताओं का केंद्रीय विषय है। कविता 'घासवाली' में वे कहती हैं कि घास बेचनेवाली आदिवासी स्त्री केवल घास बेचती है, जिस्म नहीं। प्रसव-पीड़ा में चल बसी बुधनी की पीड़ा को 'बेटी और नागफनी' कविता में सरिता जी बयान करती है। 'आना होगा आगे' नामक कविता में कवयित्री स्त्री शोषण के खिलाफ आगे आने का आह्वान करती हैं। सरिता की कविताएँ बताना चाहती हैं कि आदिवासी स्त्री और समाज पितृसत्ता से मुक्त नहीं है। उनकी कविताओं में गहरी सोच, नए संसार का सृजन करने की क्षमता है। उन्होंने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व को उठाते हुए समस्त स्त्री जाति की चिंताओं को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है।

हरिराम मीणा भी आदिवासी साहित्य के क्षेत्र में दो दशक से कार्यरत हैं। उनकी कविताओं में 'रोया नहीं था यक्ष', 'सुबह के इंतजार में', 'भीलणी' आदि शामिल हैं। उनके लेखन की विशेषता है कि वे सिर्फ अपने इलाके के आदिवासियों तक सीमित नहीं रहते, वे उत्तर-पूर्व, दक्षिण से लेकर अंडमान तक चल पड़ते हैं। उनकी इस परंपरा से जहाँ आदिवासी कविताओं को सादगी मिली है, वहीं बदलती परिस्थितियों में ओज प्राप्त हुआ है। हरिराम मीणा बिरसा मुंडा को याद करते हुए लिखते हैं—

उसकी आवाज/ जंगलों में आज भी गूँजती है—
में केवल देह नहीं/ मैं जंगल का पुश्तैनी दावेदार हूँ।

वंदना टेटे ने भी आदिवासी साहित्य को आत्मसात किया है। उनके कविता-संग्रह 'कोनजोगा' में आदिवासी शिद्ध देखने को मिलती है। वे अपने मन के विचारों को सहज ही लिख डालती हैं। वे प्रकृति के सहज सौंदर्य, आदिवासियों के नैसर्गिक मूल्यों, सहज उल्लास, दुःखों को कविताओं में पिरोती हैं। वे मनुष्य की सहजता को आदिवासियों के माध्यम से बचाना चाहती हैं। उनकी कविता 'बेदखल होती स्त्री' इसका प्रमाण है—

उपमानों का बोझ ढोये/ खड़ी है जबरन अपनी जमीन पर
हाँ, बड़ी उहड़ता से/ क्योंकि फतवा जारी है
उसके खिलाफ/ और वह/ हुक्मरानों के लरियाएँ मुँह
और कुत्तों से तीखे दाँतों/ के खिलाफ।

वंदना टेटे के समान ग्रेस कुजूर भी वरिष्ठ आदिवासी साहित्यकार हैं। उनकी कविता 'कलम को तीर होने दो' हिंदी की सबसे लोकप्रिय कविताओं में शामिल हैं। वाहरू सोनवणे मराठी की प्रसिद्ध आदिवासी साहित्यकार हैं। उनकी हिंदी का कविता संग्रह है—'पहाड़ हिलने लगा है'। इसमें 'स्टेज' नामक हिंदी कविता लोकप्रिय है। बाहरी समाज की बहसों में आदिवासियों की उपेक्षा 'स्टेज' कविता में है। इसी प्रकार महादेव टोप्पो तीन दशकों से कविता कर रहे हैं। 'जंगल पहाड़ के पाठ' उनकी प्रकाशित कविता है। इस कविता में आदिवासियों को अपनी परंपरा के प्रति जागरूक करने का काम कवि ने किया है। युवा कवि अनुज लुगुन भी इसी श्रेणी में आनेवाले कवि हैं। विकास के नाम पर आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन की लूट को उजागर करते हुए अनुज आदिवासियों के द्वंद्व को सामने रखते हैं—

लड़ रहे हैं आदिवासी/ अघोषित उलगुलान में
कट रहे हैं वृक्ष/ माफियाओं की कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे हैं कंक्रीट के जंगल/ दांडू जाए तो कहाँ जाए
कटते जंगल में/ या बढ़ते जंगल में?

विकास के नाम पर लूट मचाने वालों की मदद करने वाले आदिवासियों पर भी सवाल उठाते हैं। अनुज के अलावा जसिंता केरकेट्टा भी युवा रचनाकारों में सक्रिय हैं। बिरसा मुंडा के जीवन पर बलदेव मुंडा का खंडकाव्य 'धरती आबा' विशिष्ट महत्त्व रखता है। वरिष्ठ आदिवासी रचनाकार रोज केरकेट्टा की कविताएँ खडिया भाषा के साथ हिंदी में भी मिलती हैं।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदिवासी सदियों से अपने अस्तित्व के लिए लड़ते आए हैं। वे प्रकृति का हनन करके अपनी पहचान नहीं बनाना चाहते। सुषमा केरकेट्टा, आलोका कुजूर, शिशिर टुडु, महेश अगस्तीन जैसे अनेक लेखक आदिवासी साहित्य परंपरा में आगे आए हैं। वे आदिवासी कविता लेखन में सक्रिय होकर आदिवासी परंपरा का निर्माण और विकास कर रहे हैं। आदिवासी कविताओं के माध्यम से इन रचनाकारों ने आदिवासी परंपरा और धरोहर को बचाने का बीड़ा उठाया है। क्योंकि मानव अब पहचानने लगा है कि आदिवासियों के अस्तित्व में ही मानवता का अस्तित्व विद्यमान है।

संदर्भ

1. आदिवासी कौन, रमणिका गुप्ता
2. आदिवासी साहित्य विमर्श, मोहन चव्हाण
3. भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श, डॉ॰ माधव सोनटक्के और डॉ॰ संजय राठोड़
4. हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श, डॉ॰ हर्षलता शाह
5. आदिवासी साहित्य विमर्श, गंगासहाय मीणा
6. आदिवासी चिंतन की भूमिका, गंगासहाय मीणा
7. हिंदी साहित्य में आदिवासी हस्तक्षेप, गौतम भाईदास कुँवर

मो॰ 9447720229

ई-मेल-drseemachandrancukhindi@gmail-com

भूमंडलीकरण का प्रतिपक्ष और 'असुर' आदिवासी समाज

(‘ग्लोबल गाँव के देवता’ उपन्यास विशेष के संदर्भ में)

डिम्पी बरगोहाई

शोधार्थी, हिंदी विभाग

कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

मनुष्य समाज-प्रिय होने के नाते समाज में रहने वाले हरेक व्यक्ति के साथ संपर्क बनाकर रखता है—आपस में संवाद जोड़ता है, एक-दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होता है, अपने बचाव और वृद्धि के साथ पूरे समाज के उन्नति की कामना करता है। पारस्परिक मेलजोल के कारण ही समस्त प्राणीजगत के प्रति उसके मन-मस्तिष्क में सहानुभूति का भाव जाग्रत होता है परंतु जब इन मानव समुदायों में वर्ग, राज्य और निजी संपत्ति इत्यादि को लेकर अंह-भाव, स्वार्थलोलुपता का उदय होता है तो ये संबंध बदल जाते हैं। तब शोषण और अत्याचार का दौर शुरू होता है। आज आदिवासी समाज इसी अन्याय का स्वीकार है।

हिंदू धर्म ग्रंथों के अनुसार असुर वे लोग हैं, जो ‘सुर’ अर्थात् देवताओं से लड़ते हैं। वैदिकयुग ग्रंथों—महाभारत, रामायण आदि में देवता और असुरों के बीच संघर्ष की कहानी को देखा जा सकता है। वैदिकयुग में देवता और असुरों के बीच लड़ाईयाँ हुई थीं। उसी का एक रूप ‘ग्लोबल गाँव के देवता’ में मिलता है। आज असुर बेहद लाचार स्थिति में हैं और ग्लोबल देवता अपनी स्वार्थ में पूरी तरह डूबे हुए हैं। यह उपन्यास भूमंडलीकरण की विभिन्न परतों को खोलता है और स्पष्ट तौर पर यह दर्शाता है कि भूमंडलीकरण, आदिवासी समुदायों के लिए विकास नहीं, विनाश लेकर आया है। साथ ही, राष्ट्र-राज्य और उसका सैन्यबल भी इन भूमंडली देवताओं का ही साथ देते हैं।

आदिवासी सामाजिक व्यवस्था और अर्थव्यवस्था में जब वैश्विक पूँजीवादी व्यवस्था का प्रवेश हुआ तब आदिवासी समुदायों के लिए संकट खड़ा हो गया। बाजारवादी संस्कृति के आगमन ने भारतीय संस्कृति के साथ-साथ असुर संस्कृति के पर्व-त्यौहार, लोक-परंपरा को भी अपने कब्जे में कर लिया। असल में आदिवासी समाज की संरचना भिन्न होती है तथा आर्य वर्णाश्रम व्यवस्था से भी मुक्त होती है। आज बाजारवादी दौर में आदिवासी समाज के लिए जिस विकास की बात कही जा रही है, असल में वह उनके समाज में तबाही मचा रही है। जिसके तहद असुर समाज का ‘वर्तमान अतीत में ढलता जा रहा था और अतीत की कल्लो-गारत वर्तमान में नजरों के सामने नाच रही थी।’¹

असुर गाँवों में बहु-राष्ट्रीय कंपनियों का आना अर्थात् जितनी तेजी से औद्योगीकरण का विकास हुआ है, उतनी ही तेजी से असुर समाज अपनी ही जमीन से अपरिचित हो रहा है। विकास के नाम पर बनाई गई परियोजनाएँ आदिवासी समाज में विस्थापन लेकर आई हैं। जो जमीन कभी

उनकी हुआ करती थी, वह आज बाहरी सत्ता के अधीन है। 'कभी-कभी कोई पगलेट मानवशास्त्री या पुरातत्ववेत्ता इशारे करता रहा कि आजमगढ़ से चौबीस किलोमीटर दूर धासी नामक स्थान पर मिट्टी के किले के अवशेष हैं जिन्हें जनश्रुति असुरों का मानती है। आजमगढ़ में ही कुँवर और मुंगी नदियों के किनारे के खंडहर आज भी असुरों के कहे जाते हैं।'²

प्राचीनकाल से प्रकृति के स्नेह में रचे-बचे आदिवासी जीवन में वन कानून लागू करवा दिया गया और जानवरों के बचाने के लक्ष्य से न जाने कितने असुरों की जमीनों पर वन विभाग अपना अधिकार जमाने लगा। इसकी मर्मांतक पीड़ा को असुर एक गीत के जरिए व्यक्त करता है—

शिकारियों के बूटों की धमक
साफ सुनाई दे रही है
बच नहीं पाओगे
जख्मी हिरण
बच नहीं पाओगे।³

'शोषण का स्वरूप जब-जब तीखा हुआ है इसको जारी रखने के लिए तीखे दमन का सहारा लिया गया है। इसकी वजह से तीखे प्रतिरोध भी पैदा हुए हैं। जब शोषण की तीव्रता काफी बढ़ जाती है तब जनता के अंदर का विश्वास एक ठोस शक्ल ले लेता है और दमन के तमाम औजारों को चुनौती देते हुए उठ खड़ा होता है। तमाम काल के विद्रोहों का यही स्वरूप रहा है।'⁴ असुर गाँवों में हो रहे शोषण और उसके विरोध में खड़े होने के लिए संघर्ष ही एकमात्र हथियार था।

असल में यह उपन्यास भूमंडलीकरण और पूँजीवाद के नए-पुराने तमाम देवताओं के प्रति संकेत है जो क्रूरता से आदिवासी जमीन-जायदाद को लूटना चाहते हैं। राजा मैसोसोएत की मृत्यु के बाद उनके बेटे मैटाकोम और सेमासेट जनजाति की जो दशा पुराने औपनिवेशिक देवताओं ने की आज वही नए देवता आदिवासियों को उनकी जमीनों से बेदखल कर रहे हैं। असुर समाज भूमंडलीकरण, जो पूँजीवाद का ही एक नया रूप के खिलाफ लड़ रही है। परन्तु पूँजीवादी देवता सत्ता वर्ग के साथ मिलकर उन्हें माओवादी या नक्सलवादी बना देते हैं।

पूँजीवाद के इस नए रूप भूमंडलीकरण ने राष्ट्र-राज्य के साथ एक क्रूर गठजोड़ किए हैं। कहने के लिए तो राष्ट्र अथवा राज्य जनता के हित के लिए निर्मित हुआ था लेकिन उसने कुछ किया नहीं। 'इतिहास की पढ़ाई ने उसे समझ दी थी कि राज्य-राष्ट्र की हिंसा का कोई जवाब ही नहीं हो सकता। उसका मानना था कि राज्य की नींव में ही केवल हिंसा की ईंट नहीं लगी है बल्कि उसके महल की हिंसा की ईंटों से ही चिनाई हुई है। यही एक मात्र संस्था है जिसने हिंसा को भी सांस्थानिक रूप दिया है। उसकी सेना, सशस्त्र बल, पुलिस, सब सैद्धांतिक तौर पर हिंसा के लिए ही प्रशिक्षित हैं। राज्य-राष्ट्र अपने को सुरक्षित रखने के लिए इंसानों का इंसानों के द्वारा ही नाश करवाता है। बाजाप्ता इसके लिए अरबों-खरबों रुपए के बजट बनते हैं। ज्यादा से ज्यादा इंसान जल्दी से जल्दी मारे जा सके, इसके लिए शोध होता है। पूरे जीव-जगत में ऐसे कम ही जीव होंगे, जो अपनी ही प्रजाति से अपनी भूख मिटाते हों। किंतु राज्य-राष्ट्र ने आदमी को ही आदमखोर बना दिया है। वह भी बिना किसी अपराधबोध के। यही इसकी खासियत है।'⁵ उपन्यास में रणेंद्र ने व्यंग्य करते हुए लिखा है कि आज ग्लोबल गाँव के आकाशचारी देवता और राष्ट्र-राज्य, दोनों एक-दूसरे में मिल गए हैं।

कथानक सांस्कृतिक राष्ट्रवादी शक्तियों की ओर भी इशारा करता है। पूँजीवादी व्यवस्था

ने जहाँ एक ओर आदिवासी समाज को औद्योगिक क्रांति में समाहित कर दिया है वहीं बाबा शिवदास जैसे लोग असुरों के सांस्कृतिक स्वरूप पर हमला करते हैं। लालचन जैसे न जाने कितने असुर ऐसे बाबाओं के मायाजाल में फँस जाते हैं। आज लगभग सभी जनजातियाँ अपनी सभ्यता-संस्कृति और जाति-विनाश को लेकर चिंतित हैं। उपन्यास में रुमझुम ने अमेरिका के रेड इंडियंस के ऊपर साम्राज्यवादी शक्तियाँ किस प्रकार हावी हुई थी, उसका एक चित्रण खींचा है—‘अमेरिकी महाद्वीप में यूरोपीय आबादी की बढ़ती लहर सोने की खानों के लोभ में मूल निवासियों को बार-बार पीछे ठेलने के लिए विवश किया गया। साम्राज्यवादी शक्तियाँ येन-केन भूमि पर कब्जा जमाने की नीति पर निरंतर आगे बढ़ रही थीं। सन् 1633 तक का कोई लिखित दस्तावेज अब तक नहीं मिला है जिसमें जमीन की खरीद-फरोख्त का प्रमाण मिलता हो। कई मामलों में जनजातीय प्रधानों को बहला-फुसलाकर तमगे या उपहार देकर जमीन हथियाई गई।⁶ उपनिवेशवाद ने जो लूट अमेरिका में मचाई थी, वही लूट भूमंडलीकरण असुर आदिवासियों के क्षेत्र में मचा रहा है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों और भूमंडलीकरण से उपजी हुई शक्तियों के खिलाफ लिखा गया रणेंद्र का यह उपन्यास झारखंड की आदिवासी असुर जनजाति के मौजूदा जीवन का दस्तावेज है। उपन्यास अतीत की शक्तिशाली जनजाति की सभ्यता, संस्कृति और उसकी जीवनाकांक्षा से लेकर राष्ट्र और विकास संबंधी गंभीर मुद्दों को उठाता है। बाहरी सत्ता के साथ-साथ सरकार और प्रशासन द्वारा असुरों की उपेक्षा करने के यथार्थ को यहाँ दर्शाया गया है।

आदिवासी गाँवों में स्थानीय देवता भी ग्लोबल देवताओं के साथ मिले हुए हैं जो अपनी ही सभ्यता संस्कृति को बेचकर ग्लोबल गाँव के सपनों में डूबे हुए है परंतु उन्हें यह महसूस नहीं हुआ है कि उनकी सभ्यता-संस्कृति को मुख्यधारा धीरे-धीरे निगल रही है। उपन्यासकार ने उस दमन के प्रतिरोध के संदर्भ में लिखा है—‘केरल की सीकेजानू वन विभाग की जिद के कारण तिरपेन हजार बेघर आदिवासी परिवारों की लड़ाई की अगुआ, वायन्द्र जिले की गैरमजरुआ जमीन पर बसने की बात सोचते पुलिसिया बर्बरता का शिकार होती हैं। महाराष्ट्र कांकेण में बेघर तेरह हजार आदिवासी परिवारों की लड़ाई लड़ती सुरेखा दलवी, मध्यप्रदेश रीवा जिले में संघर्ष करतीं दुवसिया देवी, छिंदवाड़ा गोंड गाँव की दयाबाई। किसकी-किसकी कथा कही जाए और कितनी कही जाए!⁷

उपन्यास का कथानक केवल झारखंड के आदिवासी असुर गाँवों तक ही सीमित नहीं है बल्कि भूमंडलीकरण की स्थिति में यह समुदायों की सीमाओं के पार विश्वबोध का कथानक बन जाता है। आदिवासी समुदायों के जल, जंगल, जमीन की लूट में पूरी व्यवस्था ही शामिल है। शिवदास बाबा, स्थापित धर्मों का वह प्रतिनिधि है जो लूट को भी आध्यात्मिक आभा पहना देता है। असल में शिवदास बाबा भारतीय प्रभु वर्ग का एक ऐसा चेहरा है जो ग्लोबल प्रभुओं का एजेंट है। अपने कंठी अभियान से वह आदिवासियों का धर्म परिवर्तन कराता है तथा हिंदुत्ववाद राजनीतिक-सामाजिक अभियान का नकाबधारी प्रतिनिधि चरित्र है। ‘संस्कारविहीन मैकाले शिक्षा-पद्धति को वे राष्ट्रद्रोही मानते थे, जो भारत जैसे धर्मप्राण राष्ट्र की नींव खोखली कर रहा था।⁸ इसीलिए वह आदिवासी इलाकों में स्कूल खोल रहा था और दावा कर रहा था कि वह धर्म आधारित अच्छी शिक्षा दे रहा है। असल में शिवदास बाबा कुत्सित राजनीति का प्रतिनिधि चरित्र है।

इससे यह प्रमाणित होता है कि ‘असुर’ आदिवासी समाज अपनी जमीन, जंगलों तथा अस्तित्व की रक्षा के लिए लड़ने को तैयार है। असुरों ने अपनी अस्मिता की यह लड़ाई एकदम

शांति से शुरू की थी। मगर उसमें आग फैलाने वाले पुलिसवालों ने अपनी वर्दी की ताकत दिखाकर असुरों को नक्सली करार दिया और कई आदिवासियों की हत्या कर दी। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने आदिवासी समाज में तीखे अंतर्विरोध पैदा किए, जिससे आदिवासियों की परंपरागत मान्यताओं और लोकसंस्कृति में जबरदस्त बिखराव हुआ। अपने मूल स्थान से विस्थापित होना, जमीनों में खेती के स्थान पर फैक्टरियों की इमारतें खड़ी होना, सामाजिक-सांस्कृतिक बिखराव होना, इन बातों ने असुरों को बेचैन कर दिया। 'अपने देवता सिंगबोंगा की तरह असुर जाति भी कभी थकती नहीं। आग से उत्पन्न, कभी लोहा पिघलाने और पिघला लोहा खानेवाले लोग खुद भी लोहा थे।' अपनी जाति की लड़ाई में वह कभी हार मानने वालों में से नहीं थे।

असुर समाज की चिंता अपने भविष्य की विभीषिका के प्रति है। जब तक असुरों का वर्तमान सुरक्षित नहीं है तो भविष्य का सवाल ही पैदा नहीं होता। वे अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं।

संदर्भ

1. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेंद्र , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2010, पृ० 32
2. वही, पृ० 33
3. वही, पृ० 78
4. आदिवासी अस्मिता, प्रभुत्व और प्रतिरोध, संपादक-अनुज लुगुन, अनन्य प्रकाशन, 2015, पृ० 38
5. ग्लोबल गाँव के देवता, रणेंद्र, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 2010, पृ० 92
6. वही, पृ० 44
7. वही, पृ० 91,
8. वही, पृ० 59
9. वही, पृ० 28

Dimpee Borgohain
C/o Mr. Biswajit Borgohain
Vill. Khagori Gaon
P.O. Pahumara (Lakhimpur) Assam 787031
Mo. 6000820383

हिंदी साहित्य में कालक्रमानुसार अभिजात्य एवं लोक का संबंध सचीन्द्रनाथ

हिंदी साहित्य के इतिहास को बहुत से विद्वानों ने विवेचित करने का प्रयास किया जिसमें गार्सा द तासी, शिवसिंह सेंगर, ग्रियर्सन, मिश्रबंधु का नाम उल्लेखनीय है, लेकिन हिंदी साहित्य का सबसे प्रामाणिक, तार्किक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण और विवेचन प्रस्तुत करने का काम आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया। 1929 ई० में शुक्लजी ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नामक साहित्य इतिहास ग्रंथ लिखा जिसे आज तक हिंदी साहित्य के इतिहास का आधार ग्रंथ माना जाता है। यहाँ इस लेख में हिंदी साहित्य में कालक्रमानुसार अभिजात्य एवं लोक के संबंधों को विवेचित करने के लिए शुक्ल जी के इसी ग्रंथ का सहारा लिया जा रहा है, इन्हीं के ग्रंथ में विवेचित हिंदी साहित्य के इतिहास को आधार मानते हुए हम हिंदी साहित्य में अभिजात्य एवं लोक के संबंधों को देखने का प्रयास करेंगे।

आदिकाल में लोक और अभिजात्य

आदिकाल को हिंदी साहित्य का प्रथम काल माना जाता है। आदिकाल पर विचार करते हुए शुक्ल जी सर्वप्रथम भाषा पर विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि 'प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिंदी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है।' आगे बढ़ते हुए वे अपभ्रंश का अभिप्राय बताते हुए कहते हैं कि 'प्राकृत भाषा जब रूढ़ होकर कवियों की भाषा हो गई, बोलचाल की भाषा घिस-घिसकर कवियों के भाषा में आ गई। जब तक भाषा बोलचाल में थी तब तक वह भाषा या देशभाषा ही कहलाती रही, जब वह भी साहित्य की भाषा हो गई तब उसके लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार होने लगा।' यहाँ शुक्ल जी भाषा के आधार पर लोक और अभिजात्य को स्पष्ट कर रहे हैं जिसे वे देशभाषा, बोलचाल की भाषा कह रहे हैं वह दरअसल, लोक की भाषा, आमजन की भाषा है जहाँ लेखन की जगह वाचन (बोलकर बातों को, विचारों को रखना) पर बल दिया जाता है लेकिन जब वही बोलचाल की भाषा आगे चलकर साहित्य के रूप में कवियों द्वारा प्रयोग की जाने लगी, तब वह काव्य की अपभ्रंश भाषा बन गई। शुक्ल जी आदिकाल में दो तरह की रचनाओं के मिलने की बात करते हैं—अपभ्रंश की और देशभाषा (बोलचाल) की। अपभ्रंश काव्य में सिद्ध, जैन और नाथ कवियों को रखा गया। ये कवि आमजन के थे, ये अधिकतर मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले जाति से थे जिन्हें शास्त्र का ज्ञान नहीं था और वे शास्त्र के नाम पर किए जा रहे पाखंड के लिए शास्त्र पंडितों को फटकार भी लगाते हैं। इसके अलावा इस काल के सिद्ध, नाथ और जैन कवि अपने मत का संस्कार जनता पर भी डालना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने संस्कृत की जगह अपभ्रंश मिश्रित देशभाषा को चुना। इन सबके अलावा इस समय के साहित्य में तंत्र विद्या की उपस्थिति अधिक दिखाई देती है। इसको लेकर कुछ विद्वानों का यह मानना है कि ये तंत्र विद्या लोक की देन है। लोक में ही जादू-टोना, टोटका, तंत्रमंत्र आदि की उपस्थिति होती है। इसी से प्रभावित होकर उस समय के कवियों ने आम जनता पर अपना प्रभाव बनाने के लिए लोक के इस विषय

को अपने साहित्य का विषय बना लिया।

इसी काल के प्रसिद्ध कवि विद्यापति ने अपभ्रंश और देशभाषा, दोनों में अपनी रचना की। शुक्ल जी तो यहाँ तक लिखते हैं कि 'एक ही कवि विद्यापति ने दो प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है—पुरानी अपभ्रंश भाषा का और बोलचाल की देशी भाषा का। इन दोनों भाषाओं का भेद विद्यापति ने स्पष्ट रूप से सूचित किया है—देसिल बअना सब जन मिट्टा। तें तैंसन जंपओं अवहट्टा।' विद्यापति की रचना 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' अपभ्रंश में लिखी हुई है। वहीं 'पदावली' मैथिली में लिखी हुई है जिसे उस समय जन की भाषा माना जाता था। इस तरह अपभ्रंश काव्य में भाषा, विचार और विषय के आधार पर लोक और अभिजात्य वर्ग में हो रहे आदान-प्रदान दिखाई देते हैं। अपभ्रंश काव्य के बाद शुक्ल जी वीरगाथाकाल के काव्य पर विचार करते हैं और इसमें वे मूलतः देशभाषा काव्य की उपस्थिति स्वीकारते हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि केवल पढ़े-लिखे पंडित ही उस समय कविता नहीं करते थे बल्कि जनसाधारण की बोली में गीत-दोहे आदि प्रचलन में रहे होंगे जिन्हें पंडित लोग गँवारू समझते होंगे। ये राजसभाओं तक नीति, शृंगार आदि विषय दोहों और वीररस के पद्य छप्पय में पहुँच गए होंगे। यही कारण है कि वीरगाथाकाल की जितनी भी रचनाएँ मिलती हैं, सब में वीररस की प्रधानता और गाथा-कथा का स्वरूप मिलता है और ऐसा जान पड़ता है कि लोकप्रिय राजाओं की शौर्यगाथा को ही इस समय के कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया। इसी कारण है कि उनकी भाषा में भी लोक के तत्त्व चले आए। इसी तरह शुक्ल जी फुटकल रचनाओं में खुसरो और विद्यापति को रखते हैं। इन दोनों कवियों की रचनाओं में लोक तत्त्व प्रधान है। खुसरो के बारे में शुक्ल जी लिखते हैं—'खुसरो मियाँ दिल्ली में बैठे ऐसी बोलचाल की भाषा में पहेलियाँ और मुकरियाँ कह रहे थे—एक नार ने अचरज किया। साँप मार पिंजरे में दिया।' वे खुसरो के बारे में लिखते हैं कि 'ये बड़े ही विनोदी, मिलनसार और सहृदय थे, इसी से जनता को सब बातों में पूरा योग देना चाहते थे। जिस ढंग के दोहे, तुकबंदियाँ और पहेलियाँ आदि साधारण जनता की बोलचाल में इन्हें प्रचलित मिलीं उसी ढंग के पद्य, पहेलियाँ आदि कहने की उत्कंठा इन्हें हुई।' खुसरो के विषय ही लोक तत्त्वों पर अधिक केंद्रित हैं। लोक तत्त्व में लोकजीवन के अंग हैं—स्त्री-पुरुष संबंध, गृहस्थी, पर्व-त्योहार तथा मान्यताएँ आदि। ये सारे अंग खुसरो के यहाँ देखने को मिलते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में दही बेचने वाली स्त्री, पानी भरने वाली स्त्री, पर्व-त्योहार, फल-फूल जैसे विषय देखने को मिलते हैं। इनकी भाषा भले ही खड़ी बोली है लेकिन उसमें अभिव्यक्त विचार लोक के हैं।

मध्यकाल में लोक और अभिजात्य

हिंदी साहित्य का मध्यकाल—पूर्व-मध्यकाल (भक्तिकाल) तथा उत्तर-मध्यकाल (रीतिकाल) दो भागों में विभक्त हो जाता है। शुक्ल जी भक्तिकाल पर विचार करते हुए यह मानते हैं कि जब मुसलमान आक्रांताओं ने आम जनता के मंदिरों को तोड़ना शुरू किया, जब आमजन आक्रमण से हारी हुई महसूस करने लगी तब उसके पास केवल एक ही रास्ता बचा था—ईश्वर की शरण में जाना और ईश्वर की आराधना करना। शुक्ल जी मुसलमानों के अत्याचार के कारण भक्ति आंदोलन की शुरुआत मानते हैं। शुक्ल जी के इस मत को बाद के विद्वानों ने गलत सिद्ध किया। जिसमें हजारीप्रसाद द्विवेदी महत्त्वपूर्ण हैं। द्विवेदी जी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में लिखते हैं कि 'मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस (हिंदी) साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' नामवर जी भी द्विवेदी जी के इस विचार से सहमत

व्यक्त करते हैं। द्विवेदी जी अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' में भक्तिकाल पर विचार करते हुए लिखते हैं कि 'जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहे थे, तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।' लेकिन इस विचार से यह कभी नहीं कहा जा सकता कि मुसलमानों के आने से भारतीय समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मुसलमानों के आने से भारतीय समाज और संस्कृति में टकराव और संपर्क देखने को मिला जिससे सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन हुआ। उस समय समाज सामंती तो था ही साथ ही जाति व्यवस्था भी अपने कठोरतम रूप में मौजूद थी, लेकिन इस्लाम के आने से इसमें कुछ परिवर्तन भी हुए और यही कारण है कि भक्तिकाल में जहाँ एक ओर इस व्यवस्था में बदलाव का प्रयास किया जा रहा है वही इसका चित्रण भी दिखाई देता है। यही कारण है कि भक्तिकाल तक आते-आते साहित्य पांडित्यशास्त्र की जगह लोक की ओर जाता दिखाई देता है। भक्तिकाल के कवियों में देखने को मिलता है कि वे शास्त्र की कठोरता की जगह लोक की सहजता पर ज्यादा बल देते हैं। भक्तिकाल तक आते-आते जो लोक का स्वर था, जिसे दबाया गया था उसमें शक्ति आने लगी थी और इसी का एक परिणाम था कि पांडित्य लोक की तरफ झुकने लगे थे। भक्तिकाल में शास्त्र और लोक के बीच का द्वंद्व साफ दिखने लगा था। भक्तिकाल की निर्गुण धारा में यह द्वंद्व मुखर होकर दिखाई देता है। यही कारण है कि इस काल में दमित, दलित और पीड़ित चाहे वह पुरुष हो या स्त्री शास्त्र के खिलाफ लोक को खड़ा कर रहा था। कबीर इसके प्रमुख उदाहरण हैं जिन्होंने पांडित्य और शास्त्र को नकारा और धर्म, जाति के नाम पर हो रहे पाखंड की आलोचना की। सूफीकाव्य में भी लोक के तत्त्व दिखाई देते हैं। इस समय लिखे जा रहे प्रेमाख्यानक काव्यों में लोक तत्त्व विद्यमान है। चाहे वह 'ढोलामारू रा दूहा' हो या जायसी की 'पदमावत'। इनमें व्यक्त कथा राजस्थानी लोक में प्रचलित कथा है जिसे कवि ने अपने साहित्य के विषय रूप में लिया है। सबमें लोकजीवन के तत्त्व विद्यमान हैं। लोक के जितने भी आयाम होते हैं, चाहे वह कृषक जीवन से जुड़ा हो, गृहस्थी से जुड़ा हो, पर्व-त्योहार से जुड़ा हो, या स्त्री-पुरुष संबंधों से जुड़ा हो, सबकी अभिव्यक्ति इन काव्यों में देखने को मिलती है। इस समय के साहित्य की भाषा पर ध्यान दें तो वह ब्रज और अवधी भाषा बहुल साहित्य है और यह लोक की भी भाषा है। इसी तरह सगुण काव्यधारा में भी लोक की उपस्थिति विषय, विचार या भाषा के स्तर पर दिखाई देती है।

भक्तिकाल के बाद उत्तर-मध्यकाल आता है जिसे रीतिकाल के नाम से भी जाना जाता है। शुक्ल जी ने इसका नामकरण उसकी प्रवृत्ति के आधार पर ही रखा है। इस काल के काव्यों में रीति की प्रधानता अधिक थी, क्योंकि इस काल में कवि ग्राम से नगर की ओर जाने लगा था जिस कारण कवि के साथ काव्य भी लोक से दरबार की ओर जाता दिखाई देता है। कवि राजाओं के आश्रय में रहने लगे और अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने और उपहार पाने के लिए शृंगारिक काव्य रचना करने लगे। लेकिन एक बात ध्यान देने वाली है कि दरबार में होने मात्र से कवि की संवेदना दरबारी नहीं हो जाती है। इस समय का कवि दरबार में शृंगार काव्य अवश्य लिख रहा है, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति लोक की है। अगर रीतिकाल में राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन है तो यह ध्यान देना चाहिए कि यहाँ राधा-कृष्ण का रूप लौकिक है। जब पद्माकर होली पर सवैया लिखते हैं तो उसमें जो कृष्ण का रूप दिखता है वह रूप लोकजीवन के कृष्ण का है जिसके

साथ गाँव की औरतें अठखेलियाँ करती हैं। इसी तरह जब देव लिखते हैं तो वे बसंत का वर्णन करते हैं जिसके अंदर बिंब ग्राम्य जीवन के होते हैं। इस तरह भले ही इस समय का कवि दरबारी है, लेकिन उसके अंदर का लोक जीवित है और यही कारण है कि उसकी काव्य-रचना में वह लोक कभी पर्व-त्योहार के रूप में आ जाता है, तो कभी लौकिक राधा-कृष्ण के प्रेम प्रसंग के रूप में आ जाता है। यही कारण है कि रीतिकाल के कवियों के काव्य को पढ़कर कभी-कभी असंगत प्रतीत होता है। यह असंगति दरबारी शिष्ट विचार और ग्राम्य-जीवन के बीच के टकराव के कारण ही होता है। इन सबके अलावा इस काल के साहित्य की भाषा भी ग्राम्य-भाषा है क्योंकि इस समय का कवि लोक की अवधी और ब्रजभाषा का प्रयोग अपने साहित्य की भाषा के रूप में कर रहा है।

आधुनिककाल में लोक और अभिजात्य

रीतिकाल के बाद हिंदी साहित्य का आधुनिककाल आता है। इस समय तक अँग्रेजों का शासन स्थापित हो गया था। भारत अँग्रेजी शासन का गुलाम बन गया था। इस गुलामी से छुटकारा पाने के लिए उस समय के रचनाकारों ने साहित्य को माध्यम बनाया और आम जनता तक अपनी बातों और विचारों को पहुँचाया। भारतेंदु और द्विवेदीयुग में लोक का शिष्ट से जुड़ाव इसी रूप में दिखाई देता है। जहाँ रचनाकार अपनी रचनाओं, पत्र-पत्रिकाओं आदि के माध्यम से आम जनता को मुख्यधारा के आंदोलन से जोड़ने का प्रयास करता है। इस काल की एक सबसे बड़ी देन सामाजिक उत्थान है। इस समय के समाज-सुधारकों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों को समाप्त करने का प्रयास किया। इस जागरण का प्रभाव सीधे-सीधे लोक पर पड़ा। लोक ने इन विचारों को ग्रहण कर विसंगतियों को दूर करने का काम किया। इसके बाद छायावाद का काल आया जहाँ हिंदी साहित्य लोक से कटा हुआ रोमानियत की दुनिया में घूमता प्रतीत होता है। लेकिन यह रोमानियत गाँव के खेतों की पगडंडियों से निकलती हुई दिखाई देती है। आगे चलकर निराला ने इसे लोक पर अपनी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' या अपनी कहानी 'चतुरी चमार' के माध्यम से टिकाने का प्रयास किया। लेकिन लोक की पूर्ण उपस्थित हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के आने से आती है। प्रेमचंद ने ग्राम्यजीवन, मजदूर, स्त्री, दलित, शोषित-पीड़ित को अपनी कहानियों का विषय बनाया और हिंदी साहित्य में लोक को स्थापित किया। प्रेमचंद के बाद पूरा हिंदी साहित्य ही यथार्थ जीवन केंद्रित हो गया। आगे चलकर फणीश्वरनाथ रेणु ने हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम आंचलिकता का चित्रण किया। रेणु द्वारा रचित उपन्यास 'मैला आँचल' एक आंचलिक उपन्यास है जिसमें मिथिलांचल क्षेत्र के लोकजीवन की कथा है। इसमें रेणु ने मिथिला की लोकसंस्कृति का सुंदर चित्रण किया है। रेणु की तरह ही नागार्जुन ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से लोकसंस्कृति और लोकजीवन की कथा प्रस्तुत की है। इनके उपन्यास 'बलचनमा' में लोकजीवन, संघर्ष, शोषण और संस्कृति सबका चित्रण है। इन्होंने बहुत सी कविताएँ भी मैथिली में लिखीं तथा हिंदी एवं संस्कृत भाषा साहित्य का मैथिली भाषा में अनुवाद भी किया। आगे चलकर हाशिए का सच हिंदी साहित्य के केंद्र में आया और यही कारण है कि आज हिंदी साहित्य में अस्मिता विमर्श की बात होती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आत्मकथा 'जूठन' के माध्यम से दलित शोषण-उत्पीड़न को प्रस्तुत किया और समाज को सच का आईना दिखाया। इसी तरह महिलाओं ने अपनी स्वतंत्रता और शोषण के विरुद्ध लड़ाई लड़नी शुरू की। इस तरह साहित्य में अस्मिता की आवाज बुलंद होने लगी और यह आवाज उस आमजन की आवाज है जिसे शताब्दियों से अभिजात्य वर्ग द्वारा दबाया गया। इस तरह छायावाद के बाद जितने भी साहित्यिक काल आए चाहे

वह प्रगतिवाद हो या प्रयोगवाद, सबमें यह लोक के ये स्वर अलग-अलग रूपों में दिखाई देते हैं।

इस अतिरिक्त हिंदी साहित्य में मार्क्सवादी और सबाल्टर्न इतिहास लेखन का प्रभाव भी पड़ा। इस इतिहास लेखन दृष्टि ने हाशिए पर रख दिए गए लोगों को केंद्र में लाने का कार्य किया। इतिहास में छोड़ दिए गए दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों के इतिहास को खोजने और लिखने का काम किया। इन्होंने बताया कि जब मुख्यधारा का आंदोलन चल रहा था तो उसी के बरक्स निम्नवर्ग का भी अपना स्वतंत्र आंदोलन चल रहा था। इसके अलावा सबाल्टर्न अध्ययन ने क्षेत्रीय अस्मिता का अभिजात्य वर्ग द्वारा किए गए नकार का भी विरोध किया तथा अभिजात्य वर्ग की राजनीति में खोई हुई जनसाधारण की राजनीति को निकाल कर सामने लाने का काम किया। इस इतिहास अध्ययन दृष्टि ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनकी अलग परिभाषा गढ़ी और उसमें किसान, आदिवासी, स्त्री, दलित जैसे पिछड़े शोषित-दमित वर्ग की उपस्थिति को दिखलाया, जो इससे पहले शून्य था। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 'बिरसा मुंडा' पर लिखी कुमार सुरेशसिंह की पुस्तक 'बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन' है। इनके बिरसा मुंडा पर पुस्तक लिखने से पहले बिरसा मुंडा को कोई नहीं जानता था। इस तरह सबाल्टर्न अध्ययन ने अस्मिता की आवाज को बुलंद किया। यही कारण है कि आज हिंदी साहित्य में अस्मिता विमर्श पर लेखन और शोधकार्य अधिक हो रहे हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आज तक किसी-न-किसी रूप में लोक और अभिजात्य के बीच एक संबंध देखा जाता रहा है। यह संबंध एकरेखीय नहीं है बल्कि दोनों में परस्पर आवाजाही दिखाई देती है, चाहे वह भाषा के स्तर पर हो, विचार के स्तर पर हो, विषय के स्तर पर हो या संस्कृति के स्तर पर हो। इसी आवाजाही ने हिंदी साहित्य को एक अलग रूप प्रदान किया है जो इसे अधिक प्रासंगिक और बहुआयामी बनाता है जिससे कि चिंतन और विश्लेषण की विभिन्न धाराएँ फूटती हैं। अभिजात्य और लोक परस्पर साथ चलते हुए भी अपनी एक अलग पहचान बनाते चलते हैं। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में लोक अभिजात्य के साथ-साथ अपनी एक स्वतंत्र धारा भी बनाए हुए है। लोकसाहित्य उसी स्वतंत्र धारा की अभिव्यक्ति है। लोक और अभिजात्य दोनों आपस में इस तरह जुड़े हैं कि जहाँ एक तरफ लोक अभिजात्य को देता है तो वहीं अभिजात्य से जरूरी चीजें ग्रहण भी करता है। यही लोक और अभिजात्य के बीच अंतःसंबंध हिंदी साहित्य को गतिशील और जीवंत बनाता है।

संदर्भ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल, मलिक एंड कंपनी, 2014, पृ० 23
2. वही, पृ० 24
3. वही, पृ० 25
4. वही, पृ० 56
5. हिंदी साहित्य की भूमिका : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथूराम प्रेमी, बंबई, 1948, पृ० 02
6. हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ० 59

ग्राम व पोस्ट-मालिनगर,
जिला-समस्तीपुर (बिहार) 848125
ईमेल-nathsachindra4@gmail.com
मो० 7903750994

शांताकुमार कृत 'वृंदा' उपन्यास में वन पर्यावरण रक्षा की यथार्थ अभिव्यक्ति

डॉ० सविता शिवलिंग मेनकुदले

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

छत्रपति शिवाजी कालेज, सातारा (स्वायत्त) महाराष्ट्र

विश्व में पर्यावरण समस्या गंभीर तथा चिंतनीय है। प्रकृति के प्रति अक्षम्य दुर्लक्ष और आधुनिकीकरण के दौर में आदमी और प्रकृति के बीच अंतर आ रहा है। प्रकृति की वर्तमान दयनीय दुर्दशा मानव से पर्यावरण सुरक्षा की माँग करती है। आज स्थिति अत्यंत भयावह हो चुकी है। वर्तमान की आवश्यकता है कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग उचित अनुपात में करना चाहिए। ऊर्जा संकट, पृथ्वी के तापमान में निरंतर वृद्धि, मानसून में असंतुलन, प्रकृति में असमय परिवर्तन कुछ ऐसे मौलिक प्रश्न हैं जिन पर संपूर्ण विश्व को व्यापक दृष्टिकोण एवं कार्य योजना बनाने की शिद्दत के साथ जरूरत है। शांताकुमार जी ने 'वृंदा' उपन्यास में प्रकृति के असंतुलन तथा पर्यावरण विनाश के प्रति चिंता जताई है। उपन्यास की विषयवस्तु वनसुरक्षा का यथार्थ प्रस्तुत करती है। एक ओर नंदलाल, किशोर, प्रमोद जैसे प्रकृति के रक्षक हैं तो दूसरी ओर किसी भी स्थिति में अमीर बनने की मनोवृत्ति रखनेवाला इलाके का नेता शक्तिचंद, उसके साथी गोरखराम और सहजराम, वन अधिकारी खुशहालचंद, वन ठेकेदार तथा विधायक जैसे भक्षक भी हैं। वन विनाशक लोगों द्वारा वन कटाई से हरे-भरे जंगलों का सफाया हो जाना राष्ट्र के सम्मुख एक गंभीर समस्या है। उपन्यास में पर्यावरण सुरक्षा के प्रयास के साथ ही समस्या के समाधान भी प्रस्तुत किए गए हैं।

पर्यावरण से तात्पर्य वातावरण के उन तत्वों से है जो समस्त जीव सृष्टि को घेरे रहते हैं। मनुष्य के चारों ओर का पर्यावरण पूर्ण रूप से प्राकृतिक परिस्थितियों की देन है। पृथ्वी, ऋतुएँ, फल-फूल, वृक्ष, नदी, पर्वत, सागर आदि पर्यावरणीय परिस्थितियाँ प्रकृति मानव को प्रदान करती हैं। जनसमुदाय की सभी आवश्यकताएँ पर्यावरण के तत्वों द्वारा ही पूर्ण होती हैं। मानव और विभिन्न जीव-जंतुओं के साथ प्रकृति का अटूट संबंध है। प्राणीमात्र के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक परिवेश अनिवार्य है। प्रकृति के विभिन्न संसाधनों का उपयोग कर समस्त जीवराशि अपना जीवन आगे बढ़ाती है। अतः पृथ्वी पर मानव एवं अन्य प्राणियों को आराम से जीने के लिए स्वस्थ पारिस्थितिकी का निर्माण अत्यंत अपेक्षित है। लेकिन आज मानव का अतिक्रमण प्रकृति पर हो रहा है। लोग अपने स्वार्थ के लिए विकास के नाम पर पर्यावरण को खतरे में ले जा रहे हैं। ऐसी चिंतनीय दशा में हिंदी साहित्यकार पर्यावरण सुरक्षा पर काफी गंभीरता से अपनी लेखनी चला रहे हैं। पर्यावरण समस्या के चित्रण के साथ ही पर्यावरण सुरक्षा के लिए आवश्यक योजनाओं तथा समस्याओं के समाधान की आपूर्ति भी उनके साहित्य में प्रस्तुत है। साहित्यकार शांताकुमार जी कृत 'वृंदा' उपन्यास में पर्यावरण सुरक्षा तथा वन रोपण की आवश्यकता पर चिंतन किया गया है।

पर्यावरणीय उपन्यास 'वृंदा'

वरिष्ठ साहित्यकार शांताकुमार जी का पर्यावरण विषय को लेकर लिखा गया यह 'वृंदा' उपन्यास किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली से सन् 2020 में प्रकाशित हुआ है। पर्यावरण विषय को एक आंचलिक प्रेम-कथा के ताने-बाने में गूँथने का सफल प्रयोग लेखक ने किया है। वर्णनात्मक शैली में लिखे गए प्रस्तुत उपन्यास में बेमेल परिवार के प्रेमियों की छटपटाहट व्यक्त है। साथ ही पर्यावरण प्रेमी और पर्यावरण विनाशक दोनों प्रवृत्तियों के लोगों के माध्यम से पर्यावरण विषय को वाणी देने का लेखक का प्रयास सराहनीय रहा है।

उपन्यास का नायक किशोर ऊँची जाति का और धनी परिवार का है तो वृंदा छोटी जाति की और गरीब घर की लड़की है। किशोर का पिता शक्तिचंद गाँव का प्रभावशाली नेता और संपन्न अमीर है। किशोर और वृंदा के प्यार की भनक लगते ही वह क्रोध से आगबबूला हो जाता है। वह किशोर का नाम कालेज से कटवा देता है और आगे की पढ़ाई के लिए उसे चंडीगढ़ भेज देता है। शक्तिचंद का गाँव में दबदबा है। वर्षों से वह अपने दोस्त गोरखराम और सहजराम को गाँव के घर-घर में भेजकर बर्तनदारों से कागज पर अँगूठा लगवा लेता है। उसके बदले में बर्तनदारों को कुछ रुपए देता है। शहर जाकर वन अधिकारी को रिश्त देकर कागज मंजूर करवाकर टी०डी० की स्वीकृति ले आता है और लकड़ी काटने का प्रबंध करता है।

वृंदा का पिता नंदलाल पर्यावरण प्रेमी और बर्तनदार है। बर्तनदार यानी जिनका जंगलों के पेड़ों पर अधिकार होता है। बर्तनदार को अपने मकान बनाने या मरम्मत के लिए जीवन में एक बार या जरूरत होने पर ही टी०डी० का अधिकार होता है। यह अधिकार गाँव के लोगों को इसलिए दिया गया था कि वे जंगल की रक्षा करें, जंगल में आग लगे तो बुझाएँ, लेकिन पशुओं के लिए घास उग जाए इसलिए लोग जंगलों में आग लगाते हैं। प्रतिवर्ष मकान की जरूरत के लिए नहीं तो वृक्ष बेचने के लिए टी०डी० ली जाती है।

नंदलाल बरसों से अज्ञानवश शक्तिचंद के कागज पर अँगूठा लगा देता था। लेकिन शहर में एक बार पर्यावरण विषयक भाषण सुनने पर उसका अज्ञान दूर हो जाता है और वह बरसों से गलत काम में हिस्सेदार बनने की अपनी गलती के एहसास से कागज पर अँगूठा लगाने से इंकार कर देता है। वह कहता है—'नहीं नहीं, मैं अँगूठा नहीं लगाऊँगा। पिछले दिनों शहर गया था। मुझे सारी बात का पता चल गई है। देखो, तुम जानते हो, मैं तो जीवन-भर वृक्ष लगाने का काम करता रहा हूँ। मुझे अपने जीवन की ऐसी कोई बरसात याद नहीं, जिसमें मैंने कुछ नए पेड़ न लगाए हों। मेरी आयु सत्तर वर्ष हो गई है। मैंने जब होश सँभाला था तो सारे गाँव के चारों तरफ बहुत घना जंगल था। अब धीरे-धीरे जंगल साफ हो चला है। यह अच्छी बात नहीं है। यह वृक्ष तो हमारे प्राण हैं और फिर हर छः महीने के बाद टी०डी० के लिए सभी के नाम पर वृक्ष कटवाना, यह भी गैरकानूनी है।' जंगल काटना जीवों के लिए बहुत हानिकारक है। वर्षों पहले के घने जंगल साफ होने से प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता है। मौसम बदलता है, वर्षा कम होने लगती है। असमय और गलत तरीके से वर्षा होती है। जंगल कटने से मिट्टी बह जाती है। पानी के स्रोत समाप्त होने लगते हैं।

शक्तिचंद जैसे लोग जंगल कटवाकर प्रकृति का विनाश ही कर रहे हैं। टी०डी० के नाम पर बहुत बड़ा भ्रष्टाचार हो रहा है। शक्तिचंद और उसके साथी जंगलों की कटाई से लाखों-करोड़ों रुपए कमाते हैं। उन्होंने वन अधिकारी खुशहालचंद को अपनी मुट्ठी में ले रखा है क्योंकि पूरा विभाग खुशहालचंद की मुट्ठी में था। पूरे इलाके से करोड़ों-अरबों रुपए की संपदा उसके जेब में

थी। लेखक ने वन अधिकारियों की रिश्तखोरी का भी पर्दाफाश किया है। उपन्यास में चित्रित वन अधिकारी खुशहालचंद गोरखराम को कहता है, 'देखो गोरखराम, वक्त बदल गया है। अब वह जमाना गया जब लकड़ी की कीमत बहुत कम होती थी। तुम्हें मालूम है, एक देवदार का वृक्ष बाजार में बीस से पच्चीस हजार तक में बिकता है और मैं बर्तनदारी के इन प्रार्थना-पत्रों पर तुम्हें वह वृक्ष केवल छह या सात रुपए में दे रहा हूँ। तुम लोग लाखों रुपए की कमाई करोगे और मुझे दोगे केवल दस हजार! यह अब नहीं चलेगा, तुम्हें मेरा हिस्सा बढ़ाना होगा।'² सरकारी कार्यालयों के अधिकारी, कर्मचारी रिश्त लेने के आदी हो गए हैं। रिश्त लेकर वे अपनी जेबें भर रहे हैं और राष्ट्र का नुकसान कर रहे हैं।

आम गरीब आदमी किसी जरूरी काम की वजह से सरकारी दफ्तर जाता है तब उसे अधिकारियों से मिलने का इंतजार करके घर वापस जाना पड़ता है। उन अधिकारियों के पास इनसे मिलने के लिए समय नहीं होता। प्रभावशाली नेता, बड़े-बड़े धनिक लोगों से बातें करते हुए, चाय पीते हुए वे घंटों बैठे रहते हैं। उसी गाँव के विनोद नामक युवक का एक महीने पहले घर जल जाता है। कुछ भी बाकी नहीं बचता। पशुओं को बाँधने की घराल में पशुओं के साथ उसका पूरा परिवार रहता है। उन्हें नया घर बनवाने के लिए लकड़ी की जरूरत होती है। वे भी जंगल के बर्तनदार हैं, नियम के अनुसार नया घर बनाने के लिए उन्हें तुरंत लकड़ी मिलनी चाहिए। उसके पिताजी कई बार जिला वन अधिकारी से प्रार्थना-पत्र देने की कोशिश करते हैं, लेकिन उन्हें वह प्रार्थना-पत्र देखे बगैर कोई-न-कोई कारण देकर वापस लौटा दिया जाता है। जब उनका घर जल गया था तब बड़े-बड़े नेता, विधायक उस गाँव में जाते हैं, आश्वासन देते हैं कि नया मकान बनाने के लिए उन्हें जंगल से तुरंत लकड़ी मिल जाएगी। नेता लोग तो भाषणबाजी करते हैं, समाजवाद का नारा लगाते हैं। गरीबों को सरकार की दुहाई दी जाती है पर वास्तव में कुछ भी नहीं किया जाता। सामान्य जनता सरकार, प्रशासन और राजनीति से त्रस्त है। विनोद कहता है, 'हैरानी की बात तो यह है कि जब मकान को आग लग गई थी तो दूसरे दिन इस इलाके के एक नेता हमारे गाँव में आए थे। बड़ी हमदर्दी जताई, सहायता का आश्वासन दिया। उन्होंने मौके पर ही तहसीलदार को कहा था कि हमें नया मकान बनाने के लिए जल्दी-से-जल्दी वृक्ष मंजूर करवा दिए जाए। आज कई दिन बीत गए, कई चक्कर हमने लगा दिए, कोई सुनने वाला नहीं है।'³ वृक्ष मिलने का अधिकार होकर भी आम गरीब जनता को उनके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। वन अधिकारी जंगल कटाई में लाखों रुपयों का भ्रष्टाचार करते हैं। आम जनता ने विद्रोह तथा आक्रोश करने पर उनकी आवाज दबा दी जाती है फिर भी विनोद, किशोर और उसके दोस्त बहुत शोर मचाकर खुशहालचंद से प्रार्थना-पत्रों पर स्वीकृति लिखवा लेते हैं।

जंगल का विनाशक शक्तिचंद और उसके साथी-गोरखराम और सहजराम वन विभाग के कार्यालय से टी०डी० के सारे प्रार्थना-पत्र मंजूर करवाकर जंगल के स्थानीय कर्मचारी मोहनलाल की मदद से वृक्षों पर निशान लगवाते हैं। प्रार्थना-पत्रों में छोटे वृक्ष स्वीकार किए जाते हैं लेकिन वे मौके पर बड़े-बड़े वृक्षों पर निशान लगा देते हैं। कई दिनों तक कटान का काम चलता रहता है। हरे-भरे जंगल से लगभग सौ वृक्ष काट दिए जाते हैं। टी०डी० के नाम पर बड़े स्तर पर जंगल का सफाया कर दिया जाता है। 'आज जनसंख्या वृद्धि ने विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पेड़ों की द्रुतगति से कटाई को बढ़ावा दिया है जिसके परिणामस्वरूप हम आज कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ जैसी विभीषिका से दो-चार हो रहे हैं।'⁴ दुर्भाग्य की बात यह है कि जैव अस्तित्व के लिए

इतना बड़ा खतरा उत्पन्न होने पर भी मनुष्य के लोभी वृत्ति में जरा भी कमी नहीं आई है।

लालची शक्तिचंद और उस इलाके के विधायक की आपस में गहरी दोस्ती थी। वन विभाग का जिला अधिकारी खुशहालचंद भी उनकी मर्जी का ही था। विधायक ने विशेष प्रयत्न करके मुख्यमंत्री के आदेश से खुशहालचंद का तबादला उस इलाके में किया था। वह जिस प्रदेश में रहता था वहाँ के जंगलों का सफाया करवाता था। जंगल का सफाया करके विधायक, नेता शक्तिचंद और वन अधिकारी खुशहालचंद ने कई स्थानों पर अपनी संपत्ति बनाई थी।

लेखक शांताकुमार जी ने प्रस्तुत उपन्यास में पर्यावरण विनाश के यथार्थ को बड़ी खूबी से आँका है। गाँव के लोगों को बर्तनदारी पर वृक्ष देने की परंपरा बहुत अच्छी थी और उसके पीछे एक रचनात्मक भूमिका थी। जंगल सरकार की मिल्कियत थे और अँग्रेजों के समय ही जंगलों की देखभाल का काम लोगों पर सौंपा गया था। इसके बदले में लोगों को सरकार की ओर से नया मकान बनाने या मकान की मरम्मत के लिए हजारों रुपए का वृक्ष चार या पाँच रुपए में दिया जाता था। इस तरीके से जंगल सुरक्षित रहते थे और गाँव के सामान्य गरीबों की जरूरत पूरी होती थी। जंगल की सुरक्षा के लिए कुछ नियम भी बनाए गए थे। यथा—‘यदि गाँव के लोग आग बुझाने के लिए न जाएँ तो सरकार कार्रवाई करती थी और उस गाँव के लोगों को टी०डी० के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था। कुछ इलाकों में एक और अच्छा नियम सरकार ने बनाया था, उसे ‘हक चूहाराम’ कहते थे। जब कोई जंगल नियम के अनुसार बिकता था तो उसकी कुल आय का चौथा भाग गाँव के लोगों में बाँट दिया जाता था। गाँव के लोगों के लिए यह बहुत बड़ा आर्थिक आकर्षण था।⁵ ऐसी व्यवस्था के कारण जंगल सुरक्षित रहते थे लेकिन धीरे-धीरे नियम ढीले होते चले गए और नेताओं द्वारा वनों का सर्वनाश होता गया।

उपन्यास में चित्रित वन विनाशक शक्तिचंद जंगल की लकड़ी चोरी-छिपे बाहर ले जाकर बेचता था। वन अधिकारी खुशहालचंद के माध्यम से शक्तिचंद वन ठेकेदार को अपने काबू में कर लेता है। वह जंगल कटान के एक ही परमिट का बार-बार उपयोग करके तीस लाख रुपए का मुनाफा कमाता है। दो तीन लाख वन विभाग के कर्मचारियों में बाँटकर बाकी के आपस में बाँट लेता है। शक्तिचंद की इस करतूत की वजह से धीरे-धीरे सदियों से हरा-भरा जंगल सूना हो जाता है। नंदलाल और कुछ नौजवान जंगल कटाई के खिलाफ आवाज उठाते हैं तब अखबारों में एक-दो समाचार आते हैं पर कोई कार्रवाई नहीं की जाती और बात दबा दी जाती है। पर्यावरण के बारे में विशेष रुचि रखने वाला प्रमोद जंगलों का अवैध कटान करने वालों को रोकने के लिए पंचायत चुनाव मैदान में उतरने का निर्णय लेता है। लेकिन वहाँ भी शक्तिचंद गाँव के लोगों के अज्ञान का फायदा उठाकर उन्हें प्रमोद की जीत के संबंध में उल्टी-सीधी बातें बताता है। विधायक, वन अधिकारी, नेता आदि सब अज्ञानी जनता को पैसे का लालच दिखाकर अपने पक्ष में कर लेते हैं और गोरखराम के मुकाबले में प्रमोद की हार हो जाती है। शक्तिचंद का ही आदमी पंचायत प्रधान बन जाने से जंगलों की अवैध कटान का मार्ग खुला रहता है।

पर्यावरण संतुलन के लिए सदियों से पेड़-पौधे, नदी, पर्वत एवं पशु-पक्षियों की देवी-देवताओं की तरह पूजा की जाती है। विभिन्न कर्मकांड एवं अनुष्ठान भी पर्यावरण संरक्षण के लिए ही बनाए गए हैं। ‘यजुर्वेद में अंतरिक्ष, पृथ्वी, वनस्पतियों, औषधियों तथा समस्त ब्रह्मांड में शांति की प्रार्थना की गई है। स्वयं शांति के लिए भी शांति की प्रार्थना की गई है। ऋषियों ने वृक्ष-रक्षा को धर्म के साथ जोड़कर वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया। उनके द्वारा निर्देशित जीवन

पद्धति इस प्रकार की थी कि व्यक्ति जीव-जंतुओं, पशुओं, वृक्षों, लताओं को हानि पहुँचाए बिना प्रकृति पर निर्भर रह सके।⁶ उपन्यास में चित्रित पहाड़ी इलाके में रहने वाले लोग पुराने समय से वृक्षों का महत्त्व समझते थे। वृक्ष लगाना पुण्य का काम और काटना पाप समझा जाता था। इस वजह से सारा क्षेत्र घने जंगलों से भरा रहता था, वर्षा समय पर और बहुत होती थी। घने जंगलों के कारण मिट्टी का स्खलन नहीं होता था। इन्हीं जंगलों को बचाने के लिए उपन्यास में चित्रित गाँव में धर्म और पूजा के नाम पर वर्ष में दो बार 'केलो री पूजा' का उत्सव होता था। बड़े-पुराने वृक्षों की पूजा की जाती थी। शक्तिचंद जैसे नेताओं द्वारा ऐसी वृक्ष पूजा हर वर्ष केवल दिखावा थी। वास्तव में शक्तिचंद के वन कटान से सारा गाँव चिंतित हो जाता है। पर्यावरण सुरक्षा समिति का गठन किया जाता है। नंदलाल को उस समिति का अध्यक्ष और प्रमोद को सचिव बनाया जाता है। हर वर्ष की तरह वन महोत्सव का आयोजन किया जाता है। समारोह के लिए पधारे प्रदेश के मुख्यमंत्री के सामने पर्यावरण प्रेमी प्रमोद मंच पर भाषण देकर भ्रष्टाचारियों की पोल खोलने का प्रयास करते हुए कहता है, 'पिछले कुछ वर्षों से इस गाँव के जंगल काटे नहीं गए, बल्कि उनका बड़ी निर्दयता के साथ कल्लेआम किया गया है। मंच पर बैठे यह विधायक, नेता व अधिकारी अवैध कटान कराते हैं। लाखों नहीं, करोड़ों रुपए की वनसंपदा प्रतिदिन लूटी जा रही है।'⁷ प्रमोद की भाषणबाजी रोकने के लिए पुलिस के सिपाही को बुलाया जाता है। युवक नारेबाजी करते हैं तो उन्हें धकेलकर बाहर निकाल दिया जाता है। वन कटान की बात दबाने के लिए भ्रष्टाचारी बढ़िया भोजन का प्रबंध करते हैं।

धीरे-धीरे जंगल समाप्त हो जाते हैं और नाले से रेत-बजरी निकालकर धन कमाने के नए धंधे में तेजी आती है। पुल के दोनों किनारों की रेत और बजरी खोद-खोदकर निकालने से जोर की बरसात में छोटे बच्चों समेत पुल बह जाता है। गाँव में 'अरुणोदय विद्यालय' के आसपास कुछ सरकारी भूमि थी। वहाँ विद्यालय की ओर से वृक्षों का कटान रोकने का काम शुरू किया जाता है और पुराने वन की रखवाली भी की जाती है। लेकिन शक्तिचंद इस वन के कटान का भी प्रबंध करता है। वृंदा, प्रमोद, स्कूल के अध्यापक, गाँव के कुछ युवक सभी वृक्षों के कटान का विरोध करते हैं। वृंदा कहती है, 'इन वृक्षों की हमने अपने बच्चों की तरह रखवाली की है। इन पर अब कुल्हाड़ी नहीं चलने देंगे।'⁸ वृंदा के साहस और गाँव वालों के विरोध से शक्तिचंद और उसके साथियों को वापस जाना पड़ता है लेकिन थोड़ी देर बाद वह वन विभाग के कुछ कर्मचारियों और सिपाहियों को लेकर वहाँ आ जाता है। गाँव के शास्त्री कृपाशंकर वन कटान रोकने का प्रयास करते हुए कहते हैं—'प्रकृति का चीरहरण हो गया है। पहाड़ नंगे हो गए हैं। बरसात में जहाँ-तहाँ से पानी भूमि का कटाव करता है। नीचे का नाला थोड़े से पानी के बाद भी उपद्रव ढाता है। पुल गिर गया, कुछ बच्चे मर गए। प्रकृति बदला लेने पर उतर आई है। कहाँ तो हम वृक्षों की पूजा करते थे। वृक्ष लगाना पुण्य समझते थे और कहाँ अब आप जैसे गाँव के नेता जंगलों का खुलेआम विनाश कर रहे हैं।'⁹ पूरे उपन्यास में पर्यावरण के प्रति चिंता जताई गई है। गाँव की महिलाएँ, बच्चे, शास्त्री जी, नंदलाल, वृंदा सब जंगल कटाई रोकने का प्रयास करते हैं। बड़े प्रयास से वन कटान तो रोक दिया जाता है पर दूसरे दिन अचानक प्रकृति का भयंकर प्रकोप हो जाता है। 'वन विनाश के पीछे चाहे जितने आर्थिक प्रलोभन और मानवीय कृष्णा के नवीनतम संस्करण क्यों न हों, एक बात सूर्योदय की तरह स्पष्ट है कि वन विनाश का अर्थ है सृष्टि का सर्वनाश।'¹⁰ बादल फट जाने से चारों तरफ वर्षा का तांडव मच जाता है। नालों से हजारों मन पानी का तूफान बहने लगता है।

पानी के प्रबल प्रवाह से पास के घर, वृक्ष, पुल, कुछ लोग बह जाते हैं। पूरा गाँव प्रलय की चपेट में आ जाता है। पशु-पक्षी, जानवर तथा बहुत से लोगों के शव इधर-उधर बिखरे पड़े दिखाई देते हैं। चारों तरफ तबाही मच जाती है। खुशहालचंद, शक्तिचंद, गोरखराम और सहजराम जिस मकान में शराब के नशे में आधी रात तक अगली योजना बनाते रहे वह मकान भी नींव सहित उस प्रलय में बह जाता है। प्रकृति के साथ की गई खिलवाड़ गाँव के सर्वनाश का कारण बन जाती है।

निष्कर्ष

औद्योगिकीकरण एवं प्रगति की चकाचौंध तथा मानव के बढ़ते लालच के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है। पर्यावरण प्रदूषण में निरंतर अभिवृद्धि हो रही है। साहित्यकार शांताकुमार जी के 'वृंदा' उपन्यास में प्राप्त तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि सत्ताधारियों के लालच के कारण वनों का विनाश हो रहा है और उसका नतीजा सृष्टि के हर एक प्राणी को भुगतना पड़ रहा है। पर्यावरण की रक्षा करनी है तो वन रोपण बहुत जरूरी है। हरी-भरी प्रकृति ही समस्त प्राणी-मात्र को जीवन दे सकती है। जल-प्रबंधन की पूरी योजनाओं की जानकारी युवाओं को देना जरूरी है। नदी से रेत-बजरी निकालना पूरी तरह से बंद करना आवश्यक है। जलसिंचन के लिए तालाबों की खुदाई होनी चाहिए। पर्यावरण संरक्षण के लिए जनचेतना आवश्यक है। नष्ट होते जा रहे जंगलों के कारण विभिन्न प्राणियों की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। उन प्रजातियों के संवर्धन के लिए नए वनरोपण की आवश्यकता है। यदि पर्यावरण संरक्षण और विकास में संतुलन नहीं स्थापित किया गया तो संपूर्ण सभ्यता के विनाश के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए खतरा बना हुआ है। पर्यावरण के संसाधनों के निष्कासन के समय हमें अपने लालच पर पूर्ण नियंत्रण रखना होगा। पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना और इनका सीमित उपयोग करना ही प्रकृति का संरक्षण है। प्रकृति, संसाधन और पर्यावरण हमारे जीवन और अस्तित्व का आधार है। बेहतर भविष्य के लिए पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है।

संदर्भ

1. शांताकुमार, वृंदा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृ० 23
2. वही, पृ० 38
3. वही, पृ० 40
4. डॉ० सुमनसिंह, भारतीय साहित्य में पर्यावरण संरक्षण, रोशनी पब्लिकेशन, कानपुर, संस्करण 2011, पृ० 139
5. वही, पृ० 71
6. डॉ० हरिश्चंद्र सिंह, पर्यावरणीय अध्ययन, ग्रीनलीफ पब्लिकेशन, वाराणसी, संस्करण 2011, पृ० 16
7. शांताकुमार, वृंदा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020, पृ० 119
8. वही, पृ० 169
9. वही, पृ० 176
10. प्रो० जी०सी० पांडेय, पर्यावरण जिज्ञासा एवं जागरूकता, भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद, संस्करण 2011, पृ० 25

धार्मिक आडंबरों में पिसती नारी : संदर्भ 'सेज पर संस्कृत'

डॉ० निशा जम्वाल

हिंदी साहित्य के विकास में महिला साहित्यकारों का अमूल्य योगदान रहा है। इन साहित्यकारों ने समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाई है। मुख्य रूप से स्त्री जीवन से जुड़े विभिन्न मुद्दों को अपने साहित्य में उठाया है। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों के साथ हो रहे शोषण, उत्पीड़न के खिलाफ इन महिला साहित्यकारों की आवाज हमेशा से बुलंद रही है। ऐसी ही साहित्यकारों में एक नाम मधु काँकरिया का है। समकालीन महिला कथाकारों में इनका कथासाहित्य सबसे अधिक चर्चा में रहा है। मधु काँकरिया ने अपने कथासाहित्य में समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। वह समाज में व्याप्त सड़ी-गली मान्यताओं एवं रूढ़ियों का विरोध करते हुए तर्क को महत्व देती हैं। आज शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण स्त्रियों में अपने अस्तित्व के प्रति जागरूकता आई है और वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई है।

'सेज पर संस्कृत' मधु काँकरिया द्वारा रचित एक सशक्त उपन्यास है। इसमें लेखिका ने बेधक, जुझारू, धैर्यवान और अंततः विद्रोही स्त्री की आंतरिक पीड़ा का बड़ा ही मार्मिक विश्लेषण किया है। इसके साथ-साथ लेखिका ने जैनधर्म में व्याप्त रूढ़ियों एवं धार्मिक आडंबरों का पर्दाफाश किया है। धर्म के नाम पर हो रहे अनैतिक कार्यों पर तीखा प्रहार किया है। धर्म की आड़ में किस प्रकार ये धार्मिक गुरु स्त्रियों का शोषण करते हैं इसका यथार्थ चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। उपन्यास का आरंभ आर्थिक विपन्नता में जकड़ी ऐसी माँ से होता है जो अध्यात्म को ही मुक्तिमार्ग मानकर अपनी दोनों बेटियों को साध्वी बनाने के लिए विवश करती है। उसका मानना था कि साध्वी बनने पर समाज में उनकी प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ जाएगी। छोटी बेटी तो माँ के पद-चिह्नों पर चल पड़ती है परंतु बड़ी बेटी आरंभ से लेकर अंत तक इन धर्माडंबरों का विरोध करती रहती है।

पति और पुत्र की मृत्यु के पश्चात् संघमित्रा की माँ के भीतर जीवन और संसार के प्रति ऐसी विरक्ति छा गई कि उन्हें लगने लगा अब धर्म ही एकमात्र सहारा है जो उन्हें उनके दुखों से मुक्ति दिला सकता है। वह अपनी दोनों बेटियों को शिखर जी की यात्रा पर चलने के लिए विवश करती है। उन्हीं के शब्दों में—'सब कर्मों का फल है। मैंने भी कुछ सोचकर ही इस यात्रा का निर्णय लिया है। धर्म के काम में आलस ठीक नहीं। देवगुरु ने चाहा तो हमारे दुखों का अंत बस हुआ ही जानो।'¹

शिखर जी की यात्रा के दौरान संघमित्रा को जो अनुभव हुए उसने उन्हें भीतर तक विचलित कर दिया। स्वयं को अहिंसा का पुजारी मानने वाले ये साधु-महंत धर्म की आड़ में अपना स्वार्थ साधने में इस प्रकार प्रयासरत हैं कि वह भूल ही गए हैं कि इस धरती पर एक दूसरी दुनिया भी है उन गरीबों की जिन्हें बचाने भगवान भी नहीं आता। संघमित्रा के शब्दों में—'मैंने देखा स्त्री की ठठरी से चिपकी एक निर्वस्त्र नर्तकी जान जो सिर्फ हड्डियों का ढाँचा भर थी।

रुक-रुककर चलती जिसकी साँसों की डोरी बारिश के एक झोंके में ही टूट गई थी। वह स्त्री छाती पीट-पीटकर भीख माँग रही थी...क्या राम बचाने गए उसे? और यदि हमारे भीतर सचमुच ईश्वर है तो फिर एक का दुख दूसरे को क्यों नहीं व्याप्ता?¹²

आम आदमी सोचता नहीं है केवल अनुकरण करता चलता है, वह भी अंधानुकरण। कई वर्ष पहले न जाने महावीर जैन की क्या दिनचर्या रही होगी, साधना का क्या मार्ग रहा होगा कि उस अग्नि में तपते हुए उन्हें भूख-प्यास, वस्त्र का भान न रहा होगा, परंतु आज इन धर्मगुरुओं ने बिना सोचे समझे उस पर धर्म का लबादा उढ़ा दिया। संघमित्रा के शब्दों में—‘महावीर के लिए जंगल प्रयोगशाला थी। वे जंगल में ही समाधि लगाते थे। इसी दौरान विचारों की अलख उनके भीतर अग्नि की तरह जलती थी। इसी गहन समाधि में कपड़े कहाँ गए...भूख प्यास कब मरी। उन्हें उनका भान तक नहीं हुआ होगा, पर शताब्दियों की ओढ़नी ओढ़े इन धर्म गुरुओं ने इसी वस्त्रहीनता और आहारहीनता को धर्म बना दिया।¹³

धर्म जो आत्मिक उन्नति का प्रतीक है उसी का सहारा लेकर यह धार्मिक गुरु अंधविश्वासों को स्थाई रूप देने का प्रयत्न करते हैं। छुटकी के बहन संघमित्रा से पूछने पर कि इन साध्वी जी ने मुँह पर पट्टी क्यों बाँध रखी है? संघमित्रा एक विदुषी की तरह उत्तर देती है जिससे मुँह से थूक नहीं उछले। यह सुन माँ क्रोध से माथा पीट लेती है—‘मूरख कहीं की, धीगड़ी हो गई और इतना नहीं पता कि हम जब बोलते हैं तो हवा में तैरते ‘सूक्ष्म’ जीवों की हत्या होती है उसी जीव हत्या से बचने के लिए माराज सा ने मुँह पर पट्टी बाँध रखी है।¹⁴ संघमित्रा सोचती है इन पाखंडी धर्म गुरुओं ने धर्म को कितना संकुचित करके रख दिया है।

संघमित्रा अपना माथा पीट लेती है—‘हे भगवान, धर्म के नाम पर किसी ने मुँह पर पट्टी बाँध ली तो किसी ने लँगोट तक उतार फेंकी। एक ही जमीन... पर फसलें कितनी अलग-अलग।¹⁵

संघमित्रा की माँ आध्यात्मिकता में डूबते-डूबते इतनी अंधविश्वासी हो जाती है कि धर्म को ही एकमात्र आसरा मानते हुए वह अपनी बेटियों को जैनधर्म के नियमों के अनुसार चलने के लिए बाध्य करती है। एक दिन जब संघमित्रा खाने के लिए दही माँगती है तो उसकी माँ इसका विरोध करते हुए कहती है—‘दही में असंख्य ‘सूक्ष्म’ जीव होते हैं, हमारे घर में अब यह जीव हत्या नहीं चलेगी।..आगमन (जैन धर्मशास्त्र) कहते हैं कि जैसे साँप बिल में सीधा प्रवेश कर जाता है, वैसे ही मुनि को कौर मुँह में इधर-उधर घुमाए बिना सीधा निगल जाना चाहिए।¹⁶

रोज के इन धार्मिक आडंबरों को अपने ऊपर हावी होता देख संघमित्रा क्रोध से चीख पड़ती है, ‘बस भी करो अम्मा इतने विराट जैनधर्म को तुम और तुम्हारे लोगों ने बस कीड़ों-मकोड़ों को ही समर्पित कर रखा है। उन्हीं के लिए दया-माया है तुम्हारे मन में...चौबीसों घंटा उन्हीं के लिए सोचना है तुम्हें। अंकुरित चना, दही और पानी में छिपे सूक्ष्म जीवों की चिंता है तुम्हें पर तुम्हारी आत्मा में जो फफूँदी जमी है, जो चूहे की तरह हर पल जिंदगी के डर से काँपती रहती है, उसकी चिंता नहीं है तुम्हें।’ इससे स्पष्ट है कि धर्मभीरू जनता अज्ञानता के कारण प्राचीनकाल से चली आ रही परंपराओं, रूढ़ियों को बिना किसी विवेक के मानती चली जाती है। स्वयं को महात्मा, महंत मानने वाले यह साधु अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए धर्मभीरू जनता को सत्य के मार्ग से भटकाने का प्रयत्न करते हैं। एक जीते-जागते पल्लवित होते जीवन को बेदर्दी से योग की ज्वाला में जलाकर मृत्यु देना चाहते हैं। छुटकी के जीवन को योग की काली छाया लील जाती है। ग्यारह वर्षीय अबोध बच्ची जिसे धर्म की कठोर आचारसंहिता की कोई समझ नहीं, जो

भविष्य में आनेवाले दुख से अंजान केवल उत्सुकतावश माँ के प्रभाव से जीवन के छोटे-छोटे दुःखों से मुक्ति पाने के लिए धर्म की ओर उन्मुख हो जाती है। बहन संघमित्रा के प्रयत्नों के बावजूद वह उस जाल से निकल नहीं पाती। दीक्षा समारोह के रोज पहले उसका दुल्हन-सा श्रृंगार, फिर उस श्रृंगार को उतारकर आभूषणों की नीलामी और फिर केश लुंचन की प्रक्रिया संघमित्रा को भीतर तक आहत कर देती है। वह चीख पड़ती है—‘रोको, रोको इसे...कोई तो रोको...एक मासूम कन्या को इतनी बेरहमी से गंजा किया जा रहा है और सब श्रद्धा से देख रहे हैं...क्या धरती का पानी सूख गया है। क्या यही है धर्म। यही है सभ्यता। हे भगवान...।’⁸ पर किसी ने उसकी एक न सुनी, कुछ साध्वियों ने संघमित्रा और उसकी मित्र को खदेड़ते हुए बाहर कर दिया। बीस मिनट के अंतराल के बाद एक बदला हुआ परिदृश्य था। छुटकी से अब वह साध्वी दिव्यप्रभा बन गई थी।

आज पाँच वर्ष बाद जीवन की सच्चाई से अवगत दिव्यप्रभा सोचती है शशिप्रभा ने उससे कहा था—‘बकवास है यह चौबीस घंटे की पूजा-पाठ। दमघोटू यह चौबीस घंटे की थाना-कचहरी। मुझे माला नहीं, माली चाहिए जो मेरी सूखती आत्मा को सींच सके।’⁹

बचपन की नासमझी में साध्वी बनी दिव्यप्रभा अब जान गई थी कि भावनाओं को मारकर जीना जिंदगी नहीं। वह विजयेंद्र मुनि से प्रेम कर बैठी थी वहीं विजयेंद्र मुनि भी उन शाश्वत क्षणों में डुबकी लगा रहे थे जब दिव्यप्रभा के दिव्यलोचन उनके लोचन से टकराए थे। अपने साथी गुरु जो उनके हमउम्र ही थे और मित्र भी थे उनसे अपनी मनोस्थिति का चित्रण करते हुए वह कहते हैं, ‘आज पहली बार मैंने स्वयं को मुनि नहीं एक इनसान महसूस किया है—एक संपूर्ण इनसान। जानते हो, वर्षों से एक अंधकार, एक अधूरापन लगातार पीछा कर रहा था मेरा, मेरे भीतर अग्नियाँ जलती थीं, अतृप्त कामनाओं की अग्नियाँ, जिसने मेरे भीतर के सारे उल्लास, उमंग और जीने की ख्वाहिश पर राख पोत रखी थी, पर आज पहली बार किसी ने मेरी आत्मा की मजार पर दीया बाल मुझे ठंडक दी है, मुझे सुख दिया है।’¹⁰

यह समाज एक स्त्री को सिर्फ देह रूप में देखता है फिर वह चाहे आम आदमी हो या साधु। स्त्री को भोग की वस्तु मानकर उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ दुष्कर्म करता है। विजेंद्रमुनि ने अपना साथी मान अभयमुनि को अपना प्रेम सत्य सुनाया था परंतु उस राक्षस ने उन्हीं के प्रेम पर डाका डाल दिया। उसी के शब्दों में, ‘जब धर्म के छतनार वृक्ष विजयेंद्र मुनि भी कामदेव के हाथों घायल होकर अधर्म में डुबकी लगा सकते हैं, कामनाओं के कबूतरों को दाना चुगा सकते हैं तो मैं क्यों नहीं? थोड़ा पान-पत्ता मुझे भी चढ़ा दो देवी! बस, आज रात तुम मेरी कामाग्नि को शांत कर दो। उद्दाम वेग से बहती इस बेकाबू लहर को थाम लो। थोड़ा सा भोग यदि मैं लगा भी लूँगा तो तुम्हारा इसमें क्या बिगड़ेगा।’¹¹

अभयमुनि दिव्यप्रभा का बलात्कार करते हैं जिसके कारण दिव्यप्रभा टूट सी जाती है ताउम्र जिसने धर्म को अपना सर्वस्व लुटा दिया, उसी धर्म की आड़ में उसे मिला क्या? दिव्यप्रभा के गर्भवती होने पर उसे आश्रम से निष्कासित कर दिया जाता है। वहीं चाचा के आश्रय में आने पर भी उसे घर से निकाल देते हैं। तब एक कोठेवाली मालकिन उसे सहारा देती है और उसकी बेटी का नामकरण ऋषिकन्या करती है। ताकि दुनिया भी देखे ऋषियों के शुक्राणु वेश्या के कोठे में पनपते हैं। कैसर से जूझती दिव्यप्रभा अपनी कन्या को बहन संघमित्रा को सौंपकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

धर्म के ठेकेदार जो समाज के समक्ष शालीनता की चादर ओढ़े हुए हैं वही रात के अँधेरे

में धिनौने कार्य करते हैं। संघमित्रा प्रतिशोध की अग्नि में जल रही थी। जल्द ही वह अभयमुनि को ढूँढ निकालती है और अपने प्रेमजाल में फँसाकर उनकी हत्या कर देती है। उसी के शब्दों में—‘मैं तुम्हें माफ नहीं कर सकती क्योंकि तुम सिर्फ मेरे नहीं, तुम पूरी मनुष्यता के गुनहगार हो। एक धर्मगुरु होकर तुमने ऐसा किया...इसलिए तुम्हारा अपराध अक्षम्य है मुनि। जो धोखा, जिल्लत और अकथनीय आँसू तुमने दूसरों को दिए, देखो, कैसे लौटकर वे आते हैं, तुम्हारे पास। तुम धरती के धब्बे, पृथ्वी की गंदगी।’¹²

सदियों से धर्म की आड़ में स्त्रियों का शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न हो रहा है परन्तु आज स्त्री सशक्त हो रही है। वहीं नारी शक्ति संघ जैसी संस्थाएँ इनकी सहायता को लेकर आगे आई हैं ताकि स्त्री अपना कुचला हुआ आत्मसम्मान वापिस पा सके। धार्मिक आडम्बरों का पर्दाश करता मधु काँकरिया का एक सशक्त उपन्यास जिसने अन्याय और शोषण की नींव हिला दी है।

संदर्भ

1. मधु काँकरिया, सेज पर संस्कृत, पृ० 12
2. वही, पृ० 24
3. वही, पृ० 27
4. वही, पृ० 38
5. वही, पृ० 38
6. वही, पृ० 47
7. वही, पृ० 64
8. वही, पृ० 131-132
9. वही, पृ० 181
10. वही, पृ० 186
11. वही, पृ० 197
12. वही, पृ० 226

Dr. Nisha Jamwal
H.No. 208, Sec. 4
Shant Nagar, Janipur, Jammu
nishabandral@gmail.com

समकालीन हिंदी साहित्य के विविध आयाम : एक दृष्टि

डॉ० आलोक रंजन श्रीवास्तव

हिंदी विभाग

इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ०प्र०)

‘समकालीन’ से तात्पर्य उस अवधि से है जो ‘वर्तमान से’ या यों कहें कि ‘आज से’ हमारा साक्षात्कार करवाता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व संपूर्ण भारत का एक लक्ष्य था कि हमें इस साम्राज्यवादी मानसिकता व दासता से मुक्ति पानी है जिसकी प्राप्ति में हजारों-लाखों लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दे दी और उनके इस त्याग का परिणाम स्वतंत्रता के रूप में हमारे समक्ष आया। आजाद भारत ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता व मानसिकता को हमेशा-हमेशा के लिए विदाई दे दी और एक नए व सुनहरे लक्ष्य को निर्धारित कर अपने लक्ष्य अर्थात् स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में एक नवीनतम परिवर्तन के लिए अग्रसर हुआ। भारतवासियों ने अपनी आँखों में ढेर-सारे सपने सँजो रखे थे कि आजादी के बाद उनके सुख-दुख को समझने वाले अपने लोग होंगे। उन्नति व प्रगति के नवीन द्वार खुलेंगे। सभी को अपनी इच्छा के अनुसार आगे बढ़ने व उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त होगा। कोई दीन-दुःखी न होगा। शोषण, गरीबी, भुखमरी व लाचारी का अंत होगा। परंतु कुछ समय पश्चात जनता की आशाएँ निराशा में बदलने लगीं क्योंकि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात ही लोगों ने समझ लिया था कि सत्ता अवश्य बदल गई है किंतु परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

अब ‘अर्थ’ ही शक्ति का पर्याय बन गया। समाजवाद को दरकिनार करके उस पर पूँजीवाद हावी हो गया। धनी व गरीब के बीच की खाई दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई। जातिवाद बढ़ा, संघर्ष बढ़ा, क्षेत्रवाद बढ़ा, सांप्रदायिकता बढ़ी। आज शोषण, हिंसा, लूटमार, बलात्कार थमने का नाम नहीं ले रहा है। स्वतंत्र भारत की उपलब्धियाँ अब कागजों व फाईलों में सिमटकर रह गईं। स्वाधीनता के बाद देश की जो सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियाँ उभरकर सामने आईं, उसने समकालीन जनजीवन को गहनतम स्तर तक प्रभावित किया।

इन विषम परिस्थितियों ने एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो ‘मध्यवर्ग’ या फिर आर्थिक रूप से अधिक तंग परंतु कुछ बौद्धिक व्यक्ति ‘निम्न-मध्यवर्ग’ कहलाया। यह ऐसा वर्ग था, जो आधुनिक होने का दिखावा करने के बाद भी वास्तविक तौर पर रूढ़िवादी व जड़ मान्यताओं से जकड़ा हुआ था। वह प्रदर्शनप्रिय तो था परंतु अपनी सीमाओं को भी भली-भाँति जानता था। वह चाहकर भी अपने परंपरागत मूल्यों व मान्यताओं से समझौता नहीं कर सकता था। वह अमीरी व गरीबी रूपी दो पाटों के मध्य पिसने को अभिशप्त था। इस मध्यवर्गीय वास्तविकता ने समकालीन समाज को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है और साथ ही सृजनात्मकता भी इससे अछूता नहीं रहा।

‘समकालीन भारतीय समाज में जिन दुष्प्रवृत्तियों का बोलबाला हुआ, उनमें छोटी और

बड़ी पीढ़ियों के बीच प्राचीन और आधुनिक जीवन-मूल्यों के प्रश्न पर उभरता हुआ संघर्ष, पश्चिमी प्रभाव से उत्पन्न दोहरी जीवन-शैली के अंतर्विरोध, धर्म और संस्कृति के नाम पर पाखंड तथा संस्कारों की जकड़न, अस्पृश्यता का बराबर बने रहना, यौन नैतिकता का बराबर गिरते जाना, पारिवारिक संबंधों का आर्थिक दृष्टि से पुनर्निर्धारण, स्वतंत्रता के नारों के बीच स्त्री के प्रति हिंसक प्रवृत्ति का बढ़ते जाना, जनसंख्या और बेरोजगारी से उत्पन्न अव्यवस्था व आतंक, बढ़ती हुई चोरी, डकैती, गुंडागर्दी आदि को समकालीन हिंदी उपन्यासों में यथार्थ प्रेरित समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषित किया गया है।¹

समकालीन, समकालीनता, समसामयिकता को आधुनिकता के संदर्भ में विविध रूपों में व्याख्यायित किया गया है। परंतु हिंदी नवलेखन में इन शब्दों का समयपरक अर्थ न लेकर वरन् प्रवृत्तिगत अर्थ ग्रहण किया गया है और इनकी व्याख्या की गई है। समकालीन, समकालीनता और समसामयिकता समयगत चेतना या बोध है। समकालीन नवलेखन के संदर्भ में प्रस्तुत शब्द अत्यंत परिचित है। 'समकालीन' रूपी संज्ञा साहित्य की प्रायः सभी विधाओं व विमर्शों के साथ प्रयोग में लाई जा रही है। उदाहरणस्वरूप समकालीन कविता, समकालीन उपन्यास, समकालीन कहानी, समकालीन स्त्री-विमर्श, समकालीन दलित-विमर्श आदि। समकालीनता का अर्थ प्रवृत्तिमूलक है, तो कहीं समय-बोधक। जिस तरह से प्रत्येक आधुनिक साहित्यकार ने आधुनिकता की व्याख्या अपने-अपने स्तर से की है, उसी तरह समकालीन साहित्यकारों ने समकालीनता को अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है।

डॉ० बलदेव बंशी के अनुसार, 'समकालीनता वह चेतना है, जो सामयिक संदर्भों, दबावों और तकाजों के तहत विशिष्ट स्वरूप धारण करती है।'² समकालीन युग संदर्भों में प्रासंगिक होता है। समकालीनता जड़ चुकी या सड़ चुकी व्यवस्था के प्रति विद्रोह है समकालीनता का सीधा अर्थ है अपने समय के प्रति ईमानदार होना। लक्ष्मीकांत वर्मा कहते हैं कि 'देश काल का दायित्व, मानवीय दायित्व को प्रतिबिंबित करना है।'³ समकालीनता एक काल विशेष में घट रही समस्याओं से अवगत कराता है। 'आधुनिकता युगबोध है जबकि समकालीनता स्थितिबोधक है। आधुनिकता में युग-विशेष के औसत मिजाज का ज्ञान निहित रहता है, जबकि समकालीनता को आधुनिक की एक स्थिति अथवा सोपान कहा जा सकता है। समकालीनता की सार्थकता का समयगत संदर्भ के साथ-साथ मूल्यगत अर्थात् गुणात्मक आयाम भी है।'⁴ 'रघुवीर सहाय ने 'समकालीनता' को बहुत ही व्यापक अर्थ में परिभाषित किया है और कहा है, 'मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव-भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। पुनः 'मनुष्य की प्रतिभा और समार्थ्य की अनंत संभावनाओं का द्वार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रयत्न उसके वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है वही समकालीनता का धर्म-निर्वाह करता है।'⁵

'समकालीनता स्थाई होते हुए भी एक गतिशील मूल्य है। अग्रगामीता समकालीनता में अंतर्निहित है। समकालीनता एक व्यापक अवधारणा है, जिसे किसी मतवाद-विशेष के साथ जोड़ा जा सकता है। किसी मतवाद-विशेष के साथ सन्नद्ध होते ही समकालीनता एक रूढ़ि बन जाती है तथा यथास्थितिवाद को प्रश्रय देने लगती है। समकालीनता और यथास्थितिवादी चिंतन प्रक्रिया के दो ध्रुव हैं, जो कभी एक नहीं होते। समकालीनता अपनी वस्तु प्रकृति में अग्रगामी होती है जबकि यथास्थितिवाद पश्चगामी। वर्तमान इन दोनों में है किंतु उसे देखने का नजरिया एकदम भिन्न और परस्पर उल्टा है।'⁶ समकालीनता वर्तमान को उसके अतीत और संभावित तथा संभावनाशील

भविष्य के साथ पूरी समग्रता में देखती है।

डॉ० रमेश कुंतल मेघ कहते हैं कि 'समकालीनता और समसामयिकता समयगत चेतना या बोध हैं।'⁷ वर्तमान ही समकालीन है और देखा जाए तो प्रत्येक युग का अपना वर्तमान होता है परंतु यहाँ ध्यातव्य है कि यही समकालीनता, आधुनिकता को सही मायने में सार्थकता और गत्यात्मकता प्रदान करती है। डॉ० नगेंद्र लिखते हैं कि 'आज के सीमित संदर्भ में आधुनिकता का एक संकुचित अर्थ, 'समसामयिक' भी उभरकर सामने आया है।'⁸

'समकालीनता भविष्य के लिए उपजने वाली वर्तमान की चेतना है।'⁹ अतः हम कह सकते हैं कि समकालीनता के पद-प्रत्यय से यह भी तात्पर्य निकलता है कि 'जो इस काल में' है। 'समकालीन एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का 'मुकाबला' करना है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केंद्रीय महत्त्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है।'¹⁰

बीसवीं सदी का साहित्य स्वयं में कई सारे दुखों व त्रासद को समेटे हुए है। 'बीसवीं सदी के साहित्य को कई बार लगता है कि जैसे हर आदमी बहुत दुःखी और बेचारा है। एक ओर बेचारगी का अतिवाद है तो दूसरी ओर क्रांति का। ...यह ठीक है कि हमें अपने आस-पास के सारे दुख-दैन्य, संसार की निरर्थकता, क्रांति की संभावना, यह सब नजर आना चाहिए। जो है उसे बेहतर करने के लिए हमें लड़ना-भिड़ना चाहिए।'¹¹ समकालीनता इन्हीं चुनौतियों का सामना साहित्य के माध्यम से कर रही है।

'प्रत्येक पाठक अपने वर्तमान में जीता है, अतः समकालीनता उसकी दुर्बलता भी है और उसकी आवश्यकता भी। आधुनिकबोध के लिए भी साहित्य का समय के साथ-साथ चलना, समकालीन रहना आवश्यक है...'¹² यह एक जटिल गुत्थी है कि समय के सतत प्रवाह में से किस खंड को काटकर 'समकालीनता' के दायरे में निबद्ध किया जाए और किस खंड का परिहार किया जाए। अतः किसी व्यक्ति के समय या किसी कालखंड में प्रचलित या व्याप्त प्रवृत्तियों या स्थितियों को उस व्यक्ति के समकालीन माना जा सकता है और इन प्रवृत्तियों एवं स्थितियों के होने का भाव 'समकालीनता' है।

'कुँवर नारायण' जी 'निराला की समकालीनता' पर मंथन करते हुए अपनी पुस्तक 'आज और आज से पहले' में लिखते हैं, 'निराला की समकालीनता को सोचते वक्त थोड़ी दुविधा में पड़ गया हूँ। किस निराला की बात करूँ? मेरे सामने कई निराला आकर खड़े हो गए हैं और सब एक से एक बढ़कर निराला होने का दावा कर रहे हैं। ...ये सबसे आगे जो हैं 'सामाजिक यथार्थ' वाले निराला, जिन्हें आजकल सबसे ज्यादा समकालीन माना जाता है, इन्होंने ही वह तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता, सरोज-स्मृति जैसी रचनाएँ हमें दी हैं। ...उनके अगल-बगल दो और निराला हैं—एक तो राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास आदि आध्यात्मिक रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं, और दूसरे अपने गीतों या गीतात्मक कविताओं के लिए, जैसे—बाँधों न नाव इस ठाँव बंधु या जुही की कली। इन सबसे जरा हटकर खड़े हैं, एक और निराला—व्यंग्यकार निराला—इनका भी नाम आपने जरूर सुना होगा, वही खजोहरा, मास्को डायग्लास, गर्म पकौड़ी वगैरह वाले निराला।'¹³ तात्पर्य यह है कि समकालीन सामाजिक यथार्थ को उसकी संपूर्ण वास्तविकता में व्याख्यायित कर देने का कार्य निराला जी ने अपने काव्य साहित्य के माध्यम से बहुत पहले से ही प्रारंभ कर दिया था। उन्होंने उन समस्त चुनौतियों व समस्याओं को अपने साहित्य का अंग बनाया जो तत्कालीन समाज के

मूल में थीं। यह एक प्रगतिशील रचनाकार थे और साथ ही अपने समकालीन चुनौतियों से भली-भाँति परिचित भी थे। 'समकालीनता देश का अनिश्चयात्मक शक्ति है और उससे लड़ने के लिए वैचारिक आधार पर विरोध और विद्रोह का सहारा लेती है। वह देशकाल के बदलाव को मानवीय संदर्भ में देखने की पक्षपाती है, जिससे आम आदमी भी खास आदमी की तरह रह सके, जी सके।'¹⁴

समाज के बदलते स्वरूप, रुचियों और परिस्थितियों के सम्मुख साहित्य एक प्रतिस्पर्धी के रूप में सामने आता है। तीव्र गति से परिवर्तित होते समय के सापेक्ष सामाजिक स्थितियाँ व मान्यताएँ सभी बदलते चले जाते हैं जिसकी गति तीव्र या कम हो सकती है। परिवर्तन के कारण, परिवर्तन की आवश्यकता और उसके उत्प्रेरक जितने शक्तिशाली और सुनियोजित होंगे, परिवर्तन की गति उतनी ही तीव्र होगी। समाज की इन बदली हुई प्रवृत्तियों, स्थितियों को साहित्य अपने स्तर व माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता रहा है। अतः साहित्य भी अनेक बार सामाजिक परिवर्तन का उत्प्रेरक बन सका है। इस प्रकार साहित्य अपनी दखल कभी प्रत्यक्ष तौर पर और कभी अप्रत्यक्ष रूप में करता रहता है। उसका उद्देश्य तत्कालीन समाज को उसकी यथार्थता में अभिव्यक्त करना है।

संदर्भ

1. समकालीन हिंदी उपन्यास : समय से साक्षात्कार, डॉ॰ एलार्डबम विजयलक्ष्मी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ॰ 9
2. समकालीन कविता : वैचारिक आयाम, डॉ॰ बलदेव बंशी, पृ॰ 17
3. नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ॰ 264
4. समकालीन हिंदी कहानी का इतिहास, डॉ॰ अशोक भाटिया, पृ॰ 13
5. समकालीन काव्य-यात्रा, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ॰ 8 (भूमिका)
6. कहानी समकालीन चुनौतियाँ, शंभु गुप्त, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2009, पृ॰ 53
7. आधुनिकबोध और आधुनिकीकरण, डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ, पृ॰ 338
8. नई समीक्षा, नए संदर्भ, डॉ॰ नगेंद्र, पृ॰ 338
9. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना-कर्म, कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2006, पृ॰ 254
10. समकालीन कविता का सौंदर्यबोध, रोहिताश्व, पृ॰ 15
11. कुछ पूर्वग्रह, अशोक बाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ॰ 179
12. हिंदी उपन्यास: सृजन और सिद्धांत, नरेंद्र कोहली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2002, पृ॰ 232
13. आज और कल से पहले, कुँवर नारायण, पृ॰ 168
14. समकालीन कविता एक विविध आयाम, अंजनीकुमार दुबे भावुक, पूर्वांचल प्रकाशन, 1998, पृ॰ 15

‘मैं पायल’ उपन्यास में किन्नर व्यथा

डॉ० सविता प्रमोद

सहायक प्रोफेसर

डी०बी० पंपा कॉलेज, परुमला, केरल

मानव प्रकृति की अनुपम कृति है। वह अपने विवेक और मनुष्यत्व के लिए अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है। इसी के बलबूते वह संस्कार और सभ्यता का विकास करता है। मनुष्यत्व को प्रधानता देने की वजह से विश्वबंधुत्व की भावना जाग उठती है। भारतीय दर्शन में समस्त जीव मात्र के अधिकारों पर बल दिया है। इस प्रकार की भावना रखनेवाले इस समाज में किन्नरों का क्या स्थान रहा है और आज क्या उसमें बदलाव आया है? आया भी है तो कहाँ तक? यह वास्तव में सोचने विचारने की बात है। यह सच है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा 2004 अप्रैल 35 में किन्नरों को मान्यता प्राप्त हुई, लेकिन समाज इसे आज तक स्वीकार नहीं पाया। क्या आज माता-पिता अपनी किन्नर संतान को अपने साथ रखने को तैयार हैं? जानवरों से भी बदतर जीवन यापन करने वालों को समाज किस नजरिए से देखता है? समाज ने ठुकराया और घरवालों ने घर पर स्थान न दिया, ऐसे लोगों की व्यथा कही नहीं जा सकती। साहित्यकारों ने इस व्यथा को उभारने का प्रयास किया है। महेंद्र भीष्म ने अपने उपन्यास ‘मैं पायल’ द्वारा किन्नरों की व्यथा को समाज के सामने रखा और किन्नरों के प्रति समाज का जो दृष्टिकोण रहा है उसमें परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी है।

किन्नर का अँग्रेजी शब्द ‘ट्रांसजेंडर’ है। ट्रांसजेंडर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

Describing or relating to people whose sense of gender identity does not match their biological sex or does not easily fit in with the usual division between male and female.¹

राज अहमद साहब ने ‘हम सभी इंसान हैं’ उपन्यास की भूमिका में हिजड़ों की व्याख्या स्पष्ट की है—भारतीय भूभाग में किन्नर यानी हिजड़ा ऐसे लोगों को कहा जाता है जिनके जननांग स्पष्ट नहीं होते हैं अर्थात् जिनके जननांग न तो स्पष्ट रूप से स्त्री के होते हैं न ही पुरुष के।²

जेंडर आईडेंटिटी यानी लिंग निर्णय सेक्स क्रोमोसोम के आधार पर होता है। यदि सेक्स क्रोमोजोम XY है तो वह पुरुष और XX होने पर महिला कहलाता है। इसके अलावा कभी-कभी यह क्रोमोसोम XXX, YY, OX हो जाते हैं और इस अवस्था में इसे क्रोमोजोम डिसऑर्डर कहते हैं और यह ट्रांसजेंडर, किन्नर, छक्का आदि नामों से समाज में जाने जाते हैं। समाज को यह समझना अति आवश्यक है कि किन्नर का रूप ग्रहण करने में इनका कोई दोष नहीं होता। गर्भावस्था में कुछ कारणों से क्रोमोसोम की संख्या या आकृतियों में परिवर्तन हो जाता है जिसके कारण किन्नर बच्चे पैदा हो जाते हैं।

किन्नरों को इस संसार में कई विडंबनाओं का सामना करना पड़ता है। समाज उन्हें मानव का दर्जा देने से हिचकिचाता है और उनसे कोसों दूर भागना चाहता है। इन अभागों को केवल समाज से ही नहीं, अपने परिवार से भी जूझना पड़ता है। आज उन्हें कई अधिकार प्राप्त हैं लेकिन

हकीकत यह है कि आज भी वे समाज से नहीं जुड़ पाए हैं। न ही उन्हें मानवीय दर्जा प्राप्त हो पाया है। इने-गिने लोग उभरकर यद्यपि सामने आए हैं, जैसे-शबनम मौसी, जोइता मंडल, पद्मिनी प्रकाश, मानवी बाद्योपाध्याय आदि, लेकिन अधिकांश आज भी निंदनीय और बेसहारा सड़कों पर आवारों की तरह घूम रहे हैं। इनकी समस्याओं को मुख्यधारा में लाने के लिए साहित्यकारों द्वारा प्रयास हो रहे हैं और आज हिंदी साहित्य में अनेक उपन्यास लिखे जा रहे हैं-नीरजा माधव का 'यमदीप', अनुसूया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ', निर्मला गुराडिया का 'गुलाब मंडी' आदि।

महेंद्र भीष्म की 'मैं पायल' उपन्यास अधूरी देहधारी खूबसूरत किन्नर पायलसिंह के जीवन संघर्ष पर आधारित है। इस उपन्यास की भूमिका में दया दीक्षित लिखती हैं यह विडंबना ही है कि सभ्य समाज पूरी तरह सभ्य नहीं हो पाया है। 'मैं पायल' हमारे किसी सभ्य और प्रगतिशील समाज पर प्रश्नचिह्न लगाती दिखती है। हाँ, जब तक प्रजातांत्रिक मूल्यों वाले हमारे देश में सबको प्रगति करने के लिए समान अधिकार प्राप्त है। प्रगति समानता और विकास की मुख्यधारा में शामिल होने के लिए किन्नर समुदाय को बहुत कठिन परिश्रम और संघर्ष करना पड़ेगा, क्योंकि इस समुदाय को बुद्धिजीवियों का उतना और वैसा समर्थन सहयोग नहीं मिलता जितना की अन्य अल्पसंख्यकों को मिला है।³

पायल का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में राजमऊ नामक गाँव में हुआ। पिता रामबहादुर सिंह राज्य परिवहन निगम में ड्राइवर थे। जिन्हें अपने अधिकारी को थप्पड़ मारने के मामले में नौकरी से निकाल दिया गया था और बाद में वह ट्रक चलाने लगे। खूब दारू पीते और घरवालों को बहुत तंग करते, यहाँ तक कि बच्चों पर भी हाथ चला देते। माँ शांतिदेवी अपने नाम के अनुरूप शांत स्वभाव की थीं।

पायल का नारकीय जीवन उसके घर से शुरू होता है। उपन्यास में पायल की माँ उसके शरीर को लेकर चिंता जाहिर करती है परंतु वह हमेशा से ही अपनी बेटी के प्रति समर्पित है। यानी पायल को माँ के प्यार में कोई कमी महसूस नहीं हुई। 'ईश्वर को पता नहीं क्या मंजूर था...'⁴ बेटी के प्रति पूर्ण समर्पित होने के बावजूद उन्हें समाज का भय हमेशा सताता रहा। पायल को अपने पिता से सर्वप्रथम ताड़नाएँ सुनने को मिलीं और यहीं से उसकी व्यथा गाथा शुरू हुई। पिता अपनी संतान को इस रूप में स्वीकार न कर पाते और शर्मिंदगी महसूस करते। जुगनी ने हिजड़ा शब्द सर्वप्रथम अपने पिता के मुँह से ही सुना था-जब कभी वे दारू के नशे में उसे कोसते, गाली देते 'ये जुगनी! हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजड़ा है।'⁵ बचपन में घर पर ही दिल टूट चुका था और हर पल दर्द, रुसवाई, उपहास युक्त जीवन जीना पड़ रहा था। खुद को तो जहर के घूँट पीने पड़ रहे थे, साथ में समाज ने भाई को भी न छोड़ा। 'साला मादर...छक्के का भाई छक्का बड़ा रौब दिखाता है'⁶-कहकर अपमानित किया करते।

पिता ने घर में आदेश दिया कि जुगनी को लड़कों के कपड़े ही पहनाए जाएँ और स्कूल न भेजा जाए। 'अगली बार...यह साला हिजड़ा लड़की के कपड़े पहने मिला और घर के बाहर निकला तो मैं अपने ही हाथों से इस साले का खून कर दूँगा।'⁷ जुगनी हमेशा अपने पिता के प्यार से वंचित रही। कहना न होगा कि किन्नरों को सबसे पहले अपने परिजनों से ही नफरत का सामना करना पड़ता है। जुगनी के पिता पाँच लड़कियों के बीच बेटे राकेश को ही प्यार करते थे। शराब पीकर पत्नी और लड़कियों को गालियाँ देते। यदि पिता घर पर होते तो बेचारी लड़कियाँ साँस लेने से भी डरतीं।

पिता का आदेश था कि जुगनी को लड़कों वाले कपड़े पहनाए जाएँ लेकिन एक दिन बहनों ने उसे लड़की वाले कपड़े पहनाए—बाल सँवारे, संपूर्ण श्रृंगार कर माँ से बोली कि अपनी जुगनी परियों के देश की राजकुमारी लग रही है। माँ भी उसे प्यार करने ही लगी थी कि उसके पिता नशे में झूमते आ धमके। जुगनी को लड़कियों की वेशभूषा में देखकर आपा खो बैठे। मार-मारकर उसे बेहोश कर दिया। उसके गले में फाँसी का फंदा डालकर खींचने लगे। गर्दन में भीषण दर्द से जुगनी कराह उठी। माँ तथा अन्य बहनों ने आकर उसे किसी तरह बचाया। होश आने पर जुगनी के मन पिता का डर सताने लगा। उसके मन में कुएँ में कूदकर या ट्रेन के नीचे कटकर मरने का विचार आया, लेकिन साहस जुटा न पाई। अंततः वह ट्रेन में बैठकर घर से दूर निकल गई।

घर त्यागने से एक समस्या का हल निकाला, लेकिन दूसरी और नई समस्याएँ उभर आईं। अपने अस्तित्व को बचाने-पेट की भूख मिटाने का संघर्ष। एक आदमी उसे काम दिलाने के बहाने स्टेशन के बाहर ले आया। 13-14 वर्ष की जुगनी समाज की हीन दृष्टि को समझ न पाई। वह अनायास भीख मँगवाने वालों के गिरोह में फँस गई। वहाँ भी उसे यातनाओं का शिकार होना पड़ा। इस दुख को प्रकट करते वह कहती है—यह दीगर बात थी कि घर-परिवार से विस्थापित जीवन जीने का जो दर्द मेरे हृदय में बिंधा था वह पल-प्रतिपल मेरे आँसुओं के बाँध को भेजता रहता था। मैं हृदय में बहुत कुछ हजम किए मन ही मन रोती रहती थी और ईश्वर से एकांत के क्षणों में अपने अपराध के लिए पूछती रहती थी—हे ईश्वर ऐसा कौन-सा पाप मैंने किया, जो तूने मुझे इस जीवन में हिजड़ा रूप दिया।” सगे-संबंधी सारे नाते तोड़ इन किन्नरों से कोसों दूर भागना चाहते हैं। भीख मँगवाने वाले लोगों के गिरोह से वह बाल-सुधारगृह पहुँच जाती है और वहाँ माँ और भाई उसे लेने आते हैं। माँ जुगनी को कुछ दिनों के लिए अपनी बहन के यहाँ रखना चाहती है लेकिन उनकी बहन साफ इंकार कर देती है। मौसी के मुँह से भी हिजड़ा शब्द सुनकर उसके हृदय को ठेस पहुँचती है।

किन्नरों को अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। लेखक उपन्यास के माध्यम से समाज की संवेदनहीनता को दर्शाया है। किन्नरों को अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि भूख मिटाने के लिए दर-दर भटकना पड़ता है लेकिन पायल दूसरों के सम्मुख हाथ पसारना नहीं चाहती। शिक्षा के अभाव में उसे कई जगह ठोकरें खानी पड़ीं। डॉ॰ मधु खराटे लिखती हैं—‘उपन्यास की पायल की विशेषता यह है कि वह किन्नर है परंतु सम्मानजनक जीवन यापन करती है। अपने उधर निर्वाह के लिए उसने क्या-क्या नहीं किया। होटल में बर्तन माँजने का काम किया, चाय बेची, प्रोजेक्टर चलाने की कला सीखकर उसे चलाया, मिमिक्री की, डांस किया, वह स्वाभिमानी रही।’

किन्नर समाज में रहते हुए भी पायल ने कभी अपने-आपको उसमें ढालना नहीं चाहा। अपनी अलग एक स्वतंत्र पहचान बनाना उसका मकसद रहा और वह सफल भी रही। किन्नर होते हुए भी पायल को यह महसूस हुआ कि अपने हालात के लिए किन्नर भी दोषी हैं जिसमें आत्मविश्वास की कमी है उन्हें अपने संकीर्ण घेरे से बाहर आना होगा, रोजगार के अवसर खोजने होंगे, शिक्षा प्राप्त कर आगे बढ़ना होगा और अपने नैतिक चरित्र में सुधार लाना होगा, तभी किन्नर अपने इस नारकीय जीवन से मुक्ति पा सकते हैं। पायल आशावादी है, जिसके कारण उच्च न्यायालय द्वारा इन्हें तीसरे लिंग के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। वह मुख्यधारा में किन्नरों को लाना चाहती है वह कहती है सरकार हम पर भरोसा करके तो देखें, हमें आजमाए तो, पायल का जीवन

अति प्रेरणादायक है जो अपने अस्तित्व के लिए आजीवन संघर्ष करती रही। आशा है कि किन्नरों की जिंदगी में अवश्य परिवर्तन आएगा, वे मुख्यधारा में आएँगे। घर और समाज उन्हें उचित सम्मान देगा जिससे उनकी व्यथा का अंत होगा।

संदर्भ

1. विकिपीडिया
2. हम भी इंसान हैं, संपादक, दो शब्द से
3. महेंद्र भीष्मा में पायल, भूमिका, 2016
4. महेंद्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन कानपुर, पृ० 33
5. वही, पृ० 82
6. वही, पृ० 44
7. वही, पृ० 104
8. वही, पृ० 121

मो० 8281884019

कबीर के काव्य में मानवतावाद की उपादेयता

कृपाशंकर

शोधछात्र, हिंदी विभाग

रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म०प्र०)

कबीर संतमत के प्रवर्तक और संतकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। विलक्षणता के धनी और समाजसुधारक संत कबीर हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनके समान सशक्त और क्रांतिकारी कोई अन्य कवि हिंदी साहित्य में दिखाई नहीं पड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीरदास के काव्य और व्यक्तित्व का आकलन करते हुए लिखा है—कबीर की उक्तियों में कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है। प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी, इसमें संदेह नहीं। कबीर की विलक्षण प्रतिभा पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—हिंदी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्व लेकर लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। उनके संत रूप के साथ ही उनका कविरूप बराबर चलता रहता है।

कबीर की जितनी भी रचनाएँ मिलती हैं उनके शिष्यों ने इन्हें बीजक नामक ग्रंथ में संकलित किया है। बीजक के तीन भाग हैं—साखी, सबद और रमैनी। साखी में संगृहीत साखियों की संख्या 809 है, सबद के अंतर्गत 350 पद संकलित हैं। साखी शब्द का प्रयोग कबीर ने संसार की समस्याओं को सुलझाने के लिए किया है। सबद में कबीर के गेय पद हैं। रमैनी ईश्वर, शरीर एवं आत्मा उद्धार संबंधी विचारों का संकलन है। कबीर निर्गुण भक्तिमार्ग के अनुयायी थे और वैष्णव भक्त थे। रामानंद से शिष्यत्व ग्रहण करने के कारण कबीर के हृदय में वैष्णवों के लिए अत्यधिक आदर था। कबीर ने धार्मिक पाखंडों, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों आदि को दूर करने का सराहनीय कार्य किया है।¹ कबीर की भाषा में सरलता एवं सादगी है, उसमें नूतन प्रकाश देने की अद्भुत शक्ति है। उनका साहित्य जनजीवन को उन्नत बनाने वाला, मानवतावाद का पोषक, विश्वबंधुत्व की भावना जाग्रत करने वाला है। इसी कारण हिंदी संत काव्यधारा में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना के रूप में भक्ति आंदोलन को देखा-परखा जाता है। भक्ति आंदोलन ने अपने धार्मिक विचारों के बावजूद जनता की एकता को स्वीकार किया। यह स्वीकृति वैचारिक और व्यावहारिक दोनों आधारों पर है। रामानंद की शिष्य परंपरा में कबीर, रैदास, दादू, तुकाराम तथा तुलसी समान रूप से स्वीकृत हैं। मीरा ने अपने गुरु के रूप में रैदास को स्वीकार किया यह भी एक मिसाल है। कबीर कहते हैं—‘ना मैं हिंदू ना मुसलमान’ और तुलसी जब भील-भिलनी, किरात जैसी जंगली जातियों को राम के द्वारा स्वीकार और सम्मानित करवाते हैं तो इसी एकता की बात करते हैं।

भक्ति आंदोलन का यह एक ऐसा वैचारिक आधार है जिसके माध्यम से वह ऊँच-नीच

एवं जाति और वर्ण-भेद के आधार पर विभाजित मानवता की समानता को एक नैतिक और मजबूत आधार प्रदान करते हैं।² समाज में व्याप्त असमानताओं का आधार भी ईश्वर की भक्ति को बनाया गया था—भक्त संतों ने उन्हीं के हथियारों से उन पर वार किया और कहा कि 'ब्रह्म' के अंश सभी जीव हैं तो फिर यह विषमता क्यों? कि किसी को ईश्वर उपासना का संपूर्ण अधिकार और किसी को बिल्कुल नहीं। इतना ही नहीं इसी आधार पर समाज को रहन-सहन, खान-पान, छुआछूत एवं आर्थिक विषमताओं से विभाजित किया गया था। भक्तों ने चाहे वे निर्गुण हों चाहे सगुण, सभी ने ईश्वर के समक्ष मानव मात्र की समानता को एक स्वर से स्वीकार किया।

'जाति प्रथा' समाज की एक ऐसी बुराई थी जिसके चलते समाज के एक बड़े वर्ग को मनुष्यत्व के बाहर का दर्जा मिला हुआ था। 'अछूत', 'शूद्र', 'अंत्यज', 'निम्नतम' श्रेणी के मनुष्यों का ऐसा समूह था जिसे मनुष्यत्व की मूलभूत पहचान भी प्राप्त नहीं थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ग में भी जातिगत श्रेष्ठता और सामाजिक व्यवस्था में उच्च श्रेणी के लिए संघर्ष होते रहते थे। संतों ने मनुष्यता के इस अभिशाप से मुक्ति की लड़ाई पूरी ताकत से लड़ी। कबीर जब 'ना हिंदू ना मुसलमान' की बात करते हों या किसी जाति विशेष के विशिष्ट अधिकारों पर चोट करते हों, जो उन्हें जातिगत आधार पर मिले हों तो वे वास्तव में जाति प्रथा के इसी वैचारिक धरातल को तोड़ना चाहते हैं।

'जाति' विशेष का विरोध या जाति को खत्म करने की बात नहीं की गई, बल्कि 'जाति' और 'धर्म' के तालमेल से उत्पन्न मानवीय विषमताओं और हासमान जीवनमूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए जाति के आधार पर मिले विशेषाधिकारों को खत्म करने की बात भक्ति आंदोलन ने उठाई।³ जाति प्रथा के आधार पर ईश्वर की उपासना का जो विशेष अधिकार ऊँची जाति वालों ने अपने पास रखा था और पुरोहितों तथा क्षत्रियों की साँठ-गाँठ के आधार पर जिसे बलपूर्वक मनवाया जाता था, उसे तोड़ने का अथक प्रयास भी भक्ति आंदोलन ने किया।

धर्मनिरपेक्षता का मतलब यह नहीं है कि व्यक्ति किसी धर्म-विशेष से कोई संबंध न रखे। बल्कि इसका अर्थ यह है कि अपने धर्म पर निष्ठा रखते हुए दूसरे धर्मों का सम्मान करें। अपनी धार्मिक निष्ठा को दूसरे धर्मों में निष्ठा रखने वालों से जुड़ने में बाधा न बनें। धर्मनिरपेक्षता एक जीवनमूल्य है जिसमें सहिष्णुता का गुण समाहित है। भक्ति आंदोलन के सभी सूत्रधारों में यह जीवन-मूल्य कमोवेश पाया जाता है। कबीर ने तो मानो इस विचारधारा को जन-जन तक पहुँचाने का बीड़ा उठा रखा था। वे जानते थे कि इसे पाना आसान नहीं है, तभी उन्होंने शर्त रखी जो अपना 'सर' काटकर रखने की क्षमता रखता हो या अपना घर फूँकने की क्षमता रखता हो वही कबीर की इस धर्मनिरपेक्ष विचारधारा के साथ चल सकता है—

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।

जो घर फूँके अपना, चले हमारे साथ।

जायसी इस विचारधारा को साहित्यिक स्तर पर अभिव्यक्त करते हैं। अपने मजहब के प्रति ईमानदारी रखते हुए भी उन्होंने दूसरे धर्मों को आदर दिया और जिसे मनुष्यता का सामान्य हृदय कहते हैं, या जिसे मनुष्यत्व की सामान्य भूमि कहते हैं, उस जमीन पर जिससे भी मिलें, बिना किसी भेदभाव के मनुष्य के नाते मिलें। 'भारत के सांस्कृतिक इतिहास में पहली बार अंत्यजों और पीड़ित-शोषित वर्गों ने अपने संत दिए और इन संतों ने प्रथम बार साहसपूर्वक संपूर्ण आस्था और विश्वास से धर्म-जाति और वर्ण-संप्रदायगत बंधनों को तोड़ते हुए मानव धर्म तथा मानव संस्कृति

का गान गाया।⁴

कबीर इस युद्ध के उद्घोषक थे। उन्होंने इसे स्वयं की स्वयं को दी हुई चुनौती के रूप में स्वीकार किया और अपने तरकश के सभी तीर चलाए। कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि कबीर अकेले खड़े हैं सामने चुनौती झेलने वाला कोई नहीं पर लड़ाई किसी व्यक्ति या शासक के विरुद्ध नहीं थी। लड़ाई थी उस गलीच 'विचारधारा' और 'सोच' के विरुद्ध जिसके आधार पर सदियों से मानवता का शोषण किया जा रहा था उसे उत्पीड़ित किया जा रहा था और मनुष्य जिसे अपनी नियति मानकर जी रहा था।

कबीर ने कहा कि यह हमारी नियति नहीं, हमारा शोषण है, मानवता के प्रति अभिशाप है, किसी धर्म में इसका कोई आधार नहीं है। नियति और धर्म के नाम पर थोपे गए अंधविश्वासों को उन्होंने धर्म और ईश्वर के आधार पर ही खंडित किया और ज्ञान का प्रकाश प्रकाशित किया। इसी कारण उन्होंने गुरु का महत्त्व प्रतिपादित किया—'आगे थे सतगुर मिल्या, दीया दीपक हाथा।'

सूर और तुलसी ने भी सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाई है। तुलसी ने कई जगह तत्कालीन अर्थव्यवस्था के चित्र अंकित किए हैं तथा सामाजिक जीवन की विषमताओं को रेखांकित किया है। लगता है तुलसी स्वयं सामाजिक रूप से उत्पीड़ित रहे हैं। ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं—

धूत कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जुलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारिन सोऊ।
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचौ सो कहो कछु कोऊ।
माँग के खड़बौ, मसीत को सोइबो, लेबे को एक न देबे को दोऊ।

या फिर सामाजिक जीवन का यह हृदयविदारक दृश्य—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को वाणिज न, चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग, सीद्यमान-सोच बस,
कहैं एक-एकन सौ, कहाँ जाइ, का करी।

भक्ति आंदोलन ने इस विचार पर जोर दिया कि भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरूप है। भक्तकवि आंतरिक पवित्रता और सहज भक्ति पर जोर देते थे। सामंतीय मूल्यों और पुरोहितवाद की साँठ-गाँठ को और इनके द्वारा किए जाने वाले संयुक्त शोषण अत्याचारों का विरोध भी इसकी एक विशेषता थी। 'लोक संपृक्ति' इस आंदोलन की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

कबीर दास ने बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग किया है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है, उसे उसी रूप में कहलवा लिया, बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं दरेरा देकर।⁵ भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है। उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को पूरा न कर सके। अकह को कहानी का मनोग्राही रूप देने की जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत ही कम लेखकों में पाई जाती है।

असीम-अनंत ब्रह्मानंद में आत्मा का साक्षी भूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है। पर 'बेहदी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गंभीर निगूह तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है, बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी

गई है। वाणी के ऐसे बादशाह को साहित्य-रसिक काव्यानंद का आस्वादन कराने वाला समझें तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने में भी कबीर अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते थे।⁶ अत्यंत सीधी भाषा में वे ऐसी चोट करते हैं कि खाने वाले केवल धूल झाड़ कर चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाते।

कबीर की रचनाओं में अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं यथा-अरबी, फ़ारसी, पंजाबी, बुंदेलखंडी, ब्रजभाषा, खड़ीबोली आदि के शब्द मिलते हैं इसलिए इनकी भाषा को 'पंचमेल खिचड़ी' या 'सधुक्कड़ी' भाषा कहा जाता है। प्रसंग क्रम से इसमें कबीरदास की भाषा और शैली समझाने के कार्य से कभी-कभी आगे बढ़ने का साहस किया गया है, जो वाणी के अगोचर हैं, उसे वाणी के द्वारा अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है। जो देश और काल की सीमा के परे है, उसे दो-चार-दस पृष्ठों में बाँध डालने की साहसिकता दिखाई गई है।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय

जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय।

इस दोहे का अर्थ है-जब मैं इस संसार में बुराई खोजने चला तो मुझे कोई बुरा न मिला। जब मैंने अपने मन में झाँक कर देखा तो पाया कि मुझसे बुरा कोई नहीं है।

कहते हैं कि समस्त पुराण और महाभारतीय संहिता लिखने के बाद व्यासदेव ने अत्यंत अनुताप के साथ कहा था कि 'हे अखिल विश्व के गुरुदेव, आपका कोई रूप नहीं है, फिर भी मैंने ध्यान के द्वारा इन ग्रंथों में रूप की कल्पना की है-आप अनिर्वचनीय हैं, व्याख्या करके आपके स्वरूप को समझा सकना संभव नहीं है, फिर भी मैंने स्तुति के द्वारा व्याख्या करने की कोशिश की है। वाणी के द्वारा प्रकाश करने का प्रयास किया है। तुम समस्त-भुवन में व्याप्त हो, इस ब्रह्मांड के प्रत्येक अणु-परमाणु में तुम हो, तथापि तीर्थ-यात्रादि विधान से उस व्यापत्व को खंडित किया है।

संदर्भ

1. रॉबर्ट बेली, कबीर परमानंद कविताएँ, बीकन प्रेस, संस्करण 2007, पृ० 44
2. जी०एन० दास, कबीर के प्रेमगीत, सिटिंग बोर्न एशिया पब्लिकेशन, संस्करण 1992, पृ० 81
3. निर्मल दास, आदि ग्रंथ से कबीर के गीत, अल्बानी, एनवाई सुनी प्रेस, संस्करण 1991, पृ० 59
4. विनय धारवाड़कर, कबीर वीवर्स सॉन्स, पेंगुइन क्लासिक्स पब्लिकेशन्स, संस्करण 2003, पृ० 89
5. चार्लोट वाडेविल, कबीर ग्रंथावली (दोहा), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, संस्करण 1957, पृ० 32
6. निर्मल दास, आदि ग्रंथ से कबीर के गीत, अल्बानी, एनवाई सुनी प्रेस, संस्करण 1991, पृ० 23

सुपुत्र श्री उमाशंकर

छोटा बगढ़ा, जिला प्रयागराज

पिनकोड-211002 (उ०प्र०)

मो० 8858603515

ईमेल- ksp221184@gmail.com

डॉ० छोटेलाल दीक्षित की लेखन-यात्रा

डॉ० जयशंकर तिवारी

एसोशिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

श्रीलालबहादुर शास्त्री डिग्री कालेज, गोंडा (उ०प्र०)

जनपद कानपुर के खलकपुर गाँव में 06 अगस्त 1936 ई० को एक बालक ने जन्म लिया, जो बाद में डॉ० छोटेलाल दीक्षित के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उनके पिता का नाम पं० शिवनारायण दीक्षित और माता का नाम श्रीमती रामप्यारी दीक्षित था। शुरुआती शिक्षा ग्रामीण परिवेश में हुई। उन्होंने 1955 में वी०एन०एस०डी० कालेज, कानपुर से इंटर, 1957 में स्नातक तथा 1959 में लखनऊ विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में एम०ए० की डिग्री हासिल की। शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत उन्होंने जीविका के लिए अध्यापन को चुना। उन्होंने कान्यकुब्ज कालेज, लखनऊ में हिंदी व्याख्याता के रूप में अपनी सेवाएँ शुरू कीं और तीन वर्ष वहाँ पढ़ाया। इसी अवधि में साहित्य का अध्यापन करते हुए दीक्षित जी ने 1962 में लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के प्रोफेसर देवकीनंदन श्रीवास्तव के शोध-निर्देशन में महत्त्वपूर्ण विषय 'रामकृष्णकाव्येतर हिंदी सगुण भक्ति काव्य' पर पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त की।

वर्ष 1962 में ही उनकी नियुक्ति सेंट एंड्रूज कालेज गोरखपुर में हो गई, जहाँ चार वर्ष अध्यापन कार्य किया। उन दिनों लखनऊ और गोरखपुर का अकादमिक वातावरण बहुत उन्नत था। नवचेतना के साहित्यकार केदारनाथ सिंह और डॉ० परमानंद श्रीवास्तव उनके लेखकीय व्यक्तित्व से प्रभावित हुए फलतः उनसे निकटता हुई। इस वातावरण ने डॉ० छोटेलाल दीक्षित के रचनात्मक व्यक्तित्व को अधिक संपुष्ट और परिमार्जित किया होगा, ऐसा मानना चाहिए। वस्तुतः किसी का व्यक्तित्व उसके प्राक्तन संस्कार, पारिवारिक वातावरण, शिक्षा-दीक्षा, मित्र-मंडली और समूचे परिवेश की अभिव्यक्ति होता है। प्रत्येक अभिरुचि का एक उत्स होता है, हमें ज्ञात भले न हो। इस बीच तीन माह शाहजहाँपुर में स्नातक विद्यार्थियों को पढ़ाया। सेंट एंड्रूज कालेज गोरखपुर पुनः जाकर सेवारत रहे।

इसके बाद वर्ष 1967 में लालबहादुर शास्त्री महाविद्यालय, गोंडा के हिंदी विभाग में वे प्रथम प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। तदनंतर वर्ष 1988 तक हिंदी विभाग के अध्यक्ष के रूप में मूल्यवान सेवाएँ दीं। इसी अनुक्रम में डॉ० दीक्षित साहित्य-अध्यापन, आलोचना और शोध के क्षेत्र में आए। उन्होंने शताधिक शोधलेखों एवं कविताओं की सर्जना की, जो तत्कालीन 'आलोचना', 'आजकल', 'वीणा', 'पूर्वापर', 'श्री अरविंद कर्मधारा', 'अवध विश्वविद्यालय शोध पत्रिका' जैसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। इसके साथ ही उनके द्वारा डेढ़ दर्जन से अधिक पुस्तकों का लेखन किया गया।

लालबहादुर शास्त्री महाविद्यालय, गोंडा के हिंदी विभाग में प्राध्यापन के दौरान तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा लगाए गए आपातकाल के दौरान तीन महीने गोंडा जेल में भी

रहे। उस समय वह आरएसएस के जिला बौद्धिक प्रमुख थे। जेल में ही उनके द्वारा 'संशय के वृत्त' काव्य-ग्रंथ की रचना की गई।

इसी दरम्यान उन्होंने एक वर्ष तक गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर में अध्यापन कार्य किया। इसके उपरान्त मई 1988 से मई 1991 तक कर्मक्षेत्र महाविद्यालय, इटावा में प्राचार्य के पद पर कार्य किया। पुनः लालबहादुर शास्त्री महाविद्यालय, गोंडा में प्राचार्य पद पर नियुक्त हुए और वर्ष 1997 में लंबी यशस्वी और गौरवपूर्ण सेवा करके यहीं से सेवानिवृत्त हुए।

साहित्य के क्षेत्र में आलोचक धर्म का निर्वाह करके उन्होंने हिंदी आलोचना को एक नया आयाम देने का उपक्रम किया। डॉ० दीक्षित ने 'तुलसीदास का सौंदर्यबोध' शीर्षक पुस्तक वर्ष 1965 में लिखी, जो पं० कैलाशनाथ भार्गव नंदकिशोर एंड संस चौक, वाराणसी से प्रकाशित हुई। उनका गहन अध्ययन, सूक्ष्म चिंतन तथा सरस अभिव्यक्ति इस पुस्तक में आकार पा सकी है। गोस्वामी तुलसीदास के सौंदर्यबोध की विस्तृत व्याख्या करते हुए वे जहाँ एक तरफ सौंदर्य-तत्त्व को शास्त्रीय दृष्टि से व्याख्यायित करते हैं तथा पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि की तुलनात्मक अवस्थिति स्पष्ट करते हैं, वहीं पर 'कलागत सौंदर्य की रचना-प्रक्रिया', 'सौंदर्य व्यक्तिनिष्ठ या वस्तुनिष्ठ' विषय पर महत्वपूर्ण विश्लेषण को प्रस्तुत करते हैं।

दूसरे अध्याय में 'अवतारवाद और सौंदर्य' के अंतर्गत ब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूपों तथा सौंदर्यबोध के प्रसंग में 'तुलसी का युग' शीर्षक के अंतर्गत विवेचन-विश्लेषण किया गया है। तीसरे अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास के सौंदर्यबोध पर विचार करते हुए डॉ० दीक्षित का अभिमत है—'प्रौढ संस्कृति का सौंदर्यबोध केवल एक देश या जाति की संपत्ति नहीं होता, उसका दूसरी जातियों के लिए भी महत्त्व होता है। सौंदर्यबोध जितना ही उन्नत एवं विकसित होगा उतना ही वह सार्वभौम समझा जाएगा। तुलसीदास ने अनेक रूपों में अपनी संस्कृति के सौंदर्यबोध और नैतिक उच्चता का चित्रण किया है। इसी कारण से उनकी रचनाएँ भारतीय जनता की ही वस्तु न होकर मानव मात्र से जुड़ी वस्तुएँ हैं क्योंकि उनमें विश्व के समस्त रसिकजनों को सौंदर्य का साक्षात्कार कराने की क्षमता है।' सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान² प्रसिद्ध छायावादी साहित्यकार जयशंकर प्रसाद यँ ही नहीं कहते थे। भारतीय परंपरा में सौंदर्य को ब्रह्म के तेज का व्यक्त रूप माना गया है।³

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।

तत्देवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्।⁴

'सौंदर्य विधान और बिंब योजना' के अंतर्गत प्रतीक, बिंब, उपमान तथा तुलसी के युग की परिस्थितियों का रेखांकन किया गया है। 'अभिव्यंजना एवं सौंदर्य विधान' शीर्षक प्रकरण में क्रमशः 'अभिव्यक्ति में सौंदर्य की स्थिति', तुलसी के काव्य में 'अभिव्यक्ति का सौंदर्य', 'प्रबंध का सौंदर्य', 'चरित्र का सौंदर्य', 'भाषागत सौंदर्य', 'क्रिया पदों के प्रयोग का सौंदर्य', 'विशेषण तथा संज्ञापदों का सौंदर्य', 'सामासिक पद-प्रयोग का सौंदर्य', 'प्रत्यय एवं उपसर्ग का सौंदर्य', 'ध्वनि-उक्ति-औचित्य पर्याय-छंद, संगीत, कल्पना, शैलीपरक सौंदर्य' को निरूपित किया गया है। अंत में लेखक डॉ० दीक्षित जी के द्वारा तुलसीदास की कतिपय अन्य रचनाओं में 'कवितावली', 'विनय पत्रिका', 'गीतावली' के काव्य-सौंदर्य को संक्षिप्त रूप से विवेचित किया गया है।

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से 'रामकृष्ण काव्येतर हिंदी सगुण भक्ति काव्य' शीर्षक से उन्होंने पी-एच०डी० कार्य किया, जिसका प्रकाशन अगले वर्ष 1968 में भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़ से हुआ, जिसका हिंदी जगत ने स्वागत तो किया ही, अनेक श्रेष्ठ समीक्षकों ने भी

भरपूर सराहना की।

दरअसल, सगुण-भक्ति काव्य मूलतः राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति का काव्य है और इस पर निरंतर शोध भी हो रहे हैं, पर रामकृष्णोत्तर सगुण भक्तिकाव्य का अध्ययन एवं अनुसंधान उपेक्षित-सा रहा है। डॉ० दीक्षित का यह अभिनव एवं अपूर्व प्रयास है, जिसका अपना विशिष्ट महत्त्व है। रामकृष्णोत्तर हिंदी सगुण भक्ति के अंतर्गत जिन देवी-देवताओं के प्रति भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति हुई है, उनमें शिव, शक्ति, हनुमान, गणेश और सूर्य मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। शक्ति की अनेक रूपों में धारणा की गई है। इसमें सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती के ही दुर्गा, भैरवी आदि कई रूप आ जाते हैं। गंगा, यमुना और सरयू जैसी नदियों की अधिष्ठात्री देवियों की गणना भी इन्हीं के अंतर्गत की जा सकती है। इनमें अपेक्षाकृत शिव, शक्ति और हनुमान को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। शक्ति के रूपों में 'दुर्गा' और 'गंगा' को सर्वाधिक प्रधानता मिली है।

इस प्रबंध को सात अध्यायों में विभक्त करके डॉ० दीक्षित ने अनुसंधेय विषय को प्रांजल एवं सरस अभिव्यक्ति दी है। उनके गहन अध्ययन-मनन का यह सफल परिणाम है, जिसे अनेक विद्वानों ने उन्मुक्त कंठ से सराहना करते हुए स्वीकार किया है।

'भक्ति-भावना और काव्य' शीर्षक प्रथम अध्याय में आलोचक दीक्षित ने भक्ति-भावना और दर्शन के सामान्य संबंध का विकास क्रम से सामान्य परिचय दिया है और अन्य विविध प्रांतीय भाषाओं के उदाहरण देते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आदिकाल से भारतीय साहित्य का मुख्य विषय भक्ति ही रही है और अब भी है। दूसरे अध्याय में 'रामकृष्णोत्तर देवों का स्वरूप विकास' के अंतर्गत वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण तथा तंत्र साहित्य का उदाहरण देते हुए शिव, शक्ति, हनुमान, गणेश, गंगा, यमुना आदि के रूप और उपासना के विकास का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही शैव, शक्ति, गणपति दर्शन का परिचयात्मक निर्देश दिया गया है और अंत में हिंदी साहित्य पर इनके प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

हिंदी के रामकृष्णोत्तर सगुण भक्ति काव्य का परिचयात्मक विवरण नामक तृतीय अध्याय में संपूर्ण हिंदी साहित्य में उपलब्ध होनेवाले रामकृष्णोत्तर सगुण भक्ति काव्य का सामान्य परिचय देते हुए डॉ० दीक्षित ने हिंदी के आदिकालीन सिद्धों और नाथों के काव्य में सगुण तत्त्व के अभाव के कारण विविध ग्रंथों में आए नामों की विवेचना करते हुए बताया है कि वहाँ इतर देव किन-किन रूपों में आए हैं। रासो काव्य में इतर देवों की स्थिति तथा भक्तिकाल की विविध धाराओं में प्राप्त होने वाली रामकृष्णोत्तर उपासना का विवेचन किया है। सूफी और निर्गुण संत-काव्य में रामकृष्णोत्तर देवों का स्थान दिखाते हुए दीक्षित जी ने राम और कृष्ण काव्यधारा में भी कवियों द्वारा इतर देवों के प्रति कैसी पूज्य भावना व्यक्त हुई है, इसका स्पष्ट विवेचन किया है। यद्यपि तुलसी जैसे अन्य रामभक्त कवियों ने रामेतर देवों का भी आराधन किया है, किंतु उनकी सम्यक् परंपरा रीतिकाल से ही चली है। रीतिकालीन रामकृष्णोत्तर उपासना का सामान्य परिचय देते हुए 17 उपलब्ध महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की संक्षिप्त आलोचना भी दी गई है, जो रामकृष्णोत्तर उपासना का ही अंग है।

'भक्ति-भावना' नामक चौथे अध्याय में आलोच्य काव्य की भक्ति-भावना का परिचय देते हुए डॉ० दीक्षित ने राम-कृष्ण के प्रति व्यक्त 'भक्ति-भावना' से तुलना करते हुए सिद्ध किया है कि इतर देवों की भक्ति में रस तत्त्व का पूर्ण परिपाक नहीं हुआ और अनुभूति की गहनता, अनन्यता तथा लक्ष्य की अपनी सीमा रही।

पाँचवें अध्याय में 'रसयोजना तथा भाव व्यंजना' शीर्षक के अंतर्गत रस के दृष्टिकोण से आलोच्य काव्य को देखने का प्रयत्न किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि यहाँ सभी रसों का रूप तो उपलब्ध है किंतु प्रधानता वीर एवं वीभत्स की ही रही है, साथ ही विविध भाव दशाओं की योजना कम हो पाई है और रस-चित्रण में वह शक्ति नहीं है जो पाठक को प्रभावित कर सके।

छठें तथा सातवें अध्याय में क्रमशः रचना शैली की विवेचना प्रबंध और मुक्तक दो भागों में विभक्त करके देखा गया है तथा भाषा, छंद, अलंकार तथा संगीत के दृष्टिकोण से भी आलोच्य काव्य का विवेचन किया गया है। सौंदर्य-विधान और वस्तु-वर्णन को विशेष रूप से स्पष्ट करने का उपक्रम किया गया है। परिशिष्ट में डॉ० दीक्षित के द्वारा अनुसंधान पीठों और खोज रिपोर्टों से प्राप्त ग्रंथों का विवरण दिए जाते हुए उनकी श्रमशक्ति को देखा जा सकता है। डॉ० दीक्षित ने अनुसंधान-जगत को समृद्ध करने के साथ अन्य अनुसंधित्सुओं के लिए एक उपयुक्त विषय देकर उन्हें गंभीर अध्ययन के लिए प्रेरित किया है।

दिनकर जी की रचनात्मकता को केंद्र में रखते हुए आलोचक दीक्षित ने वर्ष 1976 में 'दिनकर का रचना-संसार' पुस्तक लिखी, जिसमें दिनकर जी के कृतित्व पर कार्य करके विविध पक्षों को प्रभासित किया है। 'दिनकर का काव्य : जीवन-मूल्यों की पुनर्व्याख्या', 'भारतीय संस्कृति के आख्याता दिनकर', 'दिनकर के काव्य की शक्ति और सीमा', 'पुरुष शांत है बौराई तो प्रकृति है', 'चाहिए उनको न केवल ज्ञान', 'दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता के विविध रूप', 'दिनकर का काव्य: पुरावृत्तों का सार्थक प्रयोग', 'दिनकर की काव्य दृष्टि', 'दिनकर का बिंब-विधान', 'शिल्प-विधान', 'उर्वशी : निरुद्देश्य आनंद का मिथकीय अभिधान' तथा 'सूक्तिकार दिनकर' आदि शीर्षकों में विभक्त करके दीक्षित जी ने तमाम अनछुए पक्षों को उजागर करते हुए अपने गहन अध्ययन और प्रौढ़ चिंतन को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

वर्ष 1986 में उनकी पुस्तक 'आधुनिक काव्य में सौंदर्यबोध के विविध आयाम' प्रकाशित हुई। इसमें डॉ० दीक्षित ने आधुनिक कविता के वास्तविक मूल्यांकन के लिए सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि को अनिवार्य माना है। इस संबंध में उनका कथन द्रष्टव्य है—'आधुनिक कविता ने भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों-परिस्थितियों में जितने परिवर्तन देखे हैं, उतने किसी कालकांड की कविता को नहीं देखने पड़े। अतः आज कविता का सही मूल्यांकन सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से ही हो सकता है। यह दृष्टि न केवल कविता की विषयवस्तु का मूल्यांकन करती है वरन् रचनाकार के द्वारा उस वस्तु की अभिव्यंजना में अपनाई गई प्रणालियों का भी विवेचन करती है।⁵ यह पुस्तक आधुनिक कविता की अन्यतम आलोचना करते हुए उसे एक अभिनव आयाम प्रदान करती है। दो खंडों में विभक्त यह पुस्तक सौंदर्यबोध को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में प्रस्तुत करती है। प्रथम खंड में सौंदर्य तत्त्व और सौंदर्यबोध के विवेचन के साथ पाश्चात्य एवं भारतीय सौंदर्य चिंतकों की सौंदर्य संबंधी अवधारणाओं को विवेचित किया गया है। इसी में आधुनिक कविता के पूर्व की कविता में मिलने वाले सौंदर्यबोध के प्रमुख बिंदुओं का विवेचन करने के पश्चात् भारतेंदु युग से लेकर समकालीन कविता तक की सोच की विविध अंतर्धाराओं तथा विविध कालखंडों की कविता में प्राप्त होने वाले सौंदर्यबोध के प्रमुख बिंदुओं का विवेचन किया गया है।

द्वितीय खंड में दीक्षित जी ने गुप्त प्रसाद, निराला, पंत, अज्ञेय, मुक्तिबोध इत्यादि कवियों के सौंदर्यबोध को पृथक्-पृथक् विश्लेषित करते हुए स्पष्ट किया है। यह उनकी महत्वपूर्ण आलोचना-स्थापना

है। 'मैथिलीशरण गुप्त का सौंदर्य-बोध : पारंपरिक, सांस्कृतिक प्रतिरूपों में नवीनता की खोज', 'प्रसाद का सौंदर्य बोध : लघुता की उपेक्षा करने वाली दिव्यता', 'निराला का सौंदर्यबोध : परंपरा और प्रगतिशील मूल्यों का द्वंद्व', 'पंत का सौंदर्यबोध : नूतन सौंदर्य की खोज में व्याकुल चेतना', 'अज्ञेय का सौंदर्यबोध : व्यष्टि के राग में डूबा रचना की स्वायत्तता का संघर्ष', 'केदारनाथ अग्रवाल का काव्य : सौंदर्य चिंतन के विविध धरातल', 'मुक्तिबोध का सौंदर्यबोध : मानव राग के विविध परिपार्श्व', 'नागार्जुन की कविताएँ : राजनीतिक कार्य में लगे सांस्कृतिक स्वर', 'शमशेर का काव्यपार्श्व : बिंबों के माध्यम से सुंदरता को संकेतित करने की चेष्टा', 'त्रिलोचन का काव्य : गहन यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति', 'सर्वेश्वर के काव्य में अनुभूत सत्य के विविध आयाम', 'केदारनाथ सिंह का काव्य : लहलुहान सुंदर को विनाश के जबड़ों से खींचने का प्रयास', 'कुरूपता के विरुद्ध तीव्र क्षोभ एवं आक्रोश में डूबी धूमिल की कविताएँ', 'कुँवरनारायण का सौंदर्यबोध : निरुद्देश्य भटकाव में पूर्णता की खोज' शीर्षकों के अंतर्गत अपनी चिंतन धारा के विविध आयाम को विद्वान लेखक डॉ० दीक्षित जी ने प्रस्तुत किया है।

डॉ० छोटेलाल दीक्षित ने आधुनिक कविता में फंतासी की भूमिका को स्पष्ट करने के लिए वर्ष 1993 ई० में 'आधुनिक काव्य में फंतासी की प्रासंगिकता' शीर्षक से पुस्तक लिखी, जो उसी साल विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित हुई। फंतासी को केंद्र में रखते हुए किसी साहित्यिक विधा का विश्लेषण, युग विशेष की कविता का विवेचन इस पुस्तक के प्रणयन से पूर्व हिंदी समीक्षा या शोध के क्षेत्र में नहीं हो सका था। हिंदी में ऐसी कोई स्वतंत्र रचना नहीं है जिसमें फंतासी की रचना के मनोवैज्ञानिक आधार को स्पष्ट करते हुए उनकी उपयोगिता का विश्लेषण किया गया हो। इस पुस्तक द्वारा डॉ० छोटेलाल दीक्षित ने समीक्षा के क्षेत्र को समृद्ध किया है और उसे नूतन आयाम प्रदान किया है। उपर्युक्त कृतियाँ जहाँ एक ओर पूर्णतः मौलिक, गहन अध्ययन-चिंतन की परिणाम तथा सरस एवं प्रांजल अभिव्यक्ति के लिए जानी जाती हैं, वहीं पर पठनीयता एवं संप्रेषणीयता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

फंतासी पर शोध करने की प्रेरणा जगाती हुई यह पुस्तक डॉ० दीक्षित की अध्ययन-अनुसंधान की सार्थक एवं सफल परिणति है। 'फंतासी की सर्जना और मानव मन की विविध भूमियाँ', 'कल्पना और फंतासी : श्रेष्ठता की होड़', 'आधुनिक साहित्य में यथार्थ और फंतासी', 'फंतासी : प्रयोग का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य', 'मुक्तिबोध की कविताएँ', 'फंतासी में झाँकती जटिल संवेदनाएँ', 'समकालीन कविता और फंतासी', 'फंतासी की प्रासंगिकता का प्रश्न और आज की कविता' शीर्षक में विभक्त करके लेखक द्वारा इसकी विवेचना की गई है।

वर्ष 1982 में डॉ० दीक्षित की 'जायसी का शिल्प विधान' पुस्तक अतुल प्रकाशन कानपुर से और वर्ष 1983 में 'भाषा भारती' पुस्तक गौतम प्रकाशन मंदिर गोंडा, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित हुई।

यह साहित्यिक यात्रा लेखकीय जीवन के उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिक यात्रा में परिवर्तित हुई, पर साहित्य का गहरा असर जीवनपर्यंत बना रहा। विद्वान लेखक डॉ० छोटेलाल दीक्षित धीरे-धीरे महर्षि अरविंद दर्शन से प्रभावित होकर आध्यात्मिक साधना में दत्तचित्त होते गए। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप उन्होंने लोकेषणा का त्याग करते हुए प्रतिष्ठित नाम डॉ० छोटेलाल दीक्षित को त्यागकर हर्षवद नाम से आध्यात्मिक लेखन किया। यह आध्यात्मिक नामकरण स्वयं श्री माँ द्वारा पत्र भेजकर किया गया था।

उनकी छह आध्यात्मिक पुस्तकें वर्ष 2010 से 2019 तक एकेडमी प्रेस दारागंज, इलाहाबाद

से प्रकाशित हुई, जो इस प्रकार हैं—सकारात्मक सोच की दिशाएँ (2010), दीप जलते रहने दो (2011), हम अकेले नहीं हैं (2012), चेतना के स्तर (2013), भक्तियोग की श्रेष्ठता (2014), महात्मा बुद्ध के विचार (2014)। इसी अनुक्रम में साहित्यिक अंतर्वस्तु की चार पुस्तकें प्रकाशित हुई—बांग्ला भाषा के कवि और उनका काव्य (2016), अतीत के स्वर (2018), आधुनिक हिंदी कहानी और फंतासी (2018) और आपातकाल के कवियों की कविताएँ (2019)।

वर्ष 2020 में रचनाकार प्रकाशन संस्थान, दिल्ली से 'श्री माँ के विचार' पुस्तक प्रकाशित हुई। विवेच्य या वर्ण्य विषय की दृष्टि से देखें तो पुस्तकों की यह सूची बताती है कि आध्यात्मिक पुस्तकों के अलावा चार साहित्यिक पुस्तकें इस अवधि में भी उनके द्वारा लिखी गई हैं। साहित्य, अध्यात्म और लोकमंगल की भावना उनके साथ बद्धमूल रही है।

इसके अतिरिक्त डॉ० दीक्षित ने कई पाठ्यक्रम पुस्तकों का संपादन, भूमिका लेखन, तथा शताधिक अनुसंधानात्मक लेखों की सर्जना की है। डॉ० दीक्षित द्वारा गुरुवर डॉ० शैलेंद्रनाथ मिश्र प्राध्यापक, हिंदी विभाग के साथ मिलकर तीन महत्वपूर्ण पुस्तकों का संपादन किया गया है, जो इस प्रकार है—'बालकृष्ण शर्मा नवीन : सृजन के विविध आयाम', 'महात्मा गांधी और हिंदी साहित्य' और 'धर्मनिरपेक्षता के विविध परिप्रेक्ष्य'।

डॉ० दीक्षित की रचनाशीलता काव्य-सृजन के क्षेत्र में भी प्रकट हुई है। उनकी काव्य-रचनाओं में मुक्तिबोध, अज्ञेय तथा अन्य कई समकालीन रचनाकारों की स्पष्ट झलक देखी जा सकती है। यह उल्लेखनीय है कि प्राचार्य पद-भार को पूरी निष्ठा और ईमानदारी से निर्वहन करते हुए उन्होंने विपुल साहित्य-सर्जना की तथा अध्ययन की निरंतरता बनाए रखा। अध्यवसायी प्रवृत्ति उनके जीवन का अंग थी। वह एक कुशल प्राध्यापक के रूप में प्राध्यापन करते रहे तथा साथ ही अनुसंधान के क्षेत्र में निरंतर कार्यरत रहे। उनके निर्देशन में तनुजा चौधरी, नीरजा शुक्ला, ममता किरण राव, परमजीत कौर, आशा गुप्ता, राजकुमार तिवारी और स्नेहलता शुक्ला—इन सात शोधार्थियों ने शोधकार्य करके पी-एच०डी० उपाधि प्राप्त की।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि डॉ० छोटेलाल दीक्षित ने साहित्य, अध्यात्म और लोकजीवन के विविध पक्षों पर अपनी लेखनी चलाकर सरस्वती के श्रीभंडार को भरने का कार्य किया है और वे उसमें सफल रहे हैं। आज भौतिक रूप से हमारे बीच में डॉ० छोटेलाल दीक्षित नहीं हैं, परंतु अपने लेखन और सत्कार्यों के कारण उनकी यशकाया विद्यमान रहेगी। उनकी पुस्तकें उनके अध्ययन, चिंतन-मनन का जीवंत स्मारक हैं, जो साहित्य और अध्यात्म पथ के पथिक को राह दिखाती रहेंगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

संदर्भ

1. तुलसी का सौंदर्यबोध, पं० कैलाशनाथ भार्गव, नंदकिशोर एंड संस, चौक, वाराणसी, पृ० 102
2. कामायनी, लज्जा सर्ग
3. सूर की शृंगार भावना, डॉ० रमाशंकर तिवारी, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ० 30
4. गीता, 10/41
5. आधुनिक काव्य में सौंदर्यबोध के विविध आयाम, प्राक्कथन से

मो० 9936733601

Email : Jaishankartiwari1974@gmail.com

प्रेमचंद की कहानियों में दलित चेतना

डॉ० श्रुति शर्मा

सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

हिंदी कथासाहित्य में प्रेमचंद एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक युग का नाम है। आज वर्तमान हिंदी साहित्य में दलित लेखन के प्रसार और उसके निरंतर विकास से इंकार नहीं किया जा सकता है। दलित साहित्य के इस जबरदस्त उभार ने भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों और आलोचकों में एक हलचल पैदा कर बरबस उनका ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। यह भी सत्य है कि स्वयं दलित साहित्य आंदोलन और दलित रचनाकारों को वैचारिक स्तर पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

‘धनपतराय’ जो उर्दू में ‘नवाबराय’ के नाम से लिखा करते थे, 1910 से ‘प्रेमचंद’ के नये अभिधान को लेकर साहित्य-रचना करने लगे। ‘प्रेमचंद’ के नाम से उनकी पहली कहानी ‘बड़े घर की बेटी’ दिसंबर 1910 में जमाना में छपी। ‘नवाबराय’ के नाम से उनकी पहली कहानी ‘इश्क-ए दुनियां व हुब्ब-ए वतन’ जमाना कानपुर, अप्रैल 1903 में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद साहित्य और जीवन को घनिष्ठ रूप से संबद्ध मानते हैं। वे लिखते हैं—‘साहित्य की बहुत सी परिभाषाएँ की गयी हैं; पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा ‘जीवन की आलोचना’ है। चाहे यह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।’¹

प्रेमचंद के अनुसार जीवन ही साहित्य का विषय और उसकी प्रेरणा है। अतः साहित्यकार जीवन और उसकी समस्याओं से विमुख नहीं हो सकता। दलित समस्या हमारे समाज की सबसे विकट समस्या है। आज भी दलित इससे पूरी तरह उबर नहीं पाए हैं। आधुनिक दलित साहित्य की शुरुआत मराठी भाषा में रचित साहित्य से माना जाता है, जिसके प्रेरणास्रोत संतकवि नामदेव, चोखामिला, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास, तुकाराम, एकनाथ आदि माने जाते हैं। आधुनिक दलित साहित्य ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले और डॉ० भीमराव अंबेडकर द्वारा चलाए गए सशक्त सामाजिक आंदोलन के परिणामस्वरूप उभरा है। ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले ने सबसे पहले दलित स्त्रियों की शिक्षा का आंदोलन चलाया। उन्होंने दलितों के उत्थान और सामाजिक सम्मान के लिए स्वयं पर अनेकानेक अत्याचार सहकर भी जागृति की एक लहर पैदा की। डॉ० भीमराव अंबेडकर ने उनके द्वारा तैयार जमीन पर ही व्यापक दलित चेतना के बीज बोये और परिणामस्वरूप, उनके जीवनकाल में ही सशक्त सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक दलित आंदोलन अस्तित्व में आया। इस आंदोलन की जबरदस्त अभिव्यक्ति के रूप में भारतीय साहित्य के दृश्यपटल पर दलित साहित्य का उदय हुआ, जिसका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी शीघ्रतिशीघ्र पड़ा।

प्रेमचंद एक ऐसे प्रगतिशील लेखक थे, जिन्होंने नायक के परंपरागत मानदंडों को खंडित कर एक आम आदमी को नायक का दर्जा दिया है। उन्होंने प्रसंगानुसार दलितों को अपनी कहानियों में स्थान दिया। उनके अधिकांश पात्र दलितवर्ग से संबंधित हैं। दलित शब्द का शब्दिक अर्थ है—दलन किया हुआ। दलित उसे कहते हैं जिसका शोषण और उत्पीड़न हुआ है। रामचंद्र वर्मा ने अपने शब्दकोश में दलित का अर्थ लिखा है, मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानियाँ, सद्गति, कफन, ठाकुर का कुआँ आदि हैं।

प्रेमचंद ऐसे भाग्यशाली लेखक हैं जिनकी चर्चा मार्क्सवाद के समय में उतनी ही हुई और आज दलित उभार के जमाने में भी उतनी ही हो रही है। जब-जब समाज में क्रांति होती है तब साहित्य में भी विद्रोह के स्वर बुलंद होने लगते हैं और पुराने मूल्य तथा पुराने पैटर्न टूटने लगते हैं, और नये मूल्यों का निर्माण होने लगता है। मार्क्सवाद, प्रगतिवाद के बाद समकालीन भारतीय साहित्य में दलितवाद का स्वर मुखर हुआ है, जिसने साहित्य और संस्कृति की दशा-दिशा में परिवर्तनकारी मोड़ ला दिया है।

दलित साहित्यकारों की मान्यता है कि साहित्य का काम कला का सृजन करना ही नहीं है अपितु समाज में घटित होती घटनाओं भी वर्णन करना है। प्रेमचंद का साहित्य कोरी किस्सागोई का साहित्य नहीं है, वह एक आंदोलन अपने साथ लेकर चलता है और दलित-चेतना का स्वर मुखर करता है। प्रगतिशील साहित्यकार होने के कारण आज भी उनका साहित्य प्रासंगिक है।

जहाँ तक दलित-विमर्श की बात है, 21वीं सदी के प्रारंभ में ही विमर्श के दौर में दलित विमर्श साहित्यकारों या प्रिय विषय बन गया। उन्हें शायद यह पता नहीं कि दलित-विमर्श की नींव प्रेमचंद पहले ही डाल चुके थे और साथ ही कथासाहित्य में नायकों का दर्जा एक आम आदमी को प्रदान कर चुके थे। प्रेमचंद जी की प्रत्येक कहानी मानव-मन के अनेक दृश्यों, चेतना के अनेक छोरों सामाजिक कुरीतियों तथा आर्थिक उत्पीड़न के विविध आयामों को अपनी संपूर्ण कलात्मकता के साथ अनावृत्त करती हैं। कफन, नमक का दारोगा, शतरंज के खिलाड़ी, दुनिया का सबसे अनमोल रतन आदि सैकड़ों रचनाएँ ऐसी हैं जो विचार और अनुभूति दोनों स्तरों पर पाठकों को आज भी आंदोलित करती हैं। वे एक कालजयी रचनाकार की मानवीय गरिमा के पक्ष में दी गई उद्घोषणाएँ हैं। समाज के दलित वर्गों के आर्थिक और सामाजिक यंत्रणा के शिकार मनुष्यों के अधिकारों के लिए जूझती मुंशी प्रेमचंद जी की कहानियाँ हमारे साहित्य की सबलतम निधि हैं। वर्गसंघर्ष से संबंधित 'ठाकुर का कुआँ' प्रेमचंद जी की प्रथम दलित कहानी है। समकालीन युग में 'दलित विमर्श' साहित्य के क्षेत्र में एक बहुचर्चित मुद्दा रहा है, इसलिए यहाँ पर प्रेमचंद जी की कहानियों में दलित-चेतना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रेमचंद छुआछूत, जात-पात, आडंबर, कर्मकांड आदि का खूब विरोध करते रहे। उनकी कहानियाँ दलित जीवन की त्रासदी को बहुत गहराई से अभिव्यक्त करती हैं और साथ ही उन्होंने अन्याय करने वाले ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोगों को भी आड़े हाथों लिया है। 'सद्गति' में प्रेमचंद ने जहाँ चर्मकारों पर हो रहे शोषण और अत्याचार का मार्मिक चित्रण किया है, वहीं 'पूस की रात' 'कफन' में दलित प्रतिरोध को साफ-साफ महसूस किया जा सकता है। यद्यपि दलित साहित्यकार प्रेमचंद को दलित साहित्य के दायरे में लाना पसंद नहीं करते। उनका मानना है कि प्रेमचंद ने कभी दलित जीवन की पीड़ाओं को नहीं झेला। दलितों के बारे में प्रेमचंद का सत्य

चिड़िया की आँख से देखा हुआ सत्य था।

प्रेमचंद जी की कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में निहित हैं, जिसमें से कुछ कहानियों में दलित पात्रों की दयनीय स्थिति का वर्णन पाया जाता है। वर्गसंघर्ष से संबंधित 'ठाकुर का कुआँ' प्रेमचंद जी की प्रथम दलित कहानी है। इसमें जोखू एवं उसकी पत्नी गंगी निम्न जाति के पति-पत्नी हैं। बीमार जोखू के लिए उसकी पत्नी गंगी सड़ा-गंदा पानी भर आती है, किंतु जोखू तीव्र बदबू के कारण पानी नहीं पी सकता। प्यास से उसका गला सूखा जा रहा है, लेकिन गंगी दलित और अस्पृश्य होने के कारण ठाकुर और साहू के कुओं से पानी नहीं भर सकती। जोखू की तड़प गंगी से देखी नहीं गई और वह ठाकुर के कुएँ से पानी लाने का निर्णय करती है, परंतु जोखू अपनी पीड़ा और लाचारी को व्यक्त करते हुए कहता है—'हाथ-पाँव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्रह्म-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है! हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएँ से पानी भरने देंगे?'¹² इसी तरह अनेक स्थानों पर दलितों की मजबूरियों और शोषण पर से पर्दा उठाने का प्रयास प्रेमचंद ने किया है।

अपनी कहानियों में प्रेमचंद जी ने दलित-जाति को कड़ी मेहनत के द्वारा ऊपर उठने का संदेश दिया है, नई आशा जगाने का प्रयत्न किया है। वर्ण-व्यवस्था जन्म पर नहीं, कर्म पर आधारित होती है। हम अच्छे कर्मों से समाज में पद-प्रतिष्ठा पा सकते हैं और आज के युग में यही सबसे बड़ी आवश्यकता है। प्रेमचंद जी ने 'आगा-पीछा' कहानी में दलित समस्या, शोषण या अस्पृश्यता को न उठाते हुए खुद चर्मकार युवक भगताराम को समाज की वेश्या उद्धार के लिए प्रयत्नशील बताया है। जिस प्रकार हमारे लिए छोटी जाति वाले अस्पृश्य होते हैं, ठीक उसी प्रकार दलित भी अपनी जाति या बिरादरी की दृष्टि से भिन्न लोगों को तुच्छ और निम्न समझते हैं।

प्रेमचंद जी द्वारा रचित सद्गति एक बहुत ही दर्दनाक कहानी है जिसमें उन्होंने समाज की क्रूरता को प्रदर्शित किया है। कहानी के आरंभ में प्रेमचंद जी हमारा परिचय दुखी नाम के एक चर्मकार से कराते हैं। दुखी अपने कामों में व्यस्त है और उसकी पत्नी झुरिया भी घर का काम काज निपटा रही है। उनकी बातचीत से यह पता लगता है कि दुखी अपनी बेटी का विवाह तय कर चुका है और वह पंडित जी को बुलाने से सकुचा रही है, परंतु पंडित जी का आना बहुत महत्वपूर्ण है ताकि वे विवाह के लिए साइत निकाल सकें। संकोच उन्हें इस बात का है कि वे नीची जात के लोग हैं और पंडित जी ठहरे बड़े पवित्र ब्राह्मण। वे उनका छुआ कुछ भी छू नहीं सकते, यहाँ तक कि आसन भी उन्होंने पत्तलों का बनाना ठीक समझा। दुखी पंडित जी को निमंत्रण देने खाली पेट निकल तो जाता है, परंतु उसे क्या पता था कि साइत के लिए उसे अपनी जान ही गँवानी पड़ेगी। पंडित जी उससे इतना कठोर परिश्रम कराते हैं कि कड़ी धूप में बिना खाने और पानी के वह दम तोड़ देता है और बिटिया की शादी करवाए बिना ही परलोक सिंघार जाता है। इसलिए इस कहानी को सद्गति नाम दिया गया है, क्योंकि पूरे दिन के पश्चात् दुखी को अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों से मुक्ति मिल जाती है। परंतु हम सोच भी नहीं सकते कि उसके परिवार पर एक दिन का अनावश्यक श्रम क्या कहर ढा गया है।

प्रेमचंद की कहानी 'घासवाली' एक दलित स्त्री के साहस एवं निर्भीकता को स्पष्ट करती है। एक स्त्री के स्वाभिमान एवं सम्मान की कहानी है। प्रेमचंद लिखते हैं मुलिया एक निर्भीक एवं साहसी युवती है। ठाकुर युवक चैनसिंह द्वारा किए गए दुर्व्यवहार को चुपचाप सहने की अपेक्षा

उसका मुकाबला करती है। मुलिया दलित है, किंतु गिरी हुई नहीं है। वह चैनसिंह की अवहेलना करते हुए कहती है कि 'मेरा रूप-रंग तुम्हें भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुंदर औरतें नहीं घूमा करतीं? मैं उनके तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती। तुम उसमें से किसी से क्यों नहीं दया माँगते! क्या उनके पास दया नहीं है? मगर वहाँ तुम न जाओगे; क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया माँगते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूँ, नीच जात हूँ और नीच जात की औरत जरा-सी घुड़की-धमकी व जरा-से लालच से तुम्हारी मुट्टी में आ जाएगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे?'³

यहाँ प्रेमचंद की पात्र मुलिया वर्गगत चेतना के लिए संघर्षरत है। मुलिया के जरिए प्रेमचंद ने वर्गभेद एवं सभ्यता के आवरण में छिपी विलासी प्रवृत्ति पर प्रहार किये हैं। प्रेमचंद मानते हैं कि ऊँच-नीच सभी का आत्मसम्मान एक होता है और उसकी रक्षा करना हर मनुष्य का धर्म है।

प्रेमचंद ने दलित चरित्रों को सकारात्मक और मानवीय दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया है। 'मंदिर' कहानी की सुखिया में मौजूद ममता किसी महान स्त्री से कम नहीं है।⁴ सुखिया का वात्सल्य-प्रेम इतना उदात्त है कि वह इसके लिए कुछ भी कर सकती है। अपनी जमा-पूँजी बेच सकती है, पुजारी की मिन्नतें कर सकती है, भयानक रात में प्रतीक्षा कर सकती है, सामाजिक मान्यताओं को तोड़ सकती है और अंततः अपनी जान भी दे देती है।

प्रेमचंद जी द्वारा रचित 'कफन' एक बहुत हृदयविदारक कहानी है। कहानी के प्रारंभ में हम घीसू और उसके पुत्र माधव से परिचित होते हैं। माधव की पत्नी बुधिया गर्भ से थी और प्रसव-वेदना के दर्द से झुलस रही थी। उसकी हालत कुछ ठीक नहीं लग रही थी और उसकी चीखें गूँज रही थीं। उसकी दशा देखकर दोनों पिता और पुत्र को उसके बचने की ज्यादा उम्मीद नहीं थी। इसके बावजूद वे दोनों उसके सिरहाने शोक मनाते हुए नहीं बैठे थे। घर के दोनों मर्द बहुत ही आलसी और अल्हड़ किसम के थे। घीसू ने अपना पूरा जीवन बेरोजगारी और दीनता में गुजार दिया और माधव भी उसी के नक्शे-कदम पर चल रहा था। ऐसा नहीं था कि गाँव में मजदूरी की कमी थी परंतु कोई किसान इन दोनों को इसलिए काम न देना चाहता था, क्योंकि वे काम कम करते और आराम ज्यादा। बाकी समय बीड़ी और चिलम में गुजर जाता। समस्त गाँव में वे बहुत बदनाम थे और चोरी, आलस आदि के चक्कर में बहुत मार खा चुके थे। एक बुधिया ही थी जो उनके घर में मेहनत की रोटी कमाकर उनका पेट भरती थी। आज उसी की मृत्यु शय्या पर दोनों को कंटाल आ रहा था, दया नहीं। दवा-दारू का बंदोबस्त करने की जगह दोनों पेटपूजा कर रहे थे। जब घीसू ने माधव को बुधिया को देखकर आने को कहा, तो माधव ने जाने से मना कर दिया, क्योंकि उसे शंका थी कि घीसू उसके हिस्से के भी आलू चट कर जाएगा। दोनों बुधिया को अपनी हालत में छोड़कर सो जाते हैं और सुबह उठकर बुधिया का मृत शरीर देखते हैं। बुधिया अपने गर्भ में बच्चा लिए ही चल बसी। उनके रोने-पीटने की आवाज सुनकर सारे पड़ोसी इकट्ठा हो गए और सांत्वना देने लगे। पिता और पुत्र भी अर्थी की व्यवस्था में जुट गए। जमींदारों और महाजनों के घर जा जाकर वे कुल पाँच रुपये इकट्ठा तो कर लेते हैं, किंतु कफन खरीदने की जगह वे सारे पैसे मधुशाला और पकवानों में उड़ा देते हैं। व्यंग्य की बात तो यह है कि जिसको जीते-जी दवा-दारू का सुख नहीं मिला, उसके कफन के लिए 5 रुपये इकट्ठा हो गए। दरिद्रता और लाचारी उन्हें इतना अमानवीय बना देती है कि मरने के बाद भी

वे बुधिया को सम्मान न दे सके।

मुंशी प्रेमचंद घीसू और माधव की कथित कामचोरी को, उन लोगों की अपेक्षा जो दिन-रात मेहनत करने के बाद भी घीसू-माधव जैसी हालत में रहते हैं, ज्यादा बेहतर मानते हैं। उन्होंने लिखा, 'जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, किसानों के मुकाबले में ये वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे कहीं ज्यादा संपन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बाद न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था और किसानों के विचारशून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मंडली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मंडली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तरकीब तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेवजा फायदा तो नहीं उठाते।'⁵

इस कहानी में हम कुछ ऐसे पात्रों से मिलते हैं जो सही और गलत के दायरे में नहीं आते। ये कहना बहुत मुश्किल है कि वे कहानी के नायक हैं या खलनायक। गरीबी के मारे व कामकाज करने का सारा प्रलोभन ही खो देते हैं। फटे-पुराने कपड़े और चुराए हुए खाने से ही वे संतुष्ट हैं। उन्हें एक बेहतर जीवन की कोई मनोकामना ही नहीं है। इससे एक बहुत महत्वपूर्ण सवाल उठता है, क्या दरिद्र व्यक्ति को आशा की कोई किरण ही नहीं दिखाई देती? वे जिंदगी से इतना पृथक हैं कि घर में संतान होने का कोई बंदोबस्त ही नहीं था। माधव अपनी पत्नी के प्रति इतना तटस्थ है कि ऐसा नहीं लगता कि उसे बुधिया से कोई लगाव था। प्रेमचंद ने इस दलित परिवार को एक बहुत अटपटा स्वरूप दिया है। एक तरफ हमें क्रोध आता है कि पिता और पुत्र इतने आलसी हैं, तो दूसरी ओर मेहनती किसानों का फायदा उठाया जाता है जिसकी वजह से उन्हें मेहनत का फल नहीं मिलता।

निष्कर्षतः प्रेमचंद जी द्वारा लिखी कहानियाँ भले ही दलितवर्ग की कहानियों की श्रेणी में न आएँ परंतु कहीं न कहीं दलित-संवेदना की कहानियाँ जरूर कहलाएँगी। प्रेमचंद जी ग्रामीण परिवेश से संबंध रखते थे, बहुत ही सामान्य परिवार से थे, इसी से उन्होंने दलित एवं गरीब लोगों की दशा एवं शोषण को बहुत निकट से देखा है। यही कारण है कि उनकी कहानियों में दलित-चेतना की झलक मिलती है।

संदर्भ

1. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1954, पृ० 2
2. प्रेमचंद, मानसरोवर (भाग-1), ठाकुर का कुआँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति 2012, पृ० 113
3. प्रेमचंद, मानसरोवर (भाग-1), घासवाली, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति 2012, पृ० 250
4. प्रेमचंद, प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ, खंड-2, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 1
5. प्रेमचंद, प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ, खंड-2, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० 800

मो० 9660726277
drshrutisharma68@gmail.com

भारतीय जीवनदर्शन और संस्कृति में श्रीमद्भगवद्गीता का योगदान

डॉ० वंदना यादव

सहायक आचार्य, संस्कृत

राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा

प्रस्थानत्रयी में सम्मिलित श्रीमद्भगवद्गीता जीवन की दिशा का निर्धारण करने वाला ग्रंथ है जिसका लक्ष्य मानव जीवन को सोद्देश्य बना देता है। भारतीय संस्कृति तथा भारतीय वाङ्मय में गीता को भारतीय मनीषा और चिंतन का सार स्वीकार किया गया है। महर्षि वेदव्यास रचित महाभारत के भीष्म पर्व में 25 से 42 तक जो 18 अध्याय हैं जिनमें 700 पद्य हैं वे श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध हैं। गीता के 18 अध्यायों (अर्जुन विषाद योग, सांख्य योग, कर्मयोग, ज्ञानकर्म सन्यास योग, कर्म संन्यास योग, आत्मसंयम योग, ज्ञान-विज्ञान योग, अक्षर ब्रह्म योग, राजविद्या-राज गुह्ययोग, विभूति योग, विश्वरूप दर्शन योग, भक्ति योग, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग, गुणत्रय विभाग योग, पुरुषोत्तम योग, देवासुर संपद् विभाग योग, श्रद्धात्रय विभाग योग, मोक्ष संन्यास योग) के विवेचन से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक है एवं इसके उपदेश इतने व्यावहारिक हैं कि सभी वर्गों के लोगों के जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में वे उनका मार्गदर्शन करते हैं। वस्तुतः मानव जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान श्रीमद्भगवद्गीता में है। यह उपनिषदों का सार भूत ग्रंथ है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महतः।

गीता ज्ञानामृत की धारा प्रत्येक पिपासु अर्जुन के लिए है। भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति को इसमें व्यावहारिक स्वरूप से निरूपण किया गया है। गीता का दर्शन इंद्रियों, मन और बुद्धि को नियंत्रण में रखकर उन्हें अहंकार रहित करके सशक्त बनाने की विधि की ओर संकेत करता है। जीवन को संस्कारित करने के लिए कौन से मार्ग पर अग्रसर हुआ जाए इस हेतु वास्तविक मार्ग का चयन करने में मार्गदर्शन प्रदान करता है। मनुष्य के मन में चल रहे अंतर्द्वंद्व के निराकरण में यह ग्रंथ अत्यंत सहायक है। अर्जुन के मन में चल रहे अंतर्द्वंद्व जिसमें एक तरफ धर्म, कर्तव्यनिष्ठा है दूसरी तरफ अधर्म, मोह माया का पाश। धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य का संघर्ष मानव मन को निर्मल बनाता है। ऐसे में कर्तव्यबोध की सतत् सचेष्टता और उसके अनुरूप आचरण अभीष्ट गंतव्य तक पहुँचा सकता है। महाभारत युद्ध के समय अर्जुन के मन में मोहवश जो अंतर्द्वंद्व उत्पन्न हुआ उसका हल श्रीकृष्ण ने उसके कर्तव्यपथ को वर्णित कर उसका समाधान किया एवं अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक मानव समाज में हो रहे संघर्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके ऐसे तथ्यों को प्रकट किया जो हर देश एवं काल के लिए उपयोगी है।

अथ चेतत्वमियं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।

ततः स्वधर्म कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।²

अर्जुन कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के प्रति विमूढ़ है एवं जब वह निर्णय नहीं कर पा रहा है तब ख्रुष्ण उसे तत्त्वज्ञान से संब) उपदेश देते हुए उसके विवेक का उद्घाटन करते हैं। जिससे वह सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, पाप-पुण्य, अपने-पराए की वास्तविकता को समझ सके अतः श्रीकृष्ण उसे आत्मा के स्वरूप, शरीर की नश्वरता का उपदेश देते हैं एवं धर्मयुद्ध हेतु प्रेरित करते हैं। श्रीकृष्ण के विस्तृत उपदेश का परिणाम अर्जुन के मोह का नाश है। अर्जुन स्वयं को द्वितीय अध्याय में 'धर्म समूढ़ चेताः' कहता है इसी मोहाविष्टता के कारण हम अविवेकी हो जाते हैं। सगे संबंधियों के मोहजाल के कारण ही अर्जुन युद्ध से विरत हो रहा था जिसे अनासक्ति का उपदेश देकर श्रीकृष्ण ने दूर किया।

भारतीय जीवन दर्शन तथा संस्कृति में कर्मवाद का सिद्धांत आधारभूत सिद्धांत है जिसके अंतर्गत कर्म क्रिया रूप एवं सिद्धांत रूप समाहित है। गीता में निष्काम कर्म करने की प्रेरणा दी गई है एवं प्रत्येक व्यक्ति को कर्म संपादन का आग्रह करती है किंतु कर्मफल में आसक्ति का भाव न रखने की ओर प्रवृत्त करती है। निष्काम कर्मयोग में कामना रहित कर्मों को महत्त्व दिया गया है। फलासक्ति को त्यागकर अपने कर्त्तव्य पालन करने का सिद्धांत गीता में 'निष्काम कर्म योग' कहा गया है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।³

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग इन तीनों योग मार्गों का वर्णन किया गया है। निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की शक्ति कर्मयोग एवं अपने स्वरूप को जानने की शक्ति ज्ञानयोग, मानने की शक्ति भक्तियोग के अंतर्गत आती है। इन तीनों योगों में कर्मयोग अधिक महत्त्वपूर्ण है जहाँ निःस्वार्थ एवं अनासक्ति का भाव निहित है। मनुष्य को परम सिद्धि का लाभ स्वकर्मानुष्ठान से ही संभव है ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।⁴

गीता का कर्मवाद केवल तार्किकता पर आधारित न होकर वास्तविक जीवन में सक्रिय रहकर परम श्रेय तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करता है। निष्काम भाव के साथ ही नियत कर्म को भी यहाँ महत्त्व दिया गया है—

नियतं कुरु कर्मत्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।⁵

शास्त्रविहित कर्त्तव्य कर्म करना श्रेयस्कर है क्योंकि करने न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है क्योंकि कर्म नहीं करने से शरीर निर्वाह सिद्ध नहीं होता है। गीता कर्म-विषयक मौलिक सत्य का प्रतिपादक शास्त्र है इसलिए इसका भारतीय जीवन दर्शन एवं संस्कृति में सर्वकालिक महत्त्व सिद्ध ही है। वास्तव में ग्रंथ कर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र या कर्त्तव्या कर्त्तव्यशास्त्र है। जिसमें महाभारतीय युद्धक्षेत्र में अवस्थित अर्जुन एवं श्रीकृष्ण संवाद के माध्यम से सांसारिक संघर्षमय जीवन के क्षेत्र में उद्योगशील प्रत्येक व्यक्ति के लिए श्रीकृष्ण द्वारा कर्त्तव्य पथ प्रदर्शित किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता में जिस कर्म का विचार किया गया है उसमें जीवन के विविध क्षेत्रों में

पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, आदर्श नागरिक इत्यादि के सांसारिक बंधनों से प्रेरित होकर मनुष्य जितने भी काम करता है वह सभी सम्मिलित हैं। कर्म का महत्त्व उस भावना पर निर्भर है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य उसे करता है। मनुष्य के श्रेष्ठ कार्य या चेष्टा द्वारा ही संस्कृति का निर्माण होता है। मनुष्य के जो आदर्श या स्थापनाएँ उसे सुसंस्कृत बनाती हैं वे ही संस्कृति के मूल तत्व हैं। इस प्रकार गीता का निष्काम कर्म मनुष्य के दोषों का संशोधन करके उसकी चित्तवृत्तियों का परिष्कार करने वाले उपायों को प्रदर्शित करता है एवं भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाता है।

गीता का दर्शन सिद्धांतमात्र न होकर मानवीय जीवन यापन पद्धति में बहुत उपयोगी है। यह निष्क्रिय एवं किंकर्तव्यविमूढ़ मनुष्य को कर्म में रत रहने की शाश्वत प्रेरणा प्रदान करनेवाले स्रोत हैं। इसमें कर्म से विमुखता को मूर्खता कहा गया है। धर्म युद्ध अर्जुन के लिए भय और पलायन का कारण बन गया था परंतु किंकर्तव्यविमूढ़ व निष्क्रिय अर्जुन को कृष्ण क्षत्रिय का कर्तव्य आततायी से पीड़ितों की रक्षा करना बताकर निरंतर कर्मरत रहने का उपदेश देते हैं। मनुष्य के अधिकार में कर्म करना ही है उस कर्म का फल क्या होगा उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता अतः फल की चिंता न करते हुए कर्मों को कुशलतापूर्वक करना ही योग है। समबुद्धियुक्त मनुष्य पाप एवं पुण्य दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है तथा कर्मबंधन से मुक्त होने का उपाय भी समत्वरूप योग ही है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।⁶

आसक्ति का त्यागकर सिद्धि एवं असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को कर्मों कर समत्व ही योग कहलाता है। समत्व बुद्धि तभी हो सकती है जब मन एवं इंद्रियों को अपने वश में कर लेता है।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।⁷

वैदिक विचारधारा का जीवन के प्रति दृष्टिकोण त्यागपूर्ण उपभोग का रहा है। उपनिषद तथा यजुर्वेद में कहा गया है तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः हम संसार का उपभोग निर्लिप्त, निस्संग एवं निष्काम भाव से करें। जीवन में सकाम एवं निष्काम भाव से रहने में बहुत भेद है। उपनिषद, वेदांत और अध्यात्मवाद के शुद्ध सत्य रूप जिसमें कर्म त्यागने के स्थान पर कर्म करने परंतु कर्म में निहित वासना को त्यागने के सिद्धांत पर गीता ने भी बल दिया। निष्काम भाव का विचार वैदिक संस्कृति की विचारधारा पर एक मौलिक तथा वैज्ञानिक विचार है और इस विचार को जितना गीता में स्पष्ट किया गया है उतना अन्यत्र नहीं। अतः सदियों से गीता ने भारतीय जनमानस को प्रभावित किया है। कृष्ण ने जीवन को यज्ञमय बनाकर निष्काम कर्म हेतु प्रेरित किया है जिससे अनासक्ति संभव है। जीवन को यज्ञ समझकर आगे बढ़ना चाहिए। यज्ञ का अभिप्राय है—त्याग (स्वार्थ की भावना का परित्याग)। 'इदन्नमम' यही भावना यज्ञ की आधारभूत भावना है इस भावना से अनुप्राणित होने पर प्रत्येक कार्य एवं जीवन यज्ञमय हो जाता है। यज्ञमय निःस्वार्थ जीवन बिताने वाले को गीता में आत्मरत, आत्मतृप्त, आत्मसंतुष्ट कहा गया है। वर्तमान में हम यज्ञ के वास्तविक अर्थ को भुलाकर संकुचित अर्थ में उसका प्रयोग करने लगे हैं। यज्ञ का मौलिक अर्थ अग्नि में आहुति डालना नहीं है अपितु यज्ञ का वास्तविक अर्थ अल्पज्ञ, स्वभावतः इंद्रिय परायण तथा स्वार्थ साधन में तत्पर मनुष्य का अपनी निम्न प्रवृत्तियों पर विजय पाने के लिए जगत की पोषक

स्वभावतः परार्थ प्रवृत्त दैवी शक्तियों के साथ अपना संपर्क स्थापित करना है एवं यह संपर्क निःस्वार्थ लोकसेवा द्वारा ही स्थापित किया जा सकता है।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथा।⁸

निस्वार्थ भाव से एक दूसरे को उन्नत करते हुए ही परम कर्म कल्याण की भी प्राप्ति होती है। वर्तमान युग में निष्काम कर्म अत्यंत प्रासंगिक है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता के लिए कर्म प्रधान है। गीता का संदेश व्यक्ति को कर्मण्य बनाता है परंतु समस्या है कि व्यक्ति का लालच कर्म की शुद्धता को दूषित कर देता है यदि प्रत्येक व्यक्ति कर्म को कर्तव्य समझकर संपादित करे तो समाज का एक सुंदर रूप सर्वसमक्ष स्थापित हो सकता है। नश्वर को शाश्वत मान लेना अयथार्थ है। गीता यथार्थ का ज्ञान करवाने में सहायक है। अर्जुन का भय कृष्ण ने यथार्थ का स्वरूप प्रदर्शित करके ही दूर किया जब अर्जुन सगे संबंधियों का वध करने में असमर्थता प्रदर्शित कर रहा था तो कृष्ण ने समझाया कि न तो कोई किसी को मारता है और ना ही किसी के द्वारा मारा जाता है, आत्मा तो अजर है, अमर है, जो एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में चली जाती है और दूसरे जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म अवश्य होता है और जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होती है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।⁹

वर्तमान समय में व्यक्ति तनावग्रस्त है, मानसिक अवसाद से पीड़ित है जिसका मुख्य कारण कर्तापन तथा अनियंत्रित इच्छाएँ एवं महत्वाकांक्षाएँ हैं इन सभी से मुक्ति का मार्ग यहाँ प्रदर्शित किया गया है। कर्तव्यविमुख अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करवाने के लिए कृष्ण ने उसकी मनोचिकित्सा की वह सार्वभौमिक है। एक कुशल चिकित्सक की भाँति अर्जुन की प्रत्येक समस्या पर गंभीरता से विचार कर उसे तत्वज्ञान कराया परिणामतः अर्जुन युद्ध हेतु प्रवृत्त हुआ। अवसाद एवं विषाद कर्म विरोधी चित्तदशाएँ हैं। अवसाद मन की परिपूर्ण हार तथा विषाद संशयग्रस्त बुद्धिमत्ता का द्वंद्व है। अर्जुन को विषाद हुआ था। विषादग्रस्त व्यक्ति सही गलत का निर्णय नहीं कर पाता। गीता का प्रथम अध्याय अर्जुन विषाद योग है यहाँ तत्त्व विशेष का मानव व्यक्तित्व के परिपूर्ण आंतरिक तल से जुड़ जाना योग है। विषादग्रस्तता के लिए उच्च मानसिक बौद्धिक तल चाहिए। विषाद अवसाद की भाँति आत्महंता न होकर उपयोगी है क्योंकि उचित अनुचित के मध्य द्वंद्व होना सत्य के मार्ग में सहायक है। कृष्ण ने विषादग्रस्त अर्जुन की समस्त शंकाओं, प्रश्नों, प्रति प्रश्नों का समाधान किया अंततः विषाद मुक्त होकर प्रसाद की स्थिति को अर्जुन प्राप्त हुआ। कृष्ण अर्जुन का संवाद गीता के 18 अध्याय के 73वें श्लोक में समाप्त होता है। कृष्ण अर्जुन से पूछते हैं कि क्या अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया 'कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय'। समस्त उपदेश से पूर्व अर्जुन ने इन्हीं प्रश्नों पर कृष्ण का परामर्श माँगा था एवं कहा था 'कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पशच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः'। ज्ञान एवं मोह प्रत्येक मनुष्य की समस्याएँ हैं। कृष्ण अर्जुन की प्रत्येक समस्याओं का निराकरण करते हैं, कर्म का कौशल समझाते हैं अंततः अर्जुन का अज्ञान एवं मोह का विषाद प्रसाद में परिवर्तित हो गया। जीवन एक संघर्ष है एवं गीता उन संघर्षों का सामना करने के लिए तैयार करती है उन संघर्षों से विमुख होना नहीं सिखाती अपितु राग-द्वेष, यश-अपयश, जय-पराजय, लाभ-हानि की परवाह न करते हुए निरंतर कर्म करने

हेतु प्रेरित करती है।

भारतीय जीवन दर्शन एवं संस्कृति को गीता के भक्तियोग की देन भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ भक्ति का अर्थ समष्टिरूप मूल तत्व के साथ सामंजस्य हेतु कर्म करना है। भक्ति आत्मसुधार का मार्ग है। परम सत्ता के लक्ष्य को प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपकरण भक्ति है। यह दार्शनिक अनुभूति की लोक उपलब्धि है। गीता की भक्ति ने दुरूह अद्वैत को सार्वजनिक बोध बनाया है तथा मनुष्य एवं परम सत्ता के मध्य दूरी को कम किया है। श्रद्धा हृदय की उत्कृष्टतम अनुभूति है एवं श्रेष्ठता के प्रति अटूट आस्था है। यह मनुष्य की श्रेष्ठता एवं निकृष्टता की पहचान भी करवाती है। ज्ञान का महत्त्व मानव जीवन में सर्वोच्च है तथा उस ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में श्रद्धा का विशेष महत्त्व है। 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'¹⁰ " श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्।"¹¹ व्यक्तिगत प्रगति एवं सामाजिक समृद्धि के लिए उत्कृष्टता के प्रति श्रद्धा का होना आवश्यक है। अंतःकरण के संस्कारों के अनुरूप ही श्रद्धा होती है एवं श्रद्धा जैसा ही मनुष्य आचरण करता है अतः गीता अंतःकरण की मलिनता को दूर कर सच्ची विवेकपूर्ण श्रद्धा रखने हेतु प्रेरित करती है। आज समाज में नैतिक मूल्यों का संकट समक्ष है। वैज्ञानिक प्रगति ने शिक्षित मनुष्य को मानवीय गुणों से यंत्रवत् सा कर दिया है अतः ऐसे में श्रद्धा सत्य या ज्ञान को धारण करने की भावना को अपना अपेक्षित है। नैतिक मूल्यों का व्यावहारिक पालन न होने के कारण रक्षक भक्षक, चिकित्सक हंतक, न्यायाधीश उत्कोचग्राही, चित्ताकर्षक गुरु वित्तापहारक बनता जा रहा है ऐसे में गीता के उपदेश हमें अधिकारों से अधिक कर्तव्यबोध कराते हैं।

गीता में आत्मस्वरूप में बुद्धि की अचल स्थिति से युक्त पुरुष को स्थित प्रज्ञ कहा गया है। ऐसे मनुष्य मन में विद्यमान सभी कामनाओं का त्याग कर आत्मा में ही संतुष्ट रहते हैं तथा दुख प्राप्त होने पर क्षोभरहित व सुख प्राप्ति अवसर पर आसक्ति रहित रहता है अतः राग-द्वेष, क्रोध इत्यादि दुर्भावनाएँ उसे प्रभावित करने में अक्षम रहती हैं। यह स्थित प्रज्ञ मनुष्य अपने समस्त इंद्रियों को विषयों से कछुए की भाँति समेट लेता है तथा इंद्रियों को वशीभूत कर लेता है। इंद्रियसंयमी एवं स्थितप्रज्ञ मनुष्य परमतत्त्व ब्रह्म का चिंतन करता है एवं संसार में रहते हुए सांसारिकता से उदासीन रहता है। अंततः वह ममता अहंकार स्पृहा से रहित होकर शांति का अनुभव करता है।

दुःखेश्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।¹²

इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में युगीन समस्याओं को कृष्ण-अर्जुन संवाद के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। यहाँ श्रेयस्कर मार्ग की ही ओर गमन हेतु निर्देशित किया गया है। आध्यात्मिक ज्ञान के साथ ही यहाँ समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को भी प्रस्तुत किया गया है। मानव जीवन में दो प्रकार के मार्ग होते हैं—श्रेयपरक एवं प्रेयपरक। जीवन में यह दोनों ही काम्य हैं परंतु श्रेयमार्ग का विशेष महत्त्व है। विवेकशील मनुष्य बुद्धि से निर्णय करके हितकर श्रेय को ही महत्त्व देता है। अर्जुन श्रेय की कामना करते हुए कृष्ण से इसके संबंध में पूछते हैं—यच्छ्रेय स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।¹³

जीवन कला के रहस्य की शिक्षा देने वाला शास्त्र गीता है इसके प्रत्येक वाक्य में जीवन के मार्गदर्शक कर्तव्यबोधक संकेत व्याप्त हैं। इसके आदर्श उन्नत हैं, भावनाएँ उदात्त हैं तथा शिक्षाएँ महान हैं। यह जीवन के लिए उदात्त आदर्श प्रस्तुत करती है अतः आज गीता के जीवन दर्शन का प्रसार आवश्यक है जिससे समग्र विश्व में व्याप्त वैमनस्य, विषमता एवं विद्रूपता का अंत

होकर सर्वत्र शांति स्थापित हो। श्रीमद्भगवद्गीता में भारतीय जीवन-दर्शन व संस्कृति की व्यावहारिक समस्याओं व वैश्विक समस्याओं का दर्शन के परिप्रेक्ष्य में विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह आचार मीमांसा का धर्म प्रदर्शन ग्रंथ है जिसमें ब्रह्म, जीव, आत्मा इत्यादि दार्शनिक विषयों की व्याख्या करके उसके व्यवहार पक्ष पर भी बल दिया गया है। इसमें अपने उत्तरदायित्व को सम्यकतया पूर्ण करने की प्रेरणा निहित है, जो मनुष्य को अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसित करती है। ज्ञानकर्म तथा भक्तियोग का मणिकांचन संयोग भी यहाँ द्रष्टव्य है। यह ग्रंथ भारतीय जीवन दर्शन एवं संस्कृति के संदर्भ में समुज्ज्वल रत्न है। इसके महत्त्व एवं उपयोग को सम्यक रूप से समझकर समाज के व्यक्तियों में व्याप्त तंद्रा, दैन्य, निराशा, आलस्य, प्रमाद, दंभ इत्यादि को दूर कर उनके स्थान पर स्फूर्ति, उत्साह, आशा, आत्मसम्मान, कर्तव्य परायणता एवं सत्यनिष्ठता की स्थापना संभव है। इसका कर्मयोग हमें निष्काम कर्म की ओर उन्मुख करता है तो भक्तियोग कर्तव्य बुद्धि की भावना में मधुरता का संचार करता है। ज्ञान योग द्वारा ही आत्मपरीक्षण कर संसार के संसार के संतप्त एवं उद्विग्न मानव समाज को शांति प्राप्त हो सकती है। भोगैश्वर्य, इंद्रियलोलुपता, एवं समयपरस्त होने के भावों को तिरस्कृत कर यह ग्रंथ कल्याणभावना, संयत जीवन, कर्तव्यपरायणता, अनासक्तता, अंतरवेक्षण या आत्मपरीक्षण, यज्ञभावना, श्रेष्ठाचरण, उदार व्यक्तित्व, समदर्शी, सकारात्मकता, कल्याणकारी, प्रगतिशीलता, आशावादिता इत्यादि विभिन्न भावों को प्रवृत्त कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

संदर्भ

1. गीता महात्म्य, श्लोक 6, गीताप्रेस गोरखपुर
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2/33
3. श्रीमद्भगवद्गीता 2/47
4. श्रीमद्भगवद्गीता 18/46
5. श्रीमद्भगवद्गीता 3/8
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2/48
8. श्रीमद्भगवद्गीता 3/11
9. श्रीमद्भगवद्गीता 2/20
10. श्रीमद्भगवद्गीता 3/38
11. श्रीमद्भगवद्गीता 3/39
12. श्रीमद्भगवद्गीता 2/56
13. श्रीमद्भगवद्गीता 2/7

मो० 9660140849
vandanajnu.yadav@gmail.com

हल्बा जनजाति की सामाजिक-आर्थिक जीवन पर विवाह-रस्म का प्रभाव

(छत्तीसगढ़ राज्य कांकेर जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ० एल०आर० सिन्हा, शोध निर्देशक

सहायक प्राध्यापक-अर्थशास्त्र

सुरेश कुमार

शोधछात्र, अर्थशास्त्र

अध्ययनशाला, शहीद महेंद्रकर्मा विश्वविद्यालय

जगदलपुर, बस्तर (छ०ग०)

किसी समाज की संपन्नता तथा भविष्य को सँवारने के लिए निरंतर समाज का विकास होना अनिवार्य तथ्य है। साथ ही विकास एवं संपन्नता को मापने के लिए उस समाज के सामाजिक-आर्थिक-व्यावसायिक स्तर को एक बेहतर सूचकांक माना जाता है। हल्बा जनजाति की आर्थिक संरचना मुख्यतः कृषि व जंगली उपज पर निर्भर है। इस जनजाति की आर्थिक स्थिति अन्य जनजातियों से अच्छी है। यह लोग कृषि व जंगली उपज संग्रह के अतिरिक्त कृषि मजदूरी, चिवड़ा कूटने का कार्य भी करते हैं। वर्तमान में कई नवयुवक-युवतियाँ शिक्षण प्राप्त कर शासकीय नौकरियाँ भी कर रहे हैं। शिक्षा ही एक ऐसा आधार है जिसे प्राप्त कर विभिन्न कौशल अपनाकर उच्च जीवन-स्तर की कल्पना की जा सकती है। आय ही एकमात्र क्षमता सृजनकारी कारक नहीं है, बल्कि श्रम की सामाजिक भूमिका उसकी क्षमता आर्थिक रूप से भविष्य के निर्धारकों को प्रभावित करता है।

छत्तीसगढ़ राज्य जनजाति बहुल प्रदेश है। यहाँ लगभग 42 प्रकार की जनजातियाँ एवं उपसमूह निवास करते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या 2,55,45,198 है। जहाँ कुछ अनुसूचित जनजातियाँ 78,22,902 जो राज्य की जनसंख्या का 30.6 प्रतिशत है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिवार की अर्थव्यवस्था में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों की सक्रिय सहभागिता है। कृषि क्षेत्र में इनका प्रतिशत अधिक है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी है। समाज की संरचना में जनजातीय स्त्रियों की भागीदारी न केवल परिवार के विकास में उत्तरदाई है बल्कि वह वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक एवं सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी अधिक है। इस प्रकार कह सकते हैं कि छत्तीसगढ़ में हल्बा जनजातियों में सभ्यता एवं संस्कृति का निरंतर विकास सकारात्मक भूमिका निभाने की सहभागिता के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में परिवार व समाज को एक सुदृढ़ दिशा प्रदान करने में सकारात्मक परिणाम दे रही है।

इस राज्य में 5 जनजाति को विशेष रूप से—अबूझमाड़िया, कमार, पहाड़ी कोरवा, बिरहोर एवं बैगा पिछड़ी जनजाति समूह के रूप में पहचान मिली है। सबसे बड़ी जनजाति गोड़ है। जनजाति में लिंगानुपात 1020 है। इसकी साक्षरता दर 50.11% है। हल्बा जनजाति सर्वाधिक साक्षर

और आर्थिक दृष्टि से संपन्न है। भारतीय सभ्यता के उद्भव के समय से ही जनजातियाँ अस्तित्व में रही हैं और वन उसके आश्रम एवं जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन थे। जनजातियों और वनों के इस संबंध को सहजीवी संबंध भी कह सकते हैं।

हल्बा जनजाति की उत्पत्ति

हल्बा जनजाति के लोगों में किवदति पाई जाती है कि हल्बा जाति की उत्पत्ति का संबंध महाभारतकाल के रुक्मिणी हरण के प्रसंग है। हरण के समय बलराम ने बल और पराक्रम से शत्रुओं को रोक दिया था। बलराम के पराक्रम से प्रभावित होकर हरण में शामिल सिपाहियों ने उनके अस्त्र हल एवं मूसल को अपना लिया, उन्हीं सिपाहियों की संतानें कालांतर में यह हल से धान की खेती करके प्राप्त धान को मूसल से 'बहाना' में कूट कर 'चिवड़ा' बनाने लगे। हल, बाहना और मूसल से संबंधित कार्य करने के कारण ही 'हल+बा =हलबा' कहलाए।

इतिहासकारों के अनुसार डोंगर क्षेत्र हल्बाओं का स्वतंत्र राज्य हुआ। इस क्षेत्र को अपनी उपराजधानी बनाकर बस्तर के राजा अपने पुत्रों को यहाँ का गवर्नर नियुक्त करने लगे। सन् 1774 ई० में जब दरियादेव बस्तर का राजा बना तो उसने डोंगर क्षेत्र की अवहेलना की और तत्कालीन गवर्नर अजमेरसिंह पर दबाव डालने लगा। इसी वर्ष यहाँ पर भीषण अकाल पड़ा और दरियादेव ने आक्रमण कर दिया। इस समय डोंगर क्षेत्र की रक्षा के लिए कांकेर की सेना तैनात थी। दरियादेव की हार हुई और विद्रोह को मजबूत देख दरियादेव जयपुर भाग गया और अँग्रेजों, मराठों एवं जयपुर के राजा के साथ अलग-अलग संधि कर 20000 सैनिकों के साथ हमला किया और जगदलपुर में विद्रोहियों को पराजित करने के बाद डोंगर पर हमला कर अजमेरसिंह को मार डाला। इसके बाद बड़े पैमाने पर हल्बा विद्रोहियों की हत्या की जिसमें से एक नरसंहार को आज भी हल्बा लोग ताड़झोकनी के रूप में याद करते हैं। इसे छत्तीसगढ़ का प्रथम आदिवासी विद्रोह माना जाता है। यह विद्रोह डोंगर क्षेत्र में हल्बा विद्रोह के नाम से 1774-77 ई० में नेतृत्वकर्ता अजमेरसिंह ने उत्तराधिकार हेतु किया। किंतु हार हुई परिणामस्वरूप दरियादेव ने 6 अप्रैल 1778 ई० में कोटपाड़ की संधि पर हस्ताक्षर किया और मराठों के अधीन हो गया। भविष्य में बस्तर क्षेत्र अँग्रेजों के अधीन हो गया।

हल्बा जनजाति छत्तीसगढ़ की एक प्रमुख जनजाति है। प्रदेश में इसकी जनसंख्या वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार 2,25,376 थी, जो राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या का 4.86 प्रतिशत थी। हल्बा जनजाति प्रदेश में मुख्यतः कांकेर, बस्तर, दंतेवाड़ा, दुर्ग, धमतरी, राजनांदगाँव जिलों में निवासरत है। बस्तर में हल्बा मुख्य रूप से कांकेर जिले के अंतर्गत चारामा, नरहरपुर, कांकेर, भानुप्रतापपुर और गाँव-नगरों में बसे हैं। इस जनजाति के कुछ स्थानीय उपविभाजन बस्तरिया, छत्तीसगढ़िया तथा मरेथिया आदि हैं। हल्बा जनजाति की कई उपशाखाएँ हैं, जैसे—नायक, भंडारा, परेत, सुरेत तथा नरेवा आदि। सुरेत हल्बा अधिक प्रगतिशील है। यहाँ हल्बा जनजाति का निवास वर्तमान में पहाड़ों व जंगलों में नहीं है बल्कि वह ग्रामीण स्थानों का अंग बन गई है।

हल्बा जनजाति की जनसंख्या वितरण

प्रदेश में इसकी जनसंख्या वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार 2,25,376 थी, जो राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या का 4.86 प्रतिशत थी। हल्बा जनजाति प्रदेश में मुख्यतः कांकेर,

बस्तर, दंतेवाड़ा, दुर्ग, धमतरी, राजनांदगाँव जिलों में निवासरत है। बस्तर में हल्बा मुख्य रूप से कांकेर जिले के अंतर्गत चारामा, नरहरपुर, कांकेर, भानुप्रतापपुर और गाँव-नगरों में बसे हैं। इस जनजाति के कुछ स्थानीय उपविभाजन बस्तरिया, छत्तीसगढ़िया तथा मरेथिया आदि हैं। हल्बा जनजाति की कई उपशाखाएँ हैं, जैसे-नायक, भंडारा, परेत, सुरेत तथा नरेवा आदि। सुरेत हल्बा अधिक प्रगतिशील है। यहाँ हल्बा जनजाति का निवास वर्तमान में पहाड़ों व जंगलों में नहीं है बल्कि वह ग्रामीण स्थानों का अंग बन गई है।

हल्बा जनजाति छत्तीसगढ़ की एक प्रमुख जनजाति है। प्रदेश में इसकी जनसंख्या वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार 2,25,376 थी, जो राज्य की कुल जनजातीय जनसंख्या का 4.86 प्रतिशत थी। वहीं 2011 की जनगणना में छत्तीसगढ़ के हल्बा परिवारों की संख्या 81,656 थी तथा कुल जनसंख्या 3,75,182 थी जहाँ पुरुष जनसंख्या 1,83,877 व महिला जनसंख्या 1,91,305 थी। लिंग अनुपात 1,040, शिशु लिंग दर 9,90 साक्षरता 76.2 प्रतिशत जहाँ पुरुष 86.6 प्रतिशत, महिला 66.2 प्रतिशत था। कुल कार्यसहभागिता दर 52.9 प्रतिशत है। हल्बा जनजाति प्रदेश में मुख्यतः कांकेर, बस्तर, दंतेवाड़ा, दुर्ग, धमतरी, राजनांदगाँव जिलों में निवासरत है। बस्तर में हल्बा मुख्य रूप से कांकेर जिले के अंतर्गत चारामा, नरहरपुर, कांकेर, भानुप्रतापपुर और दुर्गकोदल, अंतागढ़, कोयलीबंडा गाँव-नगरों में बसे हैं। इस जनजाति के कुछ स्थानीय उपविभाजन बस्तरिया, छत्तीसगढ़िया तथा मरेथिया आदि हैं। हल्बा जनजाति की कई उपशाखाएँ हैं, जैसे-नायक, भंडारा, परेत, सुरेत तथा नरेवा आदि। सुरेत हल्बा अधिक प्रगतिशील है। यहाँ हल्बा जनजाति का निवास वर्तमान में पहाड़ों व जंगलों में नहीं है बल्कि वह ग्रामीण स्थानों का अंग बन गई है।

सामाजिक संरचना

हल्बा जनजातियों में मुख्यतः दो भाग पाए जाते हैं—

1. बस्तरिया हल्बा मुख्यतः बस्तर, कांकेर, अंतागढ़, बड़े डोंगर, भानुप्रतापपुर, नारायणपुर, दंतेवाड़ा, बीजापुर, नगरी, गरियाबंद देवभोग क्षेत्र में निवासरत है।
2. छत्तीसगढ़िया हल्बा बालोद, डौंडी, दल्लीराजहरा, गुंडरदेही, राजनांदगाँव के चौकी, डोंगरगाँव के हल्बा छत्तीसगढ़िया हल्बा कहलाते हैं। हल्बा जनजाति दो भागों पुरैत व सुरैत में विभाजित है। पुरैत उच्च माना जाता है। हल्बा जनजाति कई बहिर्विवाही गोत्रों में विभक्त हैं। प्रत्येक गोत्र के टोटम पाए जाते हैं।

हल्बा जनजातियों का गोत्र—हल्बा जनजातियों के गोत्र के अंतर्गत नायक, मार्गिया, कोरेटिया, राणा, भैसारा, सहारे, रावटे, कोसमा, भोयर, माहला, कछुवाहा, बढ़ई, भुआर्य, खड़हा, छेहारी, ढाल, कोठरिया, बारामानिया, चुरगईया, समरथ आदि।

धार्मिक जीवन—हल्बा जनजाति के लोग देवी-देवताओं में बहुत आस्था रखते हैं। सभी लोग हिंदूधर्म और उसके देवी-देवताओं को मानते हैं, इनके मुख्य देवी-देवता व त्यौहार निम्नलिखित हैं—

1. **ग्राम देव**—ग्रामदेव में दूल्हादेव, करियाधुरवा, माता देवला, शीतला माता, कंकालिन माता, शंकर भगवान, हनुमान आदि हैं।
2. **कुल देव**—हल्बा जनजाति की कुल देव में गुसई, पुसई, कुंवरदेव, मौलीमाता आदि हैं। देवपूजा के अलावा पोला होली, नवाखानी, रक्षाबंधन, दिवाली, होली आदि त्यौहार मानते हैं।

हल्बा जनजातियों में विवाह रस्में—विवाह मानव जीवन का आधारभूत संस्कार है। इस

संस्कार के आधार पर ही मनुष्य सामाजिक प्राणी के रूप में अपना जीवन निर्वाह करते हुए मोक्ष प्राप्त करता है। विवाह के माध्यम से ही माता पिता व परिवार के सहयोग से युवक-युवती अपना दांपत्य जीवन व्यतीत करते हुए सामाजिक मूल्यों का संपादन करते हैं। संसार के सभी स्थानों पर मानव जाति व जनजातियों में वैवाहिक संस्कार हर्षोल्लास के साथ किया जाता है।

हल्बा जनजाति में एक ही गोत्र में विवाह नहीं किया जाता है, इनमें विवाह अधिकतर लड़के, लड़कियों के वयस्क होने पर ही किया जाता है। मामा-बुआ के लड़के-लड़कियों के साथ विवाह होता है। इनमें लड़के का पिता लड़की के पिता के घर जाकर शादी की बात तय करता है, बात पक्की होने पर अपने कुछ रिश्तेदारों के साथ जाकर मँगनी की जाती है। वरपक्ष की ओर से वधूपक्ष को 'सूक' दिया जाता है। विवाह कार्य हल्बा जनजाति के 'भंडारी' द्वारा संपन्न कराया जाता है। इस समाज में वर-वधु तलाशने के लिए माता-पिता व अन्य वरिष्ठ बुजुर्ग शिक्षा, स्वास्थ्य व पारिवारिक संस्कारों की ओर विशेष ध्यान देते हैं। इनका मानना है कि गृहस्थ आश्रम में इन विशेषताओं का होना सुखी जीवन के लिए नितांत आवश्यक है।

पितृसत्तात्मक समाज होने के कारण योग्य वर के लिए योग्य वधु का तलाश करने के लिए वर पक्ष लोग ही वधु के घर रिश्ते की पहल करते हैं। दोनों पक्षों की सहमति के बाद लड़की की चिन्हारी (चुम्मा लेना) का नेग किया जाता है। इस रस्म में समाज के अन्य गणमान्य व्यक्ति भी सम्मिलित होते हैं। वधु द्वारा ससुराल पक्ष के बड़ों का चरण स्पर्श किया जाता है। इस प्रकार सबकी उपस्थिति में रिश्ता पक्का समझा जाता है और सगाई की तिथि निश्चित की जाती है। निश्चित तिथि में वर परिवार द्वारा सगाई के लिए आवश्यक सामग्री लेकर वधु के घर पहुँचते हैं। परिवार व आसपास के सामाजिक लोग भी शामिल होते हैं। वैवाहिक संबंध की मध्यस्थता करने वाले व्यक्ति को महलिया कहा जाता है। सब लोगों के पहुँचने पर महलिया के द्वारा सबका स्वागत अभिनंदन किया जाता है। सगाई के लिए हल्बा समाज में चढ़ते सूर्य का समय अर्थात् दोपहर का वक्त अत्यंत श्रेष्ठ माना जाता है। इस अभिजीत शुभ मुहूर्त में वर पक्ष के लोग वधु के घर पहुँचते हैं। प्रवेशद्वार पर वधुपक्ष के लोग उनका पाँव पखारने के साथ मस्तक में अक्षत रोली का टीका लगाकर अभिनंदन करते हैं। उसके बाद आँगन में पंडाल के नीचे सबको ससम्मान बैठाया जाता है। कुल देवता का स्मरण करते हुए गौरी-गणेश की पूजा की जाती है। वर पक्ष द्वारा वधु को अपने साथ लाए नए वस्त्र, आभूषण, शृंगार प्रसाधन के साथ फल व मिठाइयाँ भी प्रदान की जाती हैं। इस अवसर पर 'कूड़ा' का विशेष महत्त्व होता है। यह विशेषतः 'करी या बूँदी' का विशेष लड्डू होता है जिसे वर पक्ष द्वारा वधु के घर 'महलिया' को दिया जाता है। इसी दिन विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। सगाई के समय संगीतिक कार्यक्रम भी होता है। हल्बा जनजाति में प्रचलित सगाई गीत—

ऊँचे चौर ओबबा चौपलिया, धन तुलसी के पेड़ हो।
जही तरी बैठी बैठी बिटिया, वो ही तरी हिंगुन सुनार हो।
हार गठिया बबा, टिकुली गढ़इयां नथनी गढ़इयां हो।
अतका पहिरे के बिटिया चौके में बइठे, गिरथे मोती कर बूँद हो।
का थोरे हागें, बिटिया, काहे बर बदन मलीन हो।
सोन थोर होंगे कि रूप्थोर होंगे, काहेबर बदन मलीन।
हम बबा गोरे-गोरे प्रभु जी है कारें-कारें, ए बर बदन मलीन हो।

कारे गोर बिटिया झन काही कहिबे, कारे है श्री भगवान हो।

माई के कोख कुम्हार के आवा कोई कारे कोई गोरे हो।

हल्दी लगाने से पहले शीतला माता मंदिर में कलश, तेल-हल्दी लगाकर मनौती की जाती है तथा प्रथम तेल हल्दी माता से विनती की जाती है कि विवाह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो। रात में वर-वधु को पहली तेल हल्दी माई के घर में चढ़ाई जाती है। इष्ट देवी-देवता की पूजा-अर्चना के पश्चात् बिना मोर बाँधे कमरे के अंदर तेल चढ़ाया जाता है। इसे तेल-चोर कहते हैं। इसके बाद मंडप में दूल्हा-दुल्हन को तेल चढ़ाया जाता है। महिलाएँ मांगलिक गीत गाती हैं—‘मड़वा म दुलरू हो हरियर-हरियर हो हरियर-हरियर एक तेल चढ़गे हो हरियर-हरियर...।

हल्बा जनजातियों द्वारा इस गीत में मांदर व मोहरी नामक लोक वाद्यों की धुन से विवाह का वातावरण लोकसंगीत की मधुर ध्वनि से आनंदमयी हो जाता है। वर के घर बारात प्रस्थान से पहले कनकन व तेल रस्म उतारने की रस्म की जाती है। वर के घर बारात प्रस्थान से पहले महिलाएँ घर के आँगन में दूल्हे का मौर सौंपने की रस्म होती है। दूल्हे की परिक्रमा करते हुए आशीर्वाद प्रदान किया जाता है। दुल्हन के घर बारात पहुँचने पर दूल्हा तेंदू या शीशम की चमचमाती लकड़ी से मंडप छूने की रस्म को पूरी करता है। स्वेच्छा से कलश में सिक्का डालता है। दुल्हन की माँ दूल्हे की आरती उतारते हुए अक्षत-रोली का टीका लगाकर स्वागत करती है और इच्छानुसार भेंट देती है। इसके बाद दूल्हा जनवासा चला जाता है। वहीं जाकर वधु पक्ष की महिलाएँ लालभाजी खिलाने पहुँच जाती है। भाँवर फेरे के समय दूल्हा धोती, कुर्ता और पगड़ी का पारंपारिक परिधान धारण करता है। दूल्हन के लिए दूल्हा के घर से लाए गए वस्त्र, आभूषण, शृंगार प्रसाधन बाजे-गाजे के साथ पहुँचा दिए जाते हैं। दुल्हा-दुल्हन सज-धजकर मंडप में पहुँच जाते हैं। दूल्हा-दुल्हन के बीच परदा होता है। ढेढ़ही-ढेढ़हा (सुवासिन-सुवासा) अपनी ओर से दुल्हा-दुल्हन को लगन चॉउर देकर सँभालकर रखने के लिए कहते हैं इसके बाद दुल्हा-दुल्हन के बीच परदा हटा दिया जाता है। दोनों आमने-सामने पवित्र लगन चाउँर को एक-दूसरे की ओर फेंकते हैं। तत्पश्चात् वर, वधु की उँगली पकड़कर खड़ा हो जाता है। भाँवर प्रारंभ होता है, वरवधु सात परिक्रमा करते हैं। सर्वप्रथम दुल्हन के माता-पिता वर-वधु के पाँव पखारते हैं और बारी-बारी से अक्षत चावल का टीका लगाकर बेटे को अपनी स्थिति के अनुसार भेंट प्रदान करते हैं इसके उपरांत परिवार के अन्य सदस्य व समाज के लोग भेंट देते हैं व महिलाओं द्वारा यह गीत गाया जाता है—

इहि धरम ले धरम हे गा
अगा मोर ददा फेर धरम नई तो
पाबे गाए, अवो मोर दाई
फेर धरम नई तो पाबे ओ...।

हल्बा जनजातियों में आर्थिक जीवन पर विवाह-रस्म का प्रभाव

हल्बा जनजाति की आर्थिक संरचना मुख्यतः कृषि व जंगली उपज पर निर्भर है। इस जनजाति की आर्थिक स्थिति अन्य जनजातियों से अच्छी है। अपने खेतों में धान, कोदो, अरहर, उड़द, मूँग, तिल्ली, चना, तिवरा, कुटकी आदि बोते हैं। कृषि व जंगली उपज संग्रह के अतिरिक्त कृषि मजदूरी, चिवड़ा कूटने का कार्य भी करते हैं। वर्तमान में कई नवयुवक-युवतियाँ शिक्षण प्राप्त कर शासकीय नौकरी भी कर रहे हैं। हल्बा जनजातियों में सामाजिक रीतिरिवाजों को संपन्न

कराना प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है। इन जनजातियों में आर्थिक पिछड़ापन आज भी दृष्टिगत होता है। विवाह जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक मर्यादा मूल्यों का संपादन करने में विवाह सामग्री लेने में इनके द्वारा कमाई गए धन का महत्वपूर्ण भाग खर्च हो जाता है। पारिवारिक सदस्यों की संख्या व समाज के सदस्यों की संख्या इतनी अधिक होती है कि सबके स्वागत व आवभगत करने में आय का एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यय हो जाता है। साथ ही विवाह कार्य में आए परिवार के सदस्यों व समाज के घनिष्ठ सदस्यों को उपहार भी अपनी स्थिति के आधार पर दिया जाता है। हल्बा जनजातियों के पिछड़ेपन के कारणों में से एक कारण विवाह जैसी महत्वपूर्ण सामाजिक रस्म का क्रियान्वयन भी है।

संदर्भ

1. एल्विन वेरियर (1991), द अगारिया, वन्य प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० 58-59
2. ग्रिगसन डब्ल्यू वी (1938), द मारिया गोड़ ऑफ बस्तर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लंदन, पृ० 133-193
3. शर्मा डी०डी० (1990), सामाजिक मानव शास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पृ० 114-119
4. जगदलपुरी लाला (2007), बस्तर इतिहास एवं संस्कृति, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृ० 13-67
5. मानकर एच० एल० (2000), अखिल भारतीय हल्बा समाज चिन्हारी कर्मचारी प्रकोष्ठ संघ जिला-बालोद (छ०ग०), पृ० 7-76

इंदिरा-कालोनी, मथाई बिल्डिंग के पीछे वार्ड नं० 10
न०पं० चिखलाकसा, दल्लीराजहरा
जिला-बालोद (छ०ग०)
मो० 6263948081
ईमेल- thawde12@gmail.com

भारत में किसान आंदोलन : हरित क्रांति के बाद

सोहनलाल

एम०ए०, राजनीति विज्ञान

भारत हमेशा से कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि यहाँ की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। देश की 70 फीसदी आबादी ग्रामीण होने के कारण यह प्रत्यक्ष रूप से कृषि कार्यों में लगी हुई है। आजादी मिलने के लगभग दो दशक बाद तक भी भारत खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर नहीं हो पाया था। इसके कई कारण थे—उन्नत तकनीकों का अभाव, देश के कई हिस्सों में अकाल पड़ना, खाद्यान्न की कालाबाजारी इत्यादि। परंतु 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में हरित क्रांति ने कृषि क्षेत्र में कुछ उम्मीद जगाई। गेहूँ व चावल जैसी प्रमुख फसलों के उत्पादन में बढ़ोतरी होती गई। परिणाम इसी का हुआ कि 1970 के पूर्वार्द्ध में ही भारत ने विदेशों से खाद्यान्न आयात करना बंद कर दिया। लेकिन बढ़ोतरी की यह प्रक्रिया न तो टिकाऊ बन पाई और न ही सतत् रूप से अग्र दिशा में बढ़ पाई। 1980 तक आते-आते हमारा कृषि क्षेत्र संकट से फिर समझौतों में भी कृषि के साथ निरंतर भेदभाव होने लगा। इसी कारण एक समय तो स्थिति यह भी हो चली थी कि हरित क्रांति की बदौलत जो उत्पादन बढ़ने लगा था, वह भी धीरे-धीरे घटने लगा। दूसरी तरफ किसानों को उपज का उचित मूल्य भी नहीं मिल पाया। इन्हीं सब समस्याओं की वजह से देशभर का किसान आंदोलन की राह निकल पड़ा। किंतु आज भी यह बड़ा सवाल बना हुआ है कि इतने आंदोलनों के बावजूद भी किसानों की स्थिति में सुधार क्यों नहीं हुआ? आज भी किसानों की दयनीय स्थिति बनी हुई है।

प्राचीन भारत के गाँव आत्मनिर्भर थे। संपूर्ण ग्रामीण जीवन कृषि व कृषि उत्पादों पर आधारित था किंतु जैसे-जैसे यहाँ विदेशी लुटेरों के कदम पड़ते गए, कृषि व्यवस्था चौपट होती गई। देश के कई हिस्से सूखे व अकाल की भेंट चढ़ गए। आजादी के समय भी भारत की कृषि प्रणाली कोई उन्नत किस्म की नहीं थी। हाँ, हरित क्रांति ने देश के किसानों में जरूर एक नई जान फूँकी। मगर दुर्भाग्य यह रहा है कि इस नए प्रयोग के आसरे भी भारत का कृषि व्यवसाय लंबी दौड़ के घोड़े में तब्दील नहीं हो पाया, और कालांतर में किसानों की स्थिति निरंतर खराब होती चली गई। खराब होते इन हालातों का सबसे डरावना पहलू रहा किसानों की आत्महत्याएँ। किसान कभी सरकार की गलत नीतियों का शिकार, तो कभी मौसम की मार झेल रहा है। बर्बाद होती फसल के चलते वह अपना कृषि कर्ज भी समय पर नहीं चुका पा रहा है। इस कारण उसे असमय मौत के कुएँ में उतरना पड़ रहा है। तभी साल-दर-साल आत्महत्या करने वाले किसानों की संख्या बढ़ती जा रही है।

1916 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए महात्मा गांधी ने कहा था, 'हमें केवल किसान ही मुक्ति दिला सकते हैं। वकीलों, डॉक्टरों या धनी जमींदारों के बूते की बात नहीं है।' देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा होने के बाद भी किसान उपेक्षित है। अफसोस कि उसे

केवल आश्वासनों के अलावा कुछ नहीं मिला और न ही किसी राजनीतिक दल ने उसके बदहाल जख्मों को भरने की कोशिश की। इन सबसे तंग आकर किसानों ने सरकार के सामने अपनी माँग रखने के लिए आंदोलन का रास्ता चुना। दुर्भाग्य यह कि विभिन्न सरकारों ने कृषि संकट और किसानों की समस्याओं का समाधान निकालने की बजाए उल्टा आंदोलनों को ही शक्ति के द्वारा दमन करना शुरू कर दिया। इससे खेती के हालात और अधिक बिगड़ते चले गए।

कृषि प्रधान देश की यह भूमि अनेक किसान आंदोलनों की गवाह रही है। हरित क्रांति के बाद बंगाल, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में बहुत बड़े स्तर पर किसान आंदोलन हुए। इनमें सैकड़ों किसानों को शहादत देनी पड़ी। आज किसानों के हालात बंधुआ मजदूरों जैसे हो गए हैं। विभिन्न राजनीतिक दल चुनावों में जीत हासिल करने के लिए अपने-अपने घोषणा-पत्रों में किसानों को उज्ज्वल भविष्य का सपना जरूर दिखाते हैं, किंतु यह सब कागजों तक ही सीमित रह जाता है। ऐसा भी नहीं है कि सरकारें किसानों के लिए कोई योजना नहीं लाती हैं। योजनाएँ अवश्य लाती हैं किंतु क्रियान्वयन के अभाव और लालफीताशाही के चलते इन योजनाओं का लाभ किसानों को मिल नहीं पाता। इसी वजह से तो कृषक वर्ग समय-समय पर आंदोलन के रास्ते चलने को मजबूर हो रहा है। इस प्रक्रिया में किसान, कृषि और अर्थव्यवस्था तीनों का ही बड़े स्तर पर नुकसान हो रहा है। यह सब भारत जैसे कृषि प्रधान देश की छवि धूमिल करने के लिए पर्याप्त है।

हरित क्रांति के बाद के प्रमुख किसान आंदोलन

(1) **नक्सलबाड़ी आंदोलन**—सन् 1969 में पश्चिम बंगाल के नक्सबाड़ी इलाके में सीपीआई-एमएल नेता कानू सान्याल व चारू मजूमदार के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा किसान आंदोलन चला। ये चीन के साम्यवादी नेता माओ से प्रभावित थे। यहाँ के किसानों का आरोप था इस क्षेत्र में बड़े-बड़े जमींदार और सामंत भूमिहीन किसानों का शोषण करते हैं। इस आंदोलन के नेतृत्व ने किसानों को सशस्त्र विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप छोटे और भूमिहीन किसानों ने जमींदारों की भूमि पर जबरदस्ती कब्जा करना शुरू कर दिया। जिस क्षेत्र में यह आंदोलन चला, उसे 'लाल क्षेत्र' कहा गया। जानकारों ने यह घोषणा कर दी कि इस नक्सलवाद से भारत में क्रांति होगी। तत्कालीन भारत सरकार ने इसे चीन की घुसपैठ समझकर शक्ति से प्रदर्शन को दबा दिया। इससे पूरे देश में हिंसा की स्थिति पैदा हो गई। बहुत से नक्सलवादी नेता गिरफ्तार कर लिए गए और कई भूमिगत हो गए। भले ही यह आंदोलन अपने मकसद में नाकाम रहा, किंतु देश की राजनीति को दिशा देने में इसकी बड़ी भूमिका मानी जाती है। दूसरी तरफ एक सच यह भी रहा कि इस आंदोलन के कुछ वर्षों के बाद ही इसके अगुवा नेताओं ने कहा था कि यह आंदोलन कई शाखाओं में विभक्त होकर अपने लक्ष्य और विचारधारा से भटक गया है।

(2) **महाराष्ट्र का किसान आंदोलन (1980)**—महाराष्ट्र में एक सरकारी अफसर शरद जोशी के नेतृत्व में किसान आंदोलन को दिशा दी गई। उन्होंने गन्ना और प्याज किसानों की उपज का दाम बढ़ाने के लिए नासिक जिले में 'रास्ता रोको' अभियान चलाया। सरकार पर उन्होंने बहुराष्ट्रीय कंपनियों व गैर-सरकारी संगठनों से मिलीभगत प्रदान का आरोप लगाते हुए आंदोलन को व्यापक स्वरूप प्रदान किया।

इस आंदोलन के तरीके कुछ वर्ष पूर्व तमिलनाडु व कर्नाटक के इलाकों में हुए आंदोलनों से मिलते-जुलते थे, जिनमें किसान नेता नारायण स्वामी नायडु की प्रमुख भूमिका थी। इन

आंदोलनों से सरकार व किसानों के बीच टकराव की स्थिति बन गई। किसानों ने कर देना बंद कर दिया। शरद जोशी ने किसानों की माँग सरकार के समक्ष रखने के लिए 'शेतकारी संगठन' का निर्माण किया। 'शरद जोशी के शेतकारी संगठन ने किसानों को निर्देश दिए कि जब तक गन्ने की कीमत तीन सौ रुपए प्रति कुंतल न की जाए तब तक खेतों में सूख जाए।" इस प्रकार महाराष्ट्र के नासिक व नागपुर जैसे इलाकों में कपास, गन्ना व प्याज किसानों की माँगों को लेकर जोशी जी के नेतृत्व में एक विशाल आंदोलन चलाया गया।

(3) **उत्तर प्रदेश का किसान आंदोलन (1988)**—उत्तरप्रदेश के पश्चिमी इलाके में 1987-88 के दौरान किसान नेता महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में एक बड़े किसान आंदोलन की रूपरेखा तैयार की गई। उन्होंने किसानों से आह्वान किया कि वे बिजली के बिल और बैंक के कर्ज की अदायगी करना बंद कर दें। 'टिकैत ने राजधानी दिल्ली की घेराबंदी करने की धमकी देते हुए कहा कि हम शहर को दूध और सब्जियों के लिए तरसा सकते हैं।'¹² लाखों की संख्या में किसान एकत्र होकर संसद को घेरने की ओर बढ़ गए। टिकैत ने भारतीय किसान यूनियन की स्थापना की और देशभर के किसानों को इससे जुड़ने की अपील की।

इनके अलावा भी अन्य कई आंदोलन हैं जिनके जरिए देश का अन्नदाता अपनी फसलों के लिए सरकारों से गुहार लगाता रहा है। मसलन, 2007 में हुआ—बंगाल का सिंगुर किसान आंदोलन। किसानों की जमीन को उद्योगपतियों के हवाले किए जाने के विरोध में हुआ यह आंदोलन पश्चिम बंगाल का एक बड़ा आंदोलन माना जाता है। इसमें करीबन 14 किसानों की मौत हुई। बाद में सरकार द्वारा किसानों की माँगें मान ली गईं। इसी तरह 2011 में भूमि अधिग्रहण के विरोध में उत्तर प्रदेश का भट्टा परसौल किसान आंदोलन हुआ। सन् 2012 में महाराष्ट्र के सांगली आंदोलन और 2016 में झारखंड के हजारीबाग आंदोलन में भी किसानों ने व्यापक प्रदर्शन कर सरकार के सामने अपनी माँगें रखीं। सन् 2018 में किसान क्रांति यात्रा से शुरू हुआ, किसानों का विरोध एक भयंकर किसान आंदोलन की शकल में बदल गया। इसका असर पूरे भारत में देखने को मिला। देशभर के किसान दिल्ली में जुटे और आंदोलन हिंसक हो गया। सरकार ने शक्ति के बल पर यह आंदोलन भी दबा दिया। यह देश का दुर्भाग्य ही है कि इतने प्रभावशाली आंदोलन होने के बाद भी किसानों की हालात में सुधार करने का सरकार की तरफ से कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया।

(4) **नवंबर 2020 का किसान आंदोलन**—साल 2020 के जाते-जाते हिंदुस्तान में एक अलग तरह का किसान आंदोलन उठ खड़ा हुआ। यदि यह कहा जाए कि विश्व इतिहास के किसान आंदोलनों में इसका स्वरूप सबसे भिन्न है, तो गलत नहीं होगा। जून 2020 के पहले सप्ताह में भारत सरकार ने कृषि उपज, बिक्री, जमाखोरी, विपणन और अनुबंध कृषि सुधारों से संबंधित तीन अध्यादेश प्रख्यापित किए। सितंबर माह में इन्हें लोकसभा और राज्यसभा से पारित करवाकर राष्ट्रपति की सहमति लेते हुए कानूनों में परिवर्तित कर दिया।

नवंबर माह के अंत में इन तीन नए कृषि कानूनों को पूरी तरह से निरस्त करने की माँग को लेकर पंजाब, हरियाणा और उत्तरप्रदेश से हजारों किसान प्रदर्शन करने के लिए राजधानी दिल्ली के आस-पास जुटने लगे। धीरे-धीरे इस प्रदर्शन ने एक विशाल आंदोलन का रूप ले लिया। इंडिया टुडे ने अनुमान लगाते हुए किसानों की संख्या दो से तीन लाख तक बताई थी। किसानों को दिल्ली में प्रवेश से रोकने के लिए सरकार व प्रशासन पूरी तरह से मुस्तैद है। तीनों कृषि कानूनों का निरसन और कानूनी रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य (एम॰एस॰पी॰) सुनिश्चित

करना किसानों की प्रमुख माँगे हैं। देश की लगभग सभी किसान यूनियन इन कानूनों के विरोध में हैं। भारतीय किसान यूनियन, जय किसान आंदोलन, ऑल इंडिया किसान खेत मजदूर संगठन, क्रांतिकारी किसान यूनियन, ऑल इंडिया किसान सभा, किसान संघर्ष समिति, कर्नाटक राज्य रैथा संघ जैसी अनेक किसान यूनियन इस आंदोलन में मजबूती से डटी हुई हैं। किसानों ने टिकरी सीमा व सिंधू सीमा के अलावा अन्य कई राजमार्गों को अवरूद्ध किया हुआ है।

केंद्र सरकार में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्री हरसिमरन कौर बादल ने 17 सितंबर 2020 को बिलों के विरोध में अपने पद से इस्तीफा दे दिया। सरकार विपक्ष पर झूठ फैलाने का आरोप लगा रही है। किसानों को आशंका है कि इन कानूनों से निजी कंपनियों को फायदा होगा और किसानों की मुश्किलें बढ़ेंगी। शांता कुमार कमेटी के मुताबिक देश के महज छह प्रतिशत किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलता है और इनमें अधिकतर किसान पंजाब-हरियाणा से हैं। न्यूयॉर्क टाइम्स और गार्डियन जैसे प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन समूहों ने इस किसान आंदोलन पर आलेख प्रकाशित किए हैं। यह लेख लिखे जाने तक सरकार व किसानों के बीच कोई सहमति नहीं बन पर रही है। दोनों के मध्य कई स्तरों पर असफल वार्ताएँ हो चुकी हैं, पर किसान संगठन तीनों कानूनों को निरस्त करने पर अड़े हुए हैं। इसके सिवा किसानों को सरकार का कोई प्रस्ताव मंजूर नहीं है और आंदोलन निरंतर जारी है।

किसान सम्मलेन और किसान रैलियाँ

23 दिसंबर 1978 को किसान नेता चौधरी चरणसिंह का जन्मदिन मनाने संपूर्ण उत्तर भारत से किसान भारी संख्या में दिल्ली के बोट क्लब पहुँचे। वहाँ खेती में होनेवाले खर्च और आय के असंतुलन को समाप्त करने के लिए एक माँग-पत्र प्रस्तुत किया गया। दरअसल इस व्यापक सम्मेलन का उद्देश्य उस वक्त के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई का ध्यान कृषि नीतियों की ओर मोड़ना था।

सन् 1980 में किसानों द्वारा गांधीजी के बताए मार्ग पर चलते हुए एक अनोखा किसान मार्च निकाला गया। इस मार्च की साक्षी बनी कर्नाटक और महाराष्ट्र की भूमि। कर्नाटक में इसका नेतृत्व रैयत कार्मिक संघर्ष समिति ने किया, जो देवराज अर्स की देख-रेख में संचालित थी। महाराष्ट्र में यह मार्च शरद पंचवार के नेतृत्व में निकला। दोनों जगह किसानों ने विधानसभा का घेराव करके अपनी माँग सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। ठीक ऐसा ही नजारा 16 फरवरी 1981 के दिन देखने को मिला। एक बार फिर वही दिल्ली का बोट क्लब प्रदर्शन का गवाह बना। बताया जाता है इस किसान रैली में कश्मीर से कन्याकुमारी तक लगभग 20-25 लाख किसानों ने भाग लिया। इस रैली को श्रीमति इंदिरा गांधी का समर्थन हासिल था। यह रैली उन्होंने विपक्ष को यह दिखाने के लिए आयोजित की थी कि किसानों की सच्ची हितैषी केवल इंदिरा वाली कांग्रेस पार्टी ही है। इसके एक महीने बाद मार्च 1981 में देश के छह प्रमुख विपक्षी दलों ने मिलकर दिल्ली में एक सफल किसान रैली आयोजित की। इसका उद्देश्य इंदिरा कांग्रेस को कमजोर करना था।

किसान आंदोलनों का स्वरूप

यदि हम किसी भी दौर के किसान आंदोलनों का अध्ययन करें तो पाएँगे कि लगभग सभी का स्वरूप मुख्य रूप से क्षेत्रीय ही रहा है। किसी ने भी लंबी अवधि तक राष्ट्रीय स्वरूप धारण नहीं किया। किसान आंदोलनों के नेतृत्व पर भी सवाल उठता रहा है। राजनीतिक नेतृत्व व संरक्षण के चलते बहुत बार किसान एक ढाल के रूप में इस्तेमाल होता रहा है। यह स्वरूप और

नेतृत्व ही इन आंदोलनों की असफलता के प्रमुख कारण रहे हैं। ऐसा नहीं है कि किसानों ने सफल रणनीति न अपनाई हो, लेकिन देश के विभिन्न भागों में रहनेवाले किसानों की आवश्यकताएँ और समस्याएँ अलग-अलग हैं। इसी कारण इस वर्ग में एकता का अभाव हमेशा देखने को मिला है।

किसान लॉबी व किसान संगठन

हरित क्रांति से पहले तक किसानों को एक मजबूत व्यावसायिक समूह के रूप में संगठित करना एक बड़ी चुनौती थी। लेकिन 1970 के बाद राजनीति पर कृषक संगठनों व लॉबी का प्रभाव देखने को मिला। 'सन् 1977 में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई द्वारा प्रबल किसान नेता चौधरी चरणसिंह को उप-प्रधानमंत्री बनाना और उसके बाद वी०पी० सिंह और चंद्रशेखर सरकार में चौ० देवीलाल को उप-प्रधानमंत्री व किसान मंत्रालय की जिम्मेदारी सौंपना किसान लॉबी के प्रभावी होने के प्रमुख उदाहरण है।³ यह सच है कि विधायिका में अपने प्रतिनिधि भेजने में किसान वर्ग बहुत पीछे है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि प्रभावन किसान लॉबी के चलते ही सरकार आज तक कृषि पर 'आय कर' नहीं लगा पाई है। यदि राष्ट्रीय स्तर पर देखें तो सन् 1980 में शरद जोशी द्वारा स्थापित शेतकारी संगठन और 1987 में महेंद्रसिंह टिकैत द्वारा स्थापित भारतीय किसान यूनियन जैसे संगठन किसानों की आवाज को प्रखर ढंग से उठाने में काफी हद तक सफल रहे हैं। भारत कृषक समाज और कर्नाटक राज्य रैयत संघ जैसे किसान संगठन भी आज मजबूत स्थिति में हैं।

किसानों की प्रमुख माँगें

हरित क्रांति के बाद से किसान लगातार आंदोलनों और किसान लॉबी के माध्यम से सरकार के समक्ष अपनी माँग उठाता रहा है। विभिन्न सरकारें भी इन माँगों को अपने घोषणा-पत्र में जगह देती आई हैं। स्वामीनाथन रिपोर्ट और कर्जमाफी को हर किसान आंदोलन में मुख्य माँग में रूप में प्रस्तुत किया जाता है। किसानों का ये आरोप भी है कि जब सरकारें बड़े उद्योगपतियों का कर्ज माफ कर देती हैं तो किसानों से उसे क्या दिक्कत है? इसके अलावा एक किसान आयोग और कृषि को विदेशी कॉर्पोरेट के हाथों से बचाने की माँग भी किसानों द्वारा की जाती है। किसानों का कहना यह भी है कि विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन जैसी वैश्विक संस्थाएँ भी भारतीय कृषि की इस बदतर हालत के लिए जिम्मेदार हैं। इन्होंने लघु कृषि उद्योगों को पूरी तरह नष्ट कर दिया है। इससे ग्रामीण किसान खेती छोड़कर शहरों में कंक्रीट का जंगल खड़ा करने में शहरों की ओर पलायन करने लगा है। 'कृषि क्षेत्र को नजरअंदाज करने की प्रक्रिया 1991 में आर्थिक विकास के नए दौर से शुरू हुई। मैं उस समय के वित्तमंत्री मनमोहन सिंह के प्रसिद्ध बजट भाषण को याद करूँ तो उन्होंने उद्योग को काफी प्राथमिकता दी और अपने भाषण के अंतिम पैराग्राफ में यह कहा कि अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्वपूर्ण भागीदारी बनी रहेगी। चूँकि कृषि राज्य का विषय है, इसलिए उन्होंने इसकी जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर छोड़ दी कि वे इसे जरूरी सुविधाएँ मुहैया कराएँ। लेकिन वे यह कहना भूल गए कि उद्योग भी राज्यों का विषय है और इसे भी राज्यों पर ही छोड़ देना चाहिए। यह भेदभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था।⁴ उपज खरीद के समय कालाबाजरी, अलग से किसान बजट और कृषि नीतियों को लागू करने में लालफीताशाही को कम करने जैसी माँगें भी किसानों की प्रमुख माँगें हैं। कृषि बजट का कुछ हिस्सा ही किसानों तक पहुँच पाता है। '2025 तक कृषि आय को दोगुना करने के महत्वपूर्ण मुद्दे का भारत कृषक समाज के अध्यक्ष अजयवीर जाखड़ कहते हैं कि कृषि को आकांक्षाओं से जोड़ना नया लग सकता है, लेकिन सच्चाई यह है कि आज कृषि किसी

की आकांक्षा नहीं है। सभी किसान गैर-कृषि नौकरियों की आकांक्षा रखते हैं।¹⁵ इन सबके अतिरिक्त उचित समर्थन मूल्य, सस्ते खाद-बीज व पानी उपलब्ध करवाने की माँग भी किसान लगातार सरकारों से करते आए हैं।

निष्कर्ष

आजादी के समय किसी ने महात्मा गांधी से पूछा कि आप किस प्रकार के भारत का निर्माण करना चाहते हैं? तो उन्होंने जवाब दिया कि हमारा देश स्वावलंबी और स्वाश्रयी गाँवों का एक फेडरेशन होगा। मगर दुर्भाग्य से आज गाँवों में गांधीजी के सपनों का भारत कहीं नजर नहीं आ रहा। सत्ता के केंद्र अब बड़े-बड़े शहर हो गए हैं। आबादी का बड़ा हिस्सा होने के बावजूद भी किसान उपेक्षित हैं। कोई राजनीतिक दल उन्हें गंभीरता से नहीं लेता। इसी कारण किसान बार-बार आंदोलन की ओर कूच कर रहे हैं। गाँव और ग्रामीण दोनों की हालात बदतर है। कभी पानी के स्तर नीचे चला जाता है तो कभी अत्यधिक कीटनाशकों के चलते भूमि की उपजाऊ शक्ति कमजोर होती जा रही है। यहीं कारण है कि हरित क्रांति के वे क्षेत्र भी निरंतर पिछड़ते जा रहे हैं जो कभी देश की अर्थव्यवस्था को अपने दम पर मजबूत करने का दंभ भरते थे। गाँवों में जो किसान बटाई या ठेके पर खेती करते हैं, सरकारी परिभाषा में उन्हें किसान का दर्जा हासिल नहीं है। इसलिए जरूरी है कि किसान के संकट की बजाए गाँव के संकट को चर्चा के केंद्र में लाया जाए। गलत नीतियों के चलते गाँव हमेशा ही विकास को दौड़ में पीछे रहे हैं। देश की अफसरशाही इन गलतियों को मानती ही नहीं। जब गलती स्वीकार ही नहीं हो रही तो उससे सीख कैसे ले सकते हैं? किसानों को आंदोलनों से रोकने के लिए सरकार को चाहिए कि वह खेती में अधिकाधिक निवेश करे, कृषि क्षेत्र में नई रिसर्च हों और ग्रामीण योजनाएँ परदर्शी तरीके से क्रियान्वित की जाएँ। सरकारें किसानों को सिर्फ वोट बैंक के रूप में न देखें। गाँव से किसानों का पलायन रोकने के लिए उन्हें बेहतर कीमत अदा की जाए। देश को आजाद हुए 70 वर्ष से ज्यादा का समय हो गया है। ऐसे में यह सही वक्त है कि हम यह देखें कि उस कृषि को बचाने के लिए हमने कितना प्रयास किया है जो सदैव अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाती रही है।

संदर्भ

1. डॉ॰ पुखराज जैन व बी॰ एल॰ फड़िया, भारत में कृषक समाज से संबंधित राजनीति, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, आगरा, (1990), पृ॰ 916
2. वही, पृ॰ 917
3. डॉ॰ गुलशन राय, भारत में किसान आंदोलन, भारत सरकार एवं राजनीति, लक्ष्मी बुक डिपो, भिवानी, (2011-12), पृ॰ 448
4. देवेन्द्र शर्मा, कृषि को ध्वस्त करने की प्रक्रिया जारी, यथावत, 24 : 29, नई दिल्ली, (2014)
5. अजीत कुमार झा, बातों की खेती, इंडिया टुडे, 15:29, नोएडा, (2020)

गाँव-जमावड़ी, तहसील-हांसी,
जिला-हिसार (हरियाणा) 125033
मो॰ 9996009322, 9467233109
इमेल : skyharyana@gmail.com

हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श

डॉ० सचिन कदम

हिंदी साहित्य में आदिवासी साहित्य अपनी नई पहचान बना रहा है। भारत में धर्म, अंधश्रद्धा एवं अशिक्षा का फायदा उठाकर शोषकों ने आदिवासी जनजातियों पर अन्याय, अत्याचार किया है। भारत की विशेषता है कि सभी धर्म, जनजातियाँ एकसूत्र में बँधे हुए हैं। आज के समय में भी उन पर अन्याय हो रहा है, उनका दमन हो रहा है। वे अपने अधिकारों से वंचित हैं। उनके मूलभूत अधिकारों को उच्चवर्ग द्वारा छीना जाता है जिसके कारण आदिवासियों को कई समस्याओं, पीड़ाओं का सामना करना पड़ता है। आदिवासी अपने आदिम विश्वासों, कुप्रथाओं, पुराने रीति-रिवाजों, अशिक्षा, दुर्गम भूखंडों, वनांचलों आदि में रहने के कारण सामाजिक और आर्थिक रूप से अविकसित हैं। उनके जीवन का यथार्थ कथासाहित्य में उजागर हुआ है।

आदिवासी साहित्य चेतना निर्माण करता है और साथ ही उनके जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। उनका सांस्कृतिक जीवन अनुपम है जिसमें संस्कृति, संस्कार, कला, पर्व-त्योहार, उत्सव आदि विशेषताओं से समाज को सीख मिलती है। वे कुदरत की रक्षा पेड़-पौधों तथा जानवरों को पूजकर करते हैं। आदिवासियों की विशेषता है कि वे परेशानियों से जूझकर जीने की कला से अभ्यस्त हो गए हैं। वे परेशानियों से डरकर कभी खुदकुशी नहीं करते, लेकिन आज के समय में भी आदिवासी समाज अशिक्षा, उपेक्षा, गरीबी, भूख, अंधश्रद्धा, कुप्रथा, रीतिरिवाजों में लिपटे हुए हैं। उनकी अस्मिता का हनन हो रहा है। आदिवासी क्षेत्रों पर सरकार और बड़े लोग अधिकार जमाकर शोषण कर रहे हैं। इक्कीसवीं शताब्दी में आदिवासियों के जीवन की वास्तविकता यथार्थता एवं अंतर्विरोधों का उपन्यासों में चित्रण हो रहा है।

‘जंगल के आसपास’ उपन्यास में ‘राकेश वत्स’ जी ने सोनी नदी के किनारे फैले जंगल और शोषित आदिवासियों का अभिशप्त जीवन चित्रित किया है। उन्होंने प्रमुखता से आतंक, अन्याय, पूँजीपतियों द्वारा अमानुष शोषण, जंगली जानवरों की समस्या एवं अभावग्रस्त जीवन की त्रासदी को उजागर किया है। इन बेहड़ों के आदिवासियों पर पूँजीपतियों एवं पुलिस द्वारा अमानवीय अत्याचार होते हैं। जंगली इलाकों पर पूँजीपति, महाजन, पुलिस और नेताओं का आतंक छाया रहता है। मजबूर आदिवासियों की बहू-बेटियों पर हमले होते हैं। वे आतंक के कारण पुलिस थाने में रिपोर्ट लिखाने नहीं जाते। रायसाहब नामक पात्र आतंक, सत्ता एवं धर्म की आड़ में आदिवासियों का नियोजनबद्ध शोषण करता है। कानून बंधुआ मजदूरी को खत्म कर दिया गया है किंतु रायसाहब ने कानून और अदालत को अपने अधिकार में लिया है। इसीकारण ‘पूरे इलाके में मुश्किल से ऐसा कोई घर होगा जिसके किसी-न-किसी सदस्य ने अपने शरीर और मन पर बंधुआ मजदूर होने का कलंक न ढोया हो। एक आदमी या औरत बूढ़े हो गए तो उसकी जगह दूसरे जवान लड़के या लड़की ने ले ली।” रायसाहब के होते हर परिवार को बंधुआ मजदूरी विरासत में मिलती है। मजदूरी करते समय आदिवासियों को भयानक यातनाएँ दी जाती हैं। अब उन्हें यह यातनाएँ नियति या नसीब लगने लगा है।

ढोंगी ओझा धर्म और अंधविश्वास के नाम पर नारी पर भयानक, अमानुष अत्याचार करता है। रायसाहब के लड़के और गुंडे दिन-दहाड़े बलात्कार करते हैं। बलात्कार की शिकार हुई नारी को अग्नि-परीक्षा देना अनिवार्य बन जाता है। ओझा समर्थन करते हुए कहता है कि 'अग्निपरीक्षा एक धार्मिक काम है। रामायणकाल से ही हमारे देश में चला आ रहा है। माँ सीता को भी तो अग्निपरीक्षा देनी पड़ी थी। अगर परीक्षा देती हुई कोई औरत जल जाती है, तो वह देवता की मर्जी से होता है, इससे आप क्या कर सकते हैं।'² ओझा द्वारा फैलाएँ अंधविश्वास की शिकार कई आदिवासी औरतें बनती हैं। प्रस्तुत उपन्यास आदिवासियों की प्रताड़नाओं का सच्चा आइना है। अतः कह सकते हैं 'जंगल के आसपास' उपन्यास आदिवासियों के शापित जीवन और भयानक यातनाओं का ज्वलंत उदाहरण है।

'दोहरा अभिशाप' आत्मकथात्मक उपन्यास में 'कौशल्या बैसंत्री' जी ने आदिवासी समाज की परेशानियों, विभीषिकाओं को चित्रित किया है। आदिवासियों के जीवन और परिवेश के बारे में लेखिका कहती है, 'आदिवासी इलाकों में आवास, जल, बिजली की सुविधाएँ नहीं हैं। शिक्षा के इंतजाम नहीं किए गए हैं। इसी कारण आदिवासी लड़के-लड़कियाँ ज्यादातर अशिक्षित हैं। अशिक्षा के कारण अंधविश्वास, जादू-टोना कुरीतियों आदि का बोलबाला है जिससे उनका जीवन खोखला बन गया है। आदिवासी बच्चों के लिए पाठशाला न होने से झूलाबाई नामक आदिवासी (गोंड) महिला स्कूल चलाती है जिसे सरकार की तरफ से कोई अनुदान नहीं मिलता। इसी कारण चंदा इकट्ठा करके जैसे-तैसे स्कूल चलाती है। 'गडडी गोदाम' नामक बस्ती में झूलाबाई नाम की एक आदिवासी (गोंड) महिला ने भी स्कूल खोला था। वह आदिवासी लोगों में जागृति लाने की कोशिश कर रही थी।'³ बैसंत्री जी ने आदिवासी लोगों की दयनीय अवस्थाओं, पीड़ाओं, अन्यायकारी फैसलों का एवं समस्याओं का करुण चित्रण अंकित किया है।

'धार' उपन्यास में 'संजीव' जी ने आदिवासियों के क्षेत्रों पर कब्जा करने की सरकार की नीतियों को उजागर किया है। आदिवासी अंचल के खनन, दोहन और उसके प्रतिरोध में उठती आदिवासी चेतना को प्रस्तुत किया है। आदिवासी क्षेत्रों में उत्खनन, जमीनों के सौदे हो रहे हैं जो आज पूरे देश के आदिवासियों के अस्तित्व के लिए विकराल दानव जैसा है। विकास के नाम पर विनाश, उद्भव के नाम पर पराभव और शौर्य की परंपरा को दलालों ने खोखला किया है। मंगर और मैना के माध्यम से संजीव जी ने आदिवासियों के शोषण की विडंबना को उजागर किया है। मंगर जैसा गरीब, पीड़ित आदिवासी सबकी जिम्मेदारी अपने कंधे पर उठाकर जीता है। ऐसे आदमी को चोरी के इल्जाम में पुलिस बार-बार उठा ले जाती है और उसके साथ बर्बरता का व्यवहार किया जाता है। पुलिस का मनमाना व्यवहार मंगर बया करता है 'पुलिस असली अपराधी को न पकड़ पाती या पकड़ना न चाहती, तो उसे खानापूति में डाल देती। इसी तरह उसका व्यक्तित्व गल-गलकर स्थानापन्न बनता रहा चोरों, जेबकतरों, गुंडों, बलात्कारियों का।'⁴ कई निरपराध आदिवासियों को पुलिस उठाकर ले जाती है। उनसे जबरन गुनाह कबूल करवाया जाता है। ठेकेदार और सिपाही जैसे लोग अधनंगी, गरीब युवतियों के खुले बदन पर कुदृष्टि डालते हैं। 'लड़के अपने कमीज और लड़कियाँ अपने आँचल और लहंगों में नन्हा गट्ठर बनाकर बीने हुए टुकड़े ले आ रही थी। तौलानेवाले के पास नेगी, धोती, जाघों, खुले-अधखुले स्तनों और जननांगों को घूरता अपनी जाँघें सहलाते खड़ा था।'⁵ ठेकेदारों द्वारा आदिवासी युवतियों का शीलहरण किया जाता है। मजबूरी में वह अपना मुँह तक नहीं खोलतीं। ठेकेदारों के प्रति इतना डर उनके मन में

बसा है कि वे चुपचाप अन्याय सह लेते हैं। कोयले की खदान को खुदवाते समय ब्लास्टिंग में कई घर गिर जाते हैं और बच्चे, बूढ़े दबकर मर जाते हैं 'भार की जो ब्लास्टिंग हुई उसमें उसकी खदान बैठ गई उसी में उसका अकेला सोता बच्चा भालु भी दब गया।'⁶ फैक्टरियों के कारण आदिवासियों की जमीनें बंजर होती जा रही हैं जिसके चलते लोग पेट पालने के लिए फैक्टरी में काम करने के लिए विवश हैं। बड़े धनी लोग आदिवासी औरतों पर अत्याचार करते हैं। मैना ऐसे ही अत्याचार की शिकार होती है। रामसिंह मैना की इज्जत उतारने की कोशिश करता है तो मैना की जीर्ण साड़ी झट से फट जाती है—'ब्लाउज पेटिकोट में फिर भागी मैना उसकी साड़ी परे फेंककर उठकर फिर खदेड़ा रामसिंह ने थोड़ी दूर जाते-जाते रामसिंह का हाथ पीछे ब्लाउज पर पड़कर चर्र से फट गया ब्लाउज।'⁷ आदिवासी युवतियों को अपनी इज्जत दौंव पर लगाकर वासनायुक्त समाज में जीवन काटना पड़ता है। उन पर कई बार हमले होते हैं किंतु पुलिस व्यवस्था धनीवर्ग के दबाव के में मजबूर हो जाती है। लेखक ने आदिवासी स्त्री के यातनाभरे जीवन का वास्तविक चित्रण किया है।

निष्कर्ष

साहित्य समाज का सच्चा रूप प्रस्तुत करता है। जंगल के आसपास, दोहरा अभिशाप, धार जैसे उपन्यासों में आदिवासियों की त्रासदी का सच्चा चित्र दर्शाया है। आज के समय में आदिवासियों के विकास की नितांत आवश्यकता है। आदिवासी क्षेत्रों में विकास एवं सुधार हेतु बहुत कम योजनाएँ आती हैं जिसके दस प्रतिशत भी काम नहीं होता। परिणामतः आर्थिक स्तर गिरता जा रहा है। आदिवासी संस्कृति अपने-आपमें विशेष होने पर भी सरकार की ओर से विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। सरकारी विकास योजनाओं का लाभ उन्हें मिल नहीं पाता। परिणामस्वरूप आदिवासी निर्धनता, बेकारी, अंधश्रद्धा, कुप्रथा, कुरीतियों आदि समस्याओं से जूझ रहा है। उनकी जीवनशैली को सुधारने के लिए सरकार द्वारा नई लाभदायी योजनाओं का निर्माण कर उसे निस्वार्थ भाव से शुरू करना होगा। जीवनस्तर ऊँचा करने तथा उनकी उन्नति के लिए अच्छी रूढ़ियाँ, परंपराएँ, संस्कार, उत्सव, पर्व, कला का संवर्धन करके उन्हें सुरक्षित रखने के लिए प्रयास करना होगा। भारतीय संस्कृति का जतन करनेवाले आदिवासियों की उन्नति के लिए हर तरह प्रयास जरूरी है। तब जाकर आदिवासी अपना आर्थिक स्तर सुधारकर उन्नति पथ पर आगे बढ़ेगा।

संदर्भ

1. जंगल के आसपास, राकेश वत्स, पृ० 270
2. वही, पृ० 195
3. दोहरा अभिशाप, कौशल्या बैसंत्री परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 37
4. धार, संजीव राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 10
5. वही, पृ० 41
6. वही, पृ० 119
7. वही, पृ० 152

हिंदी विभाग, नगरपालिका कला दानजं मालपाणी वाणिज्य
तथा बंनार सारडा विज्ञान महाविद्यालय, संगमनेर,
जिला-अहमदनगर 422605 (महाराष्ट्र)
kadamsachins81@gmail.com

हिंदी महिला उपन्यासों में तनावपूर्ण दांपत्य तथा विवाहेतर संबंधों की अनुगूँज

डॉ० मुक्तिनाथ यादव

प्रोफेसर, हिंदी विभाग

पं० ल०मो० शर्मा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऋषिकेश (देहरादून)

दांपत्य संबंध स्त्री-पुरुष संबंधों की पहली कड़ी है। हमारे सामाजिक जीवन में दांपत्य-संबंध वासनापूर्ति के साधन के रूप में नहीं ग्रहण किया जाता। वह जीवन का एक पवित्र बंधन, त्याग और समर्पण का प्रतीक होता है। विवाह आत्मा की अद्वैतता एवं आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करने का मार्ग है। विवाह बंधन के पीछे हृदय की धार्मिक वृत्ति काम करती है, जो जीवन में पति-पत्नी के बीच विश्वास बनाए रखती है और संबंध को अटूट बंधन में बाँधे रखती है। पारिवारिक जीवन की सफलता ही सामाजिक जीवन को सुदृढ़ आधार प्रदान करती है। दांपत्य-जीवन की जो स्थिति पहले थी उसमें आज अनेक परिवर्तन आ चुके हैं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने हाल के एक फैसले में एक स्त्री को पुरुष के साथ बिना शादी के रहने की इजाजत दी है, और कहा है कि अपने समाज में स्त्री-पुरुष का यह संबंध अनैतिक अवश्य है किंतु गैरकानूनी कतई नहीं। अदालत ने इस फैसले को देते समय हमारे समाज में समय के साथ-साथ आते हुए परिवर्तनों का ध्यान रखा है। यह स्त्री मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। अनेक समकालीन लेखिकाओं की दृष्टि में भी विवाह एक अनावश्यक बंधन है जिससे स्त्री के व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध होता है। विवाह-पूर्व तथा विवाहेतर शारीरिक संबंधों को उचित-अनुचित के बजाय कुछ लेखिकाएँ इसे सहज स्वाभाविक स्थिति के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में दिखाई देती हैं। कुछ उपन्यास लेखिकाएँ दांपत्य संबंध के बारे में विद्रोही तेवर अपना रही हैं।

महिला उपन्यासकारों ने दांपत्य-जीवन के सभी पक्षों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। महिला होने के कारण इस वर्ग के रचनाकारों ने स्त्री के दांपत्य-जीवन में आने वाली कठिनाइयों का बड़े प्रमाणिक ढंग से चित्रण किया है। यद्यपि दांपत्य-जीवन के भावुक सौंदर्य से वह प्रभावित भी दिखाई देती हैं किंतु विभिन्न कारणों से दांपत्य जीवन में आ रही नीरसता और कड़वाहट का बेबाक चित्रण करने में भी वे पीछे नहीं हैं। उनके चित्रण में भोगे हुए यथार्थ-सी प्रामाणिकता सहज रूप में मौजूद है।

हिंदू जीवनदर्शन में विवाह की संस्था को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया गया है। एक अत्यंत पवित्र और अपरिवर्तनीय गठबंधन जिसमें धार्मिक मंत्रों के द्वारा पवित्रता का पुट देते हुए एक अनुष्ठान का स्वरूप प्रदान किया जाता है। देवी-देवताओं को साक्षी बनाकर दो व्यक्ति अधिकारों और कर्तव्यों के सूत्र में बँध जाते हैं। हिंदुओं में विवाह पितृऋण शोध के लिए एक आवश्यक संस्कार है लेकिन समकालीन महिला उपन्यासों से लगता है कि विवाह अब इन मृतप्राय संस्कारों के स्मृति-चिह्न मात्र रह गए हैं। चित्रा मुद्गल के उपन्यास आवां में संजय कनोई

का उसकी पत्नी के साथ संबंध नाम मात्र के रह गए हैं, 'ब्याह का मतलब है मात्र सात फेरे? सात फेरे इतना ही महत्त्वपूर्ण होते तो मेरे और निर्मला के बीच परस्पर समझ का अभाव होता? मेरे लिए परस्पर समझ ही भावों के सात फेरे हैं! रहा कानूनी संरक्षण का सवाल, तुमसे बढ़कर उसके खोखलेपन से और कौन अवगत होगा?'¹¹

हिंदू धर्म में मोक्ष-प्राप्ति के लिए कन्यादान को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। जहाँ पितृ-ऋण-शोधन के लिए परिवार में पुत्र का होना आवश्यक माना गया है, वहीं कन्यादान के पुण्य कर्तव्य से व्यक्ति वंचित न रह जाए, इसके लिए परिवार में कन्या की आवश्यकता को भी माना जाता रहा है किंतु कालांतर में पितृसत्ता के द्वारा पुरुष वर्चस्व कायम हो जाने के बाद यह विचार शिथिल हो गया है। अब अधिकांश घरों में कन्या के जन्म होते ही पिताओं को मूर्च्छा आती है और माताओं की छातियों से दूध सूख जाता है। लड़की पराया धन हो जाती है जिसे बहुत जतन से सँभालकर रखना होता है। जितना जल्दी हो सके माता-पिता इस भार से मुक्त होना चाहते हैं। माता-पिता जिसे उपयुक्त वर समझते हैं उससे कन्या का विवाह कर देते हैं। इसमें लड़की की राय लेना जरूरी नहीं समझा जाता। जया जादवानी ने अपने उपन्यास 'तत्वमसि' में इस सामाजिक विसंगति को दिखाया गया है। उपन्यास की नायिका मानसी अपने बारे में बयान कर रही है, जिसमें भारतीय समाज के व्यापक यथार्थ का स्वर शामिल है, 'बाबूजी ने एक लड़का अपनी मर्जी से पसंद कर लिया। मेरी सगाई तय कर दी। कुछ अजनबी आए, मुझे देखा, पसंद कर लिया। पर वह नहीं आया, जिसे मुझे पसंद करना है—वह तो आया ही नहीं। बाद में मुझे उसकी फोटो दिखाई गई। एकदम साधारण—सा चेहरा। मैंने देखा—मुझमें कुछ भी नहीं जागा। न हर्ष, न विषाद।'¹²

घर चाहे पिता का हो अथवा पति का, दोनों घरों में स्त्री की भूमिका पहले से तय है। बँधे-बँधाए चौखटे हैं जिसमें उसको फिट हो जाना है। दोनों घरों में उसको खामोश रहना है। इस बात के लिए उस पर बचपन से दबाव रहता है, जिसके परिणामस्वरूप उसका आत्मविश्वास जवाब दे जाता है। उसका व्यक्तित्व कुंठित होने लगता है। उनकी जुबान छीन ली जाती है। उसके अहसासों को, उसकी आकांक्षाओं को अनसुना कर दिया जाता है। तब एक दिन उसके भीतर विद्रोह का अंकुर फूटने लगता है। वह अपने अस्तित्व के बारे में सोचने लगती है। 'तत्वमसि' की मानसी के ये शब्द इन्हीं स्थितियों का बयान करते हैं—'...यह जो जिंदगी दे रहे हो तुम मुझे, मुझसे कुछ पूछे बगैर...यह मैं एक दिन छोड़कर बहुत दूर चली जाऊँगी। मैं तुम्हारा दिया जीवन जीने को बाध्य नहीं हूँ। मैं अपनी मर्जी से अपना भविष्य चुनूँगी।'¹³ मानसी के बारे में राजेंद्र यादव की टिप्पणी है, 'मानसी को पति समाज ने दिया है और सिद्धार्थ के साथ शरीर संबंधों की अंतरंगता उसका अपना चुनाव है—बँधी हुई सामाजिक नैतिकता के खिलाफ 'वरण' की स्वतंत्रता का एक्सर्शन या इस्तेमाल है। दूसरे शब्दों में मर्यादाओं की जकड़नभरी यथास्थिति से विद्रोह है।'¹⁴

विवाह किसी औरत को एक दोहराव से भरी जिंदगी के विद्रूप में झोंक देता है। विवाह के द्वारा सेक्स को नियंत्रित किया जाता है। एक स्त्री के शरीर को भोगने का एक पुरुष को अधिकार मिल जाता है। उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'अंतर्वशी' की वाना के पत्नीत्व की परिणति यही है। वह पति शिवेश के द्वारा केवल बार-बार भोगे जाने के लिए है। वह प्यार के क्षणों की सहभोक्ता नहीं बल्कि दृष्टा मात्र रह जाती है—'शिवेश का शरीर उसे रौंद रहा है। वाना समर्पित है। यही उसकी नियति है। यही पत्नीत्व की परिणति...वाना एकदम से महसूस करती है कि उसका पति उसे प्यार कर रहा है और वह स्वयं अपने शरीर से कितनी दूर कितनी अलग हो आई है।'¹⁵

विवाह के बाद स्त्री का घर उसकी दुनिया का केंद्र बन जाता है। घर ही उसका साम्राज्य है। इस साम्राज्य में पति उसका स्वामी है। हर स्वामी का स्वभाव होता है कि वह अपनी संपत्ति को सुरक्षित रखना और अपनी इच्छानुसार उसका उपभोग करना चाहता है। स्त्री उसके संपत्ति-सूची की सबसे कीमती वस्तु है। 'अंतर्वशी' में उषा प्रियंवदा ने शिवेश और वाना के संदर्भ में जीवन के इस यथार्थ का चित्र खींचा है—'शिवेश का मन होता है कि उसे बाहों के घेरे में हमेशा महफूज रखे, उसे बाहर की गंदी, विषाक्त हवा लगने भी न दें, उस पर किसी की दृष्टि भी न पड़े, वह हमेशा एक शिशु को गोद में लिए दूध पिलाती रहे, साथ-साथ एक शिशु कोख में पलता रहे। स्वयं जब भी चाहें उसे भोगते रहें। दिन-दिन रात-रात और वह अस्त-व्यस्त पास में पड़ी रहे, सर्वदा उपलब्ध।'⁶

विवाह बंधन में स्त्री-पुरुष के बीच कामुकता की अनुभूति बहुत दिनों तक नहीं टिक पाती। इन परिस्थितियों में स्त्री कामुक कल्पनाओं का सहारा लेती है। उषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यास अंतर्वशी की नायिका वाना का यह चित्र प्रस्तुत किया है—'वाना सपना देख रही है। वह पुराने बनारस वाले घर में है। वह तिमजिले की छत से कपड़े बटोरने गई है। ...सारे कपड़े बाहों में भरकर वह मुड़ी है, वहाँ कोई आड़ में खड़ा है, उसने बाँह पकड़कर वाना को बरसाती की छत के नीचे खींच लिया है। वाना और वह दोनों मिलकर जल्दी-जल्दी एक चादर जमीन पर डाल देते हैं। अब वह वाना को प्यार कर रहा है। वाना उसका चेहरा नहीं देख पा रही है, पर उसका लंबा, सुगठित युवा शरीर और उसकी सुगंध वह पहचान रही है। वह प्रत्युत्तर में उससे लिपटी हुई है।'⁷ इस प्रकार वाना वैवाहिक जीवन से क्षीण होती कामुकता की अनुभूति को स्वप्न के माध्यम से पुनः अर्जित करती है।

वैवाहिक जीवन की विडंबना है कि उसकी परिणति प्रायः दमन और छद्म में होती है। हर दिन का आत्यंतिक शारीरिक लगाव भी पति-पत्नी दोनों के बीच आपसी समझ और समानुभूति विकसित नहीं कर पाता। प्रायः पति पत्नी के मन के भीतर की उथल-पुथल को जानने की आवश्यकता ही महसूस नहीं करता। उसके सपने, उसकी कल्पनाएँ, उसकी ललक, भावनात्मक परिवेश यह सब जानने की वह कोशिश नहीं करता। विवाह की सेज पर क्या उसको सचमुच आनंद की अनुभूति होती है? उसकी हर बात को चुपचाप स्वीकार कर लेने में क्या वह खुश होती है? क्या वह उससे प्यार करती है? एक पति के लिए अपनी पत्नी से इसप्रकार के प्रश्न करना निहायत गैरजरूरी और अशोभनीय है। किंतु एक दिन पत्नी को लगता है कि यह सब अब नहीं चलेगा। 'अंतर्वशी' की वाना को लगता है कि सभी के जीवन में नए मोड़, नई गति है—'ग्रेस को भी नया बॉय फ्रेंड मिल गया है...एक पुरुष या स्त्री का पल्ला पकड़कर कौन बैठता है!...अगर ग्रेस उसकी जगह होती तो कब का शिवेश को छोड़ चुकी होती!...मन न मिले तो विवाह क्या? साथ रहना क्यों? बहुतेरे लोग हैं, अवसर हैं, क्यों अपने को होम किया जाए।'⁸ वैवाहिक बंधन वाना के लिए भार स्वरूप लगता है। वह अपने पति शिवेश से विमुख होने लगती है। वह मानने लगी है कि उसका हर दृष्टि से राहुल के साथ चले जाना ही ठीक है। वाना अपने पति शिवेश की आँखों में आँखें डालकर साहस के साथ कह देती है—'शिवेश! आइ एम लीविंग यू।'⁹

ममता कालिया का उपन्यास 'एक पत्नी के नोट्स' भारतीय समाज में मर्दवादी सोच के खिलाफ एक स्त्री-विमर्श का उपन्यास है। उपन्यास की नायिका कविता नारी-चेतना से संपन्न है। उसके व्यक्तित्व में गरिमा है जिसे वह हमेशा सहेजकर रखती है। इससे उसको समाज में सम्मान भी मिलता है किंतु घर के भीतर ऐसा नहीं है। वहाँ पर पितृसत्तात्मक समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले पति द्वारा उसे बराबर यह बोध कराया जाता है कि घर के भीतर उसका दर्जा उसके बराबर

नहीं है। इस उपन्यास में पति-पत्नी के बीच का संतुलन बिगड़ा हुआ है। कविता विवाह नामक संस्था को बचाए रखने की जद्दोजहद में अपने को नष्ट नहीं करती, बल्कि नई संभावनाओं की तलाश करती है। उपन्यास की नायिका कविता अपने पति की सुरक्षा के लिए बेहद चिंतित हो जाती है। जब संदीप आफिस जाने के लिए कार में बैठा है तब कविता के दिल की घंटी बज उठती है—‘सावधान, होशियार, तुम्हारा पति कार पर नहीं, शिकार पर गया है—उठो, लपको, पीछा करो। शहर सुखी विधवाओं और दुखी सधवाओं से भरा पड़ा है, उसे बचाओ।’¹⁰ निराशा और बेचैनी कविता को आच्छादित कर लेती है। वह क्षुब्ध रहने लगती है। कविता को घर के भीतर अकेले में पति की दी हुई यंत्रणा ही नहीं झेलनी पड़ती, बल्कि लोगों के सामने उसका उपहास भी उड़ाया जाता है। उसका पति दूसरे घर की स्त्रियों के सामने अपने घर की निंदा करता है। कभी-कभी वह वाचाल हो उठता है और गलतबयानी भी करता है।

बड़े शहरों में सफलता को जीवन का मूलमंत्र और स्वावलंबन को सशक्तिकरण का एक मात्र औजार मानने वाली बहुत सी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ जाति-संप्रदाय की परवाह किए बिना सहजीवन को स्वतंत्रता का आधार बनाती हैं किंतु उनके लिए जीवन कम कठिन नहीं होता है। गीतांजलिश्री के उपन्यास ‘माई’ की सुनैना एहसन के साथ ‘लिव इन’ है। बुआ आगाह करते हुए कहती हैं—‘सुनो, मैं जानती हूँ, तुम माई को बहुत चाहती हो, कहीं ऐसा-वैसा कदम उठाओगी तो उस बेचारी का क्या होगा? ...लड़कियों की दोस्ती लड़कियों से होनी चाहिए।’¹¹ वस्तुतः इस उपन्यास में माई घर-परिवार, सामाजिक परंपरा और नैतिकता से बँधी नारी है और बेटी सुनैना अपनी जिंदगी के बारे में स्वयं निर्णय लेना चाहती है। वह माँ नहीं बनना चाहती है। सुनैना विवाह-संस्था को नकारते हुए नई नारी की नैतिकता के नए प्रतिमान गढ़ती नजर आती है।

दांपत्य संबंधों में ऊब और विवाहेतर संबंधों के प्रति ललक स्त्री-लेखन की आधारभूत विशेषता के रूप में उभरकर सामने आ रहे हैं। विवाह स्त्री और पुरुष के बीच संबंध का नियमन करता है। विवाह द्वारा स्थापित संबंधों में मधुरता का अभाव नहीं होता, किंतु नियमों में आबद्ध होकर यह मशीनीकृत हो जाता है और अपनी जीवंतता खो देता है। इससे ऊब पैदा होने लगती है। विवाहेतर संबंध इसी ऊब की देन हैं। दांपत्य जीवन में प्रवेश के बाद भी मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास ‘चाक’ की नायिका सारंग के कई हिस्से कुँवारे रह गए हैं। पति रंजीत का कठोर और खुरदरा बर्ताव उसको असंतोष देता है। वह किसी मुलायम कोमलता की तलाश में है। स्कूल के मास्टर श्रीधर की अंतरंगता में उसे यह सब मिलता है। श्रीधर के बारे में वह सोच रही है—‘...मैं कैसे कहूँ कि तुम्हारे साथ चुपचाप बैठना भी अच्छा लगता है। पता नहीं मन में क्या है? कौन सी भावना है, या बिल्कुल खाली-खाली है कुछ, जो चुपचाप बैठकर ही भरते रहना चाहता है।’¹² सारंग दागदार जीवन से डरती नहीं। वह जान-बूझकर वह रास्ता खोलती है, जिसे खोलना एक पत्नी के लिए वर्जित है। उसको लोकलाज का भय नहीं है। वह इसे पति को लेकर गद्दारी भी नहीं मानती। लेकिन अपने पति से इसके बारे में बता भी नहीं सकती—‘मैं कैसे कहूँ रंजीत से कि मेरी जिंदगी सूनी, घायल, लाचार थी। वे आए तो लगा घुटनभरे आसमान को फोड़कर हवा का कोई ताजा झोंका आया है, जो मेरे भीतर नई साँसें-घावों पर शीतल मरहम और सुनसान में मेलें! तुम इसे कोई भी नाम दो। ज्ञान-ध्यान कहो, या प्यार-प्रीति।’¹³ प्यार के एक-एक कतरे को प्यासी-सी तरसती वह श्रीधर के लिए पति की मार सहती है, बदनाम होती है। फिर भी उसकी नजर में यह व्यभिचार नहीं आजादी है।

दांपत्येतर संबंध स्थापित करने और उनको सही साबित करने हेतु मर्दों के अपने तर्क हैं।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'दिलो-दानिश' की महकबानो नायक वकील कृपानारायण की रखैल है। बिरादरी की मर्यादा के सवाल से जूझते हुए कृपानारायण कहते हैं—'भला पूछिए मर्द हैं हम। मेहनत करते हैं, कमाते हैं। कुनबे को पालते-पोसते हैं। तो क्या थोड़ी-बहुत दिलजोई-दिल्लगी पर भी हमारा कोई अख़्तियार नहीं! एक हमारी बीवी है—जाने किसके बहकावे में आकर यूँ तड़प रही है ज्यों उसकी गरदन पर हम छुरी रखे बैठे हों। दिलो-दिमाग में उगी आँख किसी हकीकत से मिल जाए, जुड़-बंध जाए तो इस ताल को मेल से कैसे अलग कीजिएगा।'¹⁴

प्रभा खेतान के उपन्यास 'छिन्नमस्ता' की प्रिया का पति एक सफल व्यापारी है। वह हर छह महीने में एक से एक हसीन सेक्रेटरी बदलता रहता है और उसकी भूख मिटती रहती है। वह कभी-कभी लड़कियों को घर भी लाता है। एक लड़की सचमुच उसके प्रेम में पागल-सी हो जाती है। उसके गर्भ में नरेंद्र की संतान है। उसकी पत्नी प्रिया सब जानते हुए भी चुपचाप बर्दाश्त करती है, क्योंकि वह इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी है कि 'जिस आदमी से मुझे लगाव ही नहीं वह कुछ भी करे।'¹⁵ नरेंद्र के पिता पत्नी की आड़ में तिलोत्तमा नाम की एक बंगालन को रखैल बनाकर रखे हुए हैं। नीना उनकी नाजायज संतान है। रोज शाम को उसके घर जाते हैं और देर रात को लौटते हैं। उनकी पत्नी के सपाट और निष्क्रिय चेहरे पर कोई शिकन नहीं। हाँ, कभी-कभी सुबह उनकी आँखें सूजी हुई लगती हैं। मानो रात को बहुत रोई हों। कोई विरोध नहीं। लगता है ऐसे जीवन को मौन रूप में उसके द्वारा स्वीकृति प्रदान कर दी गई है।

गीतांजलिश्री के उपन्यास 'माईके' की कथानायिका के पति अर्थात् बाबू की लखनऊ में रखैल है, जिसे माई जानती है। उसके घर को माई के दोनों युवा बच्चे देख भी आए हैं। फिर भी माई चुप हैं, जैसे उनको कुछ मालूम ही नहीं। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' की अहिल्या को लेकर जगोसर झोपड़ी बनाकर रह रहा है। उसकी पत्नी में प्रतिवाद करने की न तो शक्ति है न साहस। वह इतना सोचभर सकती है कि उसका आदमी मालिक, हितैषी, मित्र कुछ भी नहीं। इस उपन्यास में तुलसिन गनेसी की रखैल है। जगोसर की बेटी सुगना को अभिलाख सिंह बलपूर्वक रखैल बनाए हुए है। इन सब स्थितियों में पत्नियाँ सब-कुछ जानते-समझते हुए चुपचाप सहन कर रही हैं। पुरुष सत्ता के आगे वे कमजोर और लाचार हैं।

जो पत्नी अपने पति के दांपत्येतर संबंधों को जानते हुए भी उसको बर्दाश्त करती है, वह पति के इस व्यवहार को प्रकारांतर से सही साबित करती है। लेकिन हर स्त्री ऐसा नहीं करती। वह अपनी सामर्थ्य और सीमा भर इसका विरोध और प्रतिकार करती है और कभी-कभी उसका विरोध क्रूरता की हद को भी छूता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' के मंसाराम गाँव के जमींदार हैं। उनकी पत्नी आनंदी से करन और जोधा दो बेटे भी हैं। खेतों में डेरा जमाने वाली कबूतरा जनजाति की कदमबाई से उनके शारीरिक संबंध हैं। उससे मंसाराम को एक बेटा भी है। मंसाराम की पत्नी की नजर में कदम ने पतिव्रता औरत के सुहाग पर डाका डाला है। कदम करन की माँ के सीने पर मूँग दल रही है। मंसाराम की पत्नी का हाल बुरा है। उसे अब अपनी छाया पर भी विश्वास नहीं। वह अकेलापन महसूस करती है। अकेलेपन और असुरक्षा की भावना उसे क्रूर बना देती है। वह कदमबाई के बेटे को कुत्ते से नोचवाती है। वह घर में घोषणा कर देती है कि इस घर में या तो वह रहेगी या उसका पति। वह अपने बेटे को ललकारते हुए कहती है—'जोधा, तेरा बाप आधी रात कबूतरी के डेरे पर बिताकर घर की सुधि लेता है। लानत है तुम पर, अधम के लिए द्वार खोल देते हो! तेरी माँ इस नालायक का रोना नहीं रोती तब क्या उसे दुख भी नहीं? हम

तो कहते हैं रात को पीटे दरवाजा तो गाँव के चार आदमी तो सुनें। फिर अपने-आप डूब मरेगा। बदमाश ने खानदान के दीये में मूता है।¹⁶

‘इदन्नमम’ में मैत्रेयी पुष्पा ने कुसुमा और दाऊजी के प्रसंग में दांपत्येतर संबंध को अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। कुछ नाते-संबंध किसी नाम के मोहताज नहीं होते। कुसुमा बताती है कि ‘सच्चा नाता तो पानी और प्यास का है।’¹⁷ कुसुमा में अपने ससुर समान दाऊजी से शारीरिक संबंध स्थापित करने के लिए कोई पाप-बोध नहीं है। कुसुमा के भीतर बसी परंपराओं में बँधी नारी विचलित होती नहीं दिखाई देती है। कुसुमा ने अपने जीवन-अनुभव से देख लिया है कि अग्नि को साक्षी मानकर, सात फेरे लेकर जिस पति-पत्नी-संबंध को जीवनसाथी कहा गया है वह कितना व्यर्थ है। क्योंकि इस संबंध में एक तो खूँटे से बँधा पांगुर करने वाला पशु के समान है तो दूसरा स्वर्ग में उड़ता हुआ पक्षी। इसलिए उसमें यह कहने का साहस है कि ‘ढोर और पंछी सहचर नहीं हो सकते...।’¹⁸

दरअसल, वैवाहिक संबंधों में हम पति और पत्नी के बीच आपसी निष्ठा, ईमानदारी और दोस्ती की उम्मीद करते हैं किंतु दांपत्य जीवन में इन जीवनमूल्यों के बने रहने की अनिवार्य शर्त यह कि पति और पत्नी के बीच संबंध जीवन के ठोस मामलों में स्वतंत्रता तथा बराबरी पर आधारित हों। समकालीन महिला उपन्यासों के सम्यक् अनुशीलन से ऐसा लगता है कि विवाह जैसी पवित्र संस्था में आदर, सम्मान, मर्यादा, निष्ठा, विश्वास तथा ईमानदारी जैसे जीवनमूल्यों का तेजी से क्षरण हो रहा है। आज विवाह हमारे लिए जीवन-संस्कारों के स्मृतिचिह्न मात्र रह गए हैं।

संदर्भ

1. चित्रा मुद्गल, आवा, 1999, पृ० 523
2. जया जादवानी, तत्त्वमसि, 2000, पृ० 20
3. जया जादवानी : वही, पृ० 21
4. राजेंद्र यादव, हंस, मई, 2000, पृ० 8
5. उषा प्रियंवदा, अंतर्वशी, 2000, पृ० 55-56
6. वही, पृ० 116
7. वही, 2000, पृ० 160
8. वही, 2000, पृ० 191
9. वही, 2000, पृ० 226
10. ममता कालिया, एक पत्नी के नोट्स, 1997, पृ० 15
11. गीतांजलि श्री, माई, 1993, पृ० 132-133
12. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, 1997, पृ० 154
13. वही, पृ० 210
14. कृष्णा सोबती, दिलो-दानिश, 1993, पृ० 133
15. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, 1993, पृ० 167
16. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, 2000, पृ० 88
17. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, 1994, पृ० 82
18. मैत्रेयी पुष्पा, वही, पृ० 83

4/2 अंबेहोम्स अपार्टमेंट, लेन नं० 09
हनुमंतपुरम, गंगानगर, ऋषिकेश 249201
मो० 9412970691
Email : yadavmukti@yahoo.com

स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य निबंध साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ

प्रा० जी० डी० गभाले

हिंदी विभाग, आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, नागठाणे, ता० जि० सातारा (महाराष्ट्र)

आदिकालीन हिंदी साहित्य में व्यंग्य का प्रादुर्भाव दिखाई देता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में व्यंग्य निबंध साहित्य अधिक विकसित हुआ है। आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य का प्रारंभ भारतेंदुकाल से हुआ है। व्यंग्य निबंध साहित्य में समाज की आलोचना हुई है। व्यंग्य निबंधकारों ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, शैक्षिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। व्यंग्य निबंधकार मानो पर्वत के समान है। उसकी जड़ें धरती को बाँधे हुए हैं जो अंबर छू लेने की क्षमता रखता है, साथ ही जिसमें अनेक धाराएँ प्रवाहित होती हैं। उन धाराओं से नवजीवन का निर्माण करता है। ऐसे ही व्यंग्य निबंधकारों ने हिंदी साहित्य में नया संचार लाया है। व्यंग्य निबंध साहित्य के बारे में कहा जाता है कि व्यंग्य निबंध वह अनंत सागर है जिसमें जितनी बार गोता लगाया जाए उतने ही रत्न हाथ लगेंगे। व्यंग्य साहित्य के अंतर्गत निबंधकार अपनी अंतर्शक्ति के बल पर समाज की सर्द गर्म हवाओं का दाब मापन करता है। समाज जब परिवर्तन की पीड़ा, वेदना में तड़प रहा होता है। तब उसकी व्यग्रता दिन-प्रतिदिन नए रूप धर रही होती है जिससे समाज पीड़ा से मुक्त हो सके। व्यंग्य पीड़ादाई, निराशाजनक तथा निरुत्साही समाज जीवन में आशा का संदेश लाता है, उसमें स्फूर्ति जगाता है और उसे संस्पर्श के लिए तैयार करता है। व्यंग्य निबंधों के माध्यम से समाज में सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् की प्रतिष्ठापना करने के लिए निबंधकार प्रयत्नशील रहता है और अपने लक्ष्य के मार्ग में आनेवालों की खाल उधेड़ देता है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा व्यंग्य निबंध पर समाज का गंभीर दायित्व है। व्यंग्य में एक बलवती प्रेरणा तथा पूर्व योजना होती है जिसके आधार पर एक विशेष उद्देश्य को स्पष्ट करने में सफलता पाई जा सकती है। व्यंग्य साहित्य अपनी चतुराई और मीठी चोट से सोचने पर विवश करता है। व्यंग्य निबंध साहित्य के द्वारा समाज-सुधार, राष्ट्रप्रेम, विवकेशील विचारशक्ति का निर्माण करना जैसे कई महान कार्य निबंधकार रोशनलाल सुरीरवाला, आत्मानंद मिश्र, संसारचंद्र, गोपाल चतुर्वेदी आदि ने किया है। हिंदी के व्यंग्य निबंधकार सामाजिक दृष्टि से जागरूक रचनाकार हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त दहेज, नारी शोषण, फैशन, महँगाई, दिखावे की प्रवृत्ति, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, विकृत मानसिकता, स्वार्थ, अंधविश्वास, ईर्ष्या आदि विसंगतियों पर आक्रोशपूर्ण प्रहार किया है। आधुनिक युग में भौतिक सुख-सुविधा के साधन बढ़ने से मनुष्य की आकांक्षाएँ भी बढ़ गई हैं। निरंतर बढ़ती हुई आर्थिक खाई के कारण आम मनुष्य की क्रयशक्ति कम हुई और लालसाएँ बढ़ी हैं जिससे उसका मोहभंग होकर वे निराश बने हैं। अपनी आकांक्षाएँ, इच्छाएँ पूरी करने के लिए वे गलत रास्तों पर जा रहे हैं जिससे समाज का नैतिक स्तर गिर रहा है। सामाजिक परंपरा में जो कुरीतियाँ, पद्धतियाँ प्रचलित हैं उससे सामाजिक व्यवस्था बिगड़ रही है। आधुनिकयुग में भी नारी को समाज स्तर पर उसके अधिकार नहीं मिल रहे हैं। दहेज जैसी प्रथा के कारण, नारी का शोषण एवं अन्याय

अत्याचार होने से नारी की दुर्दशा हो रही है। अंधविश्वास का बोलबाला शिक्षित समाज में भी फैला है। देवी कृपा, नसीब, नियति पर लोगों का विश्वास अटूट है जिससे लोग कर्म न कर फल की अपेक्षा करते हैं जिसके लिए कई ऊटपटांग हरकतें करते हैं।

व्यंग्य निबंधों में वर्ग-भिन्नता, ऊँच-नीच भाव, झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा आदि विसंगतियों के शिकार बने लोगों के सामाजिक समस्या को उजागर किया है। समाज का व्यवहार, नीतियाँ और पद्धतियों पर प्रहार कर व्यंग्यकारों ने समाज सुधार की अपेक्षा रखी है। राजनीति ने समाज को बहुत प्रभावित किया है। राजनीति के कारण जातिवाद का जहर तेज हुआ है। सांप्रदायिक वैमनस्यता की खाई और चौड़ी हुई तथा असामाजिक तत्त्वों के हौसले बुलंद हुए कुशक्ति का प्रभाव बढ़ने से स्वार्थ, अहम, तिकड़मबाजी, फरेब, गबन, धूर्तता आदि दुगुणों ने समाज को घेरा है। इन सभी समस्याओं को व्यंग्य निबंधों में उजागर किया है।

रोशनलाल लाल जी ने 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' निबंध में शादी संस्कार पद्धति में प्रचलित दहेज की विकृत कुप्रथा पर व्यंग्य किया है। शादी बनाना भारतीय परंपरा का, रीति-रिवाजों का अहम संस्कार है। इस संस्कार से दो मनों का मिलन होता है किंतु दहेज जैसे बीमारी ने इसे खोखला किया है। शादी के माहौल में सब-कुछ मंगलमय होने की आशा रखनेवाले खुद ही दहेज की दीवार खड़ी करके मंगलकार्य को अमंगल बनाने का न्यौता देते हैं। दहेज में लड़की के माता-पिता से पैसे, जेवर, वस्तुएँ विभिन्न प्रकार की माँगें की जाती हैं। शादी के दहेज में मिली वस्तुओं का वर्णन लेखक करते हैं—'पूरा ड्राइंगरूम दहेज के सामान से भरा पड़ा था। 'पंखा, सोफा, ट्रांजिस्टर, रेडियो, टेप रिकार्डर, स्टील के बर्तन, सेफ, टेलीविजन, फ्रिज और न जाने क्या-क्या था। जैसे पकड़े गए तस्करी माल का किसी नए थाने में प्रदर्शन हो रहा था।' लेखक ने दहेज में मिली वस्तुओं को व्यंग्यात्मक रूप से वर्णन प्रस्तुत कर दहेज जैसी कुप्रथा पर व्यंग्य किया है। लड़की को जरूरत की सारी वस्तुएँ देने के बावजूद लड़केवालों का लालची मन नहीं भरता। कदम-कदम पर लड़कीवालों के सामने परेशानियाँ खड़ी कर देते हैं। जब लेखक शादी के घर में बधाई देने के लिए जाते हैं तो घर में सन्नाटा छाया हुआ देखकर पूछते हैं—कोई मर गया क्या? तो जवाब मिलता है कि यह सन्नाटा इसलिए छाया हुआ है क्योंकि—'शादी में स्कूटर नहीं मिला इसलिए।'² इस प्रकार प्रस्तुत निबंध में दहेज के लालची लोगों पर व्यंग्य कर दहेज जैसी कुप्रथा को दर्शाकर सामाजिक समस्या को चित्रित किया है। पढ़े-लिखे युवक भी दहेज लिए बिना शादी करने के लिए तैयार नहीं होते। भिखारी की तरह वधु के घरवालों के सामने दहेज का कटोरा लेकर खड़े होकर भीख माँगते हैं। दहेज लेनेवालों को हवालात में डालना चाहिए या तो गाँव निकाला कराना चाहिए तभी दहेज जैसी कुप्रथा का अंत होगा।

संसारचंद्र जी ने 'सब्जी कॉन्फ्रेंस' निबंध में सामाजिक स्तर एवं वर्गभेद की समस्या को उजागर किया है। मनुष्य जन्म से स्वतंत्र होता है किंतु मनुष्य ने ही उसे जाति-धर्म, ऊँच-नीच में बाँटा है। उच्चवर्ग हमेशा गरीब, निर्धन को प्रताड़ित करता रहता है। निम्न लोग उच्चवर्गियों के केवल गुलाम बनकर रह गए हैं। लेखक ने सब्जियों के वार्तालाप द्वारा कुछ ऐसा ही व्यंग्य किया है—'मेरा नाम शलगम है। मैं स्वर्ग की सब्जी हूँ। स्वर्ग से मेरा अभिप्राय भूस्वर्ग कश्मीर से है, किसी कश्मीरी से मेरा मजा पूछो। कश्मीरी क्या लाल होते हैं, यह मेरी कृपा का ही फल है।'³ इसके उत्तर साग का दर्द कुछ इस प्रकार व्यक्त होता है—'मुझे इस सम्मेलन का निमंत्रण तक नहीं भेजा गया।...संभवतः मुझे सब्जियों की बिरादरी से खारिज समझा गया है। हम गाँववालों को कब

से यह शिकायत थी कि हमारी शहरी बिरादरी हमें अपने से हीन समझती है।⁴ वर्गभेद की समस्या आज भी अपना मुँह फैलाए खड़ी है।

चतुर्वेदी जी ने 'फार्म हाउस के लोग' निबंध में नारी की समस्या को उजागर किया है। शादी-विवाह के मामले में लड़की के मन का विचार नहीं किया जाता। अधिकांश लड़की वाले अपनी पसंद के लड़के से शादी तय करते हैं। लड़की को पूरे जीवन लड़के से प्यार हो या न हो उसी के साथ जीवन काटना पड़ता है। इक्कीसवीं सदी में भी कुछ लड़कियों की शादी उनके मन के विरुद्ध होती है। उदाहरण देखिए—'यों भी इक्कीसवीं सदी में बड़े-बुजुर्गों का बेटे-बेटियों की शादी तय करना एक मजाक ही है। शादी एक अहम फैसला है। उनके पूरे जीवन का सवाल है। लड़की से उन्हें प्रेम न हो, वह उसे जानते तक न हों और सिर्फ बाबू कह रहे हैं, इसलिए शादी कर ले।'⁵ लड़कियों की बिना मर्जी के शादी करवानेवाले बुजुर्गों पर कड़ा प्रहार कर आधुनिक युग में नारी के अधिकार न मिलने की समस्या को उजागर किया है।

मिश्रजी ने 'कुदुआ' निबंध में ब्रह्मभोज जैसी कुप्रथा पर व्यंग्य किया गया है। समाज की कई पुरानी परंपराएँ आज भी हमारा पीछा नहीं छोड़ रही हैं जिसके चलते सामान्य, निर्धन लोगों को परेशानी होती है। ब्रह्मभोज मृतक व्यक्ति के घर में किया जाता है जिसमें गाँव के लोग तथा रिश्तेदार आकर भोजन करते हैं। इस अन्नदान की प्रथा में इतना धन खर्च होता है कि मृतक का परिवार ऋण में डूब जाता है। लेखक ने बैसवाड़े गाँव की इस कुप्रथा को उजागर किया है—'पिंडदान से अपने पूर्वजों को तार देने का शुभ संवाद प्रसारित करने के लिए लौटकर वह ब्रह्मभोज करता है।'⁶ इस ब्रह्मभोज में ब्राह्मणों, गाँववालों तथा रिश्तेदारों के साथ ही साधु-संत, फकीर, भिखारी भी उस घर में खाना खाते हैं। इस ब्रह्मभोज की प्रथा को निभाने के लिए कितने ही निर्धनों को अपना घर और जमीन गिरवी रखने पड़ते हैं।

निष्कर्ष : व्यंग्य निबंधकारों ने अपने निबंधों में समाज के यथार्थ को उजागर किया है। मनुष्य को जीवन में अनेकानेक समस्याओं से जूझकर आगे बढ़ना पड़ता है। आज के समय में समाज जीवन, व्यक्तियों के पारंपारिक संबंधों का जटिल जाल बन गया है। हमारी सामाजिक व्यवस्था अत्यंत जटिल है। सामाजिक विषमता, रूढ़ परंपराओं, कुप्रथाओं पर व्यंग्य किया है। समाज का सच्चा रूप निबंधों में दृष्टिगोचर होता है। समाज में व्याप्त महँगाई, दहेज, बालविवाह, विधवाओं की स्थिति, मुनाफाखोरी, कालाबाजारी, ऊँच-नीच, सामाजिक प्रतिष्ठा, पड़ोसी धर्म, अंधविश्वास, आवास समस्याओं आदि को उजागर करके समाजहित के लिए व्यंग्यकारों ने अपनी कलम उठाई है। आज के समय में भी गाँव-देहातों में ऐसी स्थिति दिखाई देती है। व्यंग्य निबंधकारों ने इस प्रकार की विषमतापूर्ण समाज व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया है।

संदर्भ

1. रोशनलाल सुरीरवाला, पत्नी शरणं गच्छामि, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1996, पृ० 129
2. वही, पृ० 129
3. संसारचंद्र, सब्जी कॉन्फ्रेंस (सोने का दाँत), हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली, पृ० 28
4. वही, पृ० 28
5. गोपाल चतुर्वेदी, फार्म हाउस के लोग, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली, पृ० 27
6. आत्मानंद मिश्र, कुदुआ (मुश्किल में पड़ गए), ग्रंथम रामबाग, कानपुर, पृ० 89
7. डॉ० बालेंदुशेखर तिवारी, हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, 1978

नाथूराम शर्मा 'शंकर' की रचनाधर्मिता

विद्या प्रभाकर डॉ० कनुप्रिया प्रचण्डिया

कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद ने लिखा था, 'शायद कोई जमाना आए कि हरदुआगंज (नाथूराम शर्मा 'शंकर' की जन्मभूमि) हमारा तीर्थस्थान बन जाए। इसमें संदेह नहीं था कि शंकर जी आशु कवि थे और उनकी कविता का वही उद्देश्य था जो सुधारक के भाषण का होता है।'¹ 'हरदुआ' एक गाँव है और 'गंज' कस्बा। हरदुआ गाँव पहले बसा था। फिर बाद में इसी गाँव के निकट मंडी (गंज) बनी। 'हरदुआ गंज' आज अलीगढ़ की बड़ी मंडी है। नाथूराम शर्मा 'शंकर' के समय में ही हरदुआगंज में साहित्य रचना करने वालों में कूढ़ेलाल, मुकंद, बिहारीलाल माहेश्वरी, नेतराम 'कुपड़', जानकीप्रसाद, गोवर्धन एवं वैश्य नाथूराम 'हाकिम' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त हरदुआगंज एवं उसके क्षेत्र के कर्णसिंह कर्ण, रामस्वरूप शास्त्री, नवाबसिंह चौहान 'कंज', रविचंद्र शास्त्री 'नीरव', 'अंबादत्त शर्मा 'अंब', 'डॉ० अंबाप्रसाद 'सुमन', मधुरशास्त्री, सत्यप्रकाश गोस्वामी ने हिंदी साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की है। वर्तमान में गौरीशंकर शर्मा, विष्णुकुमार विमल, आनंदवल्लभ शर्मा, राधेश्याम पांडेय, ओमस्वरूप 'अंकुश', देशराज सिंह, विष्णु स्वरूप मिश्र, प्रकाश चंद्र सनाढ्य, रामगोपाल 'दिलेर', गोपाल सिंह वर्मा, ताराचंद्र जोशी, 'विकट', ओमप्रकाश 'प्रणव' एवं नवाबसिंह यादव 'नवीन' हरदुआ गंज के अन्य-अनेक साहित्यकार विविधमुखी साहित्य सेवा में संलग्न हैं। कोई विरला पुण्य संचयी व्यक्ति ही ऐसा होता है, जिसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी संतति भी उस जैसी प्रतिभावती हो और उसी की सहज-प्रकृत-कर्म-परंपरा की कड़ी में कवयिता या कवयित्री बनकर अपने वंश प्रवर्तक के नाम को अक्षुण्ण रखने में योगदान दे। इस दृष्टि से नाथूराम शर्मा शंकर के पुत्र पद्मश्री हरिशंकर शर्मा, हरिशंकर शर्मा के पुत्र कृपाशंकर शर्मा और कृपाशंकर शर्मा की पुत्री इंदिरा 'इंदु' कवि-संतति-परंपरा के चार स्तंभ हैं। कवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' के अन्य पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र भी लेखक, पत्रकार शिक्षक आदि के रूप में साहित्य सेवी कहे जा सकते हैं।

द्विवेदीयुग के प्रभामंडल में नाथूराम शर्मा 'शंकर' का पृथक और विशिष्ट स्थान था। द्विवेदीजी के साथ स्नेह-सद्भाव होने पर भी उनका काव्य व्यक्तित्व स्वतंत्र ही बना था। भावनाओं की ऊर्जा, कल्पना की बुलंदी, भाषा का मुक्त प्रवाह कवि कोविद शंकर के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं और ये ही उत्तम काव्य के भी गुण हैं।² नाथूराम शंकर का काव्य-वैभव अनन्य है। वाक्विभूति अनुपमेय है। उनकी काव्य-दृष्टि एकांगी नहीं बहिर्मुखी थी। काव्य में उनके जीवन के सभी आयामों का आंकलन मिल जाता है। हिंदी साहित्य में उनका नाम अविस्मरणीय रहेगा। किंतु दुर्भाग्य का विषय है कि उस इतिहास में जो उनका अधिकृत स्थान था, इतिहासकार वह उन्हें सौंप नहीं पाए।³ नाथूराम शर्मा 'शंकर' के स्वभाव की सौम्यता, निश्छलता एवं उदारता उच्चतर मानव मूल्यों की उपलब्धि की आकांक्षा को प्रबल करती है। शंकर जी का जीवन साधारण व्यक्ति का जीवन है, इसीलिए उनके काव्य में साधारण भारतवासी के हृदय की पीड़ा

है। समाज सुधार के कार्यों में संलग्न होने के कारण शंकर जी का जनसमाज से निकट-संपर्क रहा है, इसलिए उनके सुख-दुख, गुण-दोषों, भावों और मनोवृत्तियों से वे भली-भाँति परिचित थे। यही कारण है कि शंकर जी के काव्य में भारतीय हिंदू-समाज की अधोगति एवं पिछड़ेपन का सजीव चित्रण हुआ। देश के दारिद्र्य, व्यापारियों के लाभ, पूँजीपतियों की अनीति, जमींदारों के अत्याचार, शासकों के अनाचार और सामान्य जनता की मोहान्धता का नाथूराम शर्मा 'शंकर' को निकट से परिचय था। इसीलिए इन सबके सुधार के लिए अतीव सशक्त शैली में शंकर कविता कर सके हैं। नाथूराम शर्मा 'शंकर' के व्यक्तित्व के गुणों का प्रतिनिधित्व उनके काव्य में विभिन्न स्थलों पर सहजता से देखा जा सकता है।

नाथूराम शर्मा 'शंकर' रससिद्ध वश्यवाक कवि थे। वह काव्य जगत में एक सजग युगद्रष्टा के रूप में अवतरित हुए। उन्होंने अपने युग की परिस्थितियों को आत्मसात् कर काव्य-विषयों का चयन किया है। शंकर जी की शुरुआती रचनाएँ भारतेंदुकाल के पारंपरिक विषयों-शृंगार आदि में सृजित हुई हैं। देश-प्रेम और समाजोत्थान से संबंधित उनकी रचनाएँ द्विवेदी युग के अंतर्गत आती हैं। 'गुलजारे चमन' शृंगार रस प्रधान नाटक है, जिसकी भावभूमि काल्पनिक है। इसे देखकर कहा जा सकता है कि शंकर जी एक कुशल नाटककार भी थे। यह शंकर जी की प्रारंभिक एवं अप्रकाशित पद्यरचना है। इसका रचनाकाल सन् 1881 ई० है। 'सुंदरी-स्वप्न-प्रकाश' काव्यकृति में नायिका के स्वप्न का बड़ा ही सरस, मार्मिक, हृदयग्राही और भाव-प्रवण वर्णन है। अपने पति के साथ सोयी नायिका का पति स्वप्न में परदेश चला गया है। विरह व्याकुल नायिका की वियोग दशा का वर्णन 'बारहमासा पद्धति' का होते हुए भी बड़ा काव्यात्मक और रसपूर्ण है। ब्रजभाषा की माधुरी के माध्यम से विप्रलंभ शृंगार की मर्मस्पर्शी पीड़ा को उभारते हुए कवि कोविद शंकर ने विरह की विविध स्थितियों का अंकन किया है।

सन् 1898 में चौपाई छंद में प्रवीण बालोपयोगी कविताओं का संग्रह 'चौक चाँदनी' के रूप में हमारे सामने आता है। इस शैली की रचनाएँ चट्टा-चौथ पर विशेष उत्साह के साथ बच्चों द्वारा गाई जाती थीं। इन रचनाओं का मुख्य उद्देश्य है—बालकों के मन में अपनी संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना। मनोवैज्ञानिक धरातल पर अत्यंत सरल भाषा में विषय का निरूपण किया गया है, जिससे बच्चों के हृदय पर गहराई से काव्य-विषय का प्रभाव पड़ सके। 'शंकर-सरोज' काव्य-संग्रह खड़ीबोली की प्रथम रचना है। इस कृति में राष्ट्रप्रेम, समाज सुधार तथा प्रकृति-प्रेम की सुंदर रचनाएँ संगृहीत हैं। 'साँची मान सहेली परसों पीतम लैवे आवैगो' जैसा बहुचर्चित गीत इसी संग्रह की देन है। ऐसे गीतों में शंकर जी ने भारतीय प्रेम के उद्दाम वेग और उसकी पारिवारिक परंपराओं को उद्घाटित तो किया ही है, साथ ही भारतीय दर्शन को भी अनुस्यूत कर दिया है। 'अनुरागरत्न' में भी शंकर जी ने राष्ट्रप्रेम, समाज सुधार, प्रकृति प्रेम तथा दार्शनिक भावभूमि पर अनेक अद्भुत रचनाओं को स्थान दिया है। 'अनुरागरत्न' एक अनर्घ रत्न है जो हिंदी साहित्य में निरुपमेय है।

'गर्भरंडा-रहस्य' विधवा समस्या को लेकर लिखा गया प्रबंध काव्य है। इस प्रबंध काव्य में यह उद्घाटित हुआ है कि धर्मभीरू भोलीभाली जनता को पाखंडग्रस्त पांगा-पंडित किस प्रकार गुमराह करते हैं? कवि शंकर का यह प्रबंध काव्य रहस्य और धार्मिक पाखंडों को दूर करने वाला है। संस्कृत नीति ग्रंथ 'पंचतंत्र' के तृतीय प्रकरण 'काकोलकीय' का हिंदी पद्यानुवाद है—'वायस विजय'। कौओं और उल्लुओं के संघर्ष में कौए (वायस) विजयी होते हैं। इस कृति में यह विचार

हुआ है कि शत्रु के साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए? 'वायस विजय' के कथानक की नीति के अनुसार कौओं की विजय पर कवि शंकर आशावान हो देश के उद्धार के स्वप्न देखने लगता है कि जिस प्रकार चतुराई से कौए जी गए उसी प्रकार भारतवासियों के दिन भी सुधरेंगे और एक दिन उनके भी भाग्य जागेंगे। अप्रकाशित रचना 'कलित कलेवर' घोर शृंगारी होने के कारण कवि शंकर ने इसे स्वयं ही नष्ट कर दिया था। अद्भुत कृति 'शंकर सतसई' किसी अग्निकांड दुर्घटना में होम हो गई।

नाथूराम शर्मा 'शंकर' के कवित्व सौष्टव और प्रतिभा चारुत्व को देखना हो तो उनके समस्यापूर्ति काव्य का अवगाहन करना होगा। समस्यापूर्ति काव्य उन्होंने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में लिखा है और दोनों शैलियाँ उनके निसर्ग-सिद्ध कवि होने को प्रमाणित करती हैं। उनकी कतिपय उल्लेखनीय समस्यापूर्तियों से उनकी रचना-कौशल से परिचित हुआ जा सकता है। समस्या है— 'अनेक अटकत है' यथा—

आनन की ओर चले आवत चकोर-मोर
दौर-दौर बार-बार बेनी झटकत है
बैठ-बैठ शंकर उरोजन पै राजहंस
हीरन के हार तोर-तोर पटकत हैं
झूम-झूम चखन को चूम-चूम चंचरीक
लटकी लटन पै लिपट लटकत हैं
आज इन बैरिन सों बन में बचावै कौन
अबला अकेली मैं अनेक अटकत हैं

'पीरी फटी पर पीउ न आयौ' समस्या रीति कालीन शैली में कवि शंकर की यह पूर्ति द्रष्टव्य है—

लाली ललानि दिवाकर की गिरिअस्त को शंकर चंद सिधायौ
फूले सरोज तड़ागन में अलि वृंद विलोक महासुख पायौ
आन मिले निशि के बिछुड़े चकई-चक यामिनी शोक विहायौ
मोहि को रोवत राति कटी अब पीरी फटी पर पीउ न आयौ।

कवि कोविद शंकर में आशु कविता की प्रवृत्ति विद्यमान थी। कवि सम्मेलनों में यदि आशु कवि के रूप में उन्हें कविता पाठ के लिए आमंत्रित किया जाता तो बड़ी सरलता से वे कविता पढ़ने खड़े हो जाते और बड़े भोलेपन से कविता पढ़ने लगते। उस समय की पत्र-पत्रिकाओं के संपादक भी शंकर जी को अपनी इच्छा का विषय देकर काव्य रचना का अनुरोध करते और शंकर जी कभी किसी का आग्रह टालते नहीं थे। हिजड़ों की मजलिस, गर्दभगति, भट्ट भणंत, मेंढक मंडल, कुमाता की लोरी आदि कविताओं में हास्य व्यंग्य का गहरा पुट देखा जा सकता है। 'शंकर सर्वस्व' के दोहों में भक्ति नीति, धर्म और आचार-मर्यादा-विषयक दोहे अधिक हैं। कवि शंकर ने कुछ शैरो-शायरी भी की थी। बुलबुल, गुल, चमन, दिल सबकुछ उनमें समाया हुआ है। यथा—

स्वाल उनके गोरे रुख पर दिल चुराते हैं, मेरा
चाँदनी में चीर पकड़ते हैं, अजब अंधेर है।

उर्दू शायरी में अच्छी गति होने पर भी कवि शंकर ने उर्दू में अधिक नहीं लिखा। उनकी मान्यता थी कि हिंदीभाषा ही भारत की राष्ट्रभाषा है और हिंदी की सेवा देशसेवा का एक रूप है।

नाथूराम शर्मा 'शंकर' की रचनाओं पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट किया जा सकता है कि कवि का मन देश की दुर्दशा से क्षुब्ध था। अतः समाज सुधारक का लक्ष्य उनके सामने था। सामाजिक जीवन की विकृतियों के प्रति कवि शंकर का स्वर और भी उग्र रहा है। बालविवाह, वैधव्य जीवन की यातना, अंधविश्वास, अस्पृश्यता, वर्णाश्रम धर्म का अस्त-व्यस्त रूप, नैतिक मूल्यों का विघटन आदि प्रसंग उनके सुधारवादी काव्य के प्रमुख विषय रहे हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि कोविद शंकर का काव्य केवल मनोरंजन का काव्य न होकर जीवन, जागृति और चेतना का काव्य है। समाजोत्थान, न्याय, नीति और सदाचरण यदि समाज को स्वीकार है, तो कवि कोविद शंकर भी समाज में सदैव सम्मान और आदर के पात्र बने रहेंगे। वस्तुतः खड़ीबोली हिंदी को अपनी काव्य प्रतिभा में सहज, स्वाभाविक, प्रांजल एवं प्रवाहपूर्ण बनाने में रससिद्ध कवि कोविद नाथूराम शर्मा 'शंकर' का नाम अग्रगण्य है।

संदर्भ

1. संपादक देशराजसिंह, महाकवि शंकर स्मृति ग्रंथ, महाकवि शंकर स्मारक समिति, हरदुआगंज, अलीगढ़, 1986, पृ० 8
2. महाकवि शंकर स्मृति ग्रंथ, पृ० 175
3. वही, पृ० 21-22

मंगलकलश
394, सर्वोदयनगर
आगरा रोड, अलीगढ़ 202001 (उ०प्र०)
मो० 9897144022

अमीर खुसरो : व्यक्तित्व वैशिष्ट्य

निगहत बेग

एस०बी०डी० महिला महाविद्यालय, धामपुर (बिजनौर)

अमीर खुसरो का नाम साहित्यिक जगत में किसी परिचय का मोहताज नहीं है। हिंदी साहित्य में अमीर खुसरो को उनकी साहित्यिक देन के लिए लिए उनकी गिनती हिंदी और फारसी के महान साहित्यकारों में होती है। हिंदी साहित्य को उन्होंने अपने लेखन से एक नया आयाम दिया है। अमीर खुसरो को फारसी भाषा पर ही महारत हासिल नहीं थी, बल्कि अरबी, तुर्की, संस्कृत, बंगाली और हिंदी भाषाओं पर भी महारत हासिल थी। हिंदी और उर्दू शेरों अदब के इतिहास में उनको हिंदुस्तानी भाषाओं में शुमार किया जाता है।

अमीर खुसरो ने अपनी मसनवियों में हिंदुस्तान के मौसम, हिंदुस्तान के फलों, फूलों, चनिंदों-परिंदों, दरियाओं और प्रकृति के मनोहर दृश्यों का वर्णन तथा अपने काव्य में प्रकृति का चित्रण बड़े ही मनोहर ढंग से किया है—

चूं नाफेह कुशाद वादे नौरोज
विशुगुप्त बहारे-आलम अफरोज
अज शबनमे-गौहरी-शमाइल
आरास्ता गुल-ए-गुल इमाइल
नाजुक तने लालाए-दिल अफरोज।'

अर्थात् अब नवरोज (वर्ष का पहला दिन, त्यौहार) की शीतल समीर बहने लगी तो संसार को उज्वलता देने के लिए बसंत खिल उठे, पुष्पों के सुंदर कंठों में, ओस के मोतियों से गुंथे हार पहनाए गए।

विविध भाषाओं पर कमाल रखने वाला यह व्यक्ति मात्र कलम का सिपाही ही नहीं था, वरन् दरबारों के मसाहजतों से निकलकर मैदान-ए-जंग में अपनी तलवार का जौहर दिखाता था। बारहवीं सदी का समय था, जब बादशाहों और विद्वानों में अपने अथक् प्रयासों से इस देश को सदियों तक सींचा था।

अमीर खुसरो का मूल नाम 'अबुल हसन यमीनुद्दीन' था। खुसरो, इनका तखल्लुस था। अमीर की उपाधि इन्हें जलालुद्दीन खिलजी द्वारा इनकी कविता से प्रसन्न होकर प्रदान की गई। आगे चलकर ये अमीर खुसरो के नाम से ही विश्व प्रसिद्ध हुए और साहित्य जगत में इसी नाम से ख्याति प्राप्त की। अमीर खुसरो का जन्म 652 हिजरी तदनुसर 3 मार्च 1253 ई० में पटियाली, जिला एटा (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। कुछ लोगों का यह मत है कि इनका जन्म दिल्ली में हुआ था। इसीलिए अमीर खुसरो देहलवी के नाम से प्रसिद्ध हैं। पाकिस्तान से 1976 में प्रकाशित मुमताज हुसैन की पुस्तक अमीर खुसरो : हयात और शायरी में जोर देकर कहा गया है कि खुसरो का जन्म दिल्ली में हुआ था। हिंदी के प्रसिद्ध लेखक डॉ० भोलानाथ तिवारी भी इनका जन्म

दिल्ली में ही मानते हैं। रहमान अली ने अपने ग्रंथ तजकरा-ए-उल्माए हिंदी में लिखते हैं—‘दर कस्बा मोमिनाबाद उर्फ पटियाली तोलद याफ्ता अर्थात् अस्बा मोमिनाबाद पटियाली में खुसरो का जन्म हुआ था।’

1220 ई० में तुर्किस्तान में तातरियों का सैलाब आया, उनके आतंक से तुर्की के गाँव और नगर नष्ट होकर मिट्टी में लिए गए। उनके परिवार शरण के लिए भारत की ओर भागे। उनमें से एक परिवार सैफुद्दीन महमूद लाचीनी का परिवार भी था जो चंगेज खाँ का समय था। इस प्रकार 1253 ई० में पटियाली में सैफुद्दीन महमूद लाचीनी और इमादुलमुल्क की बेटी दौलतनाज के यहाँ सन् 1253 ई० में अमीर खुसरो का जन्म हुआ। अमीर खुसरो फारसी के महानतम् कवियों में से एक माने जाते हैं और क्या ईरान तक में उनके फारसी काव्य की बड़ी धूम थी।

मौलाना शिवली नौमानी अपने ग्रंथ शैरूल आजम में लिखते हैं—‘हिंदुस्तान में छह सौ बरस से आज तक इस दर्जे का जामे कमालात (उत्कृष्टताओं से परिपूर्ण नहीं पैदा हुआ) फिरदौसी, सादी, अनवरी, अफ्री, नजीरी, बेशुबा, अकलीन सुखन के बादशाह है लेकिन उनकी सीमा अकलाम से आगे नहीं बढ़ती। फिरदौसी मजनवी से आगे नहीं बढ़ते। शेखसादी कसीदों को हाथ तक नहीं लगा सकते। अनवरी मसनवी और गजल को छू नहीं सकते। हाफिज अफ्री नजीरी गजल के दायरे से बाहर नहीं हो सकते हैं। लेकिन खुसरो की साहित्यिक सत्ता में गजल, रूबाई कसीदा और मसनवी सब कुछ दाखिल है और काव्य कला की छोटी-से-छोटी विधाएँ अर्थात् तजमीन, मुस्तजाद, सनाय व बदाय की तो गिनती ही नहीं।’

मिर्जा गालिब भी अपने काव्य में माधुर्य के लिए अमीर खुसरो के ऋणी हैं और कहते हैं कि मेरे काव्य में मधुर रस का संचार करने वाले अमीर खुसरो हैं।

गालिब मेरे कलाम में क्योंकर मजा न हो
पीता हूँ धोके सुसरुए शीरी-सुखन के पाँव।¹²

यदि अमीर खुसरो के जीवन पर चर्चा हो रही है, तो उसमें उनके आध्यात्मिक गुरु ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया का वर्णन होना तो स्वाभाविक है। हजरत निजामुद्दीन के विषय में थोड़ी जानकारी देना प्रासंगिक होगा। निजामुद्दीन ने बाबा फरीद से भेंट से पश्चात् आध्यात्मिक ज्ञान का वरदान पाया। उनकी माता के विषय में कहा जाता है कि ‘माँ साहिबा’ धर्मनिष्ठ महिला थीं। उनका पूरा समय खुदा की इबादत में बीतता था। उन्होंने जीवन के आखिरी समय में पुत्र को सदा के हाथों में सौंप दिया। अनाथ निजामुद्दीन उसी दिन से खुदा के आश्रय में चले गए। शेख फरीदी के मार्गदर्शन में रूहानी शक्ति प्रदान करने के बाद औलिया, दिल्ली में रहने लगे, वहीं उनकी भेंट अमीर खुसरो से हुई, जो आगे चलकर उनके परम शिष्य बने।

सात वर्षीय खुसरो, जब पहली बार पिता के साथ संत की दरगाह में पहुँचे तो पिता ने कहा—‘बेटा यह दरवाजा तुझे एक संत के पास ले जाएगा, जो जीवन के हर कठिन क्षण में तेरे रक्षक, तेरे मार्गदर्शक रखेंगे। यदि एक बार तू इनकी शरण में आ गया तो मुझे लगेगा कि मैंने पिता होने का एक महती कर्तव्य निभा दिया। मैंने तो तुझे केवल जन्म दिया, किंतु ये तेरी जीवनरूपी नैय्या को पार लगा देंगे।’ खुसरो के पिता ज्यों ही उन्हें भीतर ले जाने लगे तो वे द्वार पर ही ठिठक गए और बोले—

‘बेशक आपने जो भी कहा, वह सोलह आने सच है, पर शायद मुझमें अभी इतनी योग्यता नहीं है कि मैं औलिया का मुरीद बन सकूँ। वैसे भी मुरीद वह होता है, जो इरादा कर लेता है। मैंने

तो इस बावत अभी कुछ भी तय नहीं किया है, इसलिए आज आप जाँ। मैं यही बाहर बैठूँगा।’
पिता ने हैरानी से कहा—‘खुसरो मुझे तुम्हारे इस व्यवहार का कारण समझ नहीं आ रहा।
तुम भीतर क्यों नहीं जाना चाहते?’

खुसरो बोले—‘यदि औलिया सचमुच सच्चे सूफी हैं, तो मैं स्वयं उनका मुरीद बन जाऊँगा।
खुसरो ने मन-ही-मन दो पदों की रचना की व विचार किया। ‘यदि वे वाकई आध्यात्मिक शक्ति
से ओतप्रोत हैं, तो निश्चित रूप से मेरे मन की पुकार उन तक अवश्य पहुँचेगी और मेरे पास
प्रत्युत्तर आएगा।’ यदि आज, ऐसा हुआ तो मैं क्षण भर में उनका मुरीद हो जाऊँगा—

तू आं शाहे कि बर ऐबाने कसरत
कबूतर गर नशीबद बाज गदद।
गुरीवे मुसतमदे बर-दरं,
बयादद अंदरू या बाज गरदद।³

अर्थात् (तू ऐसा शासक है कि यदि तेरे महल की चोटी पर कबूतर भी बैठे तो तेरी असीम
अनुकंपा व कृपा से बाज बन जाए) खुसरो अभी ख्यालो में ही गुम थे कि भीतर से आए सेवक
ने औलिया की तरफ से शेर पढ़ा—

बयादद अंद रूँ मरदे हकीकत
कि वामा यकनफस हमराज शरदद।⁴

अगर अबलह बुदह आ मरदें-नादां
अजा राहे कि आमद बाज शरदद।⁵

(हे सच को खोजने वाले। तुम भीतर आ जाओ ताकि कुछ समय के लिए हमारे रहस्य के
भागी हो सको। यदि आर्गंतुक अज्ञानी हो तो जिस राह से आया है, उसी राह से लौट जाए)

खुसरो ने ये पंक्तियाँ सुनी तो ज्ञानचक्षु खुल गए। सूफी संत ने बिना मिले ही कैसे पल भर
में उनके मन की बात जान ली थी और न केवल बात जानी थी, उन्हें आध्यात्मिक रहस्यों को
जानने-बुझने का निमंत्रण भी भेजा था। संसार में ऐसे सौभाग्यशाली बिरले ही होते हैं, जिन्हें स्वयं
गुरु अपने पास बुलाते हैं। खुसरो ने गुरु की धूल अपने मस्तक से लगाने में पलभर की भी देरी
नहीं की। उसी दिन खुसरो, निजामुद्दीन औलिया के मुरीद हो गए और अपने जीवन की अंतिम
साँस तक गुरु के मुरीद बने रहे।

खुसरो पर अजीब सी दीवानगी छा गई थी। गहरे भावावेश में डूबे खुसरो ने माँ के सम्मुख
जाकर कहा—

आज रंग है री
मोहे पीर पायो निजामुद्दीन औलिया...
निजामुद्दीन औलिया जग उजियारो
अरे-वा तो जहाँ देखो, मोरे संग है री
आज रंग है री
मेरे मजबूब के घर रंग है री...⁵

एक बार ऐसे ही संत निजामुद्दीन चिश्ती किसी बात पर शेख बुराहनुद्दीन से नाराज हो गए
व उन्हें उपेक्षित करने लगे। ऐसे में शेख ने खुसरो की सहायता माँगी। खुसरो ने अपनी दस्तार शेख

के गले में डाली व उसे अपने पीर के सामने ले जाकर दोहा पढ़ा—

खुसरो मौला के रूठते, पीर के सरते जाया।
कहे खुसरो पीर के रूठते, मौला नहि होत सहायत।⁶

यह सुनते ही पीर ने दुनिया को गले लगा लिया व शेख को भी माफी मिल गई। खुसरो के दोहों में अध्यात्म की भावनाओं को सहज अभिव्यक्ति मिली है। वे कहते हैं कि अल्लाह तो बहुत गुणी है किंतु मैं जीव दुर्गुणों से भरा हूँ। मैं अपने हाल पर रोता हूँ कि वे किसी तरह मेरे सारे अवगुणों को दूर कर दें। एक जगह वह लिखते हैं—

हम कोम रास्तराहे दीन व किल्ल गाहे।
संसार हर को पुजे, कुल को जगत सराहें।⁷

खुसरो इस शेर को पूरा करते हुए फारसी हिंदवी पद में बोले—

मन किस्ला रास्त करदम बरतइरिमत ऐ कंज कुलाहे।
मक्के में कोई दूँढे, काशी को कोई चाहे।

(मेरे लिए तो ईश्वर प्राप्ति का मार्ग गुरु के माध्यम से है, जो मेरे सामने तिरछी टोपी में है। कोई मक्के में खुदा को खोज रहा है, तो कोई ईश्वर को पाने के लिए मारा-मारा फिरता है, परंतु ईश्वर तो हमारे भीतर है। हमारे हृदय में समाया है।)

कहते हैं कि गुरु-शिष्य का संबंध एक तरफा नहीं होता। यदि शिष्य अपने गुरु पर सब कुर्बान कर देता है, तो गुरु भी अपना स्नेह देने में कृपणता नहीं बरतते। निजामुद्दीन औलिया खुसरो से कहते—‘तुम मेरी लंबी उमर की दुआ माँगो, क्योंकि मेरे उम्र से ही तुम्हारी उम्र जुड़ी है। मुझे अपने मरने का गम नहीं है, पर दुःख इस बात का होगा कि मेरे बाद तुम भी नहीं बचोगे। मैं तुम्हें अभी और जीवित देखना चाहता हूँ।’

औलिया बीमार रहने लगे थे और खुसरो बंगाल में थे। वह दिल्ली लौट रहे थे और उनके औलिया दुनिया से कूच कर गए। खुसरो पागलों की भाँति विलाप करते हुए अपने पीर की कब्र पर पहुँचे और रोते हुए बोले—

गोरी सोवत सेज पर मुख पर डाले केस।
चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस।⁸

(मेरे औलिया मृत्यु रूपी गहरी नींद में सदा के लिए कब्ररूपी सेज पर सो रहे हैं, उन्होंने केश मुँह पर बिखरा लिए हैं, जिससे दुनिया के चारों तरफ अंधकार छा गया। ऐ खुसरो तुझे भी अपने असली घर यानी ईश्वर के घर ले जाना चाहिए।)

अमीर खुसरो के जीवन में आध्यात्म घर कर गया था उनके काव्य में आध्यात्मिक रूपी रहस्यवाद छलक उठता है वह कहते हैं—

यारां कि बूदा अंद न दानम कुजा गुदंद,
यारब बरोज बूंद कि अज मा जुदा सुदंद।
ऐ गुल चूँ आमदि ज जमि, गोचीगुना अदंद,
आरू ए हा कि दर तेह, गरदे फनाह शुदंद।⁹

ऐ खुदा! मैं नहीं जानता कि वे इतने सारे यार कौन थे और कहाँ चले गए? वह कौन सा दिन था जिस दिन ये हमसे अलग हो गए? ऐ फूलो! तुम तो जमी से आए हो, तुम्हीं कहो कि जो मूर्तियाँ मिट्टी में मिल गई, वे अब कैसी हैं? उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की खोज की जो उनके

काव्य में साफ झलकती है। वह कहते हैं—

नमी दानम च मंजिल बूद शब जाए कि मन बूदम,
बहरसू खल-ए-बिस्मिल बूद शब जाए के मन बूदम।
परी पेकर निगारे-सर्व-कदे-लाला-रुखसारे
सरापा आफते-दिल बद शब जाए के मन बूदम।¹⁰

(मैं नहीं जानता कि मैं कल रात कहाँ था? मैं, कल रात जहाँ था, वहाँ चारों तरफ घायल जाँ-ब-लब लोगों का नृत्य था। अप्सरा से चेहरे, सरो जैसे लंबे कद वाला लाल फूल सा सुंदर मुखड़े वाला महबूब वाला भी कल वहीं था, जो सबके दिलों के लिए एक आफत था।)

वे जानते हैं कि जो दर्द खुदा की तरफ से है और वही उस दर्द की दवा भी देंगे। दर्द भी तुमने दिए हैं और दवा भी तुम्हीं दोगे। तुमने खुलेआम मेरा सीना चाक किया और फिर इसी सीने में अपनी जगह भी बना ली—

जान ज़ तन बुर्दी व दर जानी हनोज़
दर्द हा दादी वा दरमानी हनोज़।
अशकरा, सीना अम बिशिगाफती,
हम चुना दर सीना पिनहानी हनोज़।¹¹

प्रस्तुत लेख में उनकी फारसी व हिंदवी रचनाओं में यथासंभव अर्थ, दिए गए हैं, ताकि पाठक के रसास्वादन में व्यवधान न आए। खड़ीबोली हिंदी के आदिकवि अमीर खुसरो का आनंद ले पाएँगे।

रहे न ऐबक व गौरी के मार्के बाकी
हमेशा ताजा व शीरीं नग्मा-ए-खुसरो।¹²

संदर्भ

1. सूफी संत अमीर खुसरो व उनकी शायरी, रचना भोलायामिनी, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा०) लि० 2017, पृ० 130
2. वही, पृ० 20
3. वही, पृ० 20
4. वही, पृ० 41
5. अमीर खुसरो एक बहुआयामी व्यक्तित्व, प्रदीप शर्मा खुसरो, साक्षी प्रकाश 2018, पृ० 129
6. वही पृ० 139
7. सूफी संत अमीर खुसरो व उनकी शायरी, रचना भोला यामिनी, डायमंड पॉकेट बुक्स, 2017, पृ० 24
8. सूफी संत अमीर खुसरो व उनकी शायरी, रचना भोला यामिनी, डायमंड पॉकेट बुक्स, 2017, पृ० 24
9. अमीर खुसरो और उनका हिंदी साहित्य, भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 2020, पृ० 15
10. अमीर खुसरो, व्यक्ति और कृतित्व, परमानंद पांचाल, पृ० 60
11. अमीर खुसरो, सै, गुलाम समनानी, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली, 1985
12. अमीर खुसरो (व्यक्तित्व एवं कृतित्व) परमानंद पांचाल, पृ० 31

सुपुत्री श्री अंजार बेग
मौहल्ला नौंधना, शेरकोट (बिजनौर) उ०प्र०
मो० 8218031898

घनानंद की श्रीराम जन्म-बधाई!

अशेष उपाध्याय

पूर्व छात्र, बरेली कॉलेज, बरेली

राजदरबारियों के कुचक्र के वशीभूत बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में हुई 'बेअदबी' के कारण घनानंद ने अपनी निष्ठुर प्रेयसी सुजान की हठधर्मिता से व्यथित होकर दिल्ली से निष्कासित व्यक्ति के रूप में वृंदावन को अपना निवास-स्थान बनाया। यहाँ स्वामी वृंदावनदेव जी से दीक्षा प्राप्त करके वे निंबार्क संप्रदाय में सम्मिलित हो गए। इसमें ब्रह्म को सगुण रूप संयुक्त ग्रहण किया गया है। यह प्राकृत दोष अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और मृत्यु-भय से उत्पन्न क्लेश अभिनिवेश आदि से विहीन है। अशेष ज्ञान, ऐश्वर्य, तेज सौशील्य, वात्सल्य, शक्ति-बल, करुणाशीलता इत्यादि गुण सदैव इसमें विराजमान रहते हैं। यही ईश्वर है, जो कि संसार के उद्भव, पालन-पोषण एवं विलय दृष्टिगोचर तथा अनुभवगम्य है, उस सबमें यह अंतः बाह्य रूप में परिव्याप्त रहता है। परब्रह्म-परमेश्वर, नारायण-विष्णु, श्रीकृष्ण एवं पुरुषोत्तम अर्थात् श्रीराम इत्यादि इसके विभिन्न नाम संज्ञक स्वरूप हैं। आराध्यक्रम में श्रीराम विश्वाधार, सर्वत्र व्यापी परमात्मन्, सर्वोत्तम सूक्ष्म, सर्वोत्तम महत्, ईश्वरेश्वर एवं सर्वातिक्रमण सक्षम, श्रेष्ठतम मानवावतार हैं। त्रेतायुग में इनका जन्म पावन चैत्र मास की नवमी तिथि को शुक्ल पक्ष में मध्याह्न काल में अभिजित मुहूर्त में अयोध्या में रविकुल प्रकाशक दशरथनंदन कौशल्याकुमार अवध मंडन सनातन बिहारी शिशु रूप में हुआ था। इस संदर्भ में घनानंद के द्वारा किया गया वर्णन इस प्रकार है—

राम जगधाम अभिराम प्रगटे अवधि मधुर मधुमास नवमी उज्यारी।
दसरथ-निकेत जस-मंगल उपेत वपु अतुल बल विक्रम विनोदकारी।
सानुज सखंद निज जनवृंद सुखकंद रविकुल प्रकासक प्रतापहारी।
करुनानिधान कीरति विमल गंभीर धीर बरबीर भूभारहारी।
मंडित अखंड धुनि मंगल सकलपुरी औसर अभूत सुषमा बिहारी।
जयति कौसल्या कुमार आनंदघन अवधमंडन सनातन बिहारी।'

सूर्यवंश को अपनी गौरव-गरिमा से मंडित करनेवाले प्रबल बलधाम श्रीराम का प्राकट्य भगवान विष्णु के वरदान का महामनवाँछित फल था। यह माता कौशल्या और पिता राजा दशरथ के पुण्यों का वर्णनातीत सुख था, जिसके कारण उनके समस्त दुख समाप्त हो गए। अवधपुरी में आनंद के घन उमड़ आए और प्रसन्नतापूर्वक देवसमूह की दुंदुभियाँ बजने लगीं। नवविकसित पुष्पों की वर्षा से समस्त वातावरण हर्षविभोर हो गया—

रविकुलमंडन खल-खंडन राम प्रबल बलधाम प्रगट भए।
हित चिंतकनि महा-मनवाँछित को फल विधना आजु दए।
जननी जनक सुकृत कहा बरनीं सुखनि परे दुख दूरि गयौ।
अवधपुरि आनंदघन उनयौ सुरसमूह दुंदुभी बजावत हरषत बरषत पुहप नए।'

महाबाहु दशरथ नंदन श्रीराम के जन्म का निर्बाध आनंदमय उत्साह दिन-प्रतिदिन अवर्णनीय सुखदायक था। महारानी कौशल्या की कोख पुत्रोत्पत्ति से शांत और अपूर्व पुण्य लाभ से परिपूर्ण हो गई। वास्तविकता यह है कि कौशल्यानंदन के रूप में श्रीराम ने धर्म संस्थापन के लिए विप्र, धेनु, देवता तथा संतों के हितैषी के रूप में राक्षस गणों से उनकी रक्षा के लिए मनुष्य का अवतार लिया था। इस अवतार के कारण 'असही' अर्थात् शत्रुओं के हृदय में दाह उत्पन्न हो गया—

दसरथ-नंदन को जनम-उछाहु, जनम उछाहु।
निरवधि करुना-अवधि-अवधि मंडन प्रगटे महाबाहु।
कौसिल्या की कोख सिरानी अलह्यौ अपूरव पुन्यनि लाहु।
फूले संत सुर हित अनुकूले असहिन के उर दाहु।
आनँदघन अवधेश-दान-झर बाढ़यो जग मैं सुजस प्रवाहु।
निज दासनि को सुख का कहियै दिन-दिन अधिक उमाहु।³

श्रीराम जगत के जीवन हैं। घनानंद ने राजा दशरथ को 'दसस्यंदन' पर्यायवाची देकर उनके सौभाग्य की सराहना की है। आनंद से प्रफुल्लित अयोध्या निवासी नर-नारी और अवधपुरी का उल्लास अत्यधिक मनमोहक प्रतीत होता। श्रीरघुनंदन की करुणामय उदारता के आनंदघन की वर्षा से सुखों की मनोरम छटा उदित हो गई थी—

जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसल्या धनि दसस्यंदन।
अवधपुरि मधि महामोह छवि नरनारी फूले आनंदन।
आनँदघन बरसत सुख सरसत करुनाकर उदार रघुनंदन।⁴

मनु एवं शतरूपा तथा कश्यप एवं अदिति के द्वारा की गई तपस्या के अनुरूप उदारतापूर्वक दिए गए पुत्र सुख के वरदान की पूर्णता के लिए ही श्रीराम ने दशरथ और कौशल्या के पूर्व जन्म के आधार पर उन्हें पुत्र रूप में उदारतापूर्वक वात्सल्यानंद प्रदान किया। इसीलिए दीनदयाल कृपालु श्रीराम के जन्म के समय का चर्तुभुज रूप देखकर आश्चर्यपूर्ण स्थिति में हर्ष-विभोर हो गई। उन्होंने अपने पूर्व जन्म के करुणासिंधु भगवान को शोभासिंधु शिशु के रूप में शिशुलीला का सुख प्राप्त किया। अवधपुरी में मृदुंग इत्यादि के द्वारा राजा दशरथ के राज-प्रासाद में पुत्र जन्म की 'रंग-बधाई' बजने लगी—

आज मंदिलरा दसरथराय के बाजै रंग-बधाई है।
कौसिल्या की कोख सिरानी जगबंदन रघुनंदन प्रगटे सब मनभाई है।
अवधपुरी आनँद-झर लाग्यौ उघरी भाग-निकाई है।
चहूँओर मंगल धुनि सुनियत राम दुहाई है।⁵

श्रीराम जन्मोत्सव में राजा दशरथ और महारानी कौशल्या का परमानंद, साधु-संतों के सत्संग, वशिष्ठ आदि ऋषि-मुनियों के शास्त्र विचार से उत्पन्न शांति एवं समस्त प्रजा को अन्न-वस्त्र, भोजन, धन इत्यादि तथा संपूर्ण मनोकामनाओं की पूर्ति से प्राप्त संतोष से जीवित दशा में अनुभूत मोक्ष से अयोध्यापुरी धन्य हो गई। मानवों का मन बालक के समान अस्थिर और अव्यस्थित रहता है, उन्हें शुभ अथवा अशुभ जिस दिशा में गतिमान किया जाए, वे उसी में अग्रसर होते जाते हैं। श्रीराम जन्म के उत्तम आनंद ने उन्हें शुभमार्ग पर प्रशस्त करके भक्ति-भाव की अद्भुत अनुकंपा प्रदान की है। उनके सांसारिक दुख तिरोहित हो गए हैं—

राम जगजीवन जनम लियौ, जुड़ायौ जननी-जनक हियौ।

निरवधि आनंद-उदधि अवधपुरी मधि घर-घर,
बाजति रंगबधाई फूले फिरत नर तियौ।
सिव विधि सुक सनकादि सुर समूह आनंदित
भूप-भवन भीर भई सबको जीउ जियौ।
आनंदघन झर लाग्यौ दुखदारिद दूर भाग्यौ,
दसरथ दातार जिन जो माँग्यौ सुतेहि दियौ।⁶

राजा दशरथ की दानशीलता उनके आंतरिक उल्लासजनित भगवान विष्णु के मनुष्य अवतार श्रीराम के जन्म के प्रभाव से अयोध्या की प्रजा के दैहिक, दैविक तथा भौतिक संतापों के विनाश का प्रबल संसाधन बन गई। भगवद्भक्ति के सद्भाव एवं सद्विचार युक्त परमार्थपूर्ण दान की अभिव्यक्ति के रूप में विशुद्ध अंतर्जगत से उद्भूत शुभकर्म के द्वारा उन्होंने अनायास की परमपद ग्रहण कर लिया था। वास्तविकता यह है कि रामराज्य की आधारभूमि श्रीराम जन्म के उत्सव में ही सुनिश्चित हो गई थी। ब्रह्मा, शिव, सुक-सनकादि तथा देवसमूह का आनंद इसका प्रमाण है। राज-परिवार के आचरण, कर्तव्य-पालन और स्वार्थरहित दानशीलता ने उन्हें महान पिता और समदर्शी प्रजापालक नरेश की प्रतिष्ठा से अलंकृत कर दिया था। अयोध्यापुरी में चारों दिशाओं में आनंदघन की अभीदृष्टि रसवृष्टि उनके परम सौभाग्य की मंगलध्वनि का उद्घोष कर रही थी। श्रीरामचंद्र महारानी कौशल्या की कोख रूपी दिशा से उत्पन्न पूर्ण चंद्रमा का शुभ स्वरूप थे। उन्होंने अपनी अद्भुत कला-विलास से समस्त रविकुल को प्रकाशित किया था। उनकी कृपा से सभी का दुख रूपी अंधकार समाप्त हो गया और मन में पुत्र जन्मोत्सव के रूप में नवीन प्रसन्नता का संचार हो गया। हर्षातिरेक में स्वजन-बंधु-रूपी कुमुदावली प्रफुल्लित हो गई और दुष्ट स्वभावयुक्त राक्षस इत्यादि अरि समूह में दुख-दाह से संतप्त होकर जलने लगा। अयोध्यापुरी में प्रत्येक घर में सुख की उमंगें तरंगित हो उठीं—

कौसिल्या की कोखि ककुभ सुभ पूरन रामचंद्र उदयौ।
रविकुल सकल प्रकाशित कीन्हौ अद्भुत कला-विलास ठयौ।
दुख-तम दूरि गयौ दबि कितहूँ बाढ़यौ मन मैं मोद नयौ।
सुजन-बंधु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुख ताप तयौ।
निरवधि सुख को सिंधु अवधि मधि घर घर उमंग-तरंग छयौ।
मंगलधुनि की गरज सुधाकरि सुहृद चकोरनि चैन दयौ।
दसरथ भाग कहा कहि बरनौँ सकल देखियत सुकृतन यौ।
अमीदृष्टि रसवृष्टि चहूँ दिसि करुना आनंदघन उनयौ।⁷

श्रीराम का जन्मोत्सव भक्तगणों का भगवान के साथ अनन्य आनंदभाव, आत्मीयता संबंध एवं सद्भावना की व्यापक अभिव्यंजना का प्रत्यक्ष रूप है। परमानंदपूर्ण शुद्ध हृदय से दिया गया दान अंतरात्मा में निहित निर्गुण निराकार के सगुण साकार स्वरूप की पुत्र के रूप में प्राप्ति से उद्भूत राजा दशरथ की प्रसन्नता से विकसित लोककल्याण का सुगम उपाय है। उनके मुख में विराजित राम-नाम की मणि सभी प्रजाजनों के कष्टों का शमन करने में पूर्णतया समर्थ है। अनासक्तिपूर्ण आध्यात्मिक साधना भी इसमें निहित है। मृदंग का उल्लास और अयोध्यापुरी का तोरण-ध्वजा से सुसज्जित नयनाभिराम आकार, विप्रों के वेदमंत्रोच्चार, बंदीजन तथा वनिता-गणों के मंगलगान से ऐसी आनंद की निधि बन गया था, जिसे देखकर दुख तिरोहित हो गए—

मंदिला री बाजै अति ही गहगहे प्रगट भये
या अवध नगर में रामचंद्र बराजै।
गावत मंगल मिलि बनिता-गन कहि न परत सुख,
आँद की निधि निरखि दुख भाजै।
करत वेद-धुनि विप्र-बंदीजन
घर घर तोरन-ध्वजा विराजै।
मनवाँछित फल भए परमानंद बोलि द्विजनि कौ
दान देत मन हरखित दसरथ राजै।⁸

अयोध्यापति राजा दशरथ और कौशल्या के हृदय में पूर्व जन्मों के प्रभाव से भक्ति की विशेष महाभाव स्वरूपा आह्लादिनी शक्ति का उदय हो गया था। इसी के प्रभाव से भक्तिरस तथा भगवान के बालस्वरूप का संश्लेषण विशुद्ध भाव जगत में विराजमान स्थिति की जन्मोत्सव के रूप में परिणति हुई थी। प्रायः सभी प्रकार के अनुष्ठानों एवं उत्सवों में देहात्मबोधमूलक प्राकृत अभिमान की विलास-भावना प्रचलित रूप में दृष्टिगोचर होती है। इसके विपरीत राजा दशरथ काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि विकारों से रहित भाव से अपने आराध्य के बाल-स्वरूप की दिव्य लीला में तन्मय होकर समस्त अयोध्या में आनंद-चेतन विकसित करके अपार पुण्य-लाभ प्राप्त करने में समर्थ हुए। स्वभाव सिद्ध शरीर के आश्रय से की गई उनकी यह धर्म-साधना दैवेच्छा के अनुवर्तनी रूप में पूर्णतया सफल सिद्ध हुई। घनानंद अपने युग के प्रसिद्ध गायक थे। उन्होंने राग 'झपताल', 'रामकली चौताल', 'टोड़ी हकताल', 'केदारो इकताल', 'कान्हरो वागेश्वरी इकताल', 'आसावरी हकताल' और 'टोड़ी मूलताल' में 'श्रीराम जन्म बधाई' का गायन करके यश अर्जित किया है।

संदर्भ

1. घनानंद, घनानंद ग्रंथावली, पदावली, संपादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी वितान ब्रह्मनाल वाराणसी, संवत् 2009 वि०, पद संख्या-665
2. वही, पद संख्या-643
3. वही, पद संख्या-923
4. वही, पद संख्या-924
5. वही, पद संख्या-925
6. वही, पद संख्या-926
7. वही, पद संख्या-927
8. वही, पद संख्या-928

द्वारा श्रीमती रजनी उपाध्याय
197/199, डाक्टर्स कॉलोनी
सिविल लाइंस, बरेली 243001

भारतीय अतीत-विद्या-दर्पण लल्लूलाल जी

डॉ० अशोक उपाध्याय

पूर्व विभागाध्यक्ष हिंदी, बरेली कॉलेज, बरेली

ईस्ट इंडिया कंपनी का विदेशी संगठन व्यापारिक प्रशासन की लाभ-सापेक्ष दृष्टि एवं राज्य-स्थापना की सफल महत्त्वकांक्षा के साथ भारत में तीव्रगति से अग्रसर हुआ। इसकी स्वार्थपूर्ण हितदृष्टि ने भारतीय कला-कौशल इत्यादि को नष्ट-प्राय स्थिति में डालकर नए कल-कारखानों के निर्माण के द्वारा शासक और शासित वर्ग की नूतन जीवन-पद्धति के शोषण-पूर्ण दृष्टिकोण का विस्तार किया। पुर्तगाल आदि देशों की कंपनियों की प्रतिस्पर्द्धा एवं प्रशासनिक आवश्यकता ने स्थानीय युवा-वर्ग को अपने पक्ष में लाने के लिए शिक्षित बनाने का कार्य कंपनी के उपयोगार्थ अल्पवेतन भोगी कर्मचारियों की वृद्धि के लिए प्रारंभ किया। इसके उच्च तथा निम्न श्रेणी के अधिकारी भी स्थानीय परंपराओं, बोली और भाषा इत्यादि से प्रायः अपरिचित थे, जोकि किसी भी समय अज्ञानतावश कंपनी के लिए किसी बड़ी हानि की संभावना बन सकते थे। लार्ड मार्क्विस् वेलेजली ने इस समस्या को पूर्ण गंभीरता के साथ समझा क्योंकि वह इन्हें व्यावसायिक दक्षता के साथ ही श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञतापूर्ण प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। अपनी इस आकांक्षा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि 'भारतीय साम्राज्य जैसी अनमोल वस्तु को पाकर हमें भारतवासियों के रीति-रस्मों और भाषा का ज्ञान प्राप्त करके उनके संरक्षक की हैसियत से शासन की बागडोर भली-भाँति सँभालनी चाहिए। उनकी इस नीति की तह में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव दृढ़ करना था। अकेली यूरोपीय या भारतीय शिक्षा-प्रणाली ही कंपनी के कर्मचारियों की शिक्षा और चरित्र सुधारने में समर्थ नहीं हो सकती और न उसके वे मिश्रित एवं दुरूह युरोपियन और एशियाटिक सिद्धांतों के आधार पर स्थित नीति और शासन के चलाने में कर्तव्य-पालन ही कर सकते हैं। उनकी शिक्षा मिश्रित ढंग की होनी चाहिए जिसकी नींव इंग्लैंड में रखी जाए और उस पर भवन भारतवर्ष में खड़ा किया जाए।' कंपनी के संचालक मंडल ने इसका विरोध किया, किंतु लार्ड वेलेजली ने उनकी उपेक्षा करते हुए श्रीरंग पट्टम-विजय के प्रथम वार्षिकोत्सव 4 मई, 1880 ई० के दिन कलकत्ता में 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना के द्वारा अपना कर्तव्य-पालन किया।

लल्लूलाल जी इसी कॉलेज में जॉन ग्रिलक्राइस्ट के नेतृत्व में विकसित उर्दू-हिंदी विभाग के भाषा-मुंशी अथवा अध्यापक थे। इनका आगरा नगर के गोकुलपुरा मुहल्ला निवासी गुजराती औदीच्य ब्राह्मण पुरोहित पंडित चैन सुख के पुत्र के रूप में सन् 1763 ई० में हुआ था। इनके तीन छोटे भाई भी थे-दयालजी, मोतीराम जी तथा चुन्नीलाल जी। इन्होंने अपने घर पर ही फारसी, संस्कृत, ब्रजभाषा तथा पौरुहित्यशास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त की और पिता की मृत्यु के उपरांत जीवन-रक्षा के लिए अर्थोपार्जन हेतु कृपा सखी की शिष्य परंपरा के गोस्वामी गोपालदास जी के आश्रय में मुर्शिदाबाद पहुँच गए। गोस्वामी जी के माध्यम से इन्हें नवाब मुबारकुद्दौला के दरबार

में अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का सुअसवर मिला। नवाब इनसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर इनके भरण-पोषण की सुखद व्यवस्था करके अपना संरक्षण प्रदान किया। संभवतः सन् 1793 ई० में गोपालदास जी का देहावसान हो गया और लल्लूलाल जी उनके भाई गोस्वामी रामरंग कौशल्यादास जी के पास दुखित होकर चित्त की शांति हेतु वर्दवान पहुँचे। वहाँ भी इनके चित्त को शांति नहीं मिली। इसलिए विरक्तभाव से नवाब के अनुरोध को अस्वीकार करके कलकत्ता को अपना निवास स्थान बनाया और पौरौहित्य कार्य से अपना जीवनयापन आरंभ किया।

कलकत्ता में पंडिज जी के नाटौर राज्य के शासक राजा रामकृष्ण जी से घनिष्ठ संबंध हो गए। कुछ समय तक ये नाटौर में राज्याश्रय में सुखपूर्वक निवास करते रहे। सन् 1796 में राजा साहब के अपदस्थ होने के उपरांत ये पुनः कलकत्ता में आकर चितपुर रोड पर रहने में सफल हुए। यहाँ पर इनके अर्थोपार्जन की सही व्यवस्था नहीं हुई, जिसके कारण इनकी आर्थिक स्थिति दुर्बल होती चली गई। यहाँ से व्यथित होकर ये जगन्नाथपुरी गए। वहाँ इनकी भेंट नागपुर के राजा मनियाँ बाबू से हुई। वे इनके द्वारा मंदिर में गाई गई 'दैन्य स्तुति' से बहुत प्रभावित हुए। दुर्भाग्यवश ये राजा साहब के साथ नागपुर जाने में समर्थ नहीं हुए, लेकिन राजा साहब ने इन्हें उचित धनराशि देकर इनके दैन्य-निवारण का प्रयास अवश्य किया। कलकत्ता के धनाड्यवर्ग में प्रसिद्ध गोपीमोहन ठाकुर, हरिमोहन ठाकुर और पादरी बुरन साहब आदि से भी इन्होंने नौकरी के लिए सहायता माँगी लेकिन यथेष्ट सफलता नहीं मिली। दीवान काशीनाथ खत्री के कनिष्ठ पुत्र श्यामचरण खत्री एवं डॉक्टर रसेल के संपर्क सूत्रों से इन्हें फोर्ट विलियम कॉलेज के जॉन ग्रिलक्राइस्ट से मिलने का अवसर मिला। कुशलतापूर्वक पानी में तैरने की कला का लाभ भी लल्लूलाल जी को यहाँ पर मिला। ईस्ट इंडिया कंपनी के एक अधिकारी गंगा जी में स्नान करते समय डूबने जा रहे थे, इन्होंने दयालुतापूर्वक अविलंब पानी में छलांग लगाकर उनकी प्राणरक्षा का सत्कर्म किया। इन्होंने कृतज्ञतापूर्वक इनकी आर्थिक सहायता करते हुए एक छापाखाना स्थापित कराया; जिसका नाम 'संस्कृत प्रेस' रखा गया। जॉन ग्रिलक्राइस्ट से भी इनकी नौकरी के लिए सिफारिश की। परिणाम यह हुआ कि सन् 1800 ई० में इन्हें 'फोर्ट विलियम कॉलेज' में वैतनिक नियुक्ति प्राप्त हो गई।

इससे पूर्व सन् 1799 ई० में लल्लूलाल जी गिलक्राइस्ट साहब से प्राप्त आर्थिक सहायता से 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैतालपच्चीसी, शकुंतला नाटक एवं माधोनल का अनुवाद मज़हरअली खाँ विला एवं कासिमअली जवाँ के सहयोग से कर चुके थे। सन् 1800 ई० में इनकी प्रारंभिक नियुक्ति अस्थाई 'सर्टीफिकेट मुंशी' के रूप में हुई थी। कॉलेज प्रबंध तंत्र द्वारा छात्रों की सुविधा के लिए स्थाई मुंशियों से शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने के लिए कॉलेज द्वारा सर्टीफिकेट प्राप्त मुंशियों की व्यवस्था भी की गई थी। ग्रिलक्राइस्ट के अनुसार हिंदवी, अरबी और फारसी के मिश्रण से हिंदुस्तानी का विकास हुआ था। इसलिए उन्हें हिंदवी या ब्रजभाषा-ज्ञान से परिपूर्ण मुंशी की आवश्यकता थी। इसके लिए उनके द्वारा पंडित लल्लूलाल जी को उपयुक्त माना गया और 1 फरवरी सन् 1802 ई० को इन्हें 'भाषा मुंशी' नियुक्त कर दिया गया। यही नहीं 1 अगस्त सन् 1801 ई० से 31 जनवरी सन् 1802 ई० तक का शेष मासिक वेतन भी कॉलेज प्रबंध तंत्र द्वारा उपलब्ध करा दिया गया। सन् 1824 ई० में इन्हें पेंशन देकर फोर्ट विलियम कॉलेज से सेवानिवृत्त किया गया। इसके पश्चात् इन्होंने कलकत्ता में स्थापित 'संस्कृत प्रेस' आगरा में स्थानांतरित करने के उपरांत पूर्ववत् प्रकाशन का कार्य व्यवसाय के रूप में प्रारंभ किया। सन् 1835 ई० में कलकत्ता में इनका स्वर्गवास हो गया।

लल्लूलाल जी द्वारा रचित ग्रंथों के नाम हैं—‘सिंहासन बत्तीसी’, ‘बैताल पच्चीसी’, ‘शकुंतला नाटक’, ‘माधोनल’, ‘माधव विलास’, ‘सभा विलास’, ‘प्रेमसागर’, ‘राजनीति’, ‘भाषा कायदा’, ‘लतायफ हिंदी’ और लालचंद्रिका। ‘सिंहासनद्वित्रिशिका’, ‘विक्रम चरित’ एवं ‘द्वित्रिशत्पुत्तलिका’ के नाम से विख्यात संस्कृत साहित्य के आख्यान ‘सिंहासन बत्तीसी’ के परंपरागत तीन अनुवाद बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें ‘राम सुंदर’ अथवा ‘सुंदरकवि द्वारा ब्रजभाषा पद्य में संवत् 1690 वि० में किया गया पहला अनुवाद है। ब्रजभाषा में ही संवत् 1807 वि० में ‘सोमनाथ’ अथवा ‘ससिनाथ’ के द्वारा किया गया दूसरा अनुवाद है। इस पद्यबद्ध उत्तम अनुवाद का नाम ‘सुजान विलास’ है। तीसरा गद्यानुवाद ‘फोर्ट विलियम कॉलेज’ में ‘मिर्जा कासिमअली जवाँ’ की सहायता से लल्लूलाल जी ने सन् 1799 ई० में किया। इसमें ‘राजा वीर बिक्रमाजीत’ के संबंध में इन्होंने लिखा है कि ‘खुदा ने जब से उसे दुनिया के परदे पर उतारा—सब बेसहारों का किया सहारा और रूप उसका देखकर चौधवीं रात के चाँद को चकचौंधी आती—बड़ा चतुर सुघड़ और गुनी था—अच्छी-अच्छी जितनी बातें सब उसमें समाई थीं। भलाई उसकी जग में मशहूर थी...महल में एक-एक रानी ऐश और कामरानी से राजा का दिल हाथों में लिए रहती थी। नाच राग रंग रात दिन होता था और वह आप यह सुघड़ था जो बात-बात में मोती पिरोता और नौ किस्म के साहिवि कमाल जैसे नौ रतन उसकी मजलिस में हाजिर रहते थे। राजा इंद्र उसकी सभा को देखकर रश्क की आग से जलता था और उसका अखाड़ा हसरत के मारे हाथ मलता था।¹²

‘बैताल पच्चीसी’ अर्थात् बारहवीं शताब्दी की ‘बैताल पंचाशिका’ संस्कृत-साहित्य की अत्यंत सरस और मनोरंजक रचना है। ‘जंभलदत्त’ ने इसकी रचना पूर्ण रूप से गद्य में करके यशलाभ प्राप्त किया है। ‘शिवदत्त’ ने इसे पद्य और गद्य में प्रस्तुत करके पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। रीतिकाल में इसका अनुवाद देवीदत्त, हरनारायण और सूरति मिश्र ने किया है। लल्लूलाल जी ने इसका अनुवाद सन् 1799 ई० में ‘मजहरअली विला के सहयोग से किया। इसमें भी इन्होंने राजा विक्रमाजीत के विषय में बताया है कि ‘जो अपने तई मारा चाहे उसके मारने में अधर्म नहीं। उस समय राजा का साहस देख इंद्र समेत सब देवता अपने-अपने विमानों पर बैठ वहाँ जै जैकार करने लगे; और राजा इंद्र ने प्रसन्न हो राजावीर बिक्रमाजीत से कहा कि वर माँग; तब राजा ने हाथ जोड़कर कहा, महाराज! यह कथा मेरी संसार में प्रसिद्ध हो, इंद्र ने कहा कि जब तक चाँद, सूरज, पृथ्वी, आकाश, स्थिर है, तब तक यह कथा प्रसिद्ध रहेगी, और तू सर्व भूमिका राजा होगा।¹³ इस प्रकरण को आगे बढ़ाते हुए इनके द्वारा यह भी बताया गया है कि ‘इतना कह राजा इंद्र अपने स्थान को गया, और राजा ने उन दोनों लोथों को ले उस तेल के कड़ाह में डाल दिया, तब ये दोनों बीर आ हाजिर हुए, और कहने लगे कि हमें क्या आज्ञा है? राजा ने कहा जब मैं याद करूँ तब तुम आना, इस तरह से उनसे बचन ले, राजा अपने घर आ राज करने लगा। ऐसा कहा है कि पंडित हो, या मूरख; लड़का हो या जवान, जो बुद्धिमान होगा उसी की जय होगी।¹⁴

संस्कृत साहित्य के महान नाटककार कालिदास के ‘अभिज्ञान शाकुंतलम’ का अनुवाद लल्लूलाल जी ने ‘काजिम अली जवाँ’ के साथ मिलकर ‘जवान रेख्ता’ में किया है। शकुंतला के सौंदर्य वर्णन की शब्दावली से इसका प्रमाण सहजता से प्राप्त हो जाता है। इसमें इन्होंने कहा है कि ‘दरख्तों की छाँव में खड़ी होकर, अपने-अपने जोवन पर एक एक मगरूर थी, लेकिन उन सभों में, शकुंतला अपने हुस्न ओ अदा में बहुत दूर थी, चमकावट उसके चिहरे की अजब जलवे दिखाती थी, और जुल्फें बिखरी हुई मुँह पर उसके इस रंग से नजर आतियाँ थी, जैसे नमूद धुवें

की शुअले पर होती है, या जैसे कुछ-कुछ घटा सूरज पर आ जाती है; निगाह बिजली थी, कि नजरों में कौंध जाती थी; उस तपवन में इस रंग-रूप से समाँ बँधा था।⁵ अंत में कहानी की लोकप्रिय शैली में लल्लूलाल जी ने अपनी वाक्पटुता का परिचय देते हुए बताया है कि 'दोनों खुश व खुर्रम हुए; शकुंतला रानी हुई, और राजा अपने राज में हुक्मरानी करने लगा; तमाम रैयत उनकी खुशी से शाद हुई; वह नगरी फिर सरैनो आबाद हुई, सब मतलिब व मकसिद उनके दिलों के बर आए; अपने-अपने हुस्न ओ जवानी खूब मजे उठाए। अब यह कहानी यहाँ तमाम हुई, ऐ जवाँ! लफज ओ मानी से सरंजाम हुई। अजबसूकि जबान रेख्ते में लिखी साल-इ-हिजरी के मुआफिक रेखत: तारीख हुई।'⁶

लल्लूलाल जी ने मजहरअली खाँ विला के सहयोग से समय की माँग के अनुसार संवत् 1755 वि० में संभवतः मोतीराम कवि द्वारा ब्रजभाषा में विरचित 'माधो नल' की कहानी का हिंदी अनुवाद सन् 1799 ई० में फारसी लिपि में किया है। इसमें पुष्पावती नगरी के सुंदर और कलाप्रवीण ब्राह्मण माधव एवं कामावती नगरी की सौंदर्य-संपन्न वेश्या काम कंदला की कथा है। अरबी-फारसी शब्दावली की बहुलता के कारण इसे उर्दू-हिंदी कहना उचित प्रतीत होता है। प्रमाण के लिए कुछ पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं—'नए-नए तौर के मान मुनक्कश आलीशानों पर सुनहरी कलियों के चमकने से अजब उजाला साहब-इल-इल्म ओ हुनर नेक अफजाल ओ नेक करदार और लोग अच्छे-अच्छे आराम चैन से उस बस्ती में बसते थे वह पुहुपावती नगरी मशहूर थी और राजा गोविंदचंद दानिश ओ बख्शीश में यकता नेक अफजाल खजिस्ता खमाल महर से मामूर इल्म ओ हया से मशहूर सूरत वसीरत में खूब खल्क तालिब...वहाँ का राज राजा इंदर की तरह करता था।' इनके द्वारा रघुराम कवि के 'सभासार' एवं कृपाराम कवि के 'योग सार' के आधार पर 'माधव विलास' की रचना 1917 ई० में ब्रजभाषा में की गई। इसमें देशकाल परिस्थिति के अनुसार स्थापित शास्त्रीय मर्यादा, सामाजिक आदर्श, गुण-दोष तथा चरित्रवान्, तेजस्वी, यशस्वी, प्रजा संरक्षण में निपुण 'तालध्वज' नगर के राजा विक्रम के महत्त्व का वर्णन हुआ है। इसमें वर्ण व्यवस्था के अनुसार चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा छत्तीस जातियाँ—राजपूत, जाट, गूजर, गोरए, अहीरे, तेली, तंबोली, धोबी, नाई, कोली, चमार, चूहरे, खटीक, कुंजड़े, लुहार, ठठेरे, चुरहरे, लखेरे, सुनार, छीपी, सूजी, झीमर, खाती, कुनबी, बढई, कहार, धुनिए, धानक, काछी, कुम्हार, भटियारे, बरियारे, बारी, माली, मल्लाह अपने-अपने धर्म-कर्म के अनुसार सावधानीपूर्वक निवास करते थे। इसमें रघुराम कवि के छंदों का उपयोग भी इन्होंने किया है—उदाहरणार्थ निम्न छंद पठनीय है—

पुन्यशील-प्रजापाल, न्याव प्रतिपक्ष न कोई,
कर सौंपे अधिकार आप सम जाने सोई।
रस भाषा रण निपुण शत्रु उर में हितसालै,
जो जहिं लायक होय ताहि तैसी विधि पालै।
सुखकरन भयद सागर सरस रतनग्राहली ने रहै,
लक्षण अनंत महिसाल केसु बुधि प्रमाण कवि रघु कहै।⁸

'ऐनल्स ऑव दि कॉलेज ऑवफोर्ट विलियम' के परिशिष्ट में दी गई सूचना के अनुसार लल्लूलाल जी की रचना 'सभा विलास' सभा में आमोद-प्रमोद और मनोरंजन के उद्देश्य से ब्रजभाषा के विख्यात कवियों के चयनित काव्यांशों एवं मुक्तकों का संकलन के रूप में

‘खिजिरपुर’ से देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुआ था। संस्कृत में नारायण पंडित द्वारा रचित हितोपदेश’ को सत्यानुवाद के रूप में लल्लूलाल जी ने ‘राजनीति’ के शीर्षक से ब्रजभाषा में हिंदू समाज को नैतिक, नागरिक और सैनिक आदर्शों को कहानियों के माध्यम से पुनरुज्जीवित करके सच्चे अनुवाद के रूप में सन् 1809 ई० में ब्रजभाषा में प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि ‘याहितें पाँच प्रकार की कथा करि कहत हौं। पहली मित्र-लाभ कहै प्रीति कराइबे की रीति। दूजी सुहृद भेद कहैं स्नेह छुपायवे की रीति। तीजी विग्रह कहै-युद्ध कारायवे की चालि। चौथी संधि कहै कारायवे की युक्ति संग्रामतें पहिले होयकै पाछै। पाँचवीं लब्ध प्रकाश एक वस्तु पाय कै हिराय दैनी।’⁹ हिंदी भाषा का लघु व्याकरण ‘भाषा कायदा’ के नाम से लल्लूलाल जी ने लिखा था। किसी कारणवश इस पुस्तक का छपने के उपरांत प्रकाशन संभव नहीं हो सका। प्रमाण के लिए इसकी बंगाल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता अथवा लल्लूलाल जी के प्रेस की विज्ञप्ति का संदर्भ ग्रहण किया जा सकता है। इसी क्रम में उस समय प्रचलित लतीफेबाजी की परंपरा को दृष्टि में रखते हुए इन्होंने फारसी, हिंदी-ब्रजभाषा, हास्य-व्यंग्य एवं मनोरंजन से परिपूर्ण लघुकथाओं के संग्रह ‘लतायफ-इ-हिंदी’ का प्रकाशन सन् 1810 ई० में फारसी एवं नागरी लिपि में कलकत्ता से ‘दिन्यू साइक्लोपीडिया हिंदुस्तानिका, एटसीटरा’ अर्थात् ‘हिंदुस्तानी आदि का नया विश्वकोश’ के नाम से किया। ‘फोर्ट विलियम कॉलेज’ के हिंदुस्तानी भाषा के छात्रों के लिए यह पर्याप्त उपयोगी सिद्ध हुई। सन् 1821 ई० में ‘कारमाइकेल स्मिथ’ ने लंदन से इसके निर्धारित नाम ‘लतायफ-इ-हिंदी’ के नाम से नागरी लिपि को अनुपयोगी स्वीकार करके रोमन लिपि में प्रकाशित किया। कथाओं के शीर्ष को ही संख्या ‘नकल’ एक, ‘नकल’ दो आदि होने के कारण इनके बहुवचन उच्चारण के अनुसार ‘नकलियात’ का नाम प्रकाशित हुआ है। इसमें फारसी लिपि की एक नकल में कहा गया है कि ‘एक अंधाबैरागी काशी के बीच मुन्करिन के घाट पर बैठा था। गहन में दही पेड़ा खा रहा था कि देखकर किसी पंडित ने पूछा सूरदास जी यह क्या करते हो? बोला-महाराज दही पेड़े खाता हूँ। कहा गहन में जवाब दिया-मेरे गुरु की दया से सदा ही गहन है। यह सुन पंडित सुनकर चुप रहा।’¹⁰ कहावत, दोहा आदि भी इसके अंतर्गत समाविष्ट हुए हैं-

बहता पानी निरमला बंध गंधेला होय,
साधू जन रमता भला दाग न लागे कोय।
आह दर्ई कैसी बनी अनचाहत को संग,
दीपक के भावें नहीं जल जल मरे पतंग।
आव पतंग निसंक जल जलत न मोड़ो अंगे,
पहले तो दीपक जले पाछे जले पतंग।¹¹

सन् 1819 ई० में लल्लूलाल जी ने ‘शुभकर्ण’ की ‘अनबर चंद्रिका’, नवाब-राजगढ़ ‘मुलतान पठान’ द्वारा रचित ‘कुंडलिया’, ‘सुरति मिश्र’ की ‘अमरचंद्रिका’ और ‘हरिचरणदास’ की ‘हरिप्रकाश’ इत्यादि के साहाय्य संबंध से खड़ीबोली गद्य में ‘बिहारी सतसई’ की टीका ‘लालचंद्रिका’ का निर्माण किया। इसे इन्होंने अपने द्वारा ‘पटलडाँगे’ कलकत्ता में स्थापित ‘संस्कृत प्रेस’ से सन् 1819 ई० में ही प्रकाशित किया। इसके उपरांत सन् 1869 ई० में ‘लालचंद्रिका’ की लोकप्रियता से प्रभावित होकर ‘पंडित गोपीनाथ पाठक’ ने इसे ‘लाइट प्रेस, बनारस’ से प्रकाशित किया। खड़ीबोली गद्य के क्षेत्र में इसके महत्त्व को स्वीकार करते हुए विख्यात भाषाविद् ‘डॉ० ग्रियर्सन’ ने ‘गवर्नमेंट प्रेस कलकत्ता’ से इसे सन् 1896 ई० में प्रकाशित कराया। ‘मोर मुकुट की

चंद्रिकन यों राजत नंद-नंद, मनुससिशेखर की अकस किय शेखर शतचंद।' यह श्रीकृष्ण के मुकुट की शोभा सखी की उक्ति नायिका से भक्त का वचन कै कवि की युक्ति है, मोर पंख के मुकुट की चंद्रिका कहें, चंद्राकार जो मोर पंख में होता है। तिन से नंद-नंदन कहें नंदराय जी के पुत्र श्रीकृष्ण चंद्र यों राजत कहें यों शोभायमान है मानो शशिशेखर कहें शिवजी तिनके मन की अकस कहें द्वेष निज मन में विचार अपने शेखर कहें सिर पै सौ चंद्रमा किए हैं। श्रीकृष्ण जी ने कृष्ण ब्रज-विलास में शिवजी और कृष्ण जी के विरुद्ध पुराण के मत कही नहीं है। यह शास्त्र विरुद्ध अकस शब्द कवि ने दोहे में क्यों धारा उत्तर-शिव जो जरायौ काम से उपज्यौ नंद नंद प्रद्युम्न। काम का अवतार हौ तात्पर्य यह है कि अपना प्रभाव दिखाया कि जो तुम एक काम को जलाओगे तो हम सौ काम उपजाएँगे असिद्धास्पद हेतु त्रेक्षा अलंकार।¹²

'प्रेमसागर' में वेदव्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवत के 'दशम-स्कंध' का हिंदी अनुवाद सन् 1567 ई० चर्तुभुज मिश्र द्वारा दोहा-चौपाई शैली में ब्रजभाषा में किया गया था। लल्लूलाल जी ने 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के छात्रों के अध्ययन के लिए खड़ीबोली में इसका अनुवाद स्वकर्तव्य-पालन हेतु सन् 1803 ई० में किया। इसकी भूमिका में इन्होंने लिखा है कि 'श्रीमहाराजाधिराज सकल-गुणनिधान पुन्यवान महाजान मारक्विस वेलिजली गवरनर-जनरल प्रतापी के राज में...औ श्रीयुत गुन-गाहक गुनियन सुखदायक जान गिल किरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत् 1860 में श्री लल्लूलाल जी लालकवि ब्राह्मण गुजराती सहस्त्र-अवदीच आगरे वाले ने विसका सार ले, यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरे की खड़ीबोली में कह, नाम प्रेमसागर धरा, पर श्रीयुत जान गिलकिरिस्त महाशय के जाने से बना अधबना, छपा अधछपा रह गया था, सो अब श्री महाराजेश्वर अति-दयाल कृपाल यसस्वी तेजस्वी गिलबर्ट लार्ड मिंटो प्रतापवान के राज में औ श्री गुनखान सुखदान कृपा-निधान भागवान कपतान जान उलियस टेलर प्रतापी की आज्ञा से और श्रीयुत परम सुजान दया सागर परोपकारी डाक्टर उलियम हंटरन छत्री की सहायता से औ निपट प्रवीन दयायुत लिपटन आबराहाम लाकट रतीवंत के कहे से उसी कवि ने संवत् 1866 में पूरा कर छपवाया, पाठशाला के विद्यार्थियों के पढ़ने को।¹³

लल्लूलाल जी ने अपने 'संस्कृत प्रेस' में इसका प्रकाशन सन् 1810 ई० में करके अपने व्यापक धार्मिक उद्देश्य की आपूर्ति का सफल प्रयत्न किया। संभवतः यामिनी भाषा से इनका तात्पर्य फारसी मिश्रित अरबी से था। जोकि हिंदू संस्कृति की मान्यताओं से परिपूर्ण 'प्रेम सागर' के लिए उपयुक्त नहीं थी। धार्मिक विषय-संदर्भ की दृष्टि से भी यह आवश्यक था। अरबी-फारसी और उर्दू से परिपूर्ण 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के भारतीय भाषा विभाग में इनके द्वारा किया गया खड़ीबोली गद्य का यह प्रारंभिक रूप सराहनीय है। प्रमाण हेतु 'चौथा अध्याय' श्रीकृष्ण जन्म की कथा का कुछ अंश पठनीय है—'भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात श्रीकृष्ण ने जन्म लिया, और मेघबरन, चंद्रमुख, कमल नैन हो, पितांबर काछे, मुकुट धरे, बैजंतीमाल और रतनजटित आभूषण पहिरे, चर्तुभुज रूप किए, शंख, चक्र, गदा, पद्य लिए वसुदेव देवकी को दरसन दिया। देखते ही अचंभे हो बिन दोनों ने ज्ञान से विचारा तो आदिपुरुष को जाना, तब हाथ जोड़ विनती कर कहा—हमारे बड़े भाग जो आपने दरसन दिया और जन्म-मरण का निबेड़ा किया।'¹⁴ इसमें संस्कृत की तत्समता के स्थान पर तद्भव शब्दावली के समीकरण के साथ आंचलिक ब्रजभाषा का प्रयोग भी दृष्टव्य है। कथा में वक्ता की वृद्धि के लिए इन्होंने प्रकरण के अनुसार पद्य का उपयोग भी किया है। 'तैंतीसवाँ अध्याय' के मथुरा में श्रीकृष्ण और कुब्जा के मिलन से संबंधित निम्नलिखित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं—

आवें तहाँ मथुरा की नारि। करैं अचंभौ कहै निहारि।
धनि धनि कुबजा तेरौ भाग। जाकौ विधना दियौ सुहाग।
ऐसो कहा कठिन तप कियौ। गोपीनाथ भेटभुज लियौ।
हम नीके नहिं देखे हरी। मथुरा देखत फिरत मुरारि।¹⁵

‘प्रेम सागर’ में सूक्तियाँ, सुभाषित दोहे-चौपाई इत्यादि साथ ही लल्लूलाल जी द्वारा रचित दोहा-चौपाई आदि भी हैं। इससे तत्कालीन कथा परंपरा के प्रभाव की पुष्टि अनायास ही हो जाती है। इसमें प्रचलित अरबी-फारसी के शब्द भी हैं। इन्होंने इसकी गद्य को कृत्रिमतापूर्ण गरिष्ठ शब्दावली से रहित बनाने का यथासंभव प्रयास ‘फोर्ट विलियम कॉलेज’ के छात्रोपयोगी संसाधन के रूप में सफलतापूर्वक किया। इसमें प्राचीन भागवत कथा का अनुवाद संक्षिप्त रीति से बोधगम्य रूप में ‘दिल्ली आगरे की खड़ीबोली’ में किया है। इसका दर्शनिक, साहित्यिक, पौराणिक एवं धार्मिक विचार सारगर्भित और जीवन में अभिव्यंजित भावनाओं से अनुप्राणित है। ब्रजभाषा काव्य जैसी तुकबंदी भी इसकी गद्य-शैली में है। अंत में हम कह सकते हैं कि लल्लूलाल जी ने अपने मौलिक अनुवादों के माध्यम से भारतीय अतीत के धार्मिक और लोककथा साहित्य के आख्यानों को पुनरुज्जीवित करके हितोपदेश प्रदान किया है। अतः इन्हें आधुनिक हिंदी जगत के प्रारंभिक युग का ‘अतीत-विद्या-दर्पण कहना ही उचित प्रतीत होता है। हिंदी खड़ीबोली गद्य के प्रारंभिक लेखक के रूप में ये चिरस्मरणीय हैं।

संदर्भ

1. डॉ० लक्ष्मीसागर वाष्ण्य, आधुनिक हिंदी साहित्य, हिंदी परिषद, विश्वविद्यालय, प्रयाग, 1941 ई०, पृ० 5
2. लल्लूलाल, सिंहासन बत्तीसी, आगरा स्कूल बुक सोसायटी, 1842 ई०, पृ० 1-4
3. लल्लूलाल, बैताल पच्चीसी, आगरा स्कूल बुक सोसायटी, 1843 ई०, पृ० 83
4. वही, पृ० 83
5. लल्लूलाल, शकुंतला नाटक, हिंदी रोमन आरथीपी ग्रैफिकल अल्टीमेटम, जॉन ग्रिलक्राइस्ट, 1804 ई०, पृ० 38
6. वही, पृ० 83, 84
7. लल्लूलाल, माधोनल, आधुनिक हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी परिषद्, इलाहाबाद, यूनीवर्सिटी, 1952 ई०, पृ० 397
8. लल्लूलाल, माधव विलास, संपादक-उत्तमसिंह वर्मा, श्री बेंकटेश्वर प्रेस बंबई, 1898 ई०, पृ० 10
9. लल्लूलाल, राजनीति, हिंदी साहित्य कोश, भाग-2, संपादक-धीरेंद्र वर्मा, वाराणसी, ज्ञानमंडल लिमिटेड, संवत् 2043 वि०, पृ० 486
10. लल्लूलाल, लतायफ-इ-हिंदी, संपादक-विलियम कारमाइकेल स्मिथ, लंदन, 1821 ई०, पृ० 36
11. वही, पृ० 36, 62, 64
12. लल्लूलाल, लालचंद्रिका, लाइट प्रेस संस्करण, बनारस, 1869 ई०, दोहा संख्या-3
13. लल्लूलाल, प्रेमसागर, संपादक ब्रजरत्न दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 1979 वि०, पृ० 1, 2
14. वही, पृ० 19
15. वही, पृ० 125

197/199, डॉक्टरस कॉलोनी
सिविल लाइन्स, बरेली (उ०प्र०)
मो० 9927373723

आषाढ़ का एक दिन : आधुनिक भावबोध और अस्तित्ववादी दर्शन का रंगमंचीय निरूपण

डॉ० अनुपम आनंद

स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य में मोहन राकेश एक सशक्त रचनाकार के रूप में स्थापित हैं। यद्यपि उनका सृजनक्षेत्र बहुआयामी है, किंतु उन्हें सर्वाधिक प्रतिष्ठा एक नाटककार के रूप में प्राप्त है। हिंदी नाट्यसाहित्य में भारतेन्दु और प्रसाद के बाद परंपरा से हटकर मोहन राकेश का ही नाम आता है। उन्होंने हिंदी साहित्य को नवकलेवर प्रदान करते हुए उसे नये दौर से जोड़ने का सराहनीय प्रयास किया है। हिंदी नाटक जो अँधेरे बंद कमरों में कैद हो रहा था, उसे राकेश जी ने बाहरी दुनिया से जोड़ने का काम किया। मोहन राकेश ने नाटक और रंगमंच दोनों को एक साथ स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया। देशी-विदेशी नाटकों के बीच हिंदी नाटक सम्मान से खड़ा हो सके और उसकी नाट्य मौलिकता का विशेष अर्थ हो, यह शक्ति भी मोहन राकेश ने हिंदी नाटक और रंगमंच को दी।¹ उन्होंने हिंदी नाटक को पहली बार आखिल भारतीय स्तर प्रदान करने के साथ-साथ उसे विश्वनाटक की सामान्य धारा की ओर भी अग्रसर किया।

मोहन राकेश के नाटकों का रंगमंचीय सामर्थ्य स्वातंत्र्योत्तर नाटकों की शृंखला में अद्वितीय है। उनके द्वारा रचित आषाढ़ का एक दिन (1958), लहरों के राजहंस (1966), आधे-अधूरे (1969), पैरों तले जमीन (1973 मरणोपरांत प्रकाशित) रंगमंचीयता के निकष पर सर्वश्रेष्ठ नाटकों में सम्मिलित हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' मोहन राकेश का पहला नाटक है और यहीं से वे हिंदी के मौलिक रंगमंच की स्थापना का प्रयास करना आरंभ कर देते हैं। जहाँ जयशंकर प्रसाद रंगमंच को नाटक के लिए मानते हैं, वहीं मोहन राकेश के दृष्टिकोण में नाटक की सार्थकता इस बात में निहित है कि उसके द्वारा हिंदी नाटक के मौलिक रंगमंच के विकास में कितना योगदान दिया गया। मोहन राकेश ने नाटक की प्रचलित परंपरा को तोड़ा नहीं अपितु उसे मोड़कर एक नये कलारूप में विकसित किया।²

स्वातंत्र्योत्तर नाटक लेखन परंपरा में मोहन राकेश, जगदीशचंद्र माथुर और धर्मवीर भारती आदि नाटककारों ने अपने नाटकों की विषयवस्तु आधुनिक भावबोध मनोविश्लेषणवाद और अस्तित्ववाद के दर्शन को बनाया है। मोहन राकेश ने इतिहास और कल्पना का समन्वय करते हुए ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक भावबोधों का प्रकटीकरण करने के लिए सशक्त रंगमंचीय नाटकों का प्रस्तुतीकरण किया है। राकेश का प्रधान कार्य यह है कि उन्होंने आधुनिक संवेदना और आधुनिक मानव के द्वंद्व, संघर्ष और तनाव को नाट्यानुभूति की प्रामाणिकता से व्यक्त किया है।³ ऐतिहासिक नाटकों को लिखने के पीछे उनका इतिहास के प्रति विशेष आग्रह नहीं था बल्कि वे आधुनिक संवेदना को नये कलेवर में जीवंतता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने इस संदर्भ में स्पष्ट लिखा है, 'धर्मवीर भारती और जगदीशचंद्र माथुर और मैंने

ऐतिहासिक नाटक इसलिए नहीं लिखे कि हम इतिहास की व्याख्या करना चाहते हैं या इसलिए कि हमें किसी कालविशेष से लगाव था।’

आधुनिक भावबोध का अभिप्राय उन भावों से है जो तीव्र महानगरीकरण की प्रक्रिया के द्वारा मध्यमवर्ग को उसकी मूल प्रवृत्ति से अलग करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए हैं। इन भावों के अंतर्गत जीवन में प्रामाणिकता का अभाव होना, निरर्थकता एवं विसंगतिबोध होना, आत्मनिर्वासन के भाव, हीनताग्रंथि के प्रभाव में मानव का लघुमानव रूप धारण कर लेना इत्यादि प्रमुख हैं। राकेश का संदर्भ बहुत निजी है जो उसकी कमजोरी भी है और मजबूती भी। व्यापक सामाजिक संदर्भों का कटाव कमजोरी है तो निजीपन का सघन भावबोध मजबूती। वह अपने नाटकों में व्यक्तित्व की स्वतंत्रता और निजता को खोजता रहा है जो एकरसता को तोड़कर प्रामाणिकता को रेखांकित कर सके।⁴ मोहन राकेश के तीनों प्रमुख नाटक ‘आषाढ़ का एक दिन’, ‘लहरों के राजहंस’, ‘आधे-अधूरे’ प्रामाणिक एवं पूर्ण जीवन की तलाश करते हुए दिखाई देते हैं। दो प्रारंभिक नाटकों में इतिहास के आवरण के अंतर्गत समकालीन संवेदना और आधुनिक भावबोध को दिखाने का प्रयास है, तो आधे-अधूरे पूर्णतया ऐतिहासिक परिवेश से मुक्त है। ‘बिखराव’ और ‘पूर्णता की भ्रामक खोज’ तीनों नाटकों में परिलक्षित होती है।

‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक में प्रारंभ से अंत तक प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता तथा पूर्णता-अपूर्णता का द्वंद्व बना रहता है। यहाँ प्रत्येक पात्र कहीं न कहीं प्रामाणिकता की खोज में बेचैन है। नाटक के प्रमुख पात्र कालिदास का जीवन सबसे ज्यादा अप्रामाणिक प्रतीत होता है। वह अप्रामाणिक जीवन जीने को अभिशप्त है। वह सृजनशीलता और सत्ता के द्वंद्व में रहते हुए विकल्प चयन का अप्रामाणिक निर्णय लेता है। यह नाटक कालिदास के काल्पनिक जीवनवृत्त पर आधारित है। इसके माध्यम से मोहन राकेश ने साहित्यकार की उन भूमियों की तलाश की है, जो उसकी सर्जना की प्रेरक बिंदु हैं। मूलतः यह व्यक्ति-स्वातंत्र्य से ही जुड़ा हुआ है।⁵ कालिदास के पास एक विकल्प है कि वह गाँव में गाय चराता हुआ ही अपना जीवन व्यतीत करे और दूसरा विकल्प है कि वह ऐसे आश्रय की तलाश करे जो उसकी रचनाशीलता को आर्थिक प्रश्रय दे सके। उसको इसमें से कोई विकल्प पसंद नहीं है परंतु ‘अभावपूर्ण जीवन की प्रतिक्रिया’ में उसे राजाश्रय के विकल्प का चयन करना पड़ता है। कालिदास का राजाश्रय का निर्णय और कश्मीर का राजा बनने का निर्णय दोनों ही उसकी मूल प्रवृत्ति के विपरीत हैं। यहाँ से उसका जीवन अप्रामाणिक हो जाता है। कालिदास स्वयं कहते हैं—

‘मैंने बार-बार अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि कमी उस वातावरण में नहीं, मुझमें है। मैं अपने को बदल लूँ तो सुखी हो सकता हूँ। परंतु ऐसा नहीं हुआ। न तो मैं बदल सका, न सुखी हो सका, ...और एक दिन...एक दिन मैंने पाया कि मैं सर्वथा टूट गया हूँ।’

नाटक में केवल कालिदास ही अप्रामाणिक जीवन जीने के लिए अभिशप्त नहीं हैं, बल्कि मल्लिका का जीवन तो और भी अप्रामाणिक है। अस्तित्ववादी चिंतक सार्त्र के अनुसार किसी अन्य व्यक्ति के जीवन को अपने जीवन का आधार मान लेना भी अप्रामाणिकता और अपूर्णता को सिद्ध करता है। वह कालिदास के जीवन को अपने जीवन का आधार बनाती है। अंततः मल्लिका को एक ऐसा विकल्प का चयन करने पर विवश होना पड़ता है, जिसमें उसकी प्रामाणिकता खंडित हो जाती है। उसे वेश्या बनना पड़ता है। वह कालिदास के जीवन को अपने जीवन का आधार मानते हुए कहती है—

‘मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही परंतु तुम हमारे जीवन में सदा ही बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्त्र हूँ। मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है...।’

आषाढ़ का एक दिन महाकवि कालिदास के परिवेश, रचना-प्रक्रिया, प्रेरणास्रोत और उनके चुक जाने से संबद्ध है।...कालिदास में अहं की पीड़ा है तो मल्लिका में रचनात्मक उत्सर्ग की। कालिदास को रचना की प्रेरणा अपने गाँव के परिवेश और वहाँ की प्रकृति से मिली और सबसे प्रभावी स्रोत रही मल्लिका।⁶ मोहन राकेश के नाट्यकौशल का प्रमाण इसी बात से मिलता है कि आधुनिक भावबोध, समकालीन संवेदना, स्वातंत्र्योत्तर महानगरीय जीवन का रोमांस, मोहभंग आदि भावों पर ऐतिहासिक आवरण इस प्रकार चढ़ाया कि सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को रंगमंचीयता प्रदान की जा सके। सूक्ष्म मनोभावों को ऐतिहासिक प्रतीकों द्वारा अभिनय कराकर उन्होंने रंगमंच के लिए नयी संभावनाओं के द्वार खोल दिए। उनके प्रभावी संवाद किसी भी प्रकार की शुष्कता से प्रभावित नहीं दिखायी देते हैं। ‘स्वातंत्र्योत्तर भारत के महानगरीय जीवन की अप्रामाणिकता को इतिहास और कल्पना के समन्वय से उन्होंने इस प्रकार गढ़ा है कि वह नाटक आषाढ़ का एक दिन हिंदी रंगमंच की पहली पसंद बन गया है। आषाढ़ का एक दिन राज्याश्रय और व्यक्ति स्वातंत्र्य के बीच भटकती हुई सर्जनात्मकता का नाट्य बिम्ब है।’⁷

नवलेखन के नये दौर में अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव गद्य और पद्य की हर विधा पर पड़ा। कविता, कहानी, उपन्यास के साथ-साथ स्वातंत्रता के बाद मार्क्सवाद और हीगेल के बुद्धिवाद की प्रतिक्रियास्वरूप अस्तित्ववाद का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। ‘मोहन राकेश की साहित्यिक सृजनात्मकता पर अस्तित्ववाद का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में है। नाटकों में इस दर्शन का प्रक्षेपण करने का सर्वाधिक श्रेय भी मोहन राकेश को जाता है। मोहन राकेश का नाटक आषाढ़ का एक दिन इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। मानव अस्तित्व के प्रश्न इस नाटक में उभरते हैं और मनुष्य की आंतरिक स्वतंत्रता का अर्थ नाटक में खुलता है।’⁸

मोहन राकेश के प्रमुख नाटक आषाढ़ का एक दिन में अस्तित्ववाद की स्पष्ट छाप दिखायी देती है। साथ ही बीसवीं शताब्दी के वैचारिक दर्शन को वे प्राचीन ऐतिहासिक पात्रों और अपनी कल्पना के समन्वय द्वारा इतनी जीवंतता के साथ प्रस्तुत करते हैं कि वे आधुनिक हिंदी रंगमंच के लिए अत्यंत प्रासंगिक हो जाते हैं। ‘आषाढ़ का एक दिन अकेला नाटक है जिसे रंगमंच और नाट्य की अद्भुत उपलब्धि माना जा सकता है। एक सक्रिय रंगमंच आंदोलन की शुरुआत इसी नाटक से मानी जाती है।’⁹

आषाढ़ का एक दिन में कालिदास विकल्प चयन के संकट से जूझते हैं। कालिदास गाँव की गोचारण परंपरा में पला-बढ़ा कवि है। गाँव में उसे कोई महत्त्व नहीं मिलता परंतु उसकी मूल प्रवृत्तियाँ गाँव से ही जुड़ी हुई हैं। सामाजिक दबाव और भर्त्सना के कारण वह राजाश्रय स्वीकार कर लेता है और अंततः उसे कश्मीर का शासक बना दिया जाता है। वस्तुतः कालिदास कलाकार के व्यक्ति-स्वातंत्र्य और राज्याश्रय के बीच भटकती हुई सर्जनात्मकता का विशिष्ट बिम्ब है।... राकेश ने आर्थिक अभावों से जूझते हुए भी अपने व्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा की है। संभवतः इसी लिए कालिदास के संघर्ष से अनुभूति की प्रामाणिकता आ गयी है।¹⁰ यहीं सृजनात्मकता और सत्ता के मध्य द्वंद्व आरंभ होता है। मूल प्रवृत्तियों से दूर होने के कारण उसे संतुष्टि और आनंद की अनुभूति नहीं हुई है। उसका कथन है—

‘तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं कश्मीर का शासन सँभालने जा रहा हूँ?...अभावपूर्ण जीवन की यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी।’

जब यह विकल्प चयन उसे सुखी नहीं कर पाता, तब वह कहता है—

‘अधिकार मिला, सम्मान बहुत मिला, परंतु मैं सुखी न हो सका। किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था। मेरे लिए नहीं था।’

स्वाभाविक निर्णय न ले पाने की स्थिति में ‘जो मैं हूँ और जो मुझे होना चाहिए था’ में निरंतर संघर्ष चलता रहता है। यह प्रक्रिया मानव के अंदर एक विसंगति को जन्म देती है। विसंगतिपूर्ण जीवन का स्वाभाविक परिणाम है मनुष्य का अपने मूल व्यक्तित्व से अलग हो जाना। इस आत्मनिर्वासन या अजनबीपन भी कहते हैं। जब व्यक्ति ऐसी स्थितियों में जीवन व्यतीत करता है, जिसमें बने रहने के लिए उसे बार-बार अपने ‘स्व’ की हत्या करनी पड़ती है तो धीरे-धीरे उसके लिए मूल व्यक्तित्व ही पहचानना असंभव हो जाता है। कालिदास का आत्मनिर्वासन अस्तित्ववाद के बोध से प्रभावित है।

संभवतः पहचानती नहीं हो और न पहचानना ही स्वाभाविक है क्योंकि मैं वह व्यक्ति नहीं हूँ, जिसे तुम पहचानती रही हो। दूसरा व्यक्ति हूँ, और सच कहूँ तो वह व्यक्ति हूँ, जिसे मैं स्वयं नहीं पहचानता हूँ।

आत्मनिर्वासन के भावों को अभिव्यक्त करने वाले उपर्युक्त संवाद मोहन राकेश की संवाद-योजना की बानगी है। उनकी संवाद-योजना विशेषतः आषाढ़ का एक दिन हिंदी रंगमंचीय परंपरा को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। आधुनिक और अस्तित्ववादी भावबोध से उपजी सूक्ष्म मानवीय संवेदना को भी वह प्रतीकों के माध्यम से जीवंत बना देते हैं। उनके इसी कौशल के कारण आषाढ़ का एक दिन रंगमंचीयता की कसौटी पर अग्रिम पंक्ति में खड़ा नाटक है।

संदर्भ

1. विजयेंद्र स्नातक, हिंदी साहित्य का इतिहास साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पृष्ठ 390
2. वही, पृष्ठ 390
3. वही, पृष्ठ 390
4. बच्चनसिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 313
5. वही, पृष्ठ 314
6. डॉ॰ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, नयी दिल्ली, पृष्ठ 662
7. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ 464
8. विजयेंद्र स्नातक, हिंदी साहित्य का इतिहास साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली, पृष्ठ 391
9. वही, पृष्ठ 390
10. बच्चनसिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 314

शिक्षक (हिंदी)

राजकीय हाईस्कूल, असदामऊ, बेलहरी, बाराबंकी

1/93 विभव खंड, गोमतीनगर लखनऊ, 226010

anupam.anand10@gmail.com

भारत में कंपनी सरकार की शिक्षानीति

सुवाति

शोधछात्रा, इतिहास विभाग

सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारत में नई पश्चिमी शिक्षा पद्धति का प्रचार-प्रसार प्रारंभ हुआ। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार के लिए व्यक्तिगत, सामूहिक, सरकारी और गैर-सरकारी एवं निजी स्तर पर प्रयास किए गए। भारतीयों द्वारा शिक्षा संबंधी प्रयास मुख्य रूप से ईसाई मिशनरियों की धर्म-प्रचार रुचि एवं उपयोगितावादियों के विचारों के परिणाम थे। सर्वप्रथम ईसाई मिशनरियों ने भारत में आधुनिक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का प्रयास किया था। पुर्तगाली पादरी सेंट फ्रांसिस जेवियर लोगों को बाईबिल के उपदेश देता था, इसीलिए उसने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए बंबई में ब्रांद्रा, गोआ में चोल आदि स्थानों पर कॉलेज की स्थापना की थी। इन विद्यालयों में बाईबिल, लैटिन भाषा, पुर्तगाली व्याकरण, तर्कशास्त्र एवं संगीत की शिक्षा भी दी जाती थी। जेवियर के कार्यों में रॉबर्ट डे नोबिल की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। पुर्तगालियों के बाद नीदरलैंड और फ्रांसवासियों ने कंपनी के कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा के लिए कई पाठशालाएँ खोलीं। इन शिक्षण संस्थाओं में भारतीय छात्रों के प्रवेश को प्रोत्साहित करने के लिए निःशुल्क भोजन, कपड़े, पुस्तकें और छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती थीं। बंगाल का सेरामपुर डेनमार्क बैप्टिस्ट मिशनरियों का कार्यक्षेत्र बन गया था।¹ तिसगेनबाल्गा ने तमिल भाषा सीखकर ट्रांकूबार में डेनिस तमिल मिशन की स्थापना की थी। कंपनी के क्षेत्रों में अंग्लों इंडियन बच्चों के लिए बहुत सारे चैरिटी स्कूलों की स्थापना की गई थी। संत मेरी चैरिटी स्कूल मद्रास, रैव० डब्ल्यू० स्टीविन्सन चैरिटी स्कूल बोम्बे, रैव० रिचर्ड कोबे एवं पादरी बेलामी ने चैरिटी स्कूल कोलकत्ता की स्थापना की थी।²

कंपनी के पादरियों ने पाश्चात्य शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। डेविड ब्राउन ने कलकत्ता में बोर्डिंग स्कूल की स्थापना की, इस स्कूल में हेनरी मार्टिन और डेनियल कोरी ने महत्वपूर्ण कार्य किए थे। इन पादरियों ने राजा जयनारायण घोषाल को एक विद्यालय खोलने के लिए प्रेरित किया था और यह विद्यालय उत्तर प्रदेश में अँग्रेजी शिक्षा का अग्रदूत बना था। विलियम कैरी, जॉन मार्शम और विलियम वार्ड श्रीरामपुर में बस गए थे। उनके संयुक्त प्रयासों की तुलना यूरोप के पुनर्जागरण से की जाती है। इन मिशनरियों ने 1717 ई० में ईसाई धर्म की शिक्षाओं के प्रचार के लिए सिरामपुर कालेज की स्थापना की। विलियम कैरी ने भारतीय भाषाओं जैसे-संस्कृत, बंगला, मराठी इत्यादि का अध्ययन किया था। आधुनिक बंगला गद्य की नींव डालने में कैरी की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। हालहैड और कैरी ने बंगला में व्याकरण की रचना की। श्रीरामपुर की 'बैप्टिस्ट फीमेल स्कूल सोसायटी' ने ढाका, चटगाँव एवं कलकत्ता में भी विद्यालयों की स्थापना की थी। जॉन क्लाक मार्शमैन, फेलिक्स कैरी और विलियम येट्स

आदि ने शिक्षा के विकास के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। पादरी अलैक्जेंडर डफ ने अँग्रेजी शिक्षा को समस्त ज्ञान का वाहक माना था।³ अलैक्जेंडर डफ के विचारों से प्रभावित होकर मिशनरी सोसाइटियों ने बंबई में विल्सन कालेज, मद्रास में क्रिश्चियन कालेज, नागपुर में हिसलप कालेज और आगरा में सेंट जॉन कालेज की स्थापना की। जॉन ओवन, चार्ल्स ग्रांट, डेविड हेयर, बैथ्यून और प्रोफेसर पैट्टन ने नारी शिक्षा को प्रोत्साहित किया था। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चार्ल्स ग्रांट ने पाश्चात्य शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक पुस्तक ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रस्तुत की थी। इस पुस्तक में जनता के शैक्षणिक स्तर एवं नैतिक जीवन के उन्नयन के लिए पाश्चात्य ज्ञान को प्रदान करने का समर्थन किया गया था। उन्होंने भारतीय जनता के पिछड़ेपन एवं अंधकारमय जीवन को उनके विकास में प्रमुख बाधा माना था।⁴

1765 के युद्ध के बाद जब कंपनी भारत में प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन गई थी तब शिक्षा नीति में बदलाव किए गए। इससे पहले कंपनी का मुख्य उद्देश्य केवल यूरोपीय एवं आंग्ल-भारतीय बालकों को शिक्षित करना था। किंतु बाद में कंपनी की शिक्षा नीति में भारतीय जनता को भी शामिल किया गया। प्रारंभ में उन्होंने हिंदू और मुसलमानों के शैक्षिक संस्थाओं को बढ़ावा देने का निर्णय लिया। नवीन मदरसों और पाठशालाओं की स्थापना की गई और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान भी प्रदान किए गए। मौलवियों एवं विद्वान पंडितों को सम्मान चिह्न और अनुदान दिए गए। आरंभ में कंपनी ने भारतीय परंपराओं को संरक्षित रखने का प्रयास किया। कंपनी प्रतिभाषाली बालकों को प्रशिक्षित कर सरकार के अधीन पदों पर उन्हें नियुक्त करना चाहती थी ताकि समाज के उच्च वर्गों का सहयोग शासन कार्यों में प्राप्त कर भारत में कंपनी के शासन को सुदृढ़ किया जा सके। इसीलिए हिंदुओं एवं मुसलमानों के लिए उच्च शिक्षा के केंद्र स्थापित किए गए। कंपनी की इस शिक्षा नीति के द्वारा दानाश्रित विद्यालयों से भिन्न विद्यालयों की स्थापना की गई।⁵

वारेन हेस्टिंग ने कलकत्ता में एक मदरसा बनवाया था⁶ और धर्माचरण एवं विद्वता के लिए प्रसिद्ध मौलवी मजीउद्दीन को मदरसे में अध्यापक नियुक्त किया था। कलकत्ता मदरसे की स्थापना का मुख्य उद्देश्य मुसलमानों को संतुष्ट करना था। मुस्लिम परिवारों के बालकों को प्रशिक्षित कर सरकार के उत्तरदायित्वपूर्ण एवं लाभकारी पदों के लिए अर्हतावान बनाना था। इस मदरसे के विद्यार्थियों को अर्हता प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के उपरांत न्यायालयों में रिक्त पदों पर नियुक्त किया गया। प्रारंभ में मदरसे के विकास के लिए 29,000 रुपए की आय की जमीन प्रदान की गई। जोनाथन डंकन ने गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंग के सम्मुख सरकारी व्यय से बनारस में एक संस्कृत कालेज खोलने का प्रस्ताव रखा था।⁷ इस कालेज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य संस्कृत शिक्षा के प्रचार के लिए पंडितों को प्रशिक्षित करना था। इस कालेज की स्थापना हिंदुओं के धार्मिक केंद्र के रूप में उनके विधानों, साहित्य एवं धर्म के संवर्द्धन के लिए की गई थी। 'बनारस संस्कृत पाठशाला' कुछ समय बाद एक लब्धप्रतिष्ठित संस्थान बन गई थी।⁸ जोनाथन डंकन ने इस पाठशाला का पाठ्यक्रम 18 विधाओं के आधार पर निर्धारित किया था। यह पाठ्यक्रम प्राचीन हिंदू संस्थाओं के धार्मिक विषयों पर आधारित था। छात्रों को निःशुल्क शिक्षा के साथ छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की गईं। लार्ड विलियम बैंटिक के समय पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के आधार पर इस पाठशाला को प्रदान की जानेवाली आर्थिक सहायता बंद कर दी गई।⁹ बैथ्यून ने कलकत्ता में कन्या पाठशाला की स्थापना की थी। बैंटिक ने कलकत्ता में एक मेडिकल कालेज

पश्चिमी औषधि विज्ञान के आधार पर खोला था। वर्नाकुलर शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए आकलैंड ने 500 रुपए मासिक एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल को दिए थे। इसी तरह के कार्य एलफिस्टन ने बंबई, टामसन ने आगरा और मुनरो ने मद्रास में किए। टामसन ने हल्काबंदी प्रारंभ कर एक प्रतिशत अधिभार राजस्व पर लगाया और प्रत्येक गाँव में प्राइमरी स्कूल, प्रत्येक तहसील में मिडिल स्कूल और प्रत्येक जिले में एक हाईस्कूल खोला गया।

वारेन हेस्टिंग्स भारतीय दर्शन एवं साहित्य का बड़ा प्रेमी था वह भगवद्गीता के निष्काम सिद्धांत से बहुत अधिक प्रभावित था। उसने सर विलियम जॉस, चार्ल्स विल्किन्स और एन०बी०द हालहेड को प्राच्य भारतीय साहित्य का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। इन सब के प्रयासों से एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की गई।¹⁰ लोक शिक्षा समिति में एच०टी० प्रिंसेप के नेतृत्व में एक दल प्राच्य शिक्षा का समर्थक था और दूसरा दल अँग्रेजी शिक्षा का समर्थक था। प्राच्य विद्या के समर्थक प्रिंसेप और विल्सन प्राचीन भारतीय शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान को बढ़ावा देने के पक्ष में थे, जबकि दूसरी और लार्ड मैकाले और राजा राममोहन राय अँग्रेजी शिक्षा एवं ज्ञान-विज्ञान को ही भारतीयों की उन्नति एवं विकास के लिए उपयोगी और उन्नयनकारी समझते थे। ऐसी स्थिति में परंपरागत और पाश्चात्य शिक्षा के मध्य कई दशकों तक संघर्ष चलता रहा। इस नवीन शिक्षा प्रणाली के द्वारा कंपनी के हितों के पोषण के लिए शिक्षित वर्ग का गठन करना था।¹¹ 1813 में ब्रिटिश सरकार ने यह स्वीकार किया कि भारतीय लोगों को शिक्षित और प्रशिक्षित करना कंपनी का मूल कर्तव्य है। 1813 के चार्टर एक्ट के द्वारा मिशनरियों को भारत में शैक्षिक कार्य करने की अनुमति दी गई। ब्रिटिश सरकार ने एक लाख रुपए शिक्षा पर खर्च करने की घोषणा की किंतु इस राशि का 1833 तक समुचित उपयोग नहीं हो सका।¹² 1822 एवं 1823 में कुछ स्थानों पर शिक्षा की प्रगति संबंधी आँकड़े एकत्र किए गए। इन आँकड़ों के आधार पर यह ज्ञात हुआ कि कंपनी के प्रमुख केंद्रों में भी शिक्षा का प्रसार दो प्रतिशत लोगों तक ही हो पाया था। इन निष्कर्षों के आधार पर बंबई के गवर्नर एलफिन्सटन ने शिक्षा के अनवरत प्रसार पर बल दिया था। कंपनी के द्वारा शिक्षा की प्रगति संबंधी आँकड़े एकत्र करने के लिए 'जनरल कमेटी ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन' की नियुक्ति की गई। 1833 के चार्टर एक्ट के द्वारा भारत में पाश्चात्य विचारों के स्वतंत्रतापूर्वक प्रसार पर विशेष ध्यान दिया गया। इस एक्ट के द्वारा पश्चिम शिक्षण प्रणाली के आधार पर विद्यालय को बिना किसी बाधा के स्थापित करने पर बल दिया गया।¹³

इस समय भारत में अनेक देशी रियासतों के राजाओं द्वारा भी शैक्षिक कार्यों के लिए अनुदान दिए गए। ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा स्थापित बेलेजियन मिशन एवं लंदन मिशन ने भारत में चिकित्सालय, विद्यालय एवं अनाथालय स्थापित किए जहाँ पर निःशुल्क शिक्षा एवं सेवा उपलब्ध कराई जाती थीं। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार एवं बढ़ती साम्राज्यवादी आवश्यकताओं, ईसाई मिशनरियों द्वारा किए गए शैक्षिक कार्यों तथा भारत में होनेवाले सुधारवादी आंदोलनों के कारण उत्पन्न होने वाली तीव्र जिज्ञासा के परिणामस्वरूप अँग्रेजी शिक्षा की माँग में वृद्धि होने लगी। लार्ड मैकाले ने 1813 के एक्ट द्वारा दिए गए धन को पाश्चात्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए खर्च करने की सिफारिश की। इन्होंने अँग्रेजी साहित्य की महानता को सिद्ध करने के लिए इसे संपूर्ण विश्व की समस्त भाषाओं के साहित्य से अधिक मूल्यवान बताया और कहा कि कानून और धर्म की भाषा के रूप में हिंदी को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। मैकाले ने अपने घोषणा पत्र में यह कहा कि क्या हम भारतीयों को अनुगामी बनाए रखने के लिए अशिक्षित ही बना रहने दें?

उसने यह भी उल्लेख किया कि यदि पाश्चात्य ज्ञान के आधार पर भविष्य में कभी भी भारतीय यूरोपियन संस्थाओं की माँग करेंगे तो वह दिन अँग्रेजी इतिहास में गौरव का दिन होगा।¹⁴ लार्ड मैकाले ने भारत को अंधविश्वासों की भूमि कहा था। शायद वह प्राचीन भारतीयों के समृद्ध ज्ञान के प्रति अनभिज्ञ था। अंत में ब्रिटिश सरकार ने मैकाले के सुदृढ़ तर्कों के आधार पर अँग्रेजी शिक्षा की प्रगति के पक्ष में ही अपना निर्णय दिया।¹⁵ मैकाले की प्रभावशाली नीति के बाद शिक्षा के प्रारूप संबंधी विवाद लगभग समाप्त हो गया था।¹⁶

लार्ड आकलैंड ने भारतीयों में पाश्चात्य शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए वजीफे की व्यवस्था प्रारंभ की। वुड डिस्पैच की सिफारिश के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली की आधारशिला रखी गई। 1854 ई० में वुड डिस्पैच ने शैक्षिक हितों का भार सरकार से अपने कंधों पर लेने की सिफारिश की। यूरोप की कला, विज्ञान और दर्शन की शिक्षा यहाँ पर भी दी जाए और साथ ही भारतीय भाषाओं को भी बढ़ावा दिया जाए। शिक्षा मुख्य रूप से वर्नाकुलर भाषा में ही दी जाए। मैकाले के फिल्डेशन सिद्धांत के द्वारा शिक्षा उच्च श्रेणी के लोगों से छन-छनकर जनसाधारण तक पहुँचेगी।¹⁷ 1882 के एक्ट के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी नियंत्रण को कम किया गया और विकेंद्रीकरण की नीति को बढ़ावा दिया गया। प्राथमिक शिक्षा का दायित्व नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों को दिया गया। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के विकास पर ध्यान देते हुए धर्म निरपेक्ष शिक्षा की नीति अपनाई गई। हंटर शिक्षा आयोग ने प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रांतीय राजस्व का एक भाग आरक्षित करने की सिफारिश की। स्थानीय संगठनों के नियंत्रण और अध्यापन एवं निरीक्षण के क्षेत्र में भारतीयों का प्रभाव बढ़ा दिया गया।¹⁸ शिक्षा का उत्तरदायित्व स्थानीय स्वशासित संस्थाओं को मिलने के कारण जनसामान्य को शिक्षा प्रदान करने का कार्य प्रारंभ हुआ। कंपनी सरकार की शिक्षा नीति की समाप्ति के बाद लार्ड कर्जन ने 1904 में विश्वविद्यालय अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के द्वारा विश्वविद्यालयों पर सरकारी नियंत्रण को बढ़ा दिया गया।¹⁹ लार्ड कर्जन की केंद्रीकरण एवं हस्तक्षेप की नीति के कारण शिक्षा के क्षेत्र में नवीन संघर्ष का प्रारंभ हुआ। इन सब विवादों के फलस्वरूप शिक्षा में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रभाव बढ़ने लगा था। शिक्षा पर धर्म एवं जाति जैसे तत्त्वों का प्रभाव अधिक दृष्टिगत होने लगा।

भारत में अँग्रेजी शिक्षा का प्रसार नवजागरण के उदय में महत्वपूर्ण कारक रहा था। समकालीन ब्रिटिश साम्राज्य के नवीन विचारों से प्रभावित नई शिक्षा भारत में पाश्चात्य ज्ञान के प्रचार-प्रसार का श्रेष्ठतर माध्यम थीं। नवीन शिक्षा नीति धर्मनिरपेक्ष और बिना किसी भेदभाव के अनेक दृष्टियों से प्रगतिशील थी। भारतीयों के लिए इस शिक्षा नीति का सबसे महत्वपूर्ण लाभ लोकतंत्रात्मक विचारों का प्रसार था। अँग्रेजी साहित्य के अध्ययन से वैज्ञानिक, बुद्धिवादी तथा सामाजिक-स्वातंत्र्य के विचारों का प्रसार हुआ। पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से भारतीय के सामाजिक एवं धार्मिक विचारों में परिवर्तन प्रारंभ हुआ। समाज के कुछ बुद्धिवादी वर्गों ने परंपरागत धर्म और समाज पर आलोचनात्मक दृष्टि डालनी प्रारंभ कर दी। यद्यपि कंपनी द्वारा अँग्रेजी शिक्षा का आरंभ अपने साम्राज्य की राजनीतिक-प्रशासनिक तथा आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किया गया था किंतु परोक्ष रूप से भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव में सहायता पहुँचाई। अँग्रेजों की लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली और यूरोप में राष्ट्रवाद एवं स्वतंत्र संस्थाओं के विकास का अध्ययन करने के फलस्वरूप भारतीयों में उपनिवेशवाद के विरुद्ध विद्रोह करने एवं आजादी की लड़ाई छेड़ने की प्रेरणा उत्पन्न हुई।

संदर्भ

1. डॉ० मोहनलाल गुप्ता, आधुनिक भारत का इतिहास, प्रकाशन राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, (2014), पृ० 17-18
2. डॉ० मोतीलाल भार्गव, हिस्ट्री ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन इन उत्तर प्रदेश, प्रिंटिंग एंड स्टेनरी उत्तर प्रदेश, (1958), पृ० 4
3. ताराचंद्र, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, (1969), दूसरा खंड, पृ० 164-66
4. कलकत्ता रिव्यू तृतीय, (1845), पृ० 222 तथा ए सेलेक्शन फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स, ईस्ट इंडिया कंपनी एक्ट ऑफ (1813), सेक्शन-81, पृ० 22
5. जे०पी० नायक, नूरुल्ला, सैयद, भारतीय शिक्षा का इतिहास (1800-1973), दि मैकमिलन कंपनी ऑफ लिमिटेड, (1976), पृ० 35
6. पी०एन० चोपड़ा, बी०एन० पुरी, एम०एन० दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, (1975), प्रथम संस्करण, पृ० 232
7. ए सेलेक्शन ऑफ एजुकेशन रिकार्ड्स, (1781-1839), पार्ट-1, नेशनल आर्काइव ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, (1965), पृ० 10-111
8. रिपोर्ट ऑफ द गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, रिआर्गनाइजेशन कमेटी, बनारस, इलाहाबाद, (1941), पृ० 2
9. रिपोर्ट ऑफ द संस्कृत सिलेबस रिविजन कमेटी, (1941), इलाहाबाद, पृ० 7
10. प्रो० शैलेंद्र पांथरी, डॉ० अमरेंद्र प्रताप सिंह, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, (2004), चतुर्थ संस्करण, पृ० 29
11. हायर एजुकेशन इन साउथ इंडिया, द यूनिवर्सिटी ऑफ मद्रास, वाल्यूम-1, पृ० 15
12. ए सेलेक्शन फ्रॉम एजुकेशनल रिकार्ड्स, ईस्ट इंडिया कंपनी एक्ट ऑफ (1813), सेक्शन-83, पृ० 22
13. रामजे नायर, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश कामनवेल्थ, मैकमिलन एंड कंपनी, लंदन, पार्ट-II, (1930), पृ० 449
14. एच० व्हाइट हेड, इंडियन प्रॉब्लम्स, कांसटेबल एंड कंपनी, लंदन, (1924), पृ० 178
15. एच० शार्प, सेलेक्शन फ्राम एजुकेशनल रिकार्ड्स, सुपरिडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग प्रेस, कालकत्ता, (1914), वाल्यूम-1, पृ० 128
16. मैकाले, एडवोकेट्स वेस्टर्न एजुकेशन ऑफ इंडिया, होम डिपार्टमेंट प्रोसिडिंग्स, ब्रांच-पब्लिक, (7 मार्च 1835), नं० 15
17. जी०एस० छाबड़ा, आधुनिक भारतीय इतिहास, स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लि० नई दिल्ली, (1985), पृ० 251-52
18. रिपोर्ट ऑफ दि एजुकेशन कमिशन, एजुकेशन होम डिपार्टमेंट प्रोसिडिंग्स, (मई 1884), पृ० 28
19. आर० सी० मजूमदार, ब्रिटिश पैरामाउंटरी एंड इंडियन रिनेसा, भारतीय विद्या भवन, बांबे, (1965), पार्ट-2, पृ० 58-59

साहित्य और समाज

डॉ० राजू प्रसाद अहरवाल

सहा० प्राध्यापक, संस्कृत

शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म०प्र०)

साहित्य और समाज एक-दूसरे के पूरक माने जाते हैं। साहित्य समाज की मानसिक तथा सांस्कृतिक उन्नति और सभ्यता के विकास का साक्षी है। साहित्य जहाँ एक ओर समाज को प्रभावित करता है, वहीं दूसरी ओर वह समाज से प्रभावित भी होता है। 'साहित्य' शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से मिलकर हुई है—स = साथ-साथ, हित = कल्याण। अर्थात् प्रत्येक शब्द और अर्थ में लोककल्याण, लोकहित की भावना समाई रहती है। साहित्य समाज का दर्पण है, समाज का मार्गदर्शक है तथा समाज का लेखा-जोखा है। किसी भी राष्ट्र, समाज या सभ्यता की जानकारी उसके साहित्य से प्राप्त होती है। साहित्य लोकजीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी काल के साहित्य से उस समय की परिस्थितियों, जनमानस के रहन-सहन, खान-पान व अन्य गतिविधियों का पता चलता है।

साहित्य शब्द संस्कृत साहित्य के 'सहित' शब्द से बना है—संस्कृत के विद्वानों के अनुसार साहित्य का अर्थ है—'हितेन सह सहित तस्य भवः' अर्थात् कल्याणकारी भाव। साहित्य का उद्देश्य मनोरंजन करना मात्र नहीं है, अपितु इसका उद्देश्य समाज का मार्गदर्शन करना है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

केवल मनोरंजन न कवि कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

डॉ० रामचंद्र शुक्ल ने साहित्य को 'जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब माना है।' तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोश' कहा है।

आचार्य भामह ने अपने ग्रंथ काव्यालंकार में साहित्य की परिभाषा—'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।' अर्थात् शब्द और अर्थ का सहभाव ही काव्य है।

आचार्य दंडी ने अपने ग्रंथ काव्यादर्श में—'शरीर तावद् इष्टार्थं व्यावच्छिन्न पदावली।' अर्थात् काव्य का शरीर तो इष्ट अर्थ से युक्त पदावली होता है।

आचार्य वामन ने अपने ग्रंथ काव्यालंकार सूत्र में—'रीतिरात्मा काव्यस्य विशिष्ट पदावलिः रीति।' अर्थात् काव्य की आत्मा रीति होती है और विशिष्ट पदावली ही रीति होती है। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना है और विशिष्ट पद रचना को काव्य का शरीर माना है।

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ साहित्य दर्पण में—'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।' अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है, कहा है।

आचार्य मम्मट ने अपने ग्रंथ काव्य प्रकाश में—'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।' अर्थात् दोषरहित, गुण सहित शब्दार्थ ही काव्य है, कहा है।

पंडितराज जगन्नाथ ने अपने ग्रंथ रसगंगाधर में कहा है कि—'रमणीयार्थं प्रतिपादकः शब्द

काव्यम्।' अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है।

प्राचीनकाल में भारतीय सभ्यता अति समृद्ध थी, भारतीय संस्कृत साहित्य ऋग्वेद से प्रारंभ होता है, व्यास, वाल्मीकि जैसे पौराणिक ऋषियों ने रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों की रचना की। भास, कालिदास एवं अन्य कवियों ने संस्कृत में नाटक लिखे जो साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

मानव सभ्यता के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, विचारों ने साहित्य को जन्म दिया तथा साहित्य ने मानव की विचारधारा को गतिशीलता प्रदान की, उसे सभ्य बनाने का कार्य किया। मानव की विचारधारा में परिवर्तन लाने का कार्य साहित्य द्वारा ही किया जाता है। इतिहास साक्षी है कि आज तक समाज या राष्ट्र में आज तक जितने भी परिवर्तन आए, वे सब साहित्य के माध्यम से ही आए। साहित्यकार समाज में फैली कुरीतियों, विसंगतियों, विकृतियों, विषमताओं आदि के बारे में लिखता है, इसके प्रति जनमानस को जागरूक करने का कार्य करता है। साहित्य जनहित के लिए होता है, जब सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का पतन होने लगता है, तो साहित्य जनमानस का मार्गदर्शन करता है। जीवन में मानव के साथ क्या घटित होता है, उसे साहित्यकार शब्दों में रचकर साहित्य की रचना करता है, अर्थात् साहित्यकार जो देखता है, अनुभव करता है, चिंतन करता है उसे शब्दों में पिरोकर लिख देता है। साहित्य सृजन की विषयवस्तु प्रकृति एवं समाज के ही विभिन्न पक्षों से ली जाती है।

संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्य में एकता के सूत्र प्राप्त होते हैं—'सहनावतु सहनौ भुनक्तु।' यह मंत्र सामाजिक एकता एवं समरसता का मूलाधार है। संस्कृत वाङ्मय में जिन सामाजिक आदर्शों, नियमों का निदर्शन प्राप्त होता है वह वैदिक ऋषियों द्वारा शताब्दियों के चिंतन, मनन, जीवन के अनुभवों के निष्कर्षों का निचोड़ था। पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था की परिक्ल्पना एवं विस्तार संस्कृत साहित्य की देन है। आश्रम व्यवस्था के प्रयोजन, कर्त्तव्य एवं महत्त्व को यदि हम समझ लें तो जीवन की तमाम असुविधाओं से बचा जा सकता है। मानव समाज को परिष्कृत एवं सुसंस्कृत बनाने हेतु गर्भावस्था से लेकर मृत्युपर्यंत सोलह संस्कारों में से कुछ आज भी समाज में प्रचलित हैं। भारत के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन एवं विकास के सोपानों की संपूर्ण व्याख्या संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध है। हर युग में समाज को साहित्य से ज्ञान की प्राप्ति होती रही है।

समाज—एक से अधिक लोगों के समुदायों से मिलकर बने एक बृहद् समूह को समाज कहते हैं जिसमें सभी व्यक्ति मानवीय क्रियाकलाप करते हैं। समाज में आनेवाले व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति परस्पर स्नेह तथा सहृदयता का भाव रखते हैं। सामाजिक प्रणाली में व्यक्ति को कार्य और पद, दंड और पुरस्कार, योग्यता तथा गुणों से संबंधित सामान्य नियमों और स्वीकृत मानदंडों के आधार पर प्रदान किए जाते हैं। समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों की एक व्यवस्था है, इसलिए इसका कोई मूर्त स्वरूप नहीं होता। इसकी अवधारणा अनुभूतिमूलक है।

समाज एक उद्देश्यपूर्ण समूह होता है, जो किसी एक क्षेत्र में बनता है, उसके सभी सदस्य एकत्व एवं अपनत्व में बँधे होते हैं। व्यक्ति की स्वार्थपरता सामाजिक जीवन के लिए विष के समान घातक है। समाज में व्यक्तिभाव का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। समाज में जब तक पारस्परिक सहयोग, सहानुभूति, सौजन्य, त्याग, सेवा और संगठन की भावना का आविर्भाव नहीं होता, तब तक उसका सामूहिक विकास नहीं होता। परमार्थवृत्ति के अभाव में समाज और व्यक्ति दोनों नष्ट हो जाते हैं। अतएव साहित्य में समाज को सुदृढ़ उन्नतिशील बनाने के लिए—संस्कार,

आश्रम व्यवस्था आदि का उल्लेख किया गया है।

साहित्य और समाज का समन्वय

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। साहित्य और समाज एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य के बिना समाज और समाज के बिना साहित्य का कोई मूल्य नहीं।

अधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है।

मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।

साहित्य मनुष्य को नैतिक मूल्य, कर्म, सुख-दुःख में तटस्थ का भाव, मातृ-पितृ सुश्रूषा, नारी का सम्मान, सत्य, अहिंसा, धर्म, परोपकार, शील सदाचार, सत्संगति, परिश्रमशीलता, धैर्य जैसे भावों को बतलाता है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य अपना जीवन सुखी व सानंदपूर्वक व्यतीत करता है। यथा—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्॥ —मनुस्मृति 2.11

धर्म के चार लक्षण हैं—वेद द्वारा प्रतिपादित, धर्मशास्त्रों द्वारा अनुमोदित, महर्षियों द्वारा आचारित, जो स्वयं की आत्मा को प्रिय हो।

अविद्या मृत्युं तीर्त्वा, विद्ययाऽमृतमनुश्ते। —ईषावास्योपनिषद् 11

मनुष्य अविद्या से मृत्यु को पारकर विद्या से अमरता का आस्वादन करता है।

संस्कृत विस्तृत रूप—‘सत्यं एव जयते’ भारत का राष्ट्रीय आदर्श वाक्य है। इसका अर्थ है—सत्य ही जीतता है। यह भारत के राष्ट्रीय प्रतीक के नीचे देवनागरी लिपि में अंकित है। यह प्रतीक सारनाथ में सम्राट अशोक द्वारा बनवाए गए सिंह स्तंभ के शिखर से लिया गया है।

‘सत्यमेव जयते’ मूलतः मुंडकोपनिषद् 3.1.16 मंत्र है। साहित्य हमें सिखाता है कि जो अपने-अपने कार्यों में लीन रहते हैं वह सिद्धि प्राप्त करते हैं यथा—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः॥ —गीता 18.45

साहित्य समाज को दुःख, कारण और निदान प्रस्तुत करता है—बौद्ध दर्शन में चार आर्य सत्यों में प्रथम आर्य सत्य-दुःख, द्वितीय दुःख का कारण, तृतीय दुःख के कारणों का पता लगाकर निवारण, चतुर्थ आर्य सत्य दुःख निवारण के उपाय।

त्रिषरण—बुद्ध, धम्म, संघ।

पंचशील—अष्टांगमार्ग, शील, समाधि, प्रज्ञा को जो जान लेता है वह दुःखों से विमुक्त हो जाता है। सांख्य दर्शन में त्रिविध दुःख और त्रिविध निवारण बतलाए गए हैं—

दुःखत्रयाभिघ धातात् जिज्ञासा तदपधातके हेतौ।

दृष्टे साऽपार्था चेत् नैकान्तात्यन्तोऽभावात्॥ —सांख्यकारिका 1

कर्मशिक्षा—तस्माद्योगाय युज्यस्व, योगः कर्मसु कौशलम्॥ —गीता 2/50

साहित्य और समाज का संबंध प्रकृति और पुरुष की भाँति है क्योंकि प्रकृति—पुरुष के संयोग से सृष्टि (सर्ग) का निर्माण होता है।

पुरुषस्य दर्शनार्थं केवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।

पङ्गवन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कश्चतः सर्गः॥ —सांख्यकारिका 21

साहित्य व्यक्ति को—यश, धन, व्यवहार शिक्षा, अमंगल का नाश, शीघ्र फल प्राप्ति तथा

पत्नी के समान उपदेश देने वाला है। यथा—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिवृतये कानतासम्मिततयोपदेशयुजे॥ —काव्यप्रकाश 1/2

साहित्य पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा देता है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुंतलम् में शकुंतला के माध्यम से वर्णित किया है कि वह पर्यावरण को नुकसान न पहुँचे इसलिए वृक्षों के पत्ते, फूल नहीं तोड़ती थी। प्रथम पत्ते, फूल आने पर उत्सव मनाती थी।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युस्मास्वपीतेशु या

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः।

सेयं याति शकुंतला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥ —अ.शा.4/9

समभाव—हम सभी में किसी भी प्रकार का द्वेष न हा—

समानी व आकृतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहायति॥ —ऋग्वेद 10/191/4

तुम्हारा कर्म समान हो, तुम्हारे हृदय और मन समान हों, तुम एक मति वाले होकर सब प्रकार से सुसंगठित होओ। जो शील, सदाचार से युक्त होता है, अपने से आयु, शक्ति, विद्या आदि में बड़े पुरुषों की प्रतिदिन सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल में वृद्धि होती है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः

चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्। —मनु. 2/124

हमें स्त्री-पुरुष में भेद नहीं करना चाहिए। स्त्रियों का सम्मान करना हमारा धर्म है। कहा गया है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ —मनु 3.56

सनातन धर्म यही है कि व्यक्ति को सदा प्रिय एवं सत्य बोलना चाहिए। अप्रिय सत्य तथा प्रिय असत्य कभी नहीं बोलना चाहिए—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥ —मनु. 4/138

साहित्य समाज को अपना-पराया नहीं, वरन् संपूर्ण विश्व को एक परिवार की नजरों से देखने की सीख देता है—

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥ —हितो.1/69

समाज में परोपकार की भावना भी साहित्य प्रदान करता है। यथा—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदंशरीरम्॥ —क्रमो. 66

साहित्य ही समाज को राग-द्वेष से दूर रहने की शिक्षा देता है।

यथा अगारं सुच्छन्नं बुट्टि न समतिविज्झति।

एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति॥ —धम्मपद यमकवग्ग 14

जिस प्रकार वर्षा ठीक से छाए हुए घर में प्रवेश नहीं कर सकती, उसी प्रकार सुसंस्कृत

चित्त में राग प्रवेश नहीं कर सकता।

शील (सदाचार) का भाव साहित्य में बतलाया गया है—शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः। (महाभारत, सं.नि.श., पृ० 199), माता, पिता, अतिथि एवं आचार्य को देवता स्वरूप समझने की शिक्षा साहित्य ही प्रदान करता है। यथा—मातृदेवो भव। (तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.2), साहित्य में सर्वकल्याण का भाव छिपा होता है—सभी सुखी रहें, सभी निरोग रहें, सबका कल्याण हो, कोई भी दुःखी न रहे। यथा—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्॥ —सं.नि.श., पृ० 236

माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं—‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।’ माता भूमि है और मैं उसका पुत्र हूँ—‘माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः॥’ (सं.नि.ष., पृ० 238)

साहित्य समाज को एक साथ चलने, खाने, कार्य करने की प्रेरणा देता है—

सहनाववतु, सहनौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहे।

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहे॥ —तैत्तिरीयोपनिषद्, 2.1.1

साहित्य लोगों को ज्ञान कराता है कि परिश्रमी बनो, भाग्य के भरोसे मत बैठो क्योंकि भगवान भी उसी की सहायता करते हैं जो परिश्रमी होते हैं। यथा—

उद्यमः साहस धैर्यं बुद्धि शक्तिः पराक्रमः।

शङ्कते यत्र वर्तन्ते तत्र साहाय्यकृद् विभुः॥ —सं.नि.श., पृ० 287

साहित्य समाज को अवगत कराता है कि राजा अपने देश में पूजा जाता है, विद्वान सर्वत्र पूजा जाता है। पूजा सदैव गुणों की होती है—

गुणाः पूजास्थानं गुणेषु न च लिबं न च वयः॥ —उत्तर रामचरितम् 4.11

साहित्य हमें बताता है कि बिना विचारे कोई कार्य नहीं करना चाहिए। अच्छी तरह सोच-विचारकर ही कार्य करना चाहिए। अच्छी विद्या सत्संगति कराती है, महान लोगों से संसर्ग करवाती है—सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्। —नीतिशतक 23

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि साहित्य और समाज का अटूट संबंध है, साहित्य के बिना समाज और समाज के बिना साहित्य का कोई महत्त्व नहीं है। साहित्य समाज को उचित दिशा निर्देश, मार्गदर्शन, जीवन जीने का तरीका तथा उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर करता है।

संदर्भ

1. धम्मपद, कच्छेदीलाल गुप्त, चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी 2005
2. मनुस्मृति, सुरेंद्रनाथ सक्सेना, अनुप्रकाशन जयपुर 2006
3. संस्कृत निबंध शतकम्, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, एकादश संस्करण 2005
4. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, वि०सं० 2053 (1997)
5. उत्तररामचरितम्, भवभूति, डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 2002
6. सांख्यकारिका, ईश्वरकृष्ण, डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, तृ. सं. संवत् 2056

rpahirwal93@gmail.com

हनेरी लुईस विवियन डिरोजियो एवं डिरोजियन्स का पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान

सरिता

शोधार्थी

आर०जी० (पीजी) कॉलेज, मेरठ

पत्रकारिता का मानव जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। डिरोजियो पत्रकारिता एवं नियतकालीन समाचार-पत्रों को बहुत महत्व देते थे। इसलिए अपनी शिक्षण प्रणाली में उन्होंने प्रत्येक विद्यार्थी की लेखन कला पर बहुत ध्यान दिया। लेखन के माध्यम से विचार जन-जन तक पहुँचते हैं। विभिन्न प्रकार के लेखों के माध्यम से ज्ञान की विभिन्न शाखाएँ जनता तक पहुँचती हैं जैसे कि इतिहास, भूगोल, कृषिदर्शन, विज्ञान, औषधीय ज्ञान, तकनीकी ज्ञान व समसामयिक मुद्दे। इसके अलावा राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक समस्याओं से अवगत कराकर जन-जन को सूचना प्रदान कर जनचेतना जगाने एवं जनता के मध्य समान मत निर्धारण में समाचार पत्रों की विशेष भूमिका है। किसी भी देश के विकास में समाचार-पत्रों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह समाचार-पत्र जनता की कमियों एवं शक्तियों को भी उजागर करता है।

समाचार-पत्र एवं पत्रिका समाज के मनोशैक्षणिक स्थिति को तेजी से बदल सकती है। यह समाज के मध्यकालीन जड़ता से आधुनिक प्रबोधन तक स्थानांतरित कर सकते हैं। एक ईमानदार पत्रकार अपनी सामाजिक एवं धार्मिक पत्रकारिता के माध्यम से जनता का ध्यानाकर्षित कर सकता है और अंततः जन दवाब के सम्मुख परिवर्तन आवश्यकता भावी हो जाता है। जनमत बनाने में समाचार-पत्र पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि उसमें विभिन्न विद्वानों के विचारों का प्रकाशन होता है जैसे कि डेनियल डेफो रूसो, बैजामिन फेंकलिन, रूजवेल्ट, मार्क ट्विन इत्यादि।

सामाजिक, शैक्षणिक परिवर्तन लाने में समाचार पत्र-पत्रिकाओं के महत्व को डिरोजियो एवं डिरोजियन्स भली-भाँति समझ गए थे। डिरोजियन्स सक्रिय रूप से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संगठन एवं प्रकाशन में जुट गए थे। उन्होंने अँग्रेजी साथ ही बांग्ला में अपने शैक्षणिक विचारों, सामाजिक व राजनीतिक विचारों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। उन्होंने उन्नीसवीं सदी में बंगाल की स्थिति, देशभक्ति की विचारधारा को तत्कालीन समय की जनता के सम्मुख रखा था। सन् 1828 एवं 1850 के बीच डिरोजियन्स द्वारा छापे गए समाचार-पत्रों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

द पार्थनान—हिंदू कॉलेज उन्नीसवीं सदी में बहुत प्रसिद्ध था। वहाँ के छात्रों ने प्रथम संगठित पत्रिका का प्रकाशन 15 फरवरी 1830 को किया। इस पत्रिका में विभिन्न मुद्दों से संबंधित लेख प्रकाशित होते थे। ये लेख रेडिकल विचारधारा को समर्पित किए हुए थे। ये स्त्री शिक्षा, निःशुल्क विधिक सहायता, हिंदू धर्म में व्याप्त कुरीतियों इत्यादि से संबंधित होते हैं। इन

पत्रिकाओं को श्री डिरोजियों की सहायता मिलती थी। ये रेडिकल लेख अँग्रेजी शासक और व्यवसाय से जुड़े स्थानीय व्यक्तियों को सचेत करते थे। लेकिन जब ये अतिवादी लेख मुद्रित होते थे तब स्कूल प्रशासन ने इसका विरोध किया और एच०एच० विल्सन ने इसकी सभी प्रतियाँ जब्त करने का आदेश दिया। इस संबंध में इंडिया गजट में प्रकाशित हुआ।

‘दस से बारह दिन पहले पार्थनान का प्रकाशन हुआ। हमें यह कहने का आदेश हुआ कि यह अब बंद करना होगा, भिन्न प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर ऐसा किया जा रहा है। प्रकाशन स्पष्ट रूप से हिंदुओं का था और माता-पिता और दोस्तों के संरक्षक भी पार्थनान जैसी उदारवादी भावनाओं के प्रचार-प्रसार से आर्शंकित थे। उन्होंने इसके दमन के लिए अपने अधिकार का प्रयोग किया।’

द इनक्वायरर—यह मई 1831 में कृष्णमोहन बनर्जी द्वारा प्रकाशित हुआ। प्रसून कुमार ठाकुर की पत्रिका ‘द रिफॉर्मर’ के विरोध स्वरूप इसका प्रकाशन किया गया था। ‘द रिफॉर्मर’ उच्चवर्गीय हिंदुओं की विचारधारा को प्रकाशित करता था। इस प्रथम भाग में कहा गया—‘इनक्वायरर के संप्रदाय के भाव के तहत हम सत्य व प्रसन्नता की खोज करते हैं’ इस पत्र में हिंदू धर्म की पारंपरिक रूढ़िवादिता पर खुलकर प्रहार किया जाता था जिससे जनता जागरूक हो सके और हिंदू धर्म की स्थिति जान सके। सप्ताह-दर-सप्ताह उन्होंने इनक्वायरर के एक कॉलम में हिंदू रूढ़िवादिता की निंदा में लेख प्रकाशित किए, यह पत्र पाँच साल तक प्रकाशित हुआ। इसका अंतिम प्रकाशन जून 1835 हो हुआ।

डिरोजियन्स द्वारा प्रकाशित द्विभाषिक पत्रिकाएँ

(1) **ज्ञाननेशुन : (ज्ञान की खोज)**—यह साप्ताहिक जरनल 31 मई 1931 को राजा दक्षिणरंजन मुखर्जी व रसिक कृष्ण मलिक के द्वारा शुरू किया गया। इसका लाइसेंस राजा दक्षिणरंजन मुखर्जी को जारी हुआ। दक्षिणरंजन मुखर्जी इसके संपादक थे। कालांतर में रसिक कृष्ण मलिक व मदहबचंद्र मलिक ने इस साप्ताहिक पत्रिका के संपादक का कार्यभार सँभाला। प्रबंध समिति में डिरोजियों के अन्य शिष्य यथा रामगोपाल घोष, गोविंदचंद्र, रामचंद्र मिश्र और हरमोहन चटर्जी इत्यादि सम्मिलित थे।

यह अँग्रेजी साप्ताहिक मई में प्रकाशित हुआ। सन् 1833 में इस पत्र को द्विभाषिक जरनल के लिए लाइसेंस मिला। 19 जनवरी 1833 को इसका बांग्ला सत्र प्रकाशित हुआ। बांग्ला भाषा के संपादक गौरीशंकर तारकबग्गी थे। गौरीशंकर एक कुशल बांग्ला भाषा के संपादक के रूप में ख्यातिलब्ध पत्रकार थे उन्होंने बांग्ला पत्रिका ‘भास्कर’ का प्रकाशन किया। लेकिन रेडिकल विचारधारा के कारण एवं समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वास के विरुद्ध आवाज उठाने के कारण सन् 1840 ये दोनों साप्ताहिक पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद करा दिया गया।

ज्ञाननेशुन का अर्थ ही ज्ञान की खोज है इसमें विभिन्न विद्वानों एवं डिरोजियन्स के शैक्षणिक सामाजिक लेख प्रकाशित होते थे। समाज में व्याप्त जातिप्रथा और धर्म के साथ ही सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति के विषय में लेख प्रकाशित किए गए ताकि सामान्यजन भी सचेत रह सके। ज्ञाननेशुन में स्थानीय जनता के लिए कहा गया—‘यदि सरकार हृदय से अपनी जनता की भलाई चाहती है तो यह हमारी सरकार का परम कर्तव्य है कि मूल निवासियों की शिक्षा में कोई कमी ना की जाए।’³

भारत में शिक्षा का माध्यम क्या होना चाहिए यह तत्कालीन समय में एक गंभीर प्रश्न था। कुछ विद्वान देशज स्थानीय भाषा के पक्ष में थे, जो प्राच्यविद् कहलाए। जबकि कुछ विद्वान अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। अँग्रेजी ने उस समय बहुत तरक्की कर ली थी। वैज्ञानिक शोध, चिकित्सीय ज्ञान, इंजीनियरिंग सभी प्रकार का ज्ञान अँग्रेजी में उपलब्ध था। अतः श्री डिरोजियो अँग्रेजी ज्ञान के समर्थक थे। वे राजा राममोहन की भाँति पाश्चात्य शिक्षा के पुरजोर समर्थ थे उन्होंने ज्ञानेशुन में लिखा—‘पिछले कुछ दिनों में हमने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि लोक शिक्षण समिति गलत सिद्धांतों पर चल रही थी। वह संस्कृत, अरबी, फारसी को प्रोत्साहित कर रही थी, जो भारत के किसी भी भाग की स्थानीय भाषा को प्रोत्साहन देने का विचार त्यज्य है और इसके साथ हमें शायद ही कोई समस्या हो, अब हम अपने पाठकों को उस विषय के बारे में निश्चित विचार देने की दृष्टि से विस्तार से चर्चा करेंगे कि भाषा को प्रोत्साहन करने का विचार व्यक्त है, जो कुछ ही लोगों को लाभन्वित कर सकती है और दर्शन के क्षेत्र में हर बुद्धिमान और स्पष्टवादी दिमाग के लिए झूठी साबित हुई है।’¹⁴

स्पष्ट रूप से डिरोजियो भारत में पश्चिमी के वैज्ञानिक ज्ञान, प्रबुद्ध दर्शन, शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे। उनका मानना था कि पाश्चात्य ज्ञान के द्वारा शताब्दियों से चले आ रहे अंधविश्वास समाप्त होंगे। रूढ़िवादी सोच परिवर्तित होगी और देश विकास की ओर अग्रसरित होगा।

ज्ञानेशुन ईस्ट इंडिया कंपनी के कुशासन की आलोचना करता था। भिन्न-भिन्न समय पर विभिन्न लेखों द्वारा व्यवस्था में व्याप्त दोषों को उजागर किया जाता था, ईस्ट इंडिया कंपनी के विषय में लिखा—‘जब से इस देश पर अँग्रेजी प्रभुत्व स्थापित हुआ, ऐसा लगता है कि कम-से-कम वेतन पर कंपनी अपने मामलों का प्रबंध करके व्यक्ति की सेवा प्राप्त करना चाहती है। वास्तव में यह किस प्रकार संभव है जबकि देश को व्यापारियों की एक संस्था दी गई जिसका मुख्य उद्देश्य वास्तव में व्यापारिक साहसिक कार्य करता है और अधिकाधिक लाभ कमाना है।’¹⁵

सरकार में शामिल स्थानीय जनता के भ्रष्टाचार में लिप्त होने के कारण डिरोजियो ने कहा कि कम वेतनमान दिए जाने के कारण ही लोग रिश्वत लेने के कुछ तरीके अपना लेते हैं ताकि वे अपनी आय बढ़ा सके और यह उनकी इच्छा को भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी के स्तर तक बढ़ा देते हैं।

ज्ञानेशुन के अनुसार शिक्षा की कमी के कारण भी भ्रष्टाचार स्थानीय जन मुंसिफ से ऊपर के पद पर पदस्थापित ही नहीं किए जाते, ऐसा इसलिए भी है कि स्थानीय जनता के बीच शिक्षा का अभाव है। जनरल में लिखा—भारत जैसे सघन देश में, स्थानीय जनता का न्यायिक प्रबंध प्रशासन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए। लेकिन यह तब तक संभव नहीं जब तक कि जनता शिक्षित ना हो। यदि वर्तमान जैसी परिस्थितियाँ देश में रही तो समाज में बुराईयाँ व्याप्त रहेंगी। उक्त टिप्पणी कंपनी के कुशासन एवं कमियों को उजागर करती है।

डिरोजियन्स स्थायी बंदोबस्त में व्याप्त दोषों के प्रति सचेत थे। ज्ञानेशुन में टिप्पणी की गई—‘सरकार अपनी माँग एक निश्चित अनुपात तक सीमित करके जमीदारों वर्ग का सृजन करती है ताकि अपने लाभ पर किसी भी अधिक अतिक्रमण के खिलाफ सुरक्षित रहें। जबकि मजदूर वर्ग अपने अधिकारों के संबंध में एक अनिश्चित स्थिति में है वह पूरी तरह अपने वरिष्ठ की इच्छा पर निर्भर है।’¹⁶

वे जानते थे किस्थायी बंदोबस्त कृषक हितों के विरुद्ध है उन्होंने लिखा, 'रैयत की स्थिति सुधारने का एक मात्र तरीका मुंसिफ न्यायालय का पुनर्प्रबंध करना है ताकि सस्ते से सस्ते में न्याय जनता को मिल सकें।'

रसिक कृष्ण मलिक ज्ञानेशुन के संपादक रहे उन्होंने लिखा, 'व्यापारियों के एक तंत्र को हमारे ऊपर संप्रभु स्थान दे दिया गया। प्रश्न यह है कि यह तंत्र किस प्रकार नियमों का सृजन करेगा ताकि हमारे अधिकार व स्वतंत्रता की रक्षा की जा सके और अपनी व्यापारिक सोच के साथ किस प्रकार ऐसा किया जा सकता है। रसिक कृष्ण मलिक का मानना था कि ब्रिटिश भारत में व्यापारिक काउंसिल का सृजन किया और यह अपने हित के लिए कार्य करती है और अपने कार्यों का प्रबंध न्यूनतम लागत पर करती है इसलिए वे ईस्ट इंडिया कंपनी की राजनीतिक शक्ति को समाप्त करने पर बल देते थे।'

डिरोजियन्स देश में शिक्षा के प्रसार को बहुत महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि यह सरकार का परम कर्तव्य है कि वह स्थानीय जनता को शिक्षित करे। सरकार ने जब तीर्थ यात्रा कर वसूलना बंद किया तो डिरोजियन्स ने कहा कि इसे वसूलना जारी रखे और इससे होने वाली आय शिक्षा कमेटी को दे दी जाए ताकि स्कूल व कॉलेज खोले जा सकें।

ज्ञानेशुन ने सन् 1833 के इंडिया बिल का स्वागत किया। 'इस बिल के द्वारा स्थानीय जन व यूरोपीय अफसरों को जिम्मेदारी व विश्वास के पद के योग्य माना गया इससे भी अधिक ब्रिटिश जनता के लिए भी समान नियम होंगे।' लेकिन इस बिल का विरोध किया गया। आगे लिखा गया—'हमारे पाठक पहले से ही इस संबंध में हमारी राय से परिचित हैं कि भारत की में ईसाई धर्म की स्थापना में वृद्धि हुई। लेकिन यह देखा गया कि इस प्रश्न ने और विकराल रूप धारण कर लिया है। इसलिए बिशपों की नियुक्ति न केवल ईसाइयों की आध्यात्मिक चिंताएँ समाप्त करने के लिए की गई, अपितु मसीह के धर्म में जनता को धर्मांतरित करने के लिए की गई। आगे कहा गया हम केवल मिशनरियों का विरोध नहीं करते। इस देश के राजस्व का इससे ज्यादा दुरुपयोग क्या होगा। इसके द्वारा उस प्रतिज्ञा का भी उल्लंघन है जिसमें ब्रिटिश सरकार मूलनिवासियों के धर्म में हस्तक्षेप से इंकार करती है।'

'कंपनी के पास अफीम व नमक के व्यापारिक एकाधिकार का भी जरनल में खुलकर विरोध किया गया। इंग्लैंड के लोगों की इच्छा पर चीन के व्यापार को खोला। कंपनी का व्यापारिक चरित्र इंडिया बिल में स्वीकार किया गया।'

बंगाल हेराल्ड में कहा गया कि स्थानीय लोग इंडिया बिल के आपत्तिजनक भाग का विरोध कर रहे हैं।

हिंदू पायनियर—हिंदू कॉलेज के छात्रों द्वारा प्रकाशित यह एक अन्य महत्त्वपूर्ण पत्र था। सन् 1835 में सितंबर माह से यह प्रकाशित होने लगा। काशीचंद्र दत्त ने इसे आरंभिक अंकों का संपादन किया जबकि कुछ अंकों का संपादन भूदान मित्र द्वारा किया गया। इस पत्र में बहुत से निबंध, लेख प्रकाशित होते थे लेकिन उन सभी में सबसे प्रमुख था—'फ्रीडम ऑन वूमेन' व 'इंडिया अंडर द फॉर्नर्स' डिरोजियन्स का भारत में विदेशी शासन को लेकर रुख एक दम साफ था।

'भारत में सरकार शुद्धतम रूप में अफसरशाही है। जनता का विधानमंडल में प्रतिनिधित्व नहीं था। उन नियमों और कानूनों को बनाने में जनता की कोई भूमिका नहीं थी जो उनके व्यवहार

को आकार देते थे। हमें राज्य के एकाधिकार, कानून में देरी, सरकार के भारी व्यय, भारत से उन लोगों की सेवानिवृत्ति जिन्होंने बहुत धन अर्जित किया और भारी कराधार ऐसी बुराई है जो देश में भली-भाँति जनता को ज्ञात है हमें उन पर विस्तारपूर्वक चर्चा की आवश्यकता नहीं।⁸

‘ऑन वूमन’ नामक लेख पर हिंदू पायनियर ने टिप्पणी करते हुए कहा कि पुरुष की भूमिका स्त्री को शिक्षित करने, सशक्त करने और उसके समग्र विकास में सहायक की होनी चाहिए।⁹ जरनल में आगे लिखा गया—‘स्त्रियों पर सर्वोच्चता की भावना अन्यायपूर्ण है और उन्हें दास के रूप में समझना परमात्मा के प्रति कृतघ्नता है जिसने हमें स्त्री की अपेक्षा शारीरिक क्षमता अधिक प्रदान की ताकि हम उनकी सुरक्षा कर सकें।’¹⁰

डिरोजियन्स का मानना था कि यदि स्त्री को शिक्षित किया जाए, अपनी इच्छा से वे कुछ भी कर सकती हैं और उन परंपरावादी बेड़ियों को तोड़ सकती हैं जो उन्हें वर्तमान में बाँधे हुए हैं।¹¹

द बंगाल स्पेक्टेटर—यह भी एक द्विभाषिक पत्र था। सन् 1842 में रामगोपाल घोष ने प्यारेचंद्र मित्र के सहयोग से प्रारंभ किया। कृष्णमोहन और प्यारेचंद्र मित्र के पत्र के विकास के लिए योग दिया। तारा चंद्र ने न केवल पत्र के लिए लेख लिखे अपितु सभी के लेखों पर वे दृष्टिपात करते थे। पत्र के संपादकीय भाग में अकसर ताराचंद्र चक्रवर्ती द्वारा लिखे जाते थे।

आरंभ में यह पत्र मासिक था कालांतर में यह साप्ताहिक हो गया। 20 नवंबर 1843 को यह पत्र बंद हो गया। इस प्रथम अंक में इसे प्रकाशित करने का उद्देश्य दिया गया है। कंपनी प्रशासन द्वारा भारतीयों पर कठोर शासन को हटाया जाए।

पढ़े-लिखे लोगों को देश उद्धार के लिए कार्य करने की छूट प्रदान की जाए। सामान्य जनता का उत्साहवर्धन करना ताकि वे अच्छे-बुरे में अंतर कर सकें और अपना उद्धार कर सकें।

डिरोजियन्स ने विभिन्न पत्र बंगाल स्पेक्टेटर के माध्यम से प्रकाशित किए। इसाई मिशनरियों द्वारा भारत में धर्मांतरण पर किए गए खर्च की राशि का विवरण पत्र के माध्यम से प्रकाशित किया गया। यह विशाल धनराशि बंगाल प्रेजीडेंसी के करारोपण से प्राप्त की जाती थी। पत्र में जनता के धन के अपव्यय की अलोचना की गई। साथ ही यह धन जनता के विकास के लिए खर्च करने का आग्रह किया।

जमींदारों द्वारा रैयतों पर किए गए अत्याचारों की एक शृंखला बंगाल स्पेक्टेटर में प्रकाशित की। तीस प्रश्नों की एक प्रश्नावली तैयार करके पत्र में प्रकाशित की गई जिससे कि रैयतों की वास्तविक दशा का बोध हो सके। ‘पाठकों से यह आग्रह किया गया कि वे इन पत्रों को बढ़े और प्रश्नावली का ध्यानपूर्वक उत्तर दें।’

बांग्ला पत्रिकाएँ

डिरोजियन्स ने बहुत से पत्र-पत्रिकाएँ लिखीं। उनमें से कुछ द्विभाषिक तो कुछ बांग्ला भाषी थे जिनमें कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं—

1. **जनसिंधु तरंग**—यह एक मासिक बांग्ला पत्र था। रसिक कृष्ण मलिक ने इसे प्रकाशित किया हालाँकि यह बहुत कम समय तक ही प्रकाशित हुआ। इसमें बांग्ला समाज को जागरूक करने का कार्य किया गया और तत्संबंधी लेख प्रकाशित हुए।

2. **विधाकल्पद्रुम**—सन् 1846 में प्रकाशित यह बांग्ला पत्र मास में दो बार प्रकाशित होता

था। यह पत्र कृष्णमोहन बनर्जी द्वारा प्रारंभ किया गया था विभिन्न विषयों से संबंधित इसमें बहुत से लेख प्रकाशित होते थे। इसका अँग्रेजी नाम 'इनसाइक्लोपीडिया बलालेनासिस' रखा गया। इस पत्र के तेरह सीरीज प्रकाशित किए गए। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य जनता के मन-मस्तिष्क से कुरीतियाँ एवं अशिक्षा दूर करके ज्ञान विमुक्त करना था।

सत्यसंचारिणी—श्यामचरण बासू इस पत्र के संपादक थे। सन् 1846 में यह पत्र प्रकाशित हुआ। श्यामचरण हिंदू कॉलेज के एक प्रखर छात्र थे। उन्हें कॉलेज से छात्रवृत्ति भी मिलती थी। यह पत्र संपादक की मृत्योपरांत अगले ही वर्ष बंद हो गया।

जगद्बन्धु—यह पत्र सन् 1846 में प्रारंभ हुआ। यह पत्र सीतानाथ घोष, बृजलाल करकोरमा, उमेशचंद्र मित्र और अन्य प्रखर विद्वानों प्रारंभ किया गया। ये सभी हिंदू कॉलेज के छात्र थे। सीतानाथ घोष को 'संबंध प्रवाकर' के लिए लेख-लिखने पर डेविड हेयर मद से सर्वोत्तम निबंध लिखने पर धन पुरस्कार मिला। यह बालविवाह से संबद्ध था। जगद्बन्धु पत्र तीन वर्ष तक प्रकाशित हुआ।

जनसिंधु तरंग—एक मासिक बंगाली पत्र था सीतानाथ घोष इसके संपादक थे। युवा बंगाल के सदस्यों ने बहुत से पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की सभी का एक ही उद्देश्य था कि समाज में व्याप्त कुरीतियों को समाप्त किया जाए। अंधविश्वास, धार्मिक आडंबरों को समाज से मिटा दिया जाए। ब्रिटिश शासन, के दोष को जनता तक पहुँचाया जाए। अधिकाधिक शिक्षा का प्रसार किया जाए। स्त्री शिक्षा को शोषण से मुक्त किया जाए। इस प्रकार युवा बंगाल समूह का पत्रकारिता के क्षेत्र में योगदान अविस्मरणीय है।

संदर्भ

1. Encyclopedia Britanic, 1963, Vol.13
2. एशियाटिक जरनल, 1830, पृ० 118
3. इंडिया गजट, फरवरी 1833 का अंक
4. इंडिया गजट, फरवरी 1834 का अंक
5. वही
6. इंडिया गजट, 1833 अप्रैल 8 का अंक
7. वही
8. एशियाटिक जरनल, 1838, मई-अगस्त
9. एशियाटिक जरनल, 1836
10. एशियाटिक जरनल, 1833
11. बंगाल स्पेक्टेटर, नवंबर 1842 का अंक

द्वारा श्री कमलकिशोर
53/1 ए शिवलोक पुरी
कंकरखेड़ा मेंरठ कैंट 250001 उ०प्र०
मो० 8439712947
saritabuddhist@gmail.com

वर्तमान परिदृश्य में सोशल मीडिया का नीतिगत अध्ययन

डॉ० अनिल कुमार

सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग

शाह सतनाम जी बॉयज कालेज, सिरसा

पिछले दो दशकों में सोशल मीडिया ने हमारी जीवनशैली को बदलकर रख दिया है। हमारी जरूरतें, हमारी कार्य प्रणालियाँ, हमारी रुचियाँ और यहाँ तक कि हमारे सामाजिक संबंधों का सूत्रधार भी किसी हद तक सोशल मीडिया ही है। पिछले कुछ वर्षों में डिजिटल मीडिया के उपयोग में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हुई है तथा इसने दुनियाभर के अनगणित उपयोगकर्ताओं को एक साथ जोड़ दिया है। वर्तमान समय में जब सामाजिक माध्यम हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। अतः इसका नीतिगत अध्ययन आवश्यक हो गया है। पत्र लेखन से लेकर ई-लेखन तक तथा ग्रोमोफोन से स्मार्टफोन तक संचार तकनीक में आमूलचूल परिवर्तन आया है। सूचना तकनीक प्रणाली के विकास के पश्चात वर्तमान युग सोशल मीडिया के युग में प्रवेश कर चुका है। सामाजिक नेटवर्किंग के माध्यम से हमारे चारों ओर फैली सूचनाओं का संजाल दूर स्थित हमारे परिजनों की उपस्थिति का अहसास कराता है। सोशल मीडिया ने अपने आविर्भाव के साथ ही आक्रामक अंदाज में समाज के हर वर्ग, खासकर युवाओं को काफी प्रभावित किया है और यह आज युवाओं की पहली पसंद और आवश्यकता बन गया है।

सामाजिक मीडिया दोधारी तलवार की तरह है। इस माध्यम से अच्छे और बुरे दोनों संदेश बहुत आसानी से फैलते हैं और सूचना के प्रकार के आधार पर उनका प्रभाव समाज पर पड़ता है। यह व्यक्ति की नैतिक अभिवृत्ति पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार डालता है। देश हित में लोगों को जुटाने और पीड़ितों के मुद्दे के प्रति संवेदना व्यक्त करने में सामाजिक मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका है। वहीं दूसरी ओर सामाजिक व धार्मिक उन्माद, अश्लीलता जैसे मुद्दों के प्रसारण से व्यक्ति की नैतिक अभिवृत्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कई सांप्रदायिक संगठन सामाजिक मीडिया का उपयोग युवाओं को दिग्भ्रमित करने के लिए अथवा संप्रदायों, पंथों या धार्मिक भावना के प्रति नरत के संदेशों का प्रसार करने के लिए कर रहे हैं।

शिक्षा, खेल, स्वास्थ्य, रोजगार, व्यापार और यहाँ तक की जीवनसाथी की तलाश के लिए भी सोशल मीडिया की भूमिका सराहनीय है। सामाजिक माध्यमों की पहुँच और प्रभाव को देखकर समाचारपत्र, रेडियो और टेलीविजन जैसे सशक्त माध्यमों को भी अपनी उपस्थिति ऑनलाइन व सोशल मीडिया पर दर्ज करवानी पड़ रही है। यह सोशल मीडिया का ही प्रभाव था की छोटी सी चिंगारी को उसने जनाक्रोश में तब्दील कर दिया था। अन्ना हजारे की जनलोकपाल की मुहिम, आम आदमी पार्टी की स्थापना, दामिनी बलात्कार कांड जैसे न जाने कितने मामले हैं जहाँ सोशल मीडिया के द्वारा भारत के युवाओं ने इंसाफ की जंग लड़ी। जब युवाओं के हक की आवाज को प्रशासन ने अनसुना कर दिया तब उन्होंने सोशल मीडिया को हथियार बनाकर दोषियों

को जेल पहुँचाया। सामाजिक मुद्दों को मुख्यधारा के मीडिया का विषय बनाने के पीछे भी सोशल मीडिया का बहुत बड़ा योगदान रहा। जिस तरह से आज समाज के हर वर्ग ने सोशल मीडिया को अपनी स्वीकृति दी है उससे पूरी संभावना है कि आनेवाले समय में इसकी स्वीकार्यता और उपयोगिता बड़े पैमाने पर और बढ़ेगी और सामाजिक माध्यम विकास संचार में भागीदार होंगे।

साहित्य पुनरावलोकन

सामत, मुहम्मद (2018) छात्रों द्वारा सोशल मीडिया के उपयोग पर एक समीक्षा नामक शोधपत्र में स्पष्ट किया की लोगों ने सोशल मीडिया पर एक आभासी वातावरण में तकनीक के साथ दैनिक जीवन के सभी पलों को शेयर करना शुरू कर दिया है। 21वीं सदी में सोशल मीडिया के कारण छात्र-जीवन अधिक सुविधाजनक हो गया। हालाँकि, ऑनलाइन जीवन के सकारात्मक परिणाम हैं और इसके नुकसान भी स्वीकार किए गए हैं। पलेर्मा जेना (2016) सामाजिक नेटवर्किंग साइटें किस प्रकार किशोरों के सामाजिक और भावनात्मक विकास को प्रभावित करती हैं, को एक समीक्षा रूप में इस शोध अध्ययन में स्पष्ट किया गया है। बायड (2015) ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि किशोर सामाजिक जीवन में विशेषकर मिडिल और हाईस्कूल के छात्र एक-दूसरे से जुड़ने और होमवर्क और समूह प्रोजेक्ट करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग कर रहे हैं परंतु उन्हें इसके नकारात्मक प्रभाव का ज्ञान नहीं है। अभानी धारा (2019) द्वारा ए स्टडी ऑन सोशल मीडिया ओवर यूथ ऑफ इंडिया नामक शोध अध्ययन में ज्ञात हुआ कि सोशल मीडिया अब युवाओं के लिए एक प्रभावी उपकरण है। करीब 57 प्रतिशत लोग इस बात से सहमत थे कि सोशल मीडिया उनके सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है। वहीं 38.29 प्रतिशत का मानना है कि यह समय को खराब करने का जरिया है, पचास प्रतिशत को लगता है कि सोशल मीडिया समाज की बेहतरी के लिए उपयोगी है। कोलन, जॉन और एमिफा (2018) ने घाना में छात्रों के शैक्षणिक प्रदर्शन पर सोशल मीडिया का प्रभाव का आकलन किया और पाया कि सोशल मीडिया की नीति का दोहरा प्रभाव विद्यार्थियों के शैक्षिक जीवन पर दिखाई देता है। सोशल मीडिया की विभिन्न नीतियों का विश्लेषण इस प्रकार है—

1. सामाजिक मीडिया की लोकतांत्रिक नीति

(क) विश्लेषण—लोकतंत्र में जनता का विचार सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। यही कारण है कि सरकारी तंत्र भी अब सोशल मीडिया का प्रयोग करने लगा है। सोशल मीडिया हर व्यक्ति को किसी भी मुद्दे पर तुरंत अपनी राय रखने का मौका देता है। जहाँ तक सोशल मीडिया के प्रभाव की बात है कई बार सरकार के निर्णयों और नीतियों की अत्यधिक आलोचना के कारण सरकार या प्रशासनिक संस्थाओं पर काफी दबाव पड़ता है तथा सरकार को अपनी नीति तक बदलनी पड़ जाती है, यह सोशल मीडिया का प्रभाव ही है जिसके कारण विज्ञापन संस्थानों, सामाजिक संस्थाओं और राजनीतिक दलों ने अपना रुख सोशल मीडिया की तरफ कर लिया है। यहाँ तक की फिल्म जगत, साहित्य, कला, अर्थ, मीडिया, कारपोरेट जगत से लेकर सरकारी सेवाओं में पदस्थ अधिकारी भी फेसबुक पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। ऐसे लोग जो अपने मन की बात कहने के लिए उचित मंच नहीं पाते, वे सोशल मीडिया का भरपूर प्रयोग कर रहे हैं। सोशल मीडिया की बढ़ती भूमिका के कारण सरकार द्वारा सोशल मीडिया के जरिए गुड गवर्नेंस को स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। गुड गवर्नेंस के लिए कई राज्य सरकारें खुद को

सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर सक्रिय कर रही हैं ताकि लोग अपनी समस्याएँ सीधे सरकारी अधिकारियों तक पहुँचा सकें। वास्तव में सोशल मीडिया ने अयोग्य सरकारों को अपदस्थ करने, बेहतर सोच विकसित करने, नव निर्माण के लिए संघर्षों और सामाजिक समझ के दायरे को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कोरोना महामारी के दौरान लॉकडाउन के मध्य सोशल मीडिया की भूमिका बहुत बढ़ गई, ट्विटर, फेसबुक जैसे लोकप्रिय सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के द्वारा कोरोना वायरस के खिलाफ लड़ाई लड़ी गई।

सोशल मीडिया अभिव्यक्ति का ऐसा मंच है, जहाँ व्यक्ति राजनीतिक परिवर्तन, आर्थिक नीतियों, धार्मिक व सांस्कृतिक मुद्दों पर स्वतंत्र रूप से अपनी बात सबके सामने रख सकता है। इस माध्यम के द्वारा कलाकार अपनी कला को संपूर्ण दुनिया तक निर्बाध पहुँचा रहे हैं। यही नहीं सूचना के आदान-प्रदान, जनमत तैयार करने, विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों के लोगों को आपस में जोड़ने, राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव देने, भ्रष्टाचार को सार्वजनिक करने के लिए सोशल मीडिया एक उपयोगी माध्यम है, यहाँ तक की ताकतवर सरकारें भी इस माध्यम से उठने वाली आवाज को अनसुना नहीं कर सकतीं।

सोशल मीडिया ऐसा प्लेटफॉर्म है जिसने युवाओं को देश के सामाजिक कार्यों में भाग लेने का मौका प्रदान किया। यह न केवल व्यक्तिगत जानकारियों के लिए प्रयोग किया जाता है बल्कि सामाजिक, राजनीतिक व जनांदोलन जैसे मामलों में भी भरपूर प्रयोग हो रहा है। चाहे लोकपाल बिल की माँग हो या दुष्कर्म पीड़िता को इंसाफ दिलाने की, सोशल मीडिया का युवाओं ने भरपूर प्रयोग कर अपनी आवाज को संसद तक पहुँचाया है। सशक्त लोकपाल बिल की माँग कई दशकों से चली आ रही थी, लेकिन अन्ना हजारे के नेतृत्व में जिस तरह से भारत में इसकी माँग ने जोर पकड़ा और उसमें लाखों लोगों का जनसमर्थन मिला, यह सोशल मीडिया की लोकतांत्रिक नीति को दर्शाता है।

(ख) सर्वेक्षण का परिणाम—सोशल मीडिया की लोकतांत्रिक नीति को जानने के लिए किए गए सर्वेक्षण में प्राप्त आँकड़ों में से सर्वाधिक उत्तरदाताओं द्वारा चुने जानेवाले विकल्प को यहाँ प्रस्तुत किया गया है—

- * प्रस्तुत अध्ययन में शामिल कुल उत्तरदाताओं में से 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि वे अपने मन की बात कहने के लिए सोशल मीडिया को उचित मंच मानते हैं।
- * 47 प्रतिशत ने समस्या समाधान के लिए सोशल मीडिया का प्रयोग किया।
- * 31 प्रतिशत ने कोरोना महामारी के दौरान लोगों को जागरूक करने हेतु इस मंच का उपयोग किया।
- * 48 प्रतिशत ने स्वतंत्र विचार रखने व 52 प्रतिशत ने कला या ज्ञान का प्रसारण करने के लिए इस मंच का उपयोग किया।
- * 26 प्रतिशत ने सामाजिक कार्यों व जनांदोलन में भाग लेने के लिए इस माध्यम को अपनाया।
- * कुल उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 23 प्रतिशत उत्तरदाता भ्रष्टाचार को सार्वजनिक करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं।

2. सामाजिक मीडिया की वर्चुअल नीति

(क) **विश्लेषण**—विश्व में फैले असंख्य लोगों को जोड़ने वाला सोशल मीडिया ऐसा ही एक माध्यम है जो हमारे जीवन का एक अटूट हिस्सा बन गया है। यह हमारे जीवन के कई

पहलुओं को तय कर रहा है जैसे हमारा रहन-सहन, कामकाज, मनोरंजन व शिक्षा प्राप्त करना। वर्तमान संदर्भों में इसकी उपयोगिता को देखकर कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया आधुनिक दौर की एक बड़ी जरूरत और हकीकत बन चुका है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि सोशल मीडिया ने दूरियाँ पाटने का काम किया है। यह सूचनाओं का ऐसा संजाल है जिसने सदियों की दूरियों को पलभर में मिटाया और बरसों से दूर बैठे अपने चित-परिचितों से दुःख-दर्द साझा करने का एक मंच प्रदान किया। वहीं दूसरी ओर सोशल मीडिया ने आज के युवा को अपने मकड़जाल में इस कदर फँसा लिया है कि वह परिवार में रहकर भी परिवार से दूर हो गया है, इतना ही नहीं वह खुद से भी दूर हो गया है क्योंकि वह सारा-सारा दिन नजरें गड़ाए वर्चुअल दुनिया में खोया रहता है। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया पर दुनियाभर की जानकारियों को खँगालने में भी काफी वक्त गुजर जाता है। एक जानकारी पाने के लिए न जाने कितनी अनावश्यक सूचनाओं से गुजरना पड़ता है। वास्तव में ऑनलाइन मीडिया से जुड़ने के बाद हम असली दुनिया से दूर हो जाते हैं और एक आभासी दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं।

सोशल मीडिया पर असंख्य मित्रों को जोड़ा जा सकता है लेकिन उनमें से हम असल जिंदगी में कितनों से वाकिफ हैं या कितनों से कभी मिले हैं। वास्तव में सोशल मीडिया से जुड़े मित्रों की कुल संख्या से आधे भी हमारी असल जिंदगी से जुड़े नहीं होंगे यानी सोशल मीडिया पर केवल आभासी मित्रों की भरमार होती है और ऐसे आभासिक मित्रों में भावनाओं और सामाजिक व्यवहार का प्रायः अभाव पाया जाता है। इस आभासी दुनिया के सहारे न सिर्फ मित्र बनाए जा रहे हैं, बल्कि उन्हें वोट बैंक से लेकर व्यवसाय में धनार्जन हेतु भी इस्तेमाल किया जा रहा है। सोशल मीडिया के जरिए घर बैठे दुनियाभर के अनजान और अपरिचित लोगों से संबंध बनाए जा रहे हैं जिन लोगों से वास्तविक जीवन में कभी मुलाकात ही नहीं हुई वे फेसबुक मित्र बन गए हैं। इतना ही नहीं, इसके माध्यम से भूले-बिसरे दोस्तों को खोजना भी आसान हो गया है। सोशल मीडिया का आभासिक दायरा बड़ा होता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर वास्तविक समाज का दायरा संकुचित हो रहा है। यह सोशल मीडिया की वर्चुअल नीति को दर्शाता है।

(ख) सर्वेक्षण का परिणाम—सर्वाधिक संख्या द्वारा चयनित विकल्प को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

- * 68 प्रतिशत उत्तरदाता रोजाना 3 घंटे से अधिक समय सोशल मीडिया ऐप का उपयोग करते हैं।
- * 80 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि वास्तविक मित्रों से भी अधिक मित्र सोशल मीडिया के द्वारा बनाए।
- * 22 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मंच का उपयोग वर्षों से दूर बैठे अपने चित-परिचितों से विचार साझा करने व भूले-बिसरे दोस्तों को खोजने के लिए करते हैं।
- * 68 प्रतिशत ने माना कि सोशल मीडिया के कारण लोग परिवार में रहकर भी परिवार से दूर होते जा रहे हैं।
- * 76 प्रतिशत ने बताया सोशल मीडिया पर जानकारियाँ प्राप्त करने में काफी समय व्यतीत होता है।
- * कुल उत्तरदाताओं में से 90 प्रतिशत मानते हैं कि उनकी वास्तविक जीवन के मुकाबले सोशल मीडिया से जुड़े मित्रों से बहुत कम मुलाकात हुई है।

- * 71 प्रतिशत ने माना कि सोशल मीडिया पर आभासी मित्रों की संख्या ज्यादा होती है।
- * इस माध्यम के साथ 62 प्रतिशत ने अनजान और अपरिचित लोगों से विचारों का संचार किया।
- * 48 प्रतिशत ने बताया कि सोशल मंच का उपयोग करने के पश्चात परिवार के साथ समय बिताने का वक्त कम मिलता है।

3. राजनीतिक उपकरण की नीति

(क) विश्लेषण—व्यवसाय, शिक्षा, पत्रकारिता, धर्म व राजनीति सहित अनेक क्षेत्रों में व्यापक बदलाव लाने में सोशल मीडिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप जैसे सामाजिक मंचों के सहारे राजनीतिक दल लोगों तक पहुँचने के लिए हर तरह की कोशिश करते हैं, लोगों तक मन की बात पहुँचाने के लिए ये एक बड़े और प्रभावी माध्यम के तौर पर उभरा है। इतना ही नहीं कभी-कभी इसका इस्तेमाल अपने खिलाफ बोलने वालों को शांत करने के लिए भी किया जाता है। भारत जैसे विशाल देश में युवाओं की संख्या सबसे अधिक है, हर राजनीतिक दल जनमत पाने के लिए युवाओं को अपने पक्ष में करना चाहता है और आज का अधिकतर युवा सोशल मीडिया पर आसानी से उपलब्ध है, इसीलिए लोकसभा व विधानसभा के चुनावों में राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया का भरपूर प्रयोग किया जाता है। 16वीं लोकसभा में विजयी दल को जीत दिलाने का श्रेय भी सोशल मीडिया को दिया गया था। जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए विभिन्न राजनीतिक दल सोशल मीडिया का भरपूर प्रयोग करते हैं। अभी तक जाति, धर्म व पैसे को सत्ता तक पहुँचाने का माध्यम माना जाता था परंतु वर्तमान में सत्ता सोशल मीडिया जैसे जनसंचार के सशक्त माध्यम द्वारा प्राप्त की जाने लगी है। यही कारण है कि विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक संगठनों, सरकारों, नेताओं आदि ने अपने व्यक्तिगत खातों, पेज या ग्रुप के साथ सोशल मीडिया के मंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। सामाजिक कार्यकर्ता से राजनेता बने अरविंद केजरीवाल को दिल्ली के चुनाव में भारी सफलता मिलने का श्रेय सामाजिक मीडिया को जाता है तथा 16वीं लोकसभा के लिए हुए चुनावों में भाजपा ने फेसबुक, ट्विटर और यू-ट्यूब के जरिए जिस तरह लोकप्रियता हासिल की, वह एक नया इतिहास बना।

(ख) सर्वेक्षण का परिणाम—सर्वाधिक संख्या द्वारा चयनित विकल्प को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

- * अधिकतर उत्तरदाता मानते हैं जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए राजनीतिक दल सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं।
- * 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने राजनीतिक गतिविधियों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग किया।
- * 22 प्रतिशत ने राजनीतिक पार्टी को समर्थन देने के लिए सोशल मंच को अपनाया।
- * 45 प्रतिशत उत्तरदाता किसी राजनीतिक पार्टी के संदेश प्राप्त करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं।
- * 24 प्रतिशत लोग राजनीतिक नेता या पार्टी के सोशल मीडिया समूह से जुड़े हुए हैं।
- * सर्वाधिक उत्तरदाता प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के सोशल मीडिया प्लेटफार्म से जुड़े हुए हैं।

4. वैकल्पिक पत्रकारिता की नीति

(क) विश्लेषण—नब्बे के दशक में कुछ गिने-चुने मीडिया संस्थानों के मालिकों द्वारा यह तय किया जाता था कि जनता तक कौन सा समाचार पहुँचेगा और कौन सा नहीं पहुँचेगा, यानी पत्रकारिता की नीति किसके पक्ष में रखी जाएगी, यह तय करना कुछ लोगों के हाथ में था। परंतु आधुनिक दौर में सोशल मीडिया ने इस प्रक्रिया को पूर्णतः बदलकर रख दिया। अब सूचना व समाचार से सम्बंधित नीति का निर्धारण सामाजिक मीडिया से जुड़े लाखों लोगों ने अपने हाथों में ले लिया है। एक तरफ मिशन से उद्योग बनी पत्रकारिता आज संदेह के घेरे में है। टीआरपी की अंधी दौड़ में तेजी के साथ भागते चौथे स्तंभ के सामने भ्रम की स्थिति बनी हुई है। तत्कालीन मीडिया की इस भाप्रक स्थिति के चुंगल से आजाद होने के लिए सोशल मीडिया वैकल्पिक पत्रकारिता का मंच बनकर उभरा है। सोशल मीडिया युवाओं के लिए ऐसा प्लेटफार्म बन गया है जहाँ प्रत्येक युवा सिटीजन जर्नलिस्ट बन गया है। लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के वास्तविक रूप को साकार करता सोशल मीडिया भी सही मायने में पत्रकारिता का ही एक ऐसा हिस्सा है जहाँ व्यक्ति स्वयं ही लेखक, संपादक, प्रकाशक व वितरक है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया का महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है, यहाँ तक कि मुख्य धारा का मीडिया भी इसके प्रभाव को स्वीकारने लगा है। अकसर देखा गया है कि सोशल मीडिया पर वाइरल हुई पोस्ट्स और वीडियो मुख्य धारा के मीडिया की समाचार सामग्री का हिस्सा होती है। सोशल मीडिया वैकल्पिक पत्रकारिता का ऐसा महत्वपूर्ण मंच बन गया है जहाँ हर व्यक्ति पत्रकार बनकर चित्र, वीडियो या पोस्ट के द्वारा उन घटनाओं को प्रसारित करता है जो अभी तक समाचार चैनल या समाचारपत्र की नजरों से कोसों दूर है।

(ख) सर्वेक्षण का परिणाम—सर्वाधिक संख्या द्वारा चयनित विकल्प को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

- * 56 प्रतिशत ने समाचार को प्राप्त करने के लिए सबसे ज्यादा सोशल मीडिया का उपयोग किया।
- * 66 प्रतिशत पूर्व प्रकाशित समाचार का प्रसारण करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं।
- * 84 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि अन्य समाचार माध्यमों की बजाए सोशल मीडिया स्थानीय घटनाओं के प्रसारण हेतु ज्यादा कारगर माध्यम है।
- * 62 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि वे अपने आसपास घटित होनेवाली घटनाओं को सोशल मीडिया पर प्रसारित करने में अत्यधिक रुचि रखते हैं।

5. सोशल मीडिया की भ्रामक नीति

(क) विश्लेषण—सोशल नेटवर्किंग माध्यमों ने लोगों को वास्तविक जीवन की बजाए आभासी दुनिया में जीने के लिए विकल्प दे दिया है। यह एक ऐसा खेल बन चुका है, जहाँ एक-दूसरे के साथ लाइक और शेयर के साथ सुख-दुख और सपने बाँटे जाते हैं और अगले ही क्षण रिश्तों को ब्लॉक भी कर दिया जाता है। इस नवीन माध्यम का उपयोग करने वाला हर कोई प्रकाशक भी है और आलोचक भी। युवा जिनकी उपस्थिति सोशल मीडिया पर सर्वाधिक है नए उभरते क्षेत्रों व परिवर्तनों से बहुत आसानी से प्रभावित हो जाते हैं, सही या गलत का चिंतन किए

बिना ये अनजाने परिवर्तन लोगों के मानस-पटल पर गहरा असर डालते हैं। सोशल मीडिया को दुनिया में बढ़ रहे तलाक के मामलों में भी दोषी ठहराया जाता है। सोशल मीडिया पर जहाँ पुराने मित्रों के साथ संवाद हो सकता है वहीं अनजान लोगों या सायबर अपराधियों के चुंगल में फँसकर धोखा भी खा सकते हैं।

सूचना हमारे जीवन में तभी तक ही उपयोगी है, जब तक कि उसका सही इस्तेमाल किया जाए। जहाँ इसकी अति हुई, वहीं से विनाश होना शुरू हो जाता है। यही बात सोशल मीडिया पर भी लागू होती है। सोशल नेटवर्किंग मीडिया एक दुधारी तलवार की तरह है। एक तरफ यह युवाओं के लिए नई जानकारी का स्रोत है तो दूसरी तरफ यह युवाओं को शारीरिक और मानसिक रूप से भी प्रभावित कर रहा है। सोशल मीडिया किसी भी व्यक्ति की छवि को पलभर में मिट्टी में मिलाने की क्षमता रखता है। अगर इसे एक सीमा में रहकर सकारात्मक रूप में इस्तेमाल किया जाए तो यह उपयोगी है और यदि इसका इस्तेमाल सीमारहित किया जाए और यह सामाजिक ढाँचे को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करें तो यह समाज के लिए हानिकारक भी हो सकता है। सोशल मीडिया का दुरुपयोग कई विसंगतियों को जन्म देता है।

सोशल मीडिया पर अत्यधिक समय व्यतीत करने से युवावर्ग पर इसका नकारात्मक प्रभाव देखने को मिल रहा है। जो समय पढ़ाई करने और अच्छे कार्यों में व्यतीत होना चाहिए, उसका काफी कुछ हिस्सा सोशल मीडिया पर चला जाता है जिसका उन्हें कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं होता है। अश्लील सामग्री का प्रसारण, अश्लील और गैरजिम्मेदार टिप्पणियाँ करना, निराधार तथ्यों और गलत आँकड़ों को फैलाना, आधारहीन बातें करना व समय की बर्बादी, व्यक्तिगत और सामाजिक संवाद में दिक्कत, वास्तविक जीवन को भुलाकर आभासी जीवन को सच मानना, झूठा अकाउंट बनाकर छल करना, सामाजिक रूप से प्रभावी संवाद में कमी, पश्चिमी सभ्यता का अंधाधुंध अनुसरण, मद्यपान और धूम्रपान को फैशन समझना, नैतिक मूल्यों में गिरावट, आपसी रिश्ते-नातों में बढ़ती दूरियाँ और परिवारों में बिखराव की स्थिति इसके दुखदाई परिणाम हैं। यह एक ऐसी दुनिया है जहाँ लाइक और शेयर के साथ सुख-दुख और सपने बाँटे जाते हैं। युवावर्ग ने इस सोशल मीडिया पर अपने-आपको सीमित कर लिया है इसकी वजह से वह एकाकीपन के शिकार हो रहे हैं और अपने परिवार और अपनों से अलग होते जा रहे हैं, सोशल मीडिया द्वारा बनाए गए रिश्तों में विश्वास का नितांत अभाव पाया जाता है, वर्चुअल तरीके से कई बार बेमेल रिश्ते बन जाते हैं जो जीवनभर दुखदाई होते हैं। इसके अतिरिक्त अराजकवादी समूहों द्वारा भी सोशल मीडिया का दुरुपयोग युवाओं को प्रभावित करने के लिए किया जाने लगा है जो किसी भी देश के लिए बड़ा खतरा हो सकता है। कोरोना महामारी को लेकर भ्रामक सूचनाएँ और अफवाहें फैलाई गईं जो लोगों में भय व सामाजिक अशांति का कारण बना। अफवाहों पर लगाम लगाने के लिए सरकार को सभी सोशल मीडिया प्लेटफार्मों को एडवाइजरी जारी करनी पड़ी। यह सोशल मीडिया की भ्रामक नीति को दर्शाता है।

(ख) सर्वेक्षण का परिणाम—सर्वाधिक संख्या द्वारा चयनित विकल्प को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

- * अधिकतर उत्तरदाताओं ने माना कि सोशल मीडिया का दुरुपयोग होता है।
- * 48 प्रतिशत इसे भ्रम फैलाने वाला माध्यम मानते हैं।
- * 78 प्रतिशत लोग विश्वसनीयता का अभाव और अवांछित सूचनाओं की भरमार सोशल

मीडिया की सबसे बड़ी कमजोरी मानते हैं।

* 61 प्रतिशत मानते हैं कि सोशल मीडिया द्वारा बनाये गए नए रिश्तों में विश्वास का अभाव पाया जाता।

निष्कर्ष

समय के साथ जनसंचार के माध्यमों में अनेक बदलाव आए हैं और इन बदलते रूपों ने जनसंचार के क्षेत्र में नई संभावनाओं को जन्म दिया है। सोशल मीडिया इसी नई सूचना तकनीक से निकला माध्यम है जिसका प्रभाव इसके उपयोग पर निर्भर करता है। सोशल मीडिया की विभिन्न नीतियों का विश्लेषण करने के पश्चात प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि अपने मन की बात कहने, समस्या के समाधान, कोरोना महामारी के दौरान लोगों को जागरूक करने व सामाजिक कार्यों व जनांदोलन में भाग लेने का अवसर प्रदान करना सोशल मीडिया की लोकतांत्रिक नीति को स्पष्ट करते हैं। वहीं दूसरी ओर अधिकतर समय सोशल मीडिया का उपयोग, वास्तविक मित्रों से ज्यादा वर्चुअल मित्र, परिवार में रहकर भी परिवार से दूर होना, वास्तविक जीवन के मुकाबले सोशल मीडिया से जुड़े अनजान और अपरिचित लोगों से विचारों का संचार, परिवार के साथ समय बिताने के वक्त में कमी आना आदि तथ्य सोशल मीडिया की वर्चुअल नीति को प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए, राजनीतिक पार्टी को समर्थन देने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग व राजनीतिक पार्टी के संदेश प्राप्त करने तथा राजनीतिक नेता या पार्टी के सोशल मीडिया समूह से जुड़ने के आलावा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के सोशल मीडिया प्लेटफार्म से सर्वाधिक उत्तरदाताओं का जुड़ाव सोशल मीडिया की राजनीतिक उपकरण की नीति की ओर इशारा करता है। समाचार को प्राप्त करने के लिए, पूर्व प्रकाशित समाचार का प्रसारण अपने सामाजिक मंच से करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग, साथ ही स्थानीय घटनाओं के प्रसारण हेतु व अपने आसपास घटित होने वाली घटनाओं को सोशल मीडिया पर प्रसारित करने में अत्यधिक रुचि दिखाना, सोशल मीडिया की वैकल्पिक पत्रकारिता की नीति को इंगित करता है। इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया का दुरुपयोग, भ्रम फैलाने वाला माध्यम मानना, विश्वसनीयता का अभाव और अवांछित सूचनाओं की भरमार, इस मीडिया के माध्यम से बनाए गए नए रिश्तों में विश्वास का अभाव पाया जाना आदि तत्त्व सोशल मीडिया की भ्रामक नीति को दर्शाते हैं।

संदर्भ

1. Murthy, D. (2018). Introduction to Social Media, Activism and Organizations. Social Media Society, vol. 4, no. 1, 2018, P. 1&4, doi : 10.1177/2056305117750716.
2. Samat. M. (2018), A Review On Social Media Usage Among Students- <https://www.researchgate.net/publication/329388805>
3. Godes, D. Dellarocas, C. & Aral, S. (2013). Social media and business transformation: A framework for research- Information Systems Research, 24(1).
4. Chen M. Y. & Das, S. R. (2007). Yahoo& for Amazon: sentiment extraction from small talk on the web. Management Science, issue&53, P& 1375 to 1388.
5. Narayanam, R. & Narahari, Y. (2010). A shapley value&based approach to discover influential nodes in social networks. IEEE Transactions on Automation Science and Engineering, 2010(9): 1-18
6. Wu, J., Sun, H. & Tan, Y. (2013). Social media research : A review. J. Syst. Sci. Syst. Eng. 22, 257-282. <https://doi.org/10-1007/s11518 &013&5225&6>.

7. Christofferson, Jenna Palermo. (2016). How is Social Networking Sites Effecting Teen's Social and Emotional Development : A Systemic Review. Retrieved from Sophia, the St. Catherine University repository website: https://sophia.stkate.edu/msw_papers/650
8. Clarke, P., K.J, Keeffe, G. (2011). The Impact of Social Media on Children. Adolescents and Families. American Academy of Pediatrics, 800&804. Doi: 10-1542/peos.2011&0054
9. Abhani D. K, (2019). International Journal of Engineering Development and Research (www-ijedr.org) 24 A study on impact of social media over youth of india IJEDR Volume 7, Issue 2 | ISSN: 2321&9939 IJEDR1902007
10. Kolan, Bernard J. and Dzandza, P. E. (2018). Effect of Social Media on Academic Performance of Students in Ghanaian Universities: A Case Study of University of Ghana, Legon. Library Philosophy and Practice (e&journal). 1637. <https://digitalcommons.unl.edu/libphilprac/1637>
11. डी० राय०, सोशल मीडिया के उपयोग के बाद युवाओं की पुस्तकों से बढ़ती दूरी का अध्ययन, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, (2018), Retrived from <http://www.hindi journal.com/download/122/2&6&27&431.pdf>
12. के० तनेजा, सोशल मीडिया, (मिड-2021), विदेश-नीति और चरमपंथी सोच का चौराहा : भारत से एक उदाहरण, ग्लोबल नेटर्क ऑन एक्स्ट्रीमिज्म एंड टेक्नोलॉजी, Retrived from <https://gnet & research.org/2021/01/12>.

कुँअर बेचैन : हिंदी जगत के एक सशक्त हस्ताक्षर

डॉ० निर्भय शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)

न्यू ग्रेट स्कालर्स महाविद्यालय, अल्हागंज, शाहजहाँपुर (उ०प्र०)

हिंदी जगत के इस पुरोधा का जन्म 01 जुलाई 1942 को मुरादाबाद जनपद के काँठ कस्बे के पास ऊमरी नामक गाँव में पिताश्री नारायणदास सक्सेना एवं माताश्री गंगादेवी के घर हुआ था। इनके जीवन की यह विडंबना रही है कि मात्र दो माह की अल्पावस्था में ही पिताश्री की बाहें इन्हें झुलाकर सदा-सदा के लिए विदा हो गईं। माँ की वात्सल्यमयी एवं स्नेहभरी आँखों की छाया में भी कवि जीवन केवल छह ग्रीष्मिकाएँ ही खेल सका। ऐसी बिषम परिस्थितियों के बीच आपके बहन-बहनोई ने पालन-पोषण किया। इनकी आयु अभी लगभग 10 वर्ष की हुई होगी तब तक बहन का स्वर्गारोहण आपके लिए एक बड़ा आघात था। अब एकमात्र सहारा सिर्फ बहनोई साहब ही बचे थे। तात्पर्य यह है कि अभाव, भाव को जन्म देता है, कल्पना को पंख और विचार को गति प्रदान करता है। जन्म से ही अभावों में पले-बढ़े इस कवि के साथ भी यही कुछ हुआ। दो मास में सदैव-सदैव के लिए पिता की विदाई और छह वर्ष की अल्पावस्था में माँ का आँचल छिन जाना, भला किसे अव्यवस्थित नहीं कर देगा। इस पर भी किसी ढूँढे गए आश्रय का पुनः छिन जाना जीवन को कितना बोझिल बना देता है। माँ और पिता के बाद बहन का आश्रय भी अधिक दिन नहीं ठहर सका, किंतु बहनोई साहब ने इस आश्रय की रिक्तता को अपने स्नेह से भर दिया। तब वह कवि काव्य के बगीचे में आ बैठा और शब्दरूपी फूल चुन-चुनकर उनमें नए-नए मार्मिक अर्थों की गंध भरकर गीतरूपी गुलदस्ते में सजाने-सँवारने लगा।

बहन की असामयिक मृत्यु के पश्चात् उस घर की चाबी-कुंजी से लेकर साफ-सफाई व अन्य कार्यों की जिम्मेदारी कुँअर बेचैन पर ही आ गई थी। अभावों के बीच जीवन-संघर्ष करते हुए आप 1965 में एम०एम०एच० डिग्री कालेज, गाजियाबाद (उ०प्र०) में हिंदी-प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए और 2002 में यहीं से विभागाध्यक्ष के पद से सेवानिवृत्त हुए।

कुँअर बेचैन को मुकेश के गानों से बेहद प्रेम था। वह अपने दुःख को अभिव्यक्त करने के लिए उनके गानों का सहारा लेते थे। आपकी इस अभिरुचि को देखकर कक्षाध्यापक पं० महेश्वरदयाल शर्मा जी ने कविता सुनाने को कहा। उसी दिन आपने एक कविता लिखकर उन्हें सुना दी। कविता सुनकर गुरुजी चौंक गए और बोले—अब एक कविता 'तुलसीदास' पर लिखो। कुछ समय पश्चात् आपने कविता लिखी, जिसे देखकर गुरुजी काफी प्रभावित हुए और यहीं से आपका साहित्यिक सफर शुरू हो गया। कवियों के उपनाम सुनकर आपके मन में भी यह भाव जागा। आपका वास्तविक नाम कुँअरबहादुर सक्सेना था। अधिकतर कविगण उपनाम से ही जाने जाते हैं। इसी उपनाम को आत्ममंथन करने के पश्चात् 'कुँअर बेचैन' उपनाम आत्मसात् कर लिया—

मुझे दिन-रात किसी वक्त भी राहत न मिली।

मैं हूँ बेचैन मुझे चैन की आदत न मिली²

आपको साहित्य के साथ-साथ चित्रकला से भी बेहद प्रेम था। तात्पर्य यह है कि आपकी लेखनी जितनी सशक्त है, उतनी चित्रकला की तूलिका भी। आप जिस तरह से भी आड़ा-तिरछा कुछ खींच देते, वही रेखांकन एक कलाकृति का साक्षात् रूप ले लेता। आपके पास कलाकृतियों का विशाल भंडार संचित है। आप देश-विदेश में आयोजित होने वाली चित्रकला-रेखांकन की प्रदर्शनी में प्रतिभाग करने से नहीं चूके। निस्संदेह रचनाधर्मिता के साथ-साथ आप चित्रकला के भी अनुपम चितरे रहे। कुँअर बेचैन जी इंटरमीडिएट की पढ़ाई के दौरान ही मोहल्ले के एसोसिएशन में रेस, गेम्स एवं गुल्ली-डंडा जैसे खेलों में प्रतिभाग करने के साथ ही ग़ज़ल भी सुनाने लगे थे। सन् 1965 में दिल्ली दूरदर्शन से प्रसारण के उपरांत आपके एक गीत ने हिंदी काव्य-जगत् में धूम ही मचा दी थी। गीत निम्नवत् है—

जितनी दूर नयन से सपना
उतनी दूर अधर से हँसना
बिछुए जितनी दूर कुँआरे पाँव से, उतनी दूर पिया तुम मेरे गाँव से।
जितनी दूर प्यास पनघट से
जितनी दूर रूप घूँघट से
गागर जितनी दूर लाज की बाँह से, उतनी दूर पिया तुम मेरे गाँव से।
जितनी दूर लहर हर तट से
जितनी दूर शोखियाँ लट से

जितनी दूर किनारा टूटी नाव से, उतनी दूर पिया तुम मेरे गाँव से।³

कवि सम्मेलनों में शिरकत करने वाला हर शख्स कुँअर बेचैन जी के नाम को अवश्य ही जानता है। मधुर आवाज के धनी इस दिलकश कवि, गीतकार, ग़ज़लकार ने आधुनिक ग़ज़लों के माध्यम से आम आदमी के दैनिक जीवन का वर्णन किया है। बेचैनजी ने 24 देशों में काव्यपाठ करके साहित्यिक दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत के मस्तक को गौरवान्वित किया है। वहीं आपने 'सूरीनाम' में विश्व हिंदी सम्मेलन में देश का प्रतिनिधित्व करके हिंदी काव्य-जगत को नए आयाम प्रदान किए। बेचैनजी को 250 से अधिक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है। देश के प्रथम नागरिक रहे पूर्व राष्ट्रपति महामहिम ज्ञानी जैलसिंह एवं डॉ॰ शंकरदयाल शर्मा द्वारा राष्ट्रपति भवन में कुँअर बेचैनजी को सम्मानित किया गया।

कुँअर बेचैन के साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में अब तक आठ पी-एच॰डी॰ शोध उपाधि प्रदान की जा चुकी हैं तथा कई लघु शोध-कार्य पूर्ण किए जा चुके हैं। इसके साथ ही वर्तमान में कई शोधकार्य किए जा रहे हैं तथा उनके निर्देशन में लगभग पंद्रह शोधार्थियों को पी-एच॰डी॰ की उपाधियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। उनका साहित्य खाड़ी के देशों के पाठ्यक्रम में कक्षा 8,9,10 में संकलित है। महाराष्ट्र के इंटर कालेजों में 'संक्रमण' शीर्षक से कविता पढ़ाई जा रही हैं। बड़ौदा विश्वविद्यालय में एम॰ए॰ के पाठ्यक्रम में उनकी तीन कविताएँ तथा मेरठ विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में उनके दो गीत सम्मिलित हैं। कई विद्वानों ने आपके काव्य-संग्रहों का अँग्रेजी एवं संस्कृत में अनुवाद भी किया है जिन्हें विभिन्न प्रांतों के स्कूल-कालेजों में भी पढ़ाया जा रहा है। बेचैन जी छह सौ से अधिक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। कवि की आहटें, प्यार के छींटे नाम से आडियो/वीडियो कैसेट्स बाजार में उपलब्ध हैं। इंडोनेशियाई दंपति अनिलकांत-रीनाकांत

ने 'पहली नजर' कैसेट के माध्यम से आपके गीतों की धूम मचा दी है।

बेचैन जी ने पद्य के साथ-साथ गद्य के क्षेत्र में एकांकी, कहानी तथा उपन्यास आदि विधा में भी लिखा है, किंतु उनका कवि-रूप ही अधिक प्रख्यात है। उनके साहित्य का परिचय कुछ इस प्रकार है—

गीत-संग्रह—पिन बहुत सारे (1972), भीतर साँकल : बाहर साँकल (1978), उर्वशी हो तुम (1987), झुलसो मत मोर पंख (1990), एक दीप चौमुखी (1997), नदी पसीने की (2005), दिन दवंगत हुए (2005)

गजल-संग्रह—शामियाने काँच के (1983), महावर इंतजारों का (1983), रस्सियाँ पानी की (1987), पत्थर की बाँसुरी (1990), दीवारों पर दस्तक (1991), नाव बनता हुआ कागज (1994), आग पर कंदील (1995), आँधियों में पेड़ (1996), आँगन की अलगनी (1997), आठ सुरों की बाँसुरी (1997), ...तो सुबह हो (2001) कोई आवाज देता है (2005)।

कविता-संग्रह—शब्द : एक लालटेन (1996), नदी, तुम रूक क्यों गई (1996)।

महाकाव्य—पांचाली।

उपन्यास—मरकत द्वीप की नीलमणि। इसके अतिरिक्त दो गजल-संग्रह—'मगर मैं पेड़ हूँ' तथा 'हलंत बोलेंगे' एवं 'जी हाँ, मैं गजल हूँ' शीर्षक से उपन्यास, दोहा सप्तपदी-3, दोहा-संग्रह 'छोड़ चले फल डाल' भी उल्लेखनीय हैं। कई संग्रह प्रकाशनाधीन हैं।

कुँअर बेचैनजी ने अपने गीत-संग्रह 'पिन बहुत सारे' में आज की जटिलताओं एवं विषमताओं का बहुत सटीक वर्णन किया है—

दिवस खरीदे मजदूरी ने/ मजबूरी ने रात
शाम हुई नीलाम थकन को/ कुँठाओं को प्रातः
जिंदगी अपनी नहीं रही।⁴

नवगीतकार बेचैन जी ने अपने गीतों में वर्तमान बाहरी आरोपित व्यवस्थाओं को वास्तविक धरातल पर दिखाने का प्रयास किया है—

जिन्हें रँगा जलते दीपक के काजल ने
बूढ़ी गागर से छलके गंगाजल ने
उन दीवारों पर टँगने से पहले ही
पत्नी के कर से साड़ी गिर जाती है।⁵
* * *

गली-गली, कूचे-कूचे, यों खिले बहुत कचनार हैं
मैं काँटों का सौदागर हूँ, मेरे पंथ हजार हैं।⁶
* * *

बाहर काँटे दिए जगत ने, भीतर दिए विधाता ने
अपना भाग्य-कसकते काँटे, काँटों-साथ तड़पना भी
मछली का यह कथन, कथन है अपना भी।⁷
* * *

मौन कहाँ समझा है बानी की प्यासें
याचक ने कब जानी दानी की प्यासें

प्यासों ने बस समझीं अपनी ही प्यासें
कौन समझ पाया है पानी की प्यासों⁸

* * *

पूछ रही है लाज दुल्हन की, आँगन की शहनाई से
कब निकलेगा देश हमारा निर्धनता की खाई से।⁹

* * *

चुप्पियाँ साधकर न यूँ बैठो, चुप्पियों से भी बात करती है
शब्द एक लालटेन है जिससे, जुल्म की स्याह रात कटती है।¹⁰

* * *

पढ़ेगा बार-बार हमें यूँ न फेंकिए
इंसान हैं हम शाम के अखबार नहीं हैं।¹¹

* * *

माना कि अपने सामने खाली गिलास हैं
लेकिन खुशी तो यह है, सुराही के पास हैं।¹²

* * *

एक माला को लिए बढ़ रही थी मजबूरी
लोग उसमें भी स्वयंवर तलाश करते रहे।¹³

* * *

धूप निकली तो नजर आए नजारे कितने
दिल के कागज पे बने चित्र तुम्हारे कितने।¹⁴

* * *

राजपथ देश की हालत न बता पाएगा
तुम मेरे गाँव की टूटी-सी ये गलियाँ देखो।¹⁵

* * *

मैं महकती हुई मिट्टी हूँ किसी आँगन की
मुझको दीवार बनाने पे तुली है दुनिया।¹⁶

* * *

जन्म से ही साथ लाती हैं 'कुँअर'
फूल-सा तन, मोम-सा मन बेटियाँ।¹⁷

* * *

जंगलों को आदमी से आज खतरे हैं बहुत
शहर तो बसते गए पर पेड़ उजड़े हैं बहुत।¹⁸

* * *

बरसात, धूप, शीत सभी दोस्त हैं मेरे
अपने ही घर में हूँ मैं अब आँगन की अलगनी।¹⁹

* * *

'कुँअर' इस दौर का इंसान भी है बाढ़ का पानी

छुएगा पाँव पहले और उठते ही गिरा देगा²⁰

* * *

हकीकत ही बताना है न अपना राज देता है
मुझे मेरे ही अंदर से कोई आवाज देता है²¹

कुँअर बेचैन का काव्य वैविध्यपूर्ण है। उसमें भाव एवं शिल्प का मणिकांचन संयोग है। हाल ही में वैश्विक महामारी कोरोना से जूझते हुए 29 अप्रैल 2021 को नोएडा के एक निजी अस्पताल में कुँअर बेचैन जी सदा-सदा के लिए चिरविलीन हो गए। जिसने गीत की एक शानदार परंपरा देखी हो तथा कवि सम्मेलनों एवं मंचों का बेताज बादशाह रहा हो, देश-विदेश के हजारों मंचों पर एक राजकुमार की तरह काव्यपाठ किया हो तथा अपनी मधुरिम मुस्कान के जादू से लोगों को आकर्षित किया हो...ऐसे कुँअर बेचैन का असमय इस संसार से विदा ले लेना हिंदी जगत् के लिए एक बहुत बड़ी क्षति है। उनके साहित्य को एक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखना हिंदी प्रेमियों का दायित्व बनता है।

संदर्भ

1. 20वीं शताब्दी के हिंदी काव्य के संदर्भ में कुँअर बेचैन के काव्य का मूल्यांकन, डॉ० निर्भय शर्मा, पृ० 5
2. वही, पृ० 06
3. पिन बहुत सारे, कुँअर बेचैन, पृ० 81
4. पिन बहुत सारे-कुँअर बेचैन, पृ० 18
5. भीतर साँकल : बाहर साँकल, कुँअर बेचैन, पृ० 19
6. उर्वशी हो तुम, कुँअर बेचैन, पृ० 30
7. झुलसो मत मोरपंख, कुँअर बेचैन, पृ० 59
8. दिन दिवंगत हुए, कुँअर बेचैन, पृ० 34
9. नदी पसीने की, कुँअर बेचैन, पृ० 52
10. शब्द : एक लालटेन, कुँअर बेचैन, पृ० 11
11. शामियाने काँच के, कुँअर बेचैन, पृ० 08
12. महावर इंतजारों का, कुँअर बेचैन, पृ० 24
13. रस्सियाँ पानी की, कुँअर बेचैन, पृ० 37
14. पत्थर की बाँसुरी, कुँअर बेचैन, पृ० 93
15. दीवारों पर दस्तक, कुँअर बेचैन, पृ० 74
16. नाव बनता हुआ कागज, कुँअर बेचैन, पृ० 12
17. आग पर कंदील, कुँअर बेचैन, पृ० 55
18. आँधियों में पेड़, कुँअर बेचैन, पृ० 09
19. आँगन की अलगनी, कुँअर बेचैन, पृ० 58
20. ...तो सुबह हो, कुँअर बेचैन, पृ० 41
21. कोई आवाज देता है, कुँअर बेचैन, पृ० 144

मो० 9634160016

ईमेल- dr.nirbhaysharma@gmail.com

श्री नरेश मेहता के खंडकाव्यों में नारी-छवि

शोध निर्देशक

डॉ० सरला शर्मा

विभागाध्यक्ष (हिन्दी विभाग)

बी.एन. विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज०)

सुमित्रा यादव, रिसर्च स्कॉलर

(हिन्दी विभाग)

बी.एन. विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज०)

कवि श्री नरेश मेहता सामाजिक रूप से चेतनशील कवि हैं। उनका आशावादी तथा मानवतावादी दृष्टिकोण नारी के प्रति उनकी गहन संवेदना को परिलक्षित करता है। श्री नरेश मेहता जी के चिंतनशील हृदय ने आधुनिक मानवीय अंतर्द्वंद्व, प्रेमानुभूतियों विसंगतियों व घुटन को उजागर किया है जो रामायणकाल तथा महाभारतकाल में भी नारियों में विद्यमान थी। कवि ने पौराणिक घटनाओं के माध्यम से नारी-अस्तित्व, संशय, सत्ता, स्वतंत्रता जैसे मुद्दों को प्रस्तुत कर राजसी तथा आम नारियों की समस्याओं व स्थितियों का यथार्थ चित्रण अपने खंडकाव्यों में किया है। तद्युगीन समाज में भी नारी के समक्ष अनेक सामाजिक व पारिवारिक समस्याएँ रही हैं जिनका निराकरण करने का प्रयास कवि ने किया है। कवि ने पूर्ण आस्था व निष्ठा के साथ नारीकल्याण की कामना की है। श्री नरेश मेहता ने सीता, द्रौपदी तथा शबरी के माध्यम से संपूर्ण स्त्रीजाति की स्वतंत्रता तथा उनके अधिकारों के प्रति उनकी जागरूकता को ही प्रस्तुत नहीं किया अपितु उनके त्याग, बलिदान, प्रेमभावना, करुणा व नारीव्यथा की ओर भी समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। पुरुष-प्रधान समाज में नारी के परिश्रम, पुरुषार्थ तथा सहयोग से ही पुरुष नित्य कर्मपथ पर अग्रसर होकर अपना, समाज का व देश का उत्थान करने में सक्षम हो पाता है। कवि के हृदय में माँ का अभाव नारीजाति के प्रति उनकी गहन संवेदना को प्रकट करता है जो उनके संपूर्ण खंडकाव्यों में उजागर हुआ है। उनके खंडकाव्यों में नारी पुरुष के संघर्षकाल में साथ निरंतर खड़ी रही है परंतु नारी के अधिकारों की बात आई तो पुरुष का आदर्शवाद उनके समक्ष उभर आता है। पुरातनकाल से लेकर अद्यतन काल तक यह एक गंभीर समस्या बनी हुई है। 'संशय की एक रात' में राम सीता को प्राप्त तो करना चाहते हैं परंतु युद्ध करने के लिए तैयार भी नहीं हैं। वे केवल अपनी पत्नी सीता को प्राप्त करने के लिए युद्ध की भयंकरता व उसके परिणामों को भुगतने के लिए तैयार नहीं हैं।

स्त्री का समाज में स्थान

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक समय तक भारतीय नारी को अनेक प्रकार के सामाजिक बंधनों तथा मर्यादाओं के साथ अपना जीवनयापन करना पड़ता है। आधुनिककाल तक आते-आते नारी ने अनेक प्रकार के अन्याय व अत्याचारों का सामना किया है। पौराणिककाल में स्त्री पर

उतने अधिक बंधन नहीं थे जितने रामायण तथा महाभारतकाल में थे। उन्हें एक सामाजिक दायरे में ही रहना पड़ता था। मध्यकाल में सामंतीय प्रभाव के कारण स्त्रियों की स्थिति और भी हीन होती चली गई। उस समय पुरुषप्रधान समाज में स्त्री को उनकी इच्छाओं पर ही निर्भर रहना पड़ता था। स्त्री की दशा काफी नाजुक थी तथा समाज में उनका ज्यादा मान-सम्मान न होकर वह केवल उपभोग का साधनमात्र थी। वह केवल घर की चारदीवारी में ही अपना जीवन गुजारती थी। ग्रामीण स्त्रियाँ घर के कार्य, कृषि के कार्य तथा बच्चों के लालन-पालन में ही व्यस्त रहतीं, वहीं संपन्न व राजघरानों की स्त्रियों की दशा अच्छी थी। मुसलमानों के आगमन के पश्चात हिंदू स्त्रियों की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए। इतिहासकार राधेशरण जी बताते हैं—‘पहले की तरह इस काल में भी स्त्रियों को सामान्यतः मानसिक दृष्टि से हीन माना जाता था। उनका कर्तव्य आँख मूँदकर पति की आज्ञा का पालन करना था।’¹

समाज में स्त्रियों के लिए वेद पढ़ने की मनाही थी तथा कम उम्र में ही लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था जिससे उनके उच्च शिक्षा प्राप्त करने का मार्ग भी बंद हो जाता था। समाज में अनेक कुरीतियों का प्रचलन भी था, जिसमें बालविवाह, पर्दाप्रथा, दहेजप्रथा, सतीप्रथा तथा जौहरप्रथा आदि प्रमुख थीं।

ब्रिटिशकाल में स्त्री की स्थिति में कुछ सुधार होने लगा, यहीं से उनकी स्वतंत्रता तथा स्वावलंबन की बात की जाने लगी। इस काल में स्त्री को कई प्रकार की छूट मिली। वे पुरुषों के साथ मिलकर कई कार्य करने लगीं। उनकी सदियों से दबी हुई इच्छाएँ प्रबल हुईं। भारतीय पुरुषप्रधान समाज में नारी-स्वतंत्रता तथा उत्थान के बारे में सोचना थोड़ा मुश्किल कार्य था जहाँ स्त्रियों को दबाकर घर में ही रखा जाता था। इससे तो अच्छा प्राचीन वैदिककाल में ही था जब स्त्रियों को देवी का दर्जा प्राप्त था। मनुस्मृति में तो कहा भी गया है—‘यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता।’²

उस समय भारतीय समाज में अनेक विदुषी नारियाँ—मैत्रेयी, गार्गी, अनुसूया आदि हुईं जिन्होंने अपने ज्ञान द्वारा बड़े-बड़े विद्वानों को भी परास्त किया। प्राचीन समय में भारत में नारियों को अनेक अधिकार प्राप्त थे। वे स्वेच्छा से अपना वर चुनती थीं। आधुनिककाल में पुनः नारी के गौरव की प्रतिष्ठा हुई। स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी शक्ति व शौर्य का परिचय देकर नारी की शक्ति का बोध कराया तो सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, विजयलक्ष्मी पंडित, कमला नेहरू जैसी नारियाँ ने अँग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में सक्रिय भूमिका निभाई। आधुनिककाल में अनेक समाजसुधारकों ने स्त्री की स्थिति को सुधारने में योग दिया, जिनमें राजाराम मोहनराय, महर्षि दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा गांधी आदि प्रमुख थे। इन्होंने विधवा-विवाह, सतीप्रथा आदि के खिलाफ आवाज उठाई। बीसवीं शदी में नारी के उत्थान व शिक्षा के लिए कार्य किया जाने लगा। लार्ड रिपन के समय में नारीशिक्षा की अनुमति मिली, परिणामस्वरूप वे अपने घरों से निकलकर कई क्षेत्रों में स्थान प्राप्त कर सकीं। स्वतंत्रता के पश्चात नारी-पुरुष को समान अधिकार प्राप्त होने पर नारी के शिक्षित होने में बढ़ोतरी होने लगी तथा हर क्षेत्र में उन्होंने पदार्पण किया। बहुत से लेखकों कथाकारों व साहित्यकारों ने नारीशिक्षा, स्वतंत्रता व उत्थान को लेखन का विषय बनाया। श्री नरेश मेहता ने पौराणिक कथाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज में नारी के स्थान को उजागर किया है जो आधुनिक संदर्भों में भी परिलक्षित होती है। रामकथा पर काव्य लिखने वाले कवियों

ने अपनी रचनाओं में राम को अधिक महत्त्व दिया है तथा उन्हीं के कृतित्व तथा चरित्र पर अधिक विस्तार तथा गहराई से प्रकाश डाला है। कवि श्री नरेश मेहता जी ने राम के साथ सीता को भी प्रमुखता दी है। सीता की भूमिका भले ही गौण रही है जिसके दो प्रमुख कारण रहे हैं—भारतीय दर्शन तथा धर्मग्रंथों में राम को भगवान विष्णु का अवतार माना गया है। सीता को केवल उनकी शक्ति बताया गया है जो अपने स्वामी की इच्छा तथा संकेत पर सृष्टि का निर्माण तथा संचालन करती है। दूसरे पुरुषप्रधान समाज में कवियों, लेखकों ने नारी की मौखिक स्तुति तो अनेक बार की। उसके अन्यान्य गुणों—उदारता, सहिष्णुता, त्याग-बलिदान, पति-निष्ठा, वात्सल्य का भी स्तवन किया है, पर उसे दिखाया कम गया है।

श्री नरेश मेहता ने तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति, व्यथा व दृष्टिकोण को अपने खंडकाव्यों व उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है। 'संशय की एक रात' में सीता हर स्थिति में पति के साथ रहती है फिर चाहे वह वनवास जाना ही क्यों न हो। वह पुरुष के हर सुख-दुख में उसका साथ देती हैं। परंतु पुरुष अपने आदर्शवाद के आगे स्त्री को भी कुछ नहीं समझते कवि कहना चाहते हैं कि पुरुष स्त्री को प्राप्त करने हेतु तो बड़े-से बड़े कार्य व जोखिम उठा लेते हैं परंतु जब उनकी रक्षा करने की बात आती है तो उस समय पुरुष का आदर्शवादी स्वरूप उभरकर आता है। श्री नरेश मेहता राम के युद्ध न करने के निर्णय तथा संशय स्थिति में सीता के बारे में उनके विचार प्रकट करते हुए कहते हैं—'मानव के रक्त पर पग धरती आती/ सीता भी नहीं चाहिए/ सीता भी नहीं।'³

इसी तरह 'प्रवाद-पर्व' में जब किसी अनाम धोबी द्वारा सीता के चरित्र पर लांछन लगाया जाता है तो वह कहती है कि उन्हें इसका पूर्वाभास था। इससे पता चलता है कि स्त्री की समझ खतरों को भाँपने की शक्ति रखती है परंतु पुरुषप्रधान समाज में उस पर अनेक अत्याचार किए जाते रहे हैं तथा लांछन भी लगाये जाते रहे हैं और हर बार स्त्री को इसके लिए परीक्षा भी देनी पड़ती है। अग्निपरीक्षा के बाद भी एक और परीक्षा सीता के द्वारा दी गई, इसका स्पष्ट प्रमाण है। कवि ने सीता, द्रौपदी व शबरी के माध्यम से संपूर्ण नारीजाति के प्रेम, त्याग, बलिदान को दर्शाया है। सीता को भले ही धोबी द्वारा लगाये गये लांछन का शिकार होना पड़ा फिर भी वह पति की चिंता से परेशान हो उठती है। वह पति की उद्विग्नता का कारण पूछती है। सीता को जब राम के दुखी होने का असली कारण पता चलता है तो पहले तो वह अपनी दयनीय स्थिति पर क्षोभ प्रकट करती है। इससे श्री नरेश मेहता द्वारा यह उजागर किया गया है कि सीता का स्वतंत्र अस्तित्व तो है ही नहीं बल्कि उन्हें तो केवल एक मूर्ति बनकर राम की बगल में खड़ी रहना पड़ता है। कवि ने नारी के त्याग, उत्सर्ग और जीवन के कष्टों को सहन करने की भावना का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। सीता की अग्निपरीक्षा लेना समस्त नारीजाति का अपमान है। लक्ष्मण के तर्क के माध्यम से कवि उजागर करना चाहते हैं कि किसी भी कुलीन नारी पर निराधार लांछन लगाना उसकी स्वतंत्रता का हनन है।

श्री नरेश मेहता ने 'शबरी' खंडकाव्य के माध्यम से निम्नवर्गीय साधारण स्त्री की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत किया है। एक साधारण स्त्री आत्मिक एवं आध्यात्मिक प्रयास के द्वारा मुक्ति प्राप्त करती है। कवि ने समाज में व्याप्त वर्णव्यवस्था को प्रस्तुत कर यह संदेश दिया है कि एक आम स्त्री किस प्रकार अपने चैतन्य की रक्षा इस सामूहिक जड़ता से कर सकती है जो समाज में विद्यमान है। यह प्रश्न आदियुग से लेकर आधुनिकयुग तक लगातार बना हुआ है। कवि ने शबरी

के माध्यम से निम्नवर्गीय नारीजाति को अपने असंग कर्मों पर विजय पाने तथा आध्यात्मिक मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान की है। शबरी वह बीज चरित्र है जो साधारणता से असाधारणता पर प्रतिष्ठापित हो पायी है। कवि राम के माध्यम से कहते हैं—‘है अन्य कौन त्रेता में/ जो श्रेष्ठ भक्त, शबरी सेक,/ है यंत्र, यज्ञ यह सब कुछ/ सब सिद्ध इसी शबरी से।’⁴

आधुनिककाल में भी नारी के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ हैं। वह स्वतंत्र भले ही हो परंतु अनेक बंधनों ने उन्हें अभी भी जकड़ा हुआ है। अग्निपरीक्षा हर स्त्री को देनी पड़ती है यही नारीजीवन का शाश्वत सत्य है। सीता एक सामान्य नारी की तरह पति से अपने कष्टों की शिकायत नहीं करती, परंतु यह अवश्य चाहती है कि पति कुछ क्षण उन्हें भी दे और वे एकांत में अपने अंतर्मन की बातें कह सके, दांपत्य जीवन का सुख भोग सके। उन्हें इस बात का दुख है कि इतिहास ने उन्हें नितांत वैयक्तिक जीवन जीने का अवसर नहीं दिया।

कवि श्री नरेश मेहता ने ‘महाप्रस्थान’ में वर्णित द्रौपदी को आदर्श नारी तथा पतिव्रता नारी के रूप में दिखाया है। उस समय की कुलवधू को केवल अपनी सास के कहने भर से पाँच पतियों की पत्नी बनना पड़ता है, जो बहुपतित्व प्रथा को दर्शाता है जबकि वह हर सुख-दुख में पांडवों का साथ देती है। द्वापरयुग में भी उसका अस्तित्व कुछ मायने नहीं रखता बल्कि वह एक कठपुतली बनी सी दिखाई देती है। इस युग में नारी समस्त गतिविधियों के केंद्र में थी परंतु उसके द्वारा कोई फैसला समाज को मान्य नहीं था। वह सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्र में पुरुषों का सहयोग करती थी। द्रौपदी, कुंती, गांधारी इस युग की शक्ति मानी जाती है परंतु इस युग में ही उनकी उपेक्षा ही की गई। द्रौपदी का चीरहरण भरी सभा के बीच किया गया। यह नारी की गरिमा के पतन का प्रमाण है। श्री नरेश मेहता ने अपने खंडकाव्य ‘महाप्रस्थान’ में द्रौपदी का परिचय देते हुए उसकी स्थिति को ऐसे प्रकट किया है—‘पर सबके पीछे चली आ रही/पांडवदल की सांसारिकता/ भार्या, प्रिया, सेविका/ और पंडिता/ द्रुपदसुता/ द्रौपदी-/ सेविका धर्मराज की/ भीमसेन की चतुर स्वामिनी/ एकनिष्ठा वह प्रार्थ प्रिया/ पांडवी।’⁵

कवि ने इसके द्वारा द्रौपदी का समस्त चरित्र प्रस्तुत किया है। वह एक सामान्य नारी की तरह अंतर्द्वंद्व, सामाजिक बंधनों में बँधी, विवश नारी का प्रतीक है। महाभारत के युद्ध उपरांत उसे भी पति युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर हिमालय यात्रा पर साथ जाना पड़ा जबकि यदि उसे स्वतंत्रता होती तो क्या वह जाती? द्रौपदी हिमालय यात्रा के दौरान जब हिमपात में फँस जाती है तो वह अपने पतियों को मदद के लिए पुकारती है लेकिन उसकी सहायता के लिए कोई नहीं आता। यह एक नारी की व्यथा का स्पष्ट दर्शन है। जब नारी मुसीबत में होती है तो उसकी मदद के लिए कोई भी आगे नहीं आता जबकि वहाँ नारी पुरुष के हर सुख-दुख में उसका साथ देती है। द्रौपदी, सीता का उदाहरण देती हुए कहती है—‘मेरी यह हिमपरीक्षा/ तुम क्यों लेना चाहते हो?/ सीता की अग्नि-परीक्षा से/ राम को ही क्या प्राप्त हुआ/ जो तुम/ अपनी कृष्णा की हिमपरीक्षा ले रहे हो?’⁶

कवि नारीजीवन की व्यथा, विवशता का वर्णन द्रौपदी के माध्यम से करते हैं—‘आँखों के सम्मुख तिर आया/ चंचल जलचित्रों सा/ सारा जीवन-/ इसलिए क्या आयोजित था/ महा-स्वयंवर?/ कृष्ण उपस्थित होकर भी/ अनुपस्थित क्यों रह गये?/ क्यों नहीं किया मत्स्य का भेदन/ पूर्णपुरुष ने?’

उस समय नारी केवल एक वस्तु रूप थी तथा भोग्या के रूप में उसे स्वीकारा जाता था। खंडकाव्य महाप्रस्थान में द्रौपदी अपनी सहायता के रूप में बार-बार सभा में उपस्थित जनों को

पुकारती लेकिन सब संबंध उसके लिए व्यर्थ ही साबित हुए, कोई उसकी मदद के लिए आगे नहीं आया। पुरुषसत्ता समाज का प्रतिनिधित्व करती है लेकिन एक नारी के सम्मान के लिए वह कुछ नहीं करती। इससे ज्यादा विडंबना एक नारी के लिए और क्या हो सकती है? नारी सदैव ही धर्म और समाज के नियमों में जकड़ी हुई महसूस करती है, पुरुष केवल उपदेश देने में समर्थ है तथा हर समय नारी को ही शंका की दृष्टि से देखा जाता रहा है। द्रौपदी का हिम में गलना, सीता की अग्निपरीक्षा तथा बाद में वनगमन, शबरी की वर्णव्यवस्था सभी परीक्षाएँ हैं जो नारी ने दी हैं।

समाज में अनेक कुप्रथाओं के चलते नारी का ही शोषण हुआ है। बहुपतित्व, दहेजप्रथा, स्वयंवर प्रथा, बालविवाह जैसी कुप्रथाओं के चलते शोषण का शिकार एक स्त्री को किसी न किसी रूप में किया गया। चाहे वह किसी भी युग की क्यों न हो। आधुनिक समाज में भी ये कुरीतियाँ थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आज भी विद्यमान हैं। वैज्ञानिक उन्नति के साथ ही अजन्मी कन्याओं की भ्रूणहत्या एक दुःखदायी समस्या है। स्वतंत्रता से पूर्व व पश्चात अनेक समाज सुधारकों ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए बहुत से प्रयास किए तथा आंदोलन भी चलाये जिससे उनकी स्थिति में कुछ सुधार हुआ। राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना जाग्रत होने के परिणामस्वरूप नारी की दशा में आशातीत सुधार हुआ है। वैसे भी समाज में नारी का स्थान व स्थिति समयानुसार परिवर्तित होना अवश्यंभावी भी है। आधुनिकयुग में राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद, गांधीजी आदि ने स्त्री को समाज में उचित तथा पुरुष के समकक्ष अधिकार दिलाए हैं। शिक्षा के लिए भी उनके लिए द्वार खुले हैं। आज की नारी स्वतंत्र रूप से पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर प्रतिपल उन्नति की ओर अग्रसर है।

सारांशतः श्री नरेश मेहता ने पौराणिककाल की महान व राजसी स्त्रियों की स्थिति को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत किया है। समय परिवर्तन के साथ कुछ बदलाव तो हुए हैं, इसे नकारा नहीं जा सकता। वास्तव में समाज में व्याप्त स्त्रियों के प्रति सोच को और विकसित करने की आवश्यकता अब भी है। कवि ने सीता व द्रौपदी को एक ओर परंपरागत पतिव्रता पत्नी के रूप में चित्रित किया है और दूसरी ओर जनतंत्रात्मक मूल्यों में आस्था रखने वाली प्रबुद्ध आधुनिक नारी के रूप में। कवि ने परंपरागत तथा आधुनिक जीवनमूल्यों का समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है।

संदर्भ

1. मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक संरचना, डॉ॰ राधेशरण, पृ॰ 106
2. मनुस्मृति, पृ॰ 52
3. श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ॰ 32
4. श्री नरेश मेहता, शबरी, पृ॰ 79
5. श्री नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृ॰ 60
6. श्री नरेश मेहता, महाप्रस्थान, पृ॰ 84-85
7. वही, पृ॰ 63

9911220255
Email: smdevi2011@gmail.com

भारतीय वाङ्मय में वक्रोक्ति का स्वरूप : एक अनुशीलन

रूपेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

राजकीय महाविद्यालय

मुवानी, पिथौरागढ़ 262552

काव्यशास्त्र के अंतर्गत आने वाले छहों सिद्धांतों में एक सिद्धांत 'वक्रोक्ति' है, जो साहित्य में अपनी उपयोगिता हेतु अन्य किसी सिद्धांत तथा संप्रदाय के प्रति उत्तरदायी नहीं है। यदि व्यापकता को दृष्टिगत किया जाए तो ज्ञात होता है कि स्वयं वक्रोक्ति एक ऐसा संप्रदाय है, जो सुप्रसिद्ध काव्यसिद्धांतों को अपने में समाहित करने की अद्वितीय प्रतिभा लिए हुए है। आचार्य कुंतक के संस्थापन में व्यापकता को प्राप्त करने वाला वक्रोक्ति सिद्धांत संभवतः भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से भारत के काव्य-सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ रहा हो, किंतु इसके गर्भ से उदित होने वाले तर्क और विचार प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में काव्यशास्त्र के प्रत्येक प्रश्न को प्रभावित अवश्य करते हैं। अपने उदय के समय से पूर्व के अधिकांश काव्य-कौशलों की व्याख्या, एक अनोखा ढंग इस सिद्धांत को विशिष्ट बनाता है। वर्तमान समय में इस सिद्धांत को व्याख्यायित करने वाले तथा भारतीय हिंदीकाव्य में इस सिद्धांत के वास्तविक स्वरूप को परिभाषित एवं विश्लेषित करने वाले विविध ग्रंथ सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं।

यह कथन सत्य है कि आचार्य कुंतक को वक्रोक्ति सिद्धांत के संपादन का श्रेय दिया जाता है। इनके अनथक प्रयासों के फलस्वरूप ही यह एक सिद्धांत से संप्रदाय तक की लम्बी यात्रा तय कर पाया है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि आचार्य कुंतक से पूर्व इस सिद्धांत का कोई अस्तित्व ही नहीं था। यह ज्ञात हो कि आचार्य भामह, दंडी और आनंदवर्द्धन जैसे महान भारतीय काव्यशास्त्रियों ने इसे अलंकारों के मूल में स्थापित कर इसके अस्तित्व को निरन्तरता प्रदान की। भारतीय आलोचना की दृष्टि से वक्रोक्ति में मौलिकता का वैशिष्ट्य है। वक्रोक्ति को काव्य के प्राणतत्त्व के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो किसी भी काव्य के सार रूप को उभारने हेतु पर्याप्त सिद्ध होता है। इसके अभाव में काव्य के काव्यत्व का लोप हो जाना स्वाभाविक है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं—'वक्रोक्ति संप्रदाय वस्तुतः काव्य-निर्माण में कर्तृ पक्ष का प्राधान्य मानकर चलने वाला संप्रदाय है।.....आगे जाकर उसका अंतर्भाव अलंकार में कर दिया गया, क्योंकि वह व्यक्ति या वस्तु का यथावत् वर्णनमात्र थी, उसका स्वरूप वाच्य-प्रधान था।' जहाँ एक ओर भोज द्वारा वक्रोक्ति को रस, अलंकार एवं ध्वनि वाङ्मयों में प्रमुखतः अलंकार की प्रधान प्रवृत्ति के रूप में परिभाषित किया गया है, तो वहीं दूसरी ओर प्रारम्भिक अलंकारशास्त्र को पोषित करनेवाले भामह, दंडी, उद्भव तथा आनंदवर्द्धन आदि प्रमुख काव्य-शास्त्री इसे किसी संप्रदाय अथवा सिद्धांत का भेद या रूप स्वीकारने का समर्थन नहीं करते हैं। कारण कि वक्रोक्ति का प्रभाव प्रत्येक श्रेणी की रचनाओं में स्वतंत्र रूप से दृष्टिगोचर होता है।

फिर चाहे उस रचना का क्षेत्र जो भी हो। इसकी स्वरूपगत व्यापकता इसे अन्य सिद्धांतों के समकक्ष लाकर खड़ा कर देती है। भारत की काव्यशास्त्रीय परंपरा के अनुसार वक्रोक्ति के प्रमुख तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं, इनमें प्रथम काव्य के प्राणभूत तत्त्व के रूप में, द्वितीय व्यापक काव्य तत्त्व के रूप में तथा तृतीय अलंकार के रूप में। ध्यान देने योग्य बात है कि वक्रोक्ति की 'काव्य-जीवितम्' के रूप में स्थापना के बाद ही अलंकार के रूप में वक्रोक्ति अस्तित्व में आया। वस्तुतः प्रारंभिककाल में इसे प्रायः एक काव्य के तत्त्व की श्रेणी में ही स्थान दिया गया, जो वास्तव में वक्रोक्ति के अलंकारिक उपरूप की मान्यता के समानांतर निरंतर विकासशील चिन्तन धारा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह भी एक तर्क रूप हो सकता है कि कुंतक की स्थापना 'वक्रोक्ति काव्य का प्राण है', इनसे प्रारंभ होकर इन पर ही ठहर जाती है। अर्थात् आगे होने वाले विचारक इस मान्यता को अपना समर्थन नहीं देते हैं।

काव्यशास्त्र के अधिकांश सिद्धांतों का वर्णन या उनसे सम्बन्धित तर्क-वितर्क एवं परिभाषा सहज ही आदि आचार्य भरतमुनि के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में उपलब्ध हो जाती है। परंतु इनके द्वारा रचित किसी भी ग्रंथ में वक्रोक्ति की कोई चर्चा नहीं की गई। परंतु आचार्य भामह से वक्रोक्ति की परंपरा का प्रारंभ माना जा सकता है। इन्होंने वक्रोक्ति की विशुद्ध चर्चा न करते हुए, वस्तुतः इसे एक अतिशयोक्ति के अर्थ में परिभाषित किया है। इनके उपरान्त एक ऐसे आलोचक का नाम आता है, जो काव्यशास्त्र के अतिरिक्त अन्य विषयों तथा भाषाओं में भी अपनी विस्तृत पहचान को स्थापित कर चुके हैं, वह नाम आचार्य दंडी का है। इन्होंने भी भरतमुनि के समान ही काव्यशास्त्र के इस पहलू को स्पर्श नहीं किया। परंतु अब समय बदला, आलोचक बदले और आलोचना दृष्टि भी परिवर्तित हुई। अतः सर्वप्रथम आचार्य वामन ने प्रमुखतः अलंकार के रूप में वक्रोक्ति को परिभाषित कर उस गति को निरंतरता प्रदान की, जो प्रायः शिथिल रूप में परिवर्तित हो रही थी। आचार्य वामन के पश्चात् पंडितराज जगन्नाथ आदि तक एक विचारधारा के रूप में यह आज भी हमारे भारतीय साहित्य का प्रमुख अंग बनी हुई है।

आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रवर्तन करते हुए इसे व्यापकता प्रदान करने की दृष्टि से 'वक्रोक्ति जीवितम्' नामक ग्रंथ की रचना की। जिसका सर्वप्रथम उद्देश्य रहा वक्रोक्ति को विभिन्न विचारों के आधार पर भारतीय काव्यशास्त्र में एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में स्थापित करना। वे मात्र 'वक्रोक्ति जीवित' कहकर इसे काव्य की आत्मा सिद्ध नहीं करते, बल्कि काव्य के समस्त तात्त्विक एवं भेदनिय रूपों में वक्रोक्ति को अंतर्भूक्त मानते हैं। वे एक स्थान पर लिखते हैं—

शब्दार्थो सहितो वक्र कवि व्यापार शालिनी।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी।²

'अर्थात् कवि के वाक् व्यापार से संपन्न काव्यवेत्ताओं (सहृदयों) को आनंदित करने वाले बंध में शब्द और अर्थ सहित व्यवस्थित रखा गया कथन ही काव्य है। कुंतक ने तद् का अर्थ 'काव्य', और विद् का अर्थ 'मर्मज्ञ' किया है। अतः 'तद्विदाह्लाद' का अर्थ काव्यमर्मज्ञों का आनन्द हुआ। शब्द और अर्थ का व्यवस्थित बन्ध ही काव्य मर्मज्ञों (सहृदयों) को आनंदित करता है। व्यवस्थितौ कहकर कुंतक सामान्य शब्द और अर्थ परंपरागत संस्कृत के काव्य-सिद्धांतों की हिंदी में नूतन व्याख्या का सामंजस्य नहीं अपितु विशिष्ट शब्द और विशिष्ट अर्थ का सामंजस्य मानते हैं।'³ सहज रूप में जब कभी भी वक्रोक्ति की चर्चा की जाती है तो एक नाम 'कुंतक'

तथा इनके द्वारा रचित ग्रंथ 'वक्रोक्तिजीवितम्' हमारे मनःलोक में विचरण करने लगता है। परंतु सत्य है कि कुंतक को वक्रोक्ति की प्रेरणा आचार्य भामह से प्राप्त हुई है। वास्तविकता इससे भी गहन है, भामह से पूर्व भी वक्रोक्ति का अस्तित्व रहा होगा। संभवतः इस कारण भामह वक्रोक्ति के लक्षण का विवेचन, विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं मानते। वे इसे एक विशिष्ट अर्थ रूप में ग्रहण करते हैं। यह इस बात का साक्ष्य है कि आलंकारिक तथ्यों की उद्भावना आचार्य भामह के पूर्व से संबंध है। भामह के समान आचार्य दंडी भी वक्रोक्ति को परंपरा में भुक्त एक विशेष अर्थ रूप में ही आत्मसात करते हैं। आचार्य भामह लिखते हैं—

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।

यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनमा बिना।⁴

वक्रोक्ति मानवीय व्यक्त वचनों की अलंकृति ही है। जिसके अभाव में समस्त काव्य में सौन्दर्य का आगमन संभव नहीं। वक्रोक्ति का कल्पनात्मक विकास 'काव्यादर्श' नामक ग्रंथ में दृष्टिगोचर होता है, जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि आचार्य भामह की अपेक्षा आचार्य दंडी की वक्रोक्ति विषयक दृष्टि अधिक स्पष्ट और तार्किक है। दंडी संपूर्ण वाङ्मय को 'स्वाभावोक्ति' एवं 'वक्रोक्ति' दो भागों में विभक्त करते हुए वक्रोक्ति की किसी विशेष आलंकारिकता को अस्वीकारते हैं और श्लेष के आधार पर वक्रोक्ति में सौन्दर्य वृद्धि को प्रदर्शित करते हैं—

श्लेषः सर्वासु पुष्पाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।

द्विधा भिन्नं स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मय।⁵

इनका विचार है कि वक्रोक्ति कोई विशिष्ट अलंकार नहीं, अपितु स्वाभाविक उक्ति से भिन्न उपमा तथा सभी अर्थालंकारों का सामूहिक कथन है।

दंडी तथा भामह दोनों ही जहाँ एक दूसरे के मतों का समर्थन करते हैं, वहीं वामन का अलंकारिक अनुशीलन भिन्नता से परिपूर्ण है। वे इन दोनों से पृथक् 'वक्रोक्ति' शब्द को एक नितान्त भिन्न अर्थ में प्रकट करते हैं। वामन ऐसे सर्वप्रथम विचारक हैं, जिन्होंने वक्रोक्ति को एक विशेष अलंकार के अर्थ रूप में प्रयोग किया है। वामन के अनुसार—'सादृश्यात् लक्षणा वक्रोक्तिः।'⁶ जहाँ प्रारंभिक आचार्य भामह तथा दंडी दोनों ही वक्रोक्ति को अलंकार सामान्य के अर्थ में ग्रहण करते हैं, वहीं आगे आने वाले आचार्य वामन इसे अर्थालंकार के रूप में, तथा आचार्य रूद्रट शब्दालंकार के रूप में स्थापित करने के पक्षधर हैं। परंतु आचार्य अभिनवगुप्त वक्रोक्ति के स्वरूप को निर्दिष्ट करने की दृष्टि से पूर्ववर्ती आचार्य वामन एवं रूद्रट के मध्य समन्वयात्मक मार्ग का अनुसरण करने का प्रयास करते हैं। वे एक स्थान पर लिखते हैं—

शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन

रूपेणावस्थामिति अयमसौ अलंकारस्यालंकारान्तरभावः।⁷

इनके द्वारा कहे गए श्लोक का आशय यह है कि जब शब्दों तथा अर्थों की वक्रता लोकोत्तर रूप से अवतरित हो, तो उसे वक्रोक्ति की संज्ञा दी जाती है। आचार्य अभिनवगुप्त ने वक्रोक्ति के स्वरूप की व्याख्या पर विचार करते हुए भामह की उक्ति 'वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टा वाचां त्वलङ्कृतिः' पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया है क्योंकि ये अतिशयोक्ति मात्र को अलंकार का एक प्रकार रूप वक्रोक्ति समझते हैं, जो कि संदेहमुक्त है। इनके अतिरिक्त एक पृथक् आचार्य आनंदवर्धन हैं, जो मूलतः ध्वनिवादी आचार्य हैं। वे आचार्य भामह द्वारा व्याख्यायित

वक्रोक्ति से भली-भाँति परिचित थे। भामह के समान आनंदवर्धन भी काव्य के अन्तर्गत किसी प्रकार के श्रेष्ठता (अतिशय) रखने के पक्षधर हैं। इनका स्वतंत्र विचार है—‘सब अलंकारों में अतिशयोक्ति मूल रूप में रखी जा सकती है।...अपने मत की पुष्टि में उन्होंने भामह के प्रसिद्ध श्लोक ‘सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिः’ को उद्धृत भी किया है और अतिशयोक्ति से हीन अलंकार को अलंकारमात्र स्वीकार करने के कारण निःसंदेह अतिशयोक्ति सर्वालंकाररूपा है।⁸ एक निष्कर्ष रूप में आनंदवर्धन वक्रोक्ति तत्त्व को सभी अलंकारों के मूल में स्वीकार करने के समर्थक हैं। इनके अनुसार वक्रोक्ति या (अतिशयोक्ति) अन्य अलंकारों के साथ दो प्रकारों वाच्य एवं व्यंग्य रूप में अवस्थित होती है। परंतु आचार्य अभिनवगुप्त इसे शब्द और अभिधा वक्रता दो भेदीय प्रकारों में स्थापित करने के पक्षधर हैं। विलक्षण रूप से ठहरने पर ही अतिशयोक्ति दृष्टिगत होती है संभवतः यह भी एक तथ्य है कि अतिशयोक्ति को एक सामान्य अलंकार के रूप में देखा जाता है। परंतु इसका प्रयोजन गहरा और ग्रहण करने योग्य है। इस प्रकार के अनेक तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्य अभिनवगुप्त वक्रोक्ति की व्यापकता से भली-भाँति परिचित हैं।

वक्रोक्ति विवेचन की दृष्टि से आचार्य कुंतक विरचित ‘वक्रोक्ति-जीवितम्’ एक अद्वितीय रचना है। यह एकमात्र रचना है, जिसमें वक्रोक्ति के समस्त भेदों का वर्णन-विश्लेषण दृष्टिगोचर होता है, अन्यत्र इस पक्ष का अभाव ही रहा। इन्होंने वक्रोक्ति को प्रमुख छः प्रकारों में विभाजित किया है—

1. वर्णविन्यास वक्रता, 2. पदपूर्वाद्ध वक्रता, 3. पदपराद्ध वक्रता
4. वाक्यवक्रता, 5. प्रकरणवक्रता, 6. प्रबंधवक्रता

आचार्य कुंतक के परवर्ती आचार्यों एवं विचारकों में वक्रोक्ति विषयक धारणा पर निरन्तर तर्क-वितर्क सामने आते रहे। इन्हीं में एक नाम भोज का भी है, जिन्होंने रस सिद्धांत की मान्यताओं को स्वीकार नहीं किया बल्कि रसों की एक स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने की दिशा में ‘वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्चेति वाङ्मयम्’ का प्रतिपादन किया। समस्त वाङ्मय को तीन प्रमुख भेदों प्रथम वक्रोक्ति, द्वितीय रसोक्ति तथा तृतीय स्वभावोक्ति में विभक्त किया। शृंगारप्रकाश नामक कृति में वर्णित एक श्लोक द्रष्टव्य है—‘त्रिविधः खलु अलंकारवर्गः वक्रोक्तिः स्वभावोक्तिः रसोक्तिरिति। तत्रोमाद्यलंकार प्राधान्ये वक्रोक्तिः सोऽपि गुणप्राधान्ये स्वभावोक्तिः विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात्तु रसनिष्पत्तौ रसोक्तिरिति।’⁹ यदि इसकी व्याख्या करें तो अलंकार अर्थात् काव्यसौंदर्य के तीन वर्ग बताए गए हैं, जहाँ उपमादि अलंकारों की प्रधानता हो, वहाँ वक्रोक्ति, गुण की प्रधानता होने पर स्वभावोक्ति तथा विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति के कारण रसोक्ति परिलक्षित होती है। यदि हिंदी काव्यशास्त्र के अन्तर्गत वक्रोक्ति के स्वरूप की चर्चा करें तो ज्ञात होगा कि समस्त हिंदी काव्यशास्त्र में संस्कृत काव्यशास्त्रीय संप्रदायों की दृष्टि से किसी गंभीर विवेचन-विश्लेषण का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। किंतु ध्वनिसंप्रदाय को अपना केन्द्रिय विषय बनाने वाले भिखारीदास और कुलपति मिश्र आदि आचार्य मिल जाते हैं, जिन्होंने वक्रोक्ति के विश्लेषण का प्रयास किया। रीतिकालीन काव्य के केंद्र में मात्र रस ही विद्यमान रहा है अन्य विषयों पर किंचित ही अनुशील हुआ है। डॉ० जगदेवसिंह विद्यालंकार लिखते हैं—‘हिंदी में भी वक्रोक्ति का अस्तित्व अवश्य बना रहा, पर सैद्धांतिक दृष्टि से कुंतक के समान इसकी व्याख्या नहीं हुई।...हिंदी कवियों ने वक्रोक्ति को काव्य के प्राण के रूप में नहीं, अपितु काव्य के प्रसाधन के रूप में ग्रहण किया है और उसके द्वारा अपनी कविता के कलापक्ष को उत्कृष्ट और समृद्ध

बनाने का यत्न किया है।¹⁰ आचार्य केशवदास एक अलंकारवादी आचार्य हैं, इन्होंने अपनी कृति 'कविप्रिया' में अलंकारों के विवेचन के अंतर्गत उक्ति (कथन) के प्रमुख पाँच प्रकारों का वर्णन कर 'वक्रोक्ति' को उसका एक प्रकार मात्र बताया है। आचार्य कुंतक वक्रोक्ति को एक कवि-व्यापार कौशल मानते हैं। रीतियुगीन काव्य में यह कवि व्यापार कौशल सहज रूप में दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए बिहारी, देव एवं घनानंद आदि की कविताएँ द्रष्टव्य हैं। रीतिकालीन दृष्टि का क्षरण हुआ और आधुनिक दृष्टि अपने स्वरूप को ग्रहण करने लगी। आधुनिक हिंदी के विद्वानों की वक्रोक्तिविषयक दृष्टि परंपरा के बंधन तोड़ मुखर हो चली। आधुनिक हिंदी आचार्यों ने वक्रोक्ति को मात्र शब्दालंकार की श्रेणी में रख अनुप्रासंगिक दृष्टि से इसके लक्षण, उदाहरण की प्रवृत्ति को त्याग कर वक्रोक्ति को सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप में महत्त्व प्रदान किया। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा आदि सभी छायावादी साहित्यकारों के काव्य में कुंतक द्वारा वर्णित सभी प्रकार की वक्रता के सहज दर्शन दृष्टिगोचर होते हैं। छायावादी काव्य में वक्रोक्ति के व्यावहारिक रूप की सफल अभिव्यक्ति को देखा जा सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतीय वक्रोक्ति सिद्धांत के एक विलायती उत्थान के रूप में पश्चिम के अभिव्यंजनावाद को स्वीकार किया है। किंतु ये दोनों ही परस्पर पर्यायवाची मात्र भी नहीं बन पाए। इन दोनों के मध्य समानता तो नाम मात्र ही है, परंतु विषमता की खाई अधिक गहरी है। पश्चात्य विचारक क्रॉचे और आचार्य कुंतक दोनों ही काव्य के अन्तर्गत कवि-व्यापार के प्राधान्य को तो स्वीकारते हैं किंतु इन दोनों की आलोचनात्मक दृष्टि में मूलभूत अन्तर द्रष्टव्य है। कुंतक वक्रोक्ति को काव्य के प्राणतत्त्व रूप में स्वीकार करते हैं। साथ ही रसों को वक्रोक्ति प्रकार रूप में महत्त्व देते हैं। वहीं सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने वक्रोक्ति को अलंकार रूप में स्थापित किया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—'किसी के कहे वाक्य का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा श्लेष से अथवा काकु उक्ति से अन्य अर्थ की कल्पना किए जाने को वक्रोक्ति अलंकार कहते हैं अर्थात् वक्ता ने जिस अभिप्राय से जो वाक्य कहा हो उसकी श्रोता द्वारा भिन्न अर्थ में कल्पना करके उत्तर दिया जाना। भिन्न अर्थ की कल्पना दो प्रकार से हो सकती है....श्लेष द्वारा और काकु द्वारा। अतः वक्रोक्ति के दो भेद हैं—श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।'¹¹

द्विवेदीयुग में भी ब्रजभाषा के अस्तित्व को कायम रखने वाले पं० जगन्नाथदास रत्नाकर मूलतः एक रसवादी कवि हैं। ये अलंकार, रीति, गुण की अपेक्षा रमणीयता की वियुत्पत्ति हेतु वक्रोक्ति को प्रमुख बताते हुए समस्त काव्य में रमणीयता को आधारभूत साधन स्वीकार करते हैं। इनका कथन है कि वक्रोक्ति द्वारा ही काव्य में अलंकार, रस, ध्वनि, रीति, आनंद एवं रमणीयता का अविर्भाव संभव है। ये सभी काव्य के प्राण तत्त्व न होकर सामान्य तत्त्व मात्र हैं, किंतु वक्रोक्ति को काव्य के विशिष्ट अंग के रूप में स्थापित किया जाता है। द्विवेदीयुग के पुरोध्या आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी काव्य के अन्तर्गत वक्रोक्ति को एक पृथक् महत्त्व प्रदान किया। वे सहजता, वास्तविकता और उत्साह को काव्य का विशेष गुण स्वीकार करते हैं। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया है कि काव्य में विलक्षण और चमत्कार तत्त्व वक्रता के व्यापार से ही संभव है। उनका कथन है कि 'जो कवि शब्द चयन, वाक्यविन्यास और वाक्य समुदाय के आकार-प्रकार की काट-छाँट में भी कौशल नहीं दिखा सकते, उनकी रचना विस्मृति के अंधकार में अवश्य ही विलीन हो जाती है। जिसमें रचनाचातुर्य तक नहीं उसकी कवि यशोलिप्सा विडंबना मात्र है।'¹² आगे होने वाले अनेक कवियों एवं आलोचकों ने वक्रोक्ति की स्वतंत्र एवं विविध सत्ता

को स्वीकार कर इसे काव्योपयोगी सिद्ध किया है। इस शृंखला में पं० पद्मसिंह शर्मा, रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, बाबू गुलाबराय, बलदेव उपाध्याय, डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, डॉ० नगेंद्र आदि प्रमुख हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वक्रोक्ति का सर्वप्रथम उल्लेख भामह द्वारा किया गया, परंतु इनसे पूर्व भी काव्य में वक्रोक्ति का अस्तित्व रहा है, जिससे प्रभावित होकर आचार्य भामह ने वक्रोक्ति पर चिंतन का सफल प्रयास किया। उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण को दृष्टिगत किया जाए तो सिद्ध होता है कि आचार्य भामह ने जिस वक्रोक्ति का अस्तित्व स्थापित किया, उसे परवर्ती आचार्यों ने पोषित और विकसित किया। आचार्य कुंतक के अद्वितीय प्रयासों से यह एक संप्रदाय का रूप प्राप्त कर सका। किंतु इसके पश्चात् वक्रोक्ति की स्वतंत्र सत्ता पर विराम चिह्न लगा और यह एक अलंकार मात्र की परिधि में सिमट कर रह गया। काव्यशास्त्र में प्रारम्भ से ही वक्रोक्ति की आधार स्थिति पर कोई एक मत स्थापित नहीं हो सका। कुछ विद्वानों ने इसे रस से सम्बन्धित माना है तो कुछ विचारक इसका संबंध अलंकारों से जोड़ते हैं। अलंकारों को केंद्र में रखनेवाले चिंतकों के भी दो वर्ग द्रष्टव्य हैं—पहला वर्ग वक्रोक्ति को शब्दालंकार से जोड़ता है तो वहीं दूसरा वर्ग इसे अर्थालंकार से जोड़ने का पक्षपाती है। शोध के निष्कर्ष की दृष्टि से आचार्य कुंतक का वक्रोक्ति-परिचय विशिष्ट जान पड़ता है। इनके अनुसार वक्रोक्ति समस्त काव्य का सुगूढ़, रुचिर तथा व्यापक तत्त्व है, जिसके फलस्वरूप काव्य के समस्त पक्षों में चमत्कृति का संचार होता है। वक्रोक्ति अपने अस्तित्व के प्रारम्भ से ही अलंकारों तथा रसों के मध्य विभाजित होती चली आ रही है। परंतु आधुनिक काल के विचारकों ने अपनी समस्त पूर्ववर्ती विचारधाराओं से पृथक् एक सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप में वक्रोक्ति को महत्त्व देकर उसे विवेचित किया।

संदर्भ

1. बलदेव उपाध्याय, भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग दो, संस्करण 2012 संवत्, प्रसाद परिषद्, काशी, पृ० 3
2. डॉ० जगदेवसिंह विद्यालंकार, हिंदी काव्यशास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ, संस्करण 2004, दीपू प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 199 से उद्धृत
3. वही, पृ० 199-200
4. बलदेव उपाध्याय, भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ० 310 से उद्धृत
5. वही, पृ० 312
6. वही, पृ० 313
7. डॉ० जगदेव सिंह विद्यालंकार, हिंदी काव्यशास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ, पृ० 199 से उद्धृत
8. बलदेव उपाध्याय, भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ० 314
9. शृंगार प्रकाश 2/11
10. डॉ० जगदेव सिंह विद्यालंकार, हिंदी काव्यशास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ, पृ० 205
11. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, अलंकार मंजरी, संस्करण 1993, पृ० 4
12. महावीरप्रसाद द्विवेदी, संचयन आजकल की कविता, पृ० 100

rupesnbd@gmail.com

मो० 9756774213

सिनेमा के कथानक में राष्ट्रवाद

डॉ० अभिषेक मिश्र

सहायक आचार्य-पत्रकारिता एवं जनसंचार
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय) प्रयागराज

समकालीन सिनेमा में राष्ट्रवाद का स्वरूप निर्धारण करना बड़ा ही कठिन कार्य है। इतनी सारी फिल्मों में किसे चुना जाए यह प्रश्न सामने आया और इसका उत्तर लोगों से बात करने पर मिला। 'गदर' सिनेमा विभाजन के समय में भारत की छवि को दृश्यांकित करती है। कहानी सिख व मुसलमान में हुए दंगों के बीच प्रेम के जन्म की है। तारासिंह (सरदार), सकीना (मुसलमान) को दंगों से बचाकर घर लाता है और दोनों में प्रेम हो जाता है, जिसकी निशानी उन दोनों का पुत्र जित्ते है। कहानी में सकीना अपने माता-पिता से मिलने पाकिस्तान जाती है और वापस नहीं आ पाती। उसे लेने के लिए तारासिंह पाकिस्तान जाता है। सकीना का पिता तारासिंह को इस्लाम धर्म अपनाने के लिए कहता है, तारासिंह तैयार हो जाता है। सकीना का पिता असरफ अली कहता है—

असरफ अली : कहो, पाकिस्तान जिंदाबाद!

तारासिंह : पाकिस्तान जिंदाबाद!

असरफ अली : कहो, इस्लाम जिंदाबाद!

तारासिंह : इस्लाम जिंदाबाद!

असरफ अली : कहो, हिंदुस्तान मुर्दाबाद!

तारासिंह : (चिल्लाते हुए) असरफ अली! ...मेरा हिंदुस्तान जिंदाबाद था, जिंदाबाद है और जिंदाबाद रहेगा।

इस तरह गदर का राष्ट्रवाद दूसरे धर्मों और पड़ोसी देशों से नफरत करना सिखाता है। सभी धर्मों के प्रति तारासिंह का समभाव तो दिखता है, परंतु असरफ अली का धार्मिक राष्ट्रवाद उसके राष्ट्रवादी विचारधारा में लगे रोग को दर्शाता है। तारासिंह धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हो जाता है, क्योंकि प्रेम में सब जायज है। जब उसके राष्ट्रवाद की भावना पर चोट लगती है तो वह अपने विरोध को हिंसात्मक रूप में प्रकट करता है व अंत में तारासिंह सकीना के पिता असरफ अली का दिल हिंसा-भरे खेल के बाद जीत लेता है। सिनेमा में राष्ट्रवाद का स्वरूप धर्म से ऊपर स्थापित होता है परंतु तरीका हिंसात्मक है।

दूसरी फिल्म 'रंग दे बसंती' आती है। इस फिल्म में युवाओं के उग्र राष्ट्रवाद को दृश्यांकित किया गया है। 'रंग दे बसंती' युवाओं के मन में राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण करती है।² इस तरह 'रंग दे बसंती' युवावर्ग जिसके अंदर जोश है परंतु राष्ट्र के प्रति सोचने का समय नहीं उन्हें यह फिल्म जाग्रत करने का प्रयास करती है। उनमें राष्ट्रीय चेतना का निर्माण करने के उद्देश्य को लेकर हमारे बीच उपस्थित होती है। रंग दे बसंती का युवाओं के लिए संदेश ये है कि 'अगर तुम्हें लगता है कि व्यवस्था खराब है तो उसे बदलने की कोशिश करो। यह तुम्हारा

देश है, इसकी अच्छाई और बुराई के लिए तुम ही जिम्मेदार हो।³ इस संदेश के अनुरूप ही सिनेमा का भी निर्माण हुआ है। जिसमें अमीर खान व उसके दोस्त व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का विरोध करते हैं। इस फिल्म में उग्र राष्ट्रवादियों के विचारों को प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। साथ ही सिनेमा स्वाधीनता के संघर्ष के नायक के समतुल्य आज के युवा को दृश्यांकित करती है। शासन में भ्रष्टाचार की वजह से उनके एक साथी की मौत हो जाती है वे उन अपराधियों को सजा दिलाने के लिए शांति मार्च निकालते हैं और जनमत का निर्माण करने लगते हैं, परंतु शासन अपनी दमनकारी नीतियों से उन्हें ऐसा करने से रोकती है। इसके फलस्वरूप अमीर खान एवं उनके साथियों में उग्र राष्ट्रवाद की भावना का जन्म होता है। दोषियों को सजा देने के लिए वे हिंसा का भी रास्ता अपना लेते हैं। न्याय पाने का भाव, जनमत का निर्माण कर उनमें राष्ट्रवादी भावना का विकास दिखाता है। दूसरी ओर न्याय न मिलने व दमन की नीति उन्हें हिंसा के रास्ते पर लेकर जाती है। कहानी के अंत में अमीर खान व उसके साथी आत्मसमर्पण कर देते हैं और जनता को जाग्रत करने के लिए रेडियो पर बातचीत करते हैं। उनके अंदर का विश्वास बैकग्राउंड गीत 'ए साला अभी अभी' से दिखाया जाता है। ये सिनेमा युवाओं को राष्ट्र के प्रति सोचने व उसे बदले के लिए प्रेरित करता है। जिस रास्ते पर चलकर वे लक्ष्य तक पहुँचते हैं वह रास्ता अंत में हिंसात्मक हो जाता है। इस सिनेमा का प्रभाव जनता पर पड़ा और राष्ट्रवादी भावना भी जागी जिसका प्रमाण इस रूप में मिलता है 'इस फिल्म के प्रदर्शन के बाद से भारतीय युवाओं ने कई मोर्चों पर सार्थक प्रदर्शन किए हैं। 'रंग दे बसंती' की तरह इंडिया गेट पर मोमबत्ती जलाकर लोगों ने 'प्रियदर्शनी मट्टू' और 'जेसिका लाल' के केसों में अदालत के फैसले के खिलाफ मोर्चा निकाला और शायद स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार इस तरह से शांतिप्रिय जुलूस निकाल के, उच्च न्यायालय को और सरकार को ये मुकदमे फिर से खोलने पर मजबूर कर दिया।⁴

यह फिल्म राष्ट्रवाद के रूप में जनता के पास पहुँचती है और उन्हें प्रेरणा देती है कि व्याप्त भ्रष्टाचार का विरोध करो, इसी बात को आधार बनाकर हाल ही में एक फिल्म 'नो वन किल जेसिका' आती है, जिसमें जेसिका के वास्तविक न्याय को पाने में 'रंग दे बसंती' फिल्म की महत्वपूर्ण भूमिका को दिखाया जाता है। यह सिनेमा वास्तविक घटना पर आधारित है जिसका उद्देश्य है कि राष्ट्रवादी भावना समाज में निरंतर प्रवाहित होती रहे। तीसरी फिल्म आती है 'चक दे इंडिया' 'धार्मिक अंधविश्वास, विभाजन का प्रभाव, आंचलिक मतभेद तथा लिंग भेद आदि सामयिक भारतीय समस्याओं को गहराई से जानने की कोशिश है चक दे इंडिया।⁵

ये सभी बातें राष्ट्रवाद के विरोध में खड़ी होती हैं। धर्म के प्रति ज्यादा लगाव व्यक्ति के सोचने-समझने की क्षमता को कम कर देता है। जो व्यक्ति उनके पक्ष में कार्य करता है वह दोस्त है और जो विरोध में गलती से भी कुछ कर देता है या उससे हो जाता है वह देश-धर्म का गद्दार है। इस बात को लेकर 'चक दे इंडिया' हमारे पास आती है। अपने धर्म को कबीर धान अन्य धर्म के समान ही मैत्रीभाव को पाने के लिए संघर्ष करते हैं। लिंगभेद सिनेमा में हॉकी के विश्वकप में लड़कियों की टीम को न भेजने के रूप में सामने आता है। जहाँ लड़कियों को यह माना जाता है कि वे सिर्फ चूल्हा व चौका कर सकती हैं। इस बात से लड़कियों में एकता बढ़ती है और वे इतना अच्छा खेलती हैं कि विश्वकप भी जीत जाती हैं। खेल के द्वारा राष्ट्रवाद के जन्म के स्वरूप को सामने लाया जाता है। टीम में पूरे भारत के खिलाड़ी खेलने आते हैं और भारत के लिए खेलते हैं। मैच जब दूसरों से खेलकर जीतना होता है तो हिंसा का भी रास्ता अपनाते हैं। कबीर खान अपनी

टीम (जिसका वह कोच है) से कहता है कि 'बाहरी टीम एक मारे तो तुम चार मारो, वो चार मारे तो तुम आठ मारो, इतना मारो कि वो टूट जाएँ या तुम हार जाओ।'⁶ ये दृश्य सिनेमा में राष्ट्रवाद को प्राप्त करने के लिए हिंसा के रास्ते को अपनाने के रूप में दीखता है।

चौथी फिल्म आती है 'माइ नेम इज खान' जिसमें एक मुसलमान धर्म, राष्ट्र व व्यक्ति की भूमिका को दिखाता नजर आता है। 'माइ नेम इज खान दो व्यक्तियों के संबंध, व्यक्ति और राष्ट्र के संबंध की कहानी है।'⁷ सिनेमा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के संबंध को बताते हुए यह दिखाता है कि धर्म के आधार पर नस्ल भेद, राष्ट्र व जनता के विरोध में होता है जिसके कारण समाज में धर्म के आधार पर शोषण किया जा सकता है। जो जनहित व राष्ट्रवाद के हित के विरोधी भावनाओं को जन्म देता है। कहानी का दूसरा पक्ष है कि व्यक्ति और राष्ट्र के बीच क्या संबंध है। व्यक्ति अगर मुसलमान है तो वह राष्ट्र में गद्दर के रूप में ही अपनी छवि नहीं बनाता है या मुसलमान धर्म या कोई धर्म राष्ट्र के विरोध में कोई कार्य नहीं करते हैं। इसी बात को लेकर खान सिनेमा में आते हैं और राष्ट्रवाद के विरोधी विचारधाराओं को समाप्त करने के लिए कहते हैं कि 'माइ नेम इज खान और मैं आतंकवादी नहीं हूँ।'⁸ इस तरह से मुसलमान आतंकवादी नहीं होते हैं इस बात के लिए खान संघर्ष कर जनचेतनाओं को विकसित करने का कार्य अपनी सिनेमा में करते हैं। अंत में यह साबित होता है कि वह भी अन्य लोगों के जैसे इंसान हैं। सिर्फ धर्म के आधार पर कोई देशद्रोही नहीं होता है। इस तरह से धर्म को आधार मानकर बनने वाली यह फिल्म धार्मिक राष्ट्रवाद को रेखांकित करती है। पाँचवीं फिल्म 'लगान' है, जिसमें जनराष्ट्रवाद जन्म लेता है और जो अहिंसा के रास्ते पर चलकर लक्ष्य को प्राप्त करती है। इस तरह से हम देखते हैं कि समकालीन सिनेमा में राष्ट्रवाद धार्मिक रूप में उग्र राष्ट्रवाद के रूप में व जन राष्ट्रवाद के रूप में हमारे सामने आता है जिसमें कुछ लोग हिंसा के रास्ते पर भी जाकर लक्ष्य प्राप्त करने से नहीं चूकते हैं। ये सिनेमा राष्ट्रवाद को बचाने व उसके विरोधी समस्याओं से संघर्ष करने की प्रेरणा देते नजर आते हैं।

'लगान' जनराष्ट्रवाद के रूप में अहिंसात्मक विचारधारा से ओतप्रोत नजर आती है जहाँ न कोई धर्म है, न जाति सबका धर्म सिर्फ कर्म है। जहाँ किसी धर्म विशेष को न्याय दिलाने की बात नहीं होती है बल्कि पूरे जनसमूह के न्याय की बात होती है। सिनेमा में गाँव की सारी जनता एक होती है। सभी धर्म, वर्ग एक होते हैं, वे अपने भेद भुलाते हैं, अछूत को गले लगाते हैं स्त्रियाँ तथा बच्चे भी साथ देते हैं, तब आपसी एकता बढ़ती है और जन्म लेता है जनराष्ट्रवाद। लगान सिनेमा में अहिंसा के माध्यम से गाँव के लोगों ने लगान की बेड़ियों को तोड़ा। अँग्रेजों से युद्ध भी किया तो वह भी अहिंसात्मक रूप से, कहानी इसी दृश्य पटल पर प्रासंगिक हो उठती है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भारतीयों ने भी अँग्रेजों के विरुद्ध गांधी के नेतृत्व में संघर्ष किया। इस सिनेमा में भी गाँधी के विचारों का प्रतीक भुवन लोगों को संघर्ष करने व जोड़ने का कार्य करता है। इस अर्थ में सिनेमा गाँधी के विचारों को भी प्रस्तुत करता है। सिनेमा में राष्ट्रवाद का जन्म और उसका विकास दोनों ही क्रिकेट के मैच की चुनौती व खेलकर जीतने तक में दिखलाया गया है। भुवन गाँव में क्रिकेट की टीम बनाता है और लोगों को संघर्ष, साहस, मेहनत करने के लिए अभिप्रेरित करता है। पूरा सिनेमा आजादी की लड़ाई का प्रतीक है। सिनेमा में दिखाया जाता है कि सभी के मन में विद्रोह करने का भाव है परंतु समाज की बेड़ियाँ उसे विरोध करने से रोकती है, अँग्रेजों की शोषण करने की प्रवृत्ति पूरे गाँव को दुःख की एकता में बाँध देती है। अपने अतीत को पुनः प्राप्त करने की प्रेरणा जिसे 'चले चलो' गीत में दृश्यांकित किया

गया है। किसान अपने गौरवशाली अतीत को पुनः प्राप्त करने के लिए संघर्ष करते हैं, खेल को सीखते हैं। जन्म देते हैं जनराष्ट्रवाद को, जिसे कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए तोड़ने का काम करते हैं और राष्ट्रवाद की धारा में बाधक बनते हैं। ऐसा ही कार्य लाखा ने किया। गौरी को पाने का स्वार्थ उसे अँग्रेजों की तरफ ले जाता है परंतु सत्य पता होने पर वह वापस गाँव की एकता के सूत्र को और पक्का करता है। कहानी में अँग्रेज खिलाड़ियों की चालाकी भी दिखाई देती है दूसरी तरफ उन्हीं में से कुछ के द्वारा की गई मदद से राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी हुआ है। ये सभी बातें गाँव में राष्ट्रवाद के स्वरूप के निर्माण को दृश्यांकित करती हैं। गाँधी के विचारों से एक होकर अहिंसा की लड़ाई लड़ना, राष्ट्र के प्रति भारतीय जनता की निष्ठा व राष्ट्रवादी भावना को प्रदर्शित करता है। इस तरह से लगान सिनेमा के कथानक में राष्ट्रवाद की झलक साफ दिखाई देती है। लगान सिनेमा, स्वाधीनता संग्राम का कलात्मक प्रतीक है। सिनेमा में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह सामने आती है कि धर्म का त्याग कर कर्म को स्वीकार करना, निजी स्वार्थ का त्याग, सर्वधर्म की एकता और किसी एक का हित न सोचकर बल्कि पूरे समाज का हित, राष्ट्रवाद को जन्म देता है और सतत् प्रवाहित रखता है।

इस फिल्म के गीत, संगीत, नृत्य डालता फिल्म में प्राण डालने का कार्य करते हैं जिसके दृश्यांकन के माध्यम से राष्ट्रवाद का निर्माण करने से जीत तक की बात दिखाई जाती है। दूसरी ओर फिल्म का कथानक भी दृश्य संयोजन के माध्यम से प्रतिरोध की हर कड़ी को प्रस्तुत कर राष्ट्रवाद को उत्पन्न करता है। क्रिकेट का दृश्यांकन भी बिल्कुल ही वास्तविक लगता है और वह हथियार भी बनता है जिसके माध्यम से फिल्म में विरोध व संघर्ष का कार्य अहिंसात्मक रूप में दिखाता है। इस दृश्यांकन के पीछे स्वाधीनता का असहयोग आंदोलन व स्वदेशी आंदोलन है। क्रिकेट खेलने की सामग्री के निर्माण को दृश्यों के माध्यम से प्रस्तुत कर इसी बात को साबित किया जाता है। फिल्म कथानक, गीत-संगीत व क्रिकेट तीन भाग में राष्ट्रवाद को प्रस्तुत करती है। राष्ट्रवाद एक काल्पनिक भावना है जो हमें अनुभव के माध्यम से प्राप्त होती है। राष्ट्रवाद को समझने के लिए राष्ट्र व राज्य को समझना अत्यंत आवश्यक है। राष्ट्र के लोगों की राष्ट्र के प्रति निष्ठा, प्रेम, विश्वास को राष्ट्रवाद के प्रतीक के रूप में देख सकते हैं। राष्ट्रवाद का जन्म मनुष्य के अतीत की खोज के रूप में होता है। तभी स्वतंत्र भारत के गुलाम होने व आत्मनिर्भरता से गरीबी का घिर जाने से, भारत के लोगों में राष्ट्रीय चेतना आई और 1857 का विद्रोह हुआ। इसका कारण था भारत का गौरवशाली व धनी इतिहास जिसे ब्रिटिश व कई विदेशी शासक धीरे-धीरे समाप्त कर रहे थे। इसके कारण भारत में राष्ट्रवादी भावना का जन्म ही नहीं, बल्कि इस चेतना के माध्यम से भारत 15 अगस्त 1947 में आजाद हुआ। इस राष्ट्रवादी छवि को निरंतर बनाए रखने के लिए भारतीयों ने संचार के सशक्त माध्यम सिनेमा का सहारा लिया और सिनेमा में राष्ट्रवाद की भावना को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया। समकालीन सिनेमा में जहाँ 'गदर' आर्थिक राष्ट्रवाद को प्रदर्शित करती है वहीं 'चक दे इण्डिया' और 'माई नेम इज खान' उसका साथ देती नजर आती हैं। 'रंग दे बसंती' शांति व मौन से राष्ट्रवादी चेतना को प्रस्तुत तो करती है परंतु अंत में हिंसा के रास्ते पर चल पड़ती है और उग्र राष्ट्रवाद को जन्म देती है ऐसे में सिर्फ एक फिल्म लगान जनराष्ट्रवाद के अहिंसात्मक रूप में प्रस्तुत होती है। सिनेमा में धर्मनिरपेक्षता पर विशेष बल दिया गया है। भुवन की टीम में कोई अपने धर्म के लिए नहीं लड़ता, बल्कि सब मिलकर पूरे प्रांत के लिए लड़ते हैं।

सिनेमा में राष्ट्रवाद के होने के रूप को धर्मनिरपेक्षता, सत्य, साहस, एकता के रूप में

माना गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि निजी स्वार्थ राष्ट्रवाद के विरोध में खड़ा होता है और राष्ट्रवाद के प्रवाह को बाधित करता है। संघर्ष करने के लिए सत्य साहस की आवश्यकता होती है यह बात सिनेमा के गीत में देखने पर स्पष्ट होती है। साथ ही यह भी देखने को मिलता है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में कैसे अँग्रेजों ने भी अपना सहयोग दिया। ए०ओहम द्वारा स्थापित काँग्रेस पार्टी के नेतृत्व में स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी गई। इस बात का अच्छा उदाहरण है। एलिजाबेथ को इसी रूप में सिनेमा में राष्ट्रवाद की भावना को मदद करने के रूप में दृश्यांकित किया गया है। ये बातें तभी सार्थक रूप में अपनी अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं, जब हर एक दृश्य, हर एक गीत तथा हर एक घटना को सही क्रम में संयोजित किया जाए। इस अर्थ में लगान के दृश्य संयोजन कला में राष्ट्रवाद के स्वरूप को देखा जा सकता है जहाँ दृश्यांकन के माध्यम से ही सिनेमा अहिंसात्मक स्वरूप प्राप्त करता है। सिनेमा में लाखा के खंजर का दृश्य बिना कहे ही विद्रोह के भाव को प्रकट करता है। सिनेमा के अंत में 'ओ मितवा ओ मितवा' गीत इस बात को दर्शाता है कि सत्य और साहस से जो कर्म करता है जीत उसी की होती है। इन सभी बातों का ध्वनि व दृश्य के माध्यम से उचित संयोजन कर ही राष्ट्रवादी स्वरूप को सिनेमा में दिखाया जाता है। अतः लगान सिनेमा के कथानक, गीत संगीत, दृश्य, इन सभी के संयोजन से राष्ट्रवाद का स्वरूप निर्मित होता है जो कि जनराष्ट्रवादी है, अहिंसात्मक है।

संदर्भ

1. रावत हरिकृष्ण, सामाजिक शोध की विधियाँ, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2013, पृ० 27
2. डॉ० देवव्रत सिंह, भारत में मीडिया शोध-एक आलोचनात्मक समीक्षा, जन मीडिया, अंक-40, 2015, पृ० 9
3. डॉ० विनयमोहन शर्मा, शोध प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973, पृ० 5
4. राम अहुजा, सामाजिक अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृ० 5
5. दिलीप मंडल, मीडिया का अंडरवर्ल्ड-पेड न्यूज, कॉरपोरेट और लोकतंत्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, (2011)
6. कृष्णकांत प्रांजल धर, न्यू मीडिया और बदलता भारत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
7. डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ, डॉ० बीना रूस्तगी, समाचारपत्र एवं समाचार-प्रेषण, नमन प्रकाशक, नई दिल्ली, 2006
8. मनोज लोढा, समाचारपत्र जगत में अभूतपूर्व क्रांति, एक आर्थिक विश्लेषण, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2010
9. अनंगपाल सिंह, भारत में प्रेस : एक सिंहावलोकन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 2010
10. लगान सिनेमा, निर्देशक-आशुतोष गवारिकर, 2001
11. गदर सिनेमा, निर्देशक-अनिल शर्मा, 2001
12. रंग दे बसंती, निर्देशक-राकेश ओमप्रकाश मेहरा, 2006
13. चक दे इंडिया, निर्देशक-शिमित अमिल, 2007
14. माइ नेम इज खान, निर्देशक-करण जोहर, 2010

39ए/9 अमरनाथ झा मार्ग, जार्ज टाउन प्रयागराज

उत्तर प्रदेश 211002

मो० 9305215566

Email: Up70abhisek@gmail.com

स्वप्न से यथार्थ की यात्रा : माधवी

डॉ० अनिता

एसोसिएट प्रोफेसर, राजधानी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नाटक अपने समय से सार्थक संवाद करता है। संवाद की प्रक्रिया में ही उसकी पक्षधरता तय होती है। भीष्म साहनी का सबसे कम चर्चित नाटक माधवी स्त्री-पक्ष में लिखा उल्लेखनीय नाटक है। यह नाटक पौराणिक संदर्भ के आधार पर आधुनिक दृष्टि से स्त्री की यातना, उसकी विडंबना और पुरुष व्यवस्था के छद्म, स्वार्थपरता और भोगवादी मानसिकता को उजागर करता है। पौराणिक आख्यानों में पुरुष के दंभ और छल से चली माधवी, द्रौपदी अहिल्या, शकुंतला प्रभृति स्त्रियों की विडंबना प्रमाण है कि धर्म और समाज ने कर्तव्य और नैतिकता का पाठ स्त्री के लिए ही रचा है। आदर्श प्रेम, त्याग, समर्पण और पवित्रता स्त्री के हिस्से लेकिन उसकी देह और कोख पुरुष की संपत्ति है। वस्तु की भाँति उसका हस्तांतरण उसकी सहमति-असहमति जाने बिना ही कर दिया जाता है 'सामंती व्यवस्था में नारी सिर्फ एक वस्तु है संभोग और संतान की इच्छा पूर्ति करने वाली मादा।' पितृसत्ता, धर्म और राजनीति के मजबूत गठजोड़ ने स्त्री की पहचान, उसके वजूद और उससे जुड़े जरूरी मुद्दों को सदियों से हाशिए पर रखा है। हाशिए की आवाज अब केंद्र में आने के लिए संघर्षरत है।

माधवी नाटक में भीष्म साहनी जी ने मिथक और यथार्थ के धरातल पर स्त्री नियति को प्रस्तुत किया है। हालाँकि 'आज के अतीत' में भीष्म जी स्वीकार करते हैं—'मुझे यह नाटक अधिक धैर्य से लिखना चाहिए था। अधिक धैर्य से भी और ज्यादा खुले शब्दों में भी, क्योंकि इसमें विकास की बड़ी संभावनाएँ थीं, जिनकी और जल्दबाजी के कारण मेरा ध्यान नहीं गया।'² महाभारत के एक छोटे से प्रसंग को लेकर लिखा गया यह नाटक हमारे समाज के दोगले चेहरे को न केवल उजागर करता है बल्कि कर्तव्यनिष्ठा, धर्मपरायणता, दानवीरता और परंपरागत समाज के स्त्री विरोधी संकीर्ण नजरिए को नई दृष्टि से व्याख्यित भी करता है। बकौल लेखक—'कथा में माधवी के प्रति सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं था। न ही माधवी के विश्वामित्र के पास सहवास का प्रस्ताव लेकर जाने की भर्त्सना की गई थी।'³ नाटक के केंद्र में मिथकीय पात्र माधवी हैं जो चिरकौमार्य के वरदान की उपस्थिति के कारण अलौकिक जरूर है पर उसके स्त्री-अनुभव और उन से उपजे यक्ष प्रश्न यथार्थ के धरातल पर पुरुष प्रधान समाज की पोल खोलने में सक्षम है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि 'पशुओं, गुलामों और स्त्रियों की वफादारी, धर्मपरायणता, मालिक के प्रति जान निछावर करने की बलिदान भावना, त्याग की कहानियों से सारा मध्ययुग भरा पड़ा है। यही उनका स्त्रीत्व है और यही शील...वह भी संपत्ति है...मूलतः इस समाज में स्त्री की न अपनी कोई जाति है न नाम और न अपनी इच्छा...न संभोग में उसकी इच्छा है, न संतान में, ये दोनों जरूरतें पूरी करना ही तो उसका धर्म है।'⁴ इतिहास में

स्त्री भोग्या वस्तु के रूप में चुप्पी के आवरण में बंद है। सन्नाटे को चीरती चुप्पी में स्त्री शोषण और त्रासदी का आख्यान है माधवी प्रसंग। माधवी का अक्षत कौमार्य और चक्रवर्ती सम्राट बनने वाले पुत्र उत्पन्न करने का वरदान उसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप और पुरुष-वर्ग के उद्देश्य पूर्ति का साधन बन जाता है।

नाटक का प्रारंभ विचारणीय है। विश्वामित्र के शिष्य गालव को गुरु-दक्षिणा देने के लिए आठ सौ अश्वमेधी घोड़े चाहिए। वे कही नहीं मिलते। निराशा की स्थिति में आत्महत्या करने लगता है तो गरूड़ जी उसे महाराज ययाति के पास जाने की सलाह देते हैं। महाराज ययाति अब संन्यासी हैं, उनके पास देने के लिए कुछ भी नहीं है, पर स्वयं को दानवीर और महान् कहलाने के लिए वे अपनी पुत्री माधवी को दान में दे देते हैं। माधवी को चिरकौमार्य और चक्रवर्ती सम्राट पुत्र को जन्म देने का वरदान प्राप्त था। ययाति अपनी बेटी के गुणों का वर्णन गालव से करते हैं—‘इसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला चक्रवर्ती राजा बनेगा। सुना मुनिकुमार, ऐसे लक्षणों वाली युवती को पाकर कोई भी राजा तुम्हें घोड़े दे देगा।’⁵ वे माधवी से कहते हैं—‘बेटी यज्ञ में दी जाने वाली आहुति साधारण आहुति नहीं होती!’⁶ निस्संदेह इस निर्णय में पिता बेटी की हँ या ना जाने बिना, मात्र यश-प्राप्ति के लिए वस्तु की तरह उसे गालव को दान कर देते हैं। उनके लिए घोड़े और बेटी बराबर है। अन्न, वस्त्र, धन या पशु की तरह दान में दे दी गई माधवी प्रश्न करती है—आज माँ होती, तो क्या वह भी मुझे इसी तरह दान में दे देती।⁷ कैसी त्रासद स्थिति है, यशकामना पिता की और गुरु ऋण से मुक्त होने की प्रतिज्ञा गालव की, पर उसे पूरा करने की जिम्मेदारी माधवी को सौंप दी गई। कर्तव्य-पालन के चक्रव्यूह में फँसी माधवी हमें आज चारों तरफ दिखती है। उसे कभी परिवार के नाम पर, तो कभी धर्म, संस्कृति, सभ्यता तो कभी परंपरा के नाम पर बाजार में खड़ा कर दिया जाता है। सोशल मीडिया के अधिकांश सीरियलों में नारी को कर्तव्य, सहनशीलता, नैतिकता और त्याग का कौन सा पाठ नहीं पढ़ाया जाता? जितना बड़ा त्याग, जितना रोना-धोना उतनी ही ज्यादा टी०आर०पी०। स्त्री के त्याग, समर्पण और प्रेम जैसे गुणों का महिमामंडन, पुरुष सत्ता का ही पोषण करता है, निस्वार्थ समर्पण के प्रतिदान में उसे या तो देवी की उपाधि से विभूषित कर मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया अथवा कुलटा कहकर समाज से बहिष्कृत कर, उपेक्षित जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिया गया, यानी दोनों ही स्थितियों में खामियाजा उसे ही भुगतना पड़ता है। धर्म, कुल, समाज का झंडा और स्त्री-मुक्ति के नाम पर देहमुक्ति का नारा, पुरुषसत्ता और बाजार के हितों का ही पोषण करता है।

भीष्म साहनी का यह नाटक आज के संदर्भों में बारीकी से नए सवाल खड़े करता है। तथाकथित पुरुष-समाज के लिए माधवी कामधेनु गाय की भाँति उपयोगी है, पर वह मूक नहीं है। वह सवाल करती है, उसकी मनःस्थिति उसकी बेचैनी, उसकी पीड़ा, उसके वक्तव्य में उभरकर आती हैं—‘मैं तो तुला पर चढ़ाई जाऊँगी कोई राजा घोड़े देकर बदले में मुझे ग्रहण करेगा।’⁸ उसमें तर्क है, द्वंद्व है, लेकिन पिता के कर्तव्य और गालव से प्रेम के कारण, वह यज्ञ में दी जाने वाली आहुति बन जाती है। गालव माधवी को लेकर बाजार में निकलता है तो उसे कहीं भी 800 घोड़े नहीं मिलते। राजा हर्यश्य के पास केवल 200 घोड़े हैं। सौदा होता है, माधवी पुत्र को जन्म देगी और राजा 200 घोड़े देगा, फिर माधवी को मुक्त कर देगा। माधवी पुत्र जन्म देने वाली मशीन बन जाती है। वह बाजार में खड़ी हैं—बाजार की शर्तों पर। खरीददार-पुत्र लोभी राजा हर्यश्य के दरबार में सबके समक्ष अंग परीक्षण हो रहा है, खरीददार जाँच करता है कि सौदा

मुनाफे का हैं या नहीं। बध्यपशु की भाँति उसके एक-एक अंग का निरीक्षण हो रहा है, पर सब चुप हैं। विरोध की तो कोई गुंजाइश ही नहीं, स्त्री केवल सुंदर देह और वंशोत्पत्ति का माध्यम मात्र है। माधवी अपमानबोध से व्यथित है, वह प्रश्न करती है, उसके प्रश्न मात्र प्रश्न बनकर रह जाते हैं। देह का सौदा खरीदार की शर्त यानी पुत्रत्पत्ति की गारंटी पर होता है। किराए की कोख से पुत्र का जन्म होता है, माधवी मोहग्रसित है, पर वह तो एक निमित्त मात्र थी। पुत्र दो, घोड़े लो और जाओ। सरोगेट माँ का शिशु पर कोई अधिकार नहीं। किसी भी स्त्री की शारीरिक मानसिक पीड़ा, अंतर्द्वंद्व, परतंत्रता का इससे तीव्र चित्रण और क्या होगा? पुत्र माँ के दूध के लिए रो रहा है और माँ दायित्व और कर्तव्य से बँधी बाजार में खड़ी है—मातृत्व और स्त्रीत्व से वंचित। पिता दानवीर, प्रेमी महान् शिष्य और माधवी? वह फिर से एक फूहड़, अभद्र, कामुक राजा के सामने खड़ी है। जिनके लिए वह मात्र उपभोग की वस्तु है। राजा दिवोदास तो यहाँ तक कह देते हैं कि 'यदि पुत्र न हुआ और अठारहवीं बेटे हुई, तो हम, तुम दोनों को कालकोठरी में बंद कर देंगे।' गौरतलब है कि बेटियों को जन्म देने वाली स्त्रियों के प्रति हमारे समाज का कैसा रवैया है। स्त्री की कोख भी लिंग के आधार पर स्वीकार्य या दंडित होती है। प्रेम के कारण, माधवी बाजार की पौरुष ताकत को स्वीकार करती नजर आती है जो उसे मनुष्य से वस्तु में बदल कर देती है। वस्तु का विज्ञापन, उसकी माँग और मुनाफे को बढ़ा देता है। अलग-अलग राजाओं के शयनकक्ष में रहकर उन्हें पुत्र देकर माधवी 600 घोड़े गालव के लिए जुटा लेती है। पर शेष 200 घोड़े कहीं नहीं हैं। क्या करें? स्त्री फिर द्वंद्व में है। उसके स्वप्न और लक्ष्य के बीच 200 घोड़े की बाधा है। गालव व्यथित हैं—गुरुदक्षिणा पूरी नहीं हुई। माधवी गायब हो जाती है, गालव स्त्री के कमजोर होने को रेखांकित करता है। पर वही कमजोर स्त्री जा पहुँचती है—विश्वामित्र के आश्रम में, एक नया सौदा करने। मुझे लो और घोड़े दो। स्त्रीत्व और मातृत्व को दाँव पर लगा, अंतिम सौदा स्वयं तय करती है। वहीं विश्वामित्र जो शिक्षक हैं, ज्ञानी हैं, नीति निर्धारक हैं, अगली पीढ़ी को सभ्यता और परंपरा की डोर थमाने वाले हैं, वह स्त्री-भोग से गुरुदक्षिणा पूरी कर लेते हैं। इतने बड़े गुरु, ज्ञानी अगर चाहते तो माधवी के त्याग को समझ गालव को गुरुदक्षिणा से मुक्त कर सकते थे, पर वे भी पुरुष की कामुक भोगवादी प्रवृत्ति से अलग नहीं थे। गुरुदक्षिणा पूरी हुई। सभी खुश हैं—पिता ययाति की यश कामना, प्रेमी गालव की प्रतिज्ञा, गुरु का मान और पुत्रांकाक्षी राजाओं की इच्छा, सब पूर्ण हुई है। अब सब ठीक है। माधवी देह-समर्पण की कर्तव्य-यात्रा में चार पुरुषों के संसर्ग में रही, पर मन के स्तर पर वह गालव से ही जुड़ी रही। प्रेम की शाश्वत ऊष्मा से संचालित माधवी देह और मन के द्वंद्व से जूझती हुई, प्रेमयज्ञ में स्वयं को आहूत करती रही। प्रतिज्ञा पूरी हुई तो उसकी कठिन परीक्षा भी समाप्त हुई। अब समय आ गया है अपने प्रिय के सान्निध्य को पाने का। महाराज ययाति माधवी का स्वयंवर रचा रहे हैं। पितृसत्ता का दंभ, विकृतियाँ और दिखावा स्वयंवर में नजर आ रहा है। अक्षत-कौमार्य के वरदान से संपन्न माधवी जैसी युवती को कौन नहीं पाना चाहेगा? बाजार लगा है, मैरिज मैट्रिमोनियल कॉलम भरे पड़े हैं। कद, रंग, जाति, धर्म और देहज! सब स्त्री देह से जुड़ा है पर स्त्री कहीं नहीं है। आज के संदर्भ में स्त्री की विडंबना और त्रासद हो जाती है।

गालव निश्चित है माधवी उसे ही चुनेगी। पुरुष-मनोवृत्ति जो हर स्थिति में विजेता रहना चाहता है। माधवी को पाना-भोग, सुख, समृद्धि और चक्रवर्ती सम्राट पुत्र को पाना है। यानी हर तरह से फायदे का सौदा। पर वहाँ माधवी कहीं नहीं है। उसकी जगह आती है एक मुरझाई सी

ढली हुई स्त्री। गालव कठिनाई से पहचानता है। वे हैरान हैं—माधवी ने चिरकौमार्य अनुष्ठान क्यों नहीं किया? माधवी सहजता से कहती है—‘अब किसलिए गालव? अब तो मैं जैसी हूँ, वैसी ही तुम्हारे सामने आना चाहती हूँ। तुमसे क्या छिपाना?’¹⁰ पर पुरुष को चाहिए एक वस्तु, जिसे वह भोग भी सके और वंश चलाने वाला पुत्र भी उत्पादित कर सके। बाजार में बार-बार प्रयोग की गई वस्तु की कोई कीमत नहीं होती। वह स्त्री के ढले, अपवित्र वास्तविक रूप को कैसे स्वीकार करे? मुरझाई मालती मुनाफे का सौदा नहीं है। ढोंगी पुरुष को चाहिए ढाँचे में नपी-तुली 36-24-36 की सुंदर देह, जिसकी रग-रग में त्याग, कर्तव्य, समर्पण और पवित्रता भरी हो। माधवी की ढली हुई देह गालव को काम्य नहीं। ढोग और छद्म से घिरा गालव तर्क देता है ‘जो स्त्री मेरे गुरु के आश्रम में रह चुकी हो, उसे मैं अपनी पत्नी कैसे मान सकता हूँ।’¹¹ पुरुष का दोगलापन, सौंदर्य लोलुपता और यौन शुचिता की मनोग्रंथि स्पष्ट हो जाती है। माधवी के सामने गालव का मुखौटा उतर जाता है। ‘तुमने मेरे यौवन की आहूति देकर गुरुदक्षिणा जुटाई है।’ प्रेम समता और स्वतंत्रता पर टिका होता है, पर प्रेम का पुरुषपक्ष माधवी की भावनात्मक पवित्रता का अभिलाषी नहीं, उसे अनुष्ठान से युवा और पवित्र माधवी से परहेज नहीं, पर चार मातृत्व झेल चुकी, अशुद्ध स्त्री कैसे स्वीकार्य हो? कैसी विडंबना है निस्वार्थ भाव से पूर्ण समर्पित माधवी का कितने पुरुषों ने यौन उत्पीड़न किया बावजूद इसके न वह किसी की बेटी है, न पत्नी है और ना ही माँ। इस संवेदनात्मक बिंदु पर पुरुषों के छल से ठगी स्त्री स्तब्ध है, व्यथित है। जिस प्रेम के लिए उसने अपने अस्तित्व तक को दाँव पर लगा दिया उसी ने उसे छला। गालव ने उसके तन-और मन दोनों का शोषण किया। वह अनुष्ठान से युवा हो सकती थी, पर वह अनुष्ठान करने से इंकार कर देती है। गालव का सारा गणित, उसके सारे समीकरण माधवी के सामने खुल जाते हैं, मोहभंग की चरम स्थिति में माधवी पवित्रता, देवीत्व और सौंदर्य के मिथ से बाहर निकल आती है। प्रेम के बलबूते वह विपरीत स्थितियों से टकराकर, अपने स्वप्न को बचाने की जद्दोजहद करती रही, अब उस स्वप्न के टूट जाने पर भी, वह संघर्ष की नई जमीन की तलाश में निकल पड़ती है। ‘संसार बड़ा विशाल है, उसमें निश्चय ही मेरे लिए कोई स्थान होगा।’¹² अपने सहज और मानवीय रूप में माधवी उस स्थान की खोज में निकल पड़ती है जो इससे बेहतर विकल्प हो। उसे यकीन है कि कहीं तो ऐसी मानवीय सृष्टि होगी, जहाँ ययाति जैसे पिता, गालव जैसे पुरुष नहीं होंगे। दानवीर, कर्तव्यनिष्ठ दानवों से परे मानवीय संसार की तलाश, उसके निजत्व, उसकी मुक्ति की ही तलाश है। बदली हुई स्त्री बाजार के मापदंड का निषेध करती है। यही वह बिंदु है जहाँ मिथकीय स्त्री आधुनिक संदर्भों में प्रासंगिक हो जाती है। पितृसत्ता की दहलीज को पार करती स्त्री अपनी राह स्वयं तय करती है और पुरुष को मुक्त करते हुए कहती है, ‘मैंने अपनी भूमिका निभा दी।’¹³ इसमें अनेक सवाल और जवाब हैं। माधवी का अंतिम संवाद समूची स्त्री पक्ष का बयान है जिसे वह प्रेम की तमाम जटिलताओं के बीच समर्पण और धैर्य से बेटी, प्रेमिका, पत्नी और माँ के रूप में निभाती है। इस एक वाक्य में समूची पितृसत्तात्मक मूल्यों की समीक्षा देखी जा सकती है। माधवी की आस्था का अनास्था में परिवर्तन और स्वस्तिवाचन, शंख, घंटाध्वनि और मंत्रोच्चारण के बीच सब-कुछ को छोड़कर नितांत एकांत का वरण। नई माधवी का पुनर्जन्म है। यही वह बिंदु है जहाँ माधवी की नियति और उसकी अंतर्वेदना से उत्पन्न निर्णय उसे आधुनिक स्त्री अस्मिता के मूल बिंदु पर खड़ा कर देते हैं और स्त्री जीवन की नई संभावनाओं की राह प्रशस्त करते हैं। इन क्षणों में मिथकीय माधवी अलौकिक प्रकाशवृत्त से बाहर निकल

कर अपने सुख-दुख के वास्तविक कारणों को न केवल पहचानती है बल्कि फिर से यौन शुचिता की कसौटी पर खरा उतरने के लिए अनुष्ठान करने से इंकार कर देती है। माधवी का निर्णय पितृसत्ता और धर्मसत्ता के मजबूत गढ़ की दीवारों में दरार बनाने में सक्षम है। उसकी मनःस्थिति में आया बदलाव विकल्पहीन पुरुष सत्ता में अपनी मुक्ति के विकल्प की तलाश, नए भविष्य का संघर्ष है। वस्तु बनने से अस्वीकार, उसके दृढ़ संकल्प से जन्मा स्वत्वबोध है। निजत्वबोध की अनुभूति से बनती नई स्त्री का यह निर्णय इब्सन के डॉल्स हाउस (Dolls House) की तरह क्रांतिकारी न लगे, पर संवेदनहीन समाज की विसंगतियों के सामने मानवीय सवाल जरूर खड़े करता है और अपने तमाम समकालीन संदर्भों और प्रासंगिकता के साथ स्त्री विमर्श को धर्म और समाज के बदलते आयामों में नए सिरे से परिभाषित करता है। साथ ही स्त्री के लिए निर्धारित आदर्श मर्यादा, त्याग, कर्तव्यपरायण और परंपरा को चुनौती भी देता है—मुक्ति की चाहत को सपनों की दुनिया से बाहर लाना होगा, मुक्ति की चाहत को अदम्य लालसा ही नहीं दुर्निवार जरूरत बनाना होगा।¹¹⁴

संदर्भ

1. आदमी की नजर में औरत, राजेंद्र यादव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 21
2. आज के अतीत, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 239
3. वही, पृ० 239
4. आदमी की नजर में औरत, राजेंद्र यादव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 21-22
5. माधवी, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 18
6. वही, पृ० 19
7. वही, पृ० 19
8. वही, पृ० 27
9. वही, पृ० 64
10. वही, पृ० 90
11. वही, पृ० 93
12. वही, पृ० 96
13. वही, पृ० 96
14. दुर्ग-द्वार, कात्यायनी, परिकल्पना प्रकाशन, पृ० 31

283/84, गली नं० 2, वेस्ट ब्लॉक
विष्णु गार्डन, नई दिल्ली 110018
मो० 9811126554
Email : anita.rajdhani@gmail.com

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का अंतर्संबंध

डॉ० अशोक कुमार

सहायक प्रोफेसर (हिंदी)

राजकीय कन्या महाविद्यालय

सेक्टर-52, गुरुग्राम (हरियाणा)

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। यह स्वयं में उत्कृष्ट जीवनमूल्यों, अनुपम चिंतन और उदात्त जीवन-दर्शन को समेटे हुए है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र अथवा समाज-विशेष की गतिविधियों की परिचायक होती है, इसलिए वही राष्ट्र आज के समय में संपूर्ण है जिसकी अपनी संस्कृति और सभ्यता जीवित है। विशाल राष्ट्र के गरिमामय इतिहास की एकमात्र साक्षी संस्कृति होती है। कोई भी राष्ट्र अपने गौरवशाली अतीत को तभी प्रस्तुत कर सकता है जब उसकी कोई अपनी संस्कृति हो। डॉ० रामसजन पांडेय का मानना है, 'संस्कृति से मनुष्य सज-सँवरकर, आनंदित होकर दूसरे को प्रसन्न-प्रमुदित कर उदात्त मानवीय पथ पर अग्रसर होता है।'¹

'संस्कृति' मूलतः एक संप्रत्यय है, किसी गोचर वस्तु अथवा पदार्थ का सूचक नहीं। इसलिए संस्कृति के जितने भी अर्थ मिलते हैं, वे सभी 'संस्कृति संप्रत्यय' को विभिन्न दृष्टिकोणों से स्पष्ट करने का प्रयास-मात्र है। अतः संस्कृति को किसी परिभाषा में बाँध पाना बड़ा मुश्किल काम है। 'मानव ने अपने लिए अनेक मार्गों का विधान बनाया, उसकी वह कर्मसृष्टि भी मानवीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंश है। प्राणों की शक्ति का कर्ममय पराक्रम मानव की अपूर्व उपलब्धियों का क्षेत्र रहा है, उसमें जो धर्म और नीति की उदात्त प्रेरणा निहित है, वह संस्कृति का अंश है। इस प्रकार दर्शन, धर्म, साहित्य, जीवन और कला के क्षेत्र में मनुष्य की समस्त कृतियाँ और रचनाएँ उसकी संस्कृति हैं। संस्कृति जीवन के वृक्ष का संवर्धन करने वाला रस है।'² भारत की आध्यात्मिक संस्कृति में धर्म ही परम मूल्य है। भारतीय संस्कृति में धर्म की हानि सबसे बड़ी हानि मानी गई है। इसलिए पौराणिक ग्रंथों में यह माना गया है कि जब भी भारत में धर्म पर आँच आई है, तब-तब दैवीय शक्तियों ने पुनः धर्म प्रतिष्ठा हेतु अवतार धारण किया है, क्योंकि धर्म भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण मूल्य है।

भूमंडलीकरण के दौर में पद, प्रतिष्ठा, शक्ति तथा भौतिक विकास हेतु पगलाए-अशांत मानव-समाज के लिए भारतीय संस्कृति आज भी श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शिका है। वास्तविक शांति, प्रेम व प्रसन्नता हस्तगत करने हेतु भारतीय संस्कृति का अनुपालन आज की अनिवार्यता है। संस्कृति तथा साहित्य में अटूट संबंध है। हिंदी साहित्य की सतत प्रवाहित अविरल धारा में भारतीय संस्कृति-चिंतन 'सूत्रे मणिगणारिव' स्वतः अनुस्यूत है।

महादेवी वर्मा का मानना है कि 'संस्कृति मानव चेतना का ऐसा विकासक्रम है, जो उसके अंतरंग और बहिरंग को परिष्कृत करके विशेष जीवन-पद्धति का सृजन करती है। संस्कृति मानव-चेतना की प्राकृतिक ऊर्ध्वगति का प्रकाशन है। मानव की अंतःभूमि और प्रसुप्त विशेषताओं

की परिष्कृति और अभिव्यक्ति है।¹³ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है, 'संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।'¹⁴ रामधारीसिंह दिनकर ने कहा है कि 'संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी है। संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को लिए हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है यही नहीं संस्कृति हमारा पीछा जन्म-जन्मांतर तक करती है।'¹⁵

संस्कृति वस्तुतः एक ऐसा साधन है, जो मनुष्य को उच्चतम नैतिक शिक्षा तक ले जाती है। संस्कृति ही वह दर्पण है जिसमें समाज अथवा राष्ट्र के सभी आयाम नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि प्रतिबिंबित होते हैं। वस्तुतः यह मानव-विकास की प्रथम सीढ़ी है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। अनेक पंथ, परंपराओं के सद्गुणों को अपनाकर भारतीय संस्कृति श्रेष्ठ संस्कृति बन गई है। यह संस्कृति परस्पर सद्भाव, समन्वय और सर्वात्मभाव की उपदेशिका है। दिनकर ने इसकी तुलना एक ऐसे विशाल-अथाह महार्णव से की है, 'जिसमें विश्वभर की जातियों, वादों, विचारों और संस्कृतियों की स्रोतस्विनियों के अनुकरणीय गुण आकार समा गए हैं। विभिन्न जातियों को एक महाजाति के साँचे में ढालने का प्रयास और अनेक वादों-विचारों और धर्मों के बीच एकता लाने का यह निराला ढंग सभी युगों में भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।'¹⁶ यही वैशिष्ट्य विश्वमानवता के लिए वरदान सिद्ध हुआ है।

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र उदारता, सहिष्णुता तथा 'वसुधैव कुटुंबकम्' के विराट् चिंतन से अनुस्यूत है। यह वह विचारधारा है, जो अनेकता में एकता और असत से पृथक् सत के अनुसंधान में तल्लीन रहती है। भारतीय संस्कृति देव नदी जाह्नवी के समान सतत प्रवाहमान, सागर की तरह विशाल और अगाध, हिमगिरि के उत्तुंग शिखर के समान श्रेष्ठ और उदात्त है। ऋग्वेद का ऊर्जस्वी मंत्र 'आ नो भद्राः क्रतवो यंतु विश्वतः' इस तथ्य का प्रमाण है कि यह विश्व के लिए प्रत्येक दिशा से शुभ व कल्याणकारी स्पंदनों का आधान करना चाहती है। संस्कृति निरंतर विकासशील तत्त्व है जो सदैव गतिशीलता को प्राप्त किए हुए रहता है। संस्कृति आचरण की शुद्धता और औदात्य पर विशेष बल देती है। संस्कृति जहाँ समाज रूपी शरीर की आत्मा, वहीं धर्म संस्कृति का आचरण पक्ष है। भारतीय संस्कृति का दूसरा उपादान तत्त्व अध्यात्म को माना जाता है। इसी कारण भारतीय संस्कृति का इतिहास में अपना विशेष महत्त्व रहा है।

साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। संस्कृति की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। भाषा के अभाव में संस्कृति असंप्रेषणीय होने के कारण असंपृक्त और अप्रभावी है, तो संस्कृति-संप्रेषण के अभाव में भाषा निर्जीव हो जाती है। सामाजिक परंपरा से सुलभ व्यवहार का नाम ही संस्कृति है। भारत में अनेक धर्मों और जातियों का सम्मिलन रहा है। इसीलिए संस्कृति भी सतत विकासमान रही है। उसमें समन्वय की भावना का समावेश है। हिंदूधर्म में अनेक दार्शनिक सिद्धांतों के अभिदर्शन होते हैं जिसमें सहिष्णुता और समन्वय की उदात्त भावना प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है। भारतीय दर्शन में व्यापक नैरंतर्य है भारतीय संस्कृति की मान्यता है कि कर्मों का फल अवश्य मिलता है, लेकिन जीवन में समुचित पुरुषार्थ कर मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है।

संस्कृत महाकाव्यों, जैन और बौद्धधर्म की शिक्षा में भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप अभिदर्शित हैं। संस्कृति के विस्तृत अध्ययन की प्रत्येक साहित्य की सर्जना में परम आवश्यकता

होती है। संस्कृति सामाजिक विरासत है, जिसमें परंपरा से पाया हुआ कला-कौशल, वस्तु सामग्री, यांत्रिक क्रियाएँ, विचार, आदतें और मूल्य समावेशित हैं। संस्कृति जीवन की ओर एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। विचार, भावना तथा आचरण के विभिन्न प्रस्तरों से संस्कृति की सिद्धि है। संस्कृति के निर्माण में प्रायः चार तत्त्वों का प्रभाव होता है—दर्शन, धर्म, अध्यात्म और साहित्य कला।

भारतीय संस्कृति के साथ विश्व में अनेक संस्कृतियाँ भी थी, किंतु कालांतर में उनका अस्तित्व समाप्त हो गया। इसके विपरीत भारतीय संस्कृति आज भी जीवंत है। इकबाल ने कहा है कि 'यूनान, मिस्र, रोमा, सब मिट गए जहाँ से/ बाकी अभी है लेकिन नामानिशां हमारा/ कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी/ सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहाँ हमारा।'

भारतीय संस्कृति में भौगोलिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता, अनेकता में एकता, युगानुरूप परिवर्तन की क्षमता, दार्शनिक चिंतन की प्रधानता आदि अनेक तत्त्वों के कारण अनेक झंझावातों को झेलते हुए भी विश्व की महान संस्कृति बनी हुई है।

भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता यह है कि वह अपनी परंपराओं का निरीक्षण कर उनमें से संशोधन-परिवर्तन करती रहती है और वह संपर्क में आने वाली किसी भी संस्कृति को अपने में समाहित करने में सक्षम रही है। आधुनिकयुग में भारतीय संस्कृति में अनेक नए तत्व जुड़े हैं।

भारतीय साहित्य में चार प्रकार के नायक माने गए हैं—धीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशांत और धीरोद्धत। इनमें से धीरोदात्त और धीर प्रशांत चरित्र वाले नायक आदर्श होते हैं। भारतीय साहित्य में जितने भी प्रबंधकाव्य और नाटक लिखे गए हैं, उनमें आदर्शवादी चरित्रों को ही नायक बनाया गया है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि भारतीय साहित्य में नायक के रूप में प्रतिष्ठित होते रहे हैं। भारतीय साहित्य और कला का स्वरूप भारतीय संस्कृति में आदर्शवादी रहा है। आदर्शवाद जीवन को पूर्णता की ओर ले जाने वाली परिकल्पना है। भारतीय साहित्य में काव्य और नाटक सदैव सुखांत ही होते हैं। असत्य पर सत्य की विजय ही कथानक को सुखांत और आदर्शवादी बना देती है।

प्रत्येक समाज में दो तरह के लोग होते हैं—शिक्षित और अशिक्षित। शिक्षित वर्ग के हाथ में अधिकार होते हैं तथा वह समाज का नेतृत्व करता है जैसे राजनीति का सूत्र उसके हाथ में रहता है, वैसे ही कला और साहित्य के सृजन में भी वह आगे रहता है। भाषा, साहित्य, संगीत, नृत्य आदि का मानदंड उसी के हाथों निर्धारित होता है। इतिहास उसी की कृतियों के आधार पर तत्कालीन समाज का मूल्यांकन करता है। वैदिककाल से लेकर अद्यतन पूरा संस्कृत वाङ्मय, मध्यकालीन तथा आधुनिक साहित्य, दार्शनिक चिंतन, आध्यात्मिक तथा धार्मिक साधना, ललित कलाओं के क्षेत्र की विविध उपलब्धियाँ समष्टि रूप में भारतीय संस्कृति के नाम अभिहित होती हैं, परंतु लोकसंस्कृति के नाम पर हर प्रादेशिक क्षेत्र की अपनी विशेषताएँ हैं। उनके गीत, लोककथाएँ, नृत्यशैली सबमें भिन्नता मिलेगी।

साहित्य में संस्कृति एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम है। प्रत्येक देश की एक संस्कृति होती है, जो वहाँ के साहित्य को प्रभावित ही नहीं करती बल्कि अभिव्यक्त का आधेय भी होती है। संस्कृति विश्व मानवता का रूप स्थिर करती है। साहित्य की मूल प्रकिया और उसकी सामाजिक विशेषता का निर्माण संस्कृति से होता है। मनुष्य जिस सांस्कृतिक प्रकिया से गुजरता है उसके अंतर्गत सामाजिक समूहों के चरित्र, मानवीय विचार, विश्वास और रीतियाँ एक विस्तृत आयाम निर्मित करती हैं। मानवीय संस्कृति का रचनात्मक आयाम में संस्कृति के व्यापक रूप को स्पष्ट

किया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि साहित्य और संस्कृति परस्पर गुंफित हैं। रचना के स्तर पर अनुभव, स्थितियों और चरित्रों में अभिव्यक्त होते हैं जिन्हें रचना तक सीमित नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार साहित्य और कला की रचना शीलता में जीवनमूल्यों की व्यवस्था के आधार पर व्यंजना को पाया जाता है उसी प्रकार आदिम समाज में इन मूल्यों के स्रोत की अभिव्यंजना देखी जा सकती है।

संस्कृति से आधुनिकता को अलग नहीं किया जा सकता। परंपराओं का विकास आधुनिकता में होता है। आधुनिकयुग में सांस्कृतिक एकात्मकता की जगह द्वंद्व की स्थिति है तथापि भारत में आधुनिकीकरण मशीन की अपेक्षा संस्कृति से अधिक जुड़ा है। भारत की आधुनिकता और संस्कृति की आधुनिकता ने भारतीय साहित्य को इतने वेग से प्रभावित किया है कि हमारे देश ने बीसवीं सदी में विचारधाराओं और साहित्यिक आंदोलनों की बाढ़ सी आ गई। भारत में आधुनिकता का पदार्पण वस्तुतः एक चेतना का ही पदार्पण है जिसने मानवीय आधारों को फिर से स्थापित किया है। इसने साहित्य और कलाओं को भी प्रभावित किया है। भारत में आधुनिकता के अन्वेषण के लिए भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के विभिन्न आयामों का अध्ययन अनिवार्य है। अपने धर्म और इतिहास को बिना जाने यह संभव नहीं है। वर्तमान में आधुनिकता सांस्कृतिक संक्रमण और संक्रांति की स्थितियों से गुजर रही है। मानवीय दायित्व और सृजनात्मकता के आयामों को समझना आवश्यक है। तकनीकी विकास होते हुए भी संस्कारित संस्कृतिबोध से अलग नहीं हुआ जा सकता। साहित्य संस्कृति के बिना और संस्कृति साहित्य के बिना उस चित्र को पूरा नहीं करते जिसे हम मानव समाज का चित्र कहते हैं।

प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की संस्कृति से प्रभावित होता है। इस संदर्भ में भारतीय संस्कृति अवतारवाद को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करती है। इसी कारण जब पृथ्वी पर दुष्टों के अत्याचार बढ़ जाते हैं, तब ईश्वर ही इनका संहार करने के लिए इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं। संस्कृति प्रत्येक देश के साहित्य में आत्मा के समान निवास करती है। विश्व में विद्यमान समस्त देशों में जो साहित्य लिखा गया है वह साहित्य अपनी संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में अवतरित हुआ है। संपूर्ण विश्व के साहित्य पर दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट होता है कि साहित्य प्रत्येक देश की संस्कृति का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

प्राचीन से अर्वाचीन तक मानवीय संस्कृति एक ग्लोबल साहित्य का सृजन कर रही है। मनुष्य के अनुभवों और संवेदनाओं की पहचान साहित्य में होती है। इसलिए साहित्य और संस्कृति दोनों मनुष्य से जुड़े हैं। इस प्रकार संस्कृति मानवता की मेरुदंड है। वह शिष्टता, सौजन्य तथा शील की आधारशिला है। साहित्य के अध्येता संस्कृति की संरक्षा करते हैं। हिंदी साहित्य का सतत् प्रवाह समय-समय पर इसी सामासिक संस्कृति का संवाहक बना है। भारतीय संस्कृति का एवं शाश्वत मूल्यों के ध्वजवाहक तुलसी, कबीर, सूर हों या भारतीय संस्कृति के अमर गायक प्रेमचंद, प्रसाद, अज्ञेय, दिनकर, मैथिलीशरण, प्रसाद, पंत, निराला, रांगेय राघव, महादेव वर्मा तथा हिमांशु जोशी हों या फिर सामाजिक सरोकारों से जुड़कर सामरस्य को स्थापित करने की पुरजोर कोशिश में लगे धूमिल, कैदारनाथ, दुष्यंत, धर्मवीर भारती ही क्यों न हों, इन सभी ने मानवता को प्राण-प्रण से बचाने की चेष्टा की है और मानवीय मूल्यों को संरक्षित किया है।

तुलसी की अकेली कृति रामचरितमानस ही भारतीय संस्कृति की भव्य पताका हेतु दृढ़ ध्वजदंड के रूप में प्रकट होती है। धैर्य, क्षमा, शुचिता, श्रद्धा, सत्य, निष्ठा तथा दयालुता से संपृक्त

व्यक्ति ही सुसंस्कृत, परिष्कृत व विश्व-समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। तुलसी के रामचरितमानस के अधिकांश पात्र इन सभी गुणों से संपृक्त हैं। तुलसी का सारा का सारा प्रयत्न मनुष्य की गढ़त में लगा है। नैतिकता के चाक पर ही तुलसी ने आदर्श पात्रों को गढ़ा है। विश्व-समाज में सौहार्द्र, सौमनस्य व शांति स्थापित करने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है, वे सभी तुलसी के आदर्श पात्रों में हैं। सत्य समस्त सुकृत्यों की आधारशिला है। इसलिए चरितनायक राम को तुलसी ने सत्य के अडिग पक्षधर के रूप में चित्रित किया है—‘सत्य संध पालक श्रुति सेतू, राम जनमु जग मंगल हेतू।’⁸

मन, वचन व कर्म से मिथ्याचारी व्यक्ति ही समाज में भ्रष्टाचार, अन्याय व अनैतिक कर्मों का कर्ता बन जाता है। सत्य का अनुसंधान भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य रहा है। उसी स्वानुभूतिजन्य सत्य को कबीर ने इस तलह लोगों तक पहुँचाया है—

हमारे राम रहीम करीमा, कैसौ अलह राम सति सोई,
बिसमिल मेटी बिसंभर एके, और न दूजा कोई।⁹

हर धर्म में जिस अनंत सत्ता की तलाश है, उसके अनेक नाम हो सकते हैं, पर वह तत्त्व एक ही है। जो इस सत्य को जान जाता है, वह फिर मत-मतांतर के चक्रव्यूह में नहीं फँसता। उसे हर धर्म में उसी एक ईश्वर की पूजा होती दिखाई देती है। कबीर इस सत्य को जनता की भाषा में सरलता से संप्रेषित कर जाते हैं।

‘कवियति सर्व जानाति सर्व वर्णयतीति कविः’ की मान्यता कवि को सर्वज्ञ व सब विषयों के वर्णन करने में समर्थ मानती है। सृजन के एकाग्र क्षणों में साहित्यकार विश्वचैतन्य से तादात्म्य स्थापित कर अपनी तूलिका से जो कुछ निःसृत करता है, वह सार्वकालिक, सार्वभौमिक और शाश्वत ही होता है। हिंदी साहित्य आशा और उत्साह का साहित्य है। भारतीय संस्कृति के प्राणदायी स्वर ‘असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतगमय’ से उर्जा ग्रहण करते हुए जीवन की विसंगत, विपरीत परिस्थितियों में भी आशा का संदेश देते हैं। कैदारनाथ की इन पंक्तियों से कितनी आशा संचालित होती है—

मुझे विश्वास है/ यह पृथ्वी रहेगी/ यदि और कहीं नहीं तो मेरी हड्डियों में/ और एक सुबह मैं उठूँगा/ मैं उठूँगा पृथ्वी समेत/ जल और कच्छप समेत मैं उठूँगा/ फिर मैं उठूँगा और चल दूँगा उससे मिलने/ जिससे वादा है कि मैं मिलूँगा।¹⁰

साहित्य में अनंत उत्साह और अजस्र उर्जा की कोई कमी नहीं है। अज्ञेय मनुष्य में अथाह-अपार संभावना तलाशते दृष्टिगोचर होते हैं तथा उन्हीं संभावनाओं को हारिल पक्षी के प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हैं—

ऊपर ऊपर ऊपर ऊपर बढ़ा चौरता चल दिग्मंडल
अनथक पंखों की चोटों से
नभ में एक मचा दे हलचल।¹¹

यहाँ हारिल मनुष्य की दुर्दमनीय जिजीविषा, अविरल कर्म-संघर्ष और असीमित संभावनाओं के अन्वेषण व प्राप्ति का प्रतीक बनकर उभरा है यही विश्वास व्यक्ति को प्रत्येक क्षण, प्रतिपल श्रेष्ठतम कर्मों में नियोजित रखता है। हिंदी साहित्य में निनादित ये वे स्वर हैं, जो विश्व मानवता के लिए सार्वकालिक, सार्वभौमिक तथा शाश्वत संदेश दे जाते हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि मानव की विकास-यात्रा का प्रस्थानबिंदु भी संस्कृति से

शुरू हुआ है। यहीं से समस्त सांस्कृतिक चिंतन-मनन का निष्कर्ष निर्धारित हुआ कि मनुष्य और मनुष्यता से बड़ा और कुछ नहीं है और मनुष्य को मनुष्य बनाती है उसकी संस्कृति।

प्राचीन भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक भावनाओं का विभिन्न रूपों में उदघोष हुआ है। उपनिषदों में मनुष्यों की ही नहीं, अपितु प्राणीमात्र के कल्याण की कामना व्यक्त की गई है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः' भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है। भारतीय संस्कृति की यह महती भावना रही है कि सारा विश्व सभ्य और सुसंस्कृत हो। सांस्कृतिक विकास ही विश्वशांति-मैत्री और विश्व-एक्य की सरणि है।

भारतीय संस्कृति और समाज को साहित्य द्वारा प्रदत्त वे दिशाएँ हैं जिनके ऊपर हम 'वसुधैवकुटुंबकम्' की बुनियाद खड़ी करते हैं और हम सब इस मंत्र को अपने जीवन का मूल मंत्र बनाते हैं। जरा सोचिए, कितना विराट और अनूठा होगा वह व्यक्ति, वह समाज जिसकी बुनियाद में यह धारणा हो-पूरी वसुधा ही अपना परिवार है। पश्चिम ने तो बहुत बाद में भूमंडलीकरण और ग्लोबल विलेज की संकल्पना दी है, हमारे भारतीय साहित्य ने तो वैदिककाल से ही इसे जीवन का मूल मंत्र बनाने की प्रेरणा और संदेश दिया है। साहित्य समाज के मानसिक तथा सांस्कृतिक उन्नति और सभ्यता के विकास का साक्षी है। मानव की सीमित दृष्टि केवल अपना ही चक्कर लगाकर लौट आती है, किंतु साहित्य का चिंतन व्यक्ति, प्रकृति से आरंभ होकर समस्त विश्व के कल्याण तक फैला होता है। एक व्यक्तिगत हित-चिंतन है, दूसरा समष्टिगत। अतः जिस ग्रंथ में समष्टिगत हित चिंतन प्राप्त होता है, वही साहित्य है। प्रसाद ने कामायनी में लिखा है-

औरों को हँसते देखो मनु, हँसो और सुख पाओ।

अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।

हम इस बात पर गर्व कर सकते हैं कि आपको भारतीय संस्कृति और साहित्य के ऐसे रूप के बारे में चिंतन के साक्षी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जो पूरी दुनिया में बेजोड़ तथा अनूठा है।

संदर्भ

1. डॉ० रामसजन पांडेय, निर्गुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृ० 11
2. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, संस्कृति और साहित्य, पृ० 3
3. महादेवी वर्मा, संस्कृति के स्वर, पृ० 74
4. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, पृ० 58
5. रामधारीसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 15
6. वही, पृ० 108
7. ऋग्वेद, 1/89/1
8. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकांड, गीता प्रेस, गोरखपुर, दोहा संख्या 254/3
9. कबीर ग्रंथावली, संपादक-श्यामसुंदरदास, पदावली संख्या 58, पृ० 164
10. कैदारनाथ सिंह, यहाँ से देखो, पृथ्वी रहेगी, पृ० 25
11. सचिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, पूर्वा, पृ० 125

रघुवीर सहाय का काव्य : नारी चेतना का संदर्भ

दिगपाल सिंह, शोधार्थी

डॉ० गुड्डी बिष्ट

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बिड़ला परिसर

हेमवतीनंदन बहुगुणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

श्रीनगर, गढ़वाल (उत्तराखंड)

साहित्य समाज का रचनात्मक स्वरूप है और नारी समाज का आधारस्तंभ। नारी की उन्नति देश व समाज की उन्नति है और उसकी अवनति देश व समाज की अवनति है। नारी की क्षमताओं, योग्यताओं, अधिकारों एवं स्वतंत्रता का पूर्वाग्रह से मुक्त होकर सम्मान करके ही एक समतामूलक एवं खुशहाल समाज की स्थापना संभव है। इसके लिए ज्यादा जरूरी यह है कि पुरुष की मानसिकता में बदलाव हो और नारियों में अधिकाधिक चेतना का प्रसार हो।

भारतीय परंपरा में नारी के लिए 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर उसे सम्मान व गरिमा प्रदान करने की बात अक्सर कही-सुनी जाती है, किंतु पितृसत्तात्मक, सामंतवादी वह रूढ़िवादी समाज में उसे वह सम्मान, अधिकार और स्वतंत्रता प्रदान नहीं की गई जिसकी वह अधिकारणी थी। पुरुष-प्रधान समाज ने हमेशा ही उसकी योग्यता को दोगले दर्जे का समझकर उसे गृहस्थी की चहारदीवारी में बाँधने का प्रयास किया। उसके हर एक रूप पर 'आदर्श' विशेषण लगाकर उसकी स्वतंत्रता को अपहृत कर उसके नैसर्गिक विकास को अवरुद्ध किया। नारी की शोषित व दयनीय दशा देख मैथिलीशरण गुप्त को लिखना पड़ा—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी

आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

साहित्य का समाज से घनिष्ठतम संबंध है और नारी का समाज से। अतः नारी अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में भिन्न-भिन्न साहित्य युगों में अभिव्यक्त होती रही है। आदिकालीन साहित्य में नारी का श्रृंगारिक व भोग्य रूप ही अधिक चित्रण हुआ जो युद्धों का कारण तक बन जाती थी। भक्तिकाल में उसके कामिनी रूप की निंदा की गई तो रीतिकाल में इसी रूप की प्रशंसा, फलस्वरूप नारी विलास का उपकरण बना दी गई। आधुनिककाल में पहले-पहल उसकी शोचनीय व शोषित दशा पर ध्यान दिया गया। परंतु प्रथम दो सोपनों-भारतेंदुयुग व द्विवेदीयुग में वह दया की पात्र ही मात्र समझी गई। छायावादी कविता में तो उसे इतना अधिक गौरव दिया गया कि वह मानवी से देवी बना दी गई, जिस से उसका यथार्थ स्वरूप ही ओझल हो गया। छायावादोत्तर कालीन कविता में पहली बार यथार्थवादी दृष्टिकोण से नारी के तमाम तरह के दुःख-दर्दों को अभिव्यक्ति मिली और भाववादी रुझान को त्याकर बौद्धिक दृष्टिकोण से नारी की स्थिति को देखा जाने लगा।

रघुवीर सहाय 'नई कविता' के एक विशिष्ट कवि हैं। ये 'नई कविता' के उन कवियों

में से हैं जिन्होंने नारी पर सर्वाधिक कविताएँ लिखी हैं। अपनी कविताओं में रघुवीर सहाय ने नारियों के जीवन का बारीकी से विश्लेषण कर केवल उनकी पीड़ाओं को ही अभिव्यक्त नहीं किया बल्कि उन कारणों की भी पड़ताल की जिनके चलते नारी शोषण का शिकार होती है। इनकी नारी चेतना के संदर्भ में सुरेश शर्मा लिखते हैं—‘इस अर्धसामंती अर्धपूँजीवादी समाज में शोषण का सर्वाधिक आखेट स्त्रियों को अपनी कविता में लाते हुए मुक्तिबोध की तरह ही रघुवीर सहाय आत्मदया अथवा वृथा भावुकता में नहीं फँसते बल्कि जिन सामाजिक स्थितियों के बीच यह अत्याचार घटित हो रहा है उन स्थितियों को समझने और बदलने की ओर प्रेरित करते हैं।’

‘पढ़िए गीता’ नामक अपनी प्रसिद्ध कविता में रघुवीर सहाय नारी की विवाह के बाद की उस स्थिति को रूपायित करते हैं जिसमें वह घर की चारदीवारी में कैद होकर रह जाती है। इसके लिए उसे बचपन से ही संस्कार की आड़ लेकर तैयार किया जाता है—

पढ़िए गीता/ बनिए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर-बार बसाइए।²

कवि द्वारा ‘निम्न मध्यवर्गीय नारी की पूरी जीवनगाथा ही इस छोटी सी कविता में कह दी गई है।³

‘नारी’ शीर्षक कविता में कवि ने मध्यवर्गीय नारी के विरोधाभास को स्वर दिया है और अंततः उसे पुरुष के अत्याचार से चित होता चित्रित किया है—

नारी विचारी है/ पुरुष की मारी है,
तन से क्षुधित है/ मन से मुदित है,
लपककर झपककर/ अंत में चित है।⁴

‘अभी तक खड़ी स्त्री’ कविता में कवि नारियों के प्रति दोहरी चिंता से ग्रस्त दिखाई देते हैं। पहली चिंता उन्हें स्त्रियों के शोषण की है तो दूसरी चिंता इस स्थिति को न पहचान पाने की है—

ग्रीष्म फिर आ गया/ फिर हरे पत्तों के बीच
खड़ी है वह/ ओंठ नम/ और भरा-भरा चेहरा लिए
बदली सी रौशनी-सी नीचे को देखती
निरखता रह/ उसे कवि/ न कह/ न हँस
न रो/ कि वह/ अपनी व्यथा इस वर्ष भी नहीं जानती।⁵

सुरेश शर्मा के विचार से इस कविता में ‘उनका आग्रह यह है कि शोषण का शिकार पहले अपनी स्थिति की पहचान करे, फिर अपने मुक्ति के लिए शोषक वर्ग के विरुद्ध खड़ा हो क्योंकि शोषक वर्ग के विरुद्ध निर्णायक लड़ाई अंततः शोषित वर्ग स्वयं ही लड़ता है।⁶

‘औरत की जिंदगी’ शीर्षक कविता में रघुवीर सहाय न सिर्फ स्त्रियों की शोषण कथा को अंकित करते हैं बल्कि उस स्थिति के कारणों की तलाश करते हैं। नारी को कोठरियों में कैद कर उस पर समस्त पारिवारिक जिम्मेदारी का बोझ डालना, यही हम सदियों से करते आ रहे हैं—

कई कोठरियाँ थीं कतार में

उनमें किसी में एक औरत ले जाई गई
थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
उसी रोने से हमें जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा।⁷

‘फर्क’ नामक कविता में कवि पुरुष की उस परंपरागत प्रवृत्ति की पहचान करता है जिसके द्वारा नारी को वह मान की दुनिया से अपमान की दुनिया में खींच ले जाता है। एक विचित्र विरोधाभास केवल पुरुष की ही प्रकृति में मिलता है कि जिस नारी के बगैर वह रह नहीं सकता वही उसके शोषण की सर्वाधिक शिकार है—

अठारह बरस की लड़की से यह कहना कि/ तुम बेवकूफ हो
उसको रिझाना है।

पर अड़तीस साल की औरत से यही कहना/ उसे दुत्कारना है।
पर तुम यही करते रहे हो/ स्त्री की उम्र इस तरह
इज्जत से शुरू करके अपमान की ओर बढ़ने को बाध्य है।⁸

‘उग्र’ कविता में कवि नारी की उम्र, उसकी पीड़ा तथा उस पीड़ा के प्रति समाज की असंवेदनशीलता में धनात्मक सहसंबंध की पहचान करता है—

जब तुम बच्ची थी तो मैं तुम्हें
रोते हुए देख नहीं सकता था
अब तुम रोती हो तो देखता हूँ मैं।⁹

वर्तमान की भयावहता भविष्य के प्रति एक आशंका पैदा कर देती है, जिसके कवि को लड़की का भविष्य डरावना लगने लगता है—

जब वह कुछ कहती है
उसकी आवाज में/ एक कोई चीज
मुझे एकाएक औरत की आवाज लगती है जो
अपमान बढ़े होने पर सहेगी।¹⁰

स्त्री की यह स्थिति हमारे समाज का एक कटु यथार्थ है, जबकि नारी ने हमेशा यह साबित कर दिखाया है कि उसमें भी वे तमाम क्षमताएँ हैं, जो पुरुषों में हैं और वह यथास्थिति से परिवर्तित भी हो रही है किंतु समाज की पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति में अभी भी कोई बहुत परिवर्तन नहीं आ पाया है। समाज आज भी उसी रूढ़ि से ग्रस्त है, जो यह मानती है कि स्त्री अपने दायरे में रहकर ही संपूर्ण हो पाती है—

वह खड़ी थी/ दुबली और थकी
और मुझे लगा कि वह खड़ी ही रहेगी
क्योंकि वह ऐसे ही पूर्ण होती है।
तभी/ वह/ बोली—
नहीं/ हँसी/ उसने देखा
और मैंने देखा कि वह अब संपूर्ण हुई।¹¹

हमारे समाज में बचपन से ही लड़कियों के व्यक्तित्व को कुंठित किया जाता है। हम ये समझने को तैयार नहीं हैं कि उनको भी एक ही जीवन मिलता है। जीवन उनका अपना है तो

मानदंड भी उसके खुद के होने चाहिए किंतु उसके लिए मानदंड पुरुष-प्रधान समाज बनाता है और वे मानदंड अंततः उसको दुखो के समंदर में उतरने को विवश करते हैं—

एक पालना होगा
वह उसे देखेगी और बचपन की यादें आएँगी
अपने बचपन के भविष्य की इच्छा
उन दिनों कोई नहीं करता होगा/ वह भी न करेगी।¹²

नारी को सबसे बड़ा नुकसान पुरुष के एकांगी दृष्टिकोण ने पहुँचा रखा है जो उसके दुःख-दर्द को देखने के बजाय उसके कामिनी रूप को देखना चाहता है और उस पर भी बिडंबना यह कि बाहर-बाहर उसके इसी रूप की निंदा करता थकता नहीं है जैसे कि यह उसका ही दोष होगा। कमजोरी पुरुष की और दोष औरत के ऊपर मढ़ दिया जाता है—

चालिस के ऊपर की औरत
ऐसे दया जगाती थी वह
चालिस के ऊपर की औरत
वैसे काम जगाती शायद।¹³

‘बलात्कार’ नामक कविता में कवि को औरत का चेहरा समाज का दर्पण नजर आता है। यों तो हर शोषित-गरीब व्यक्ति का चेहरा समाज का दर्पण होता है, किंतु औरतों के संदर्भ में यह कुछ अधिक व्यापक होता है। क्योंकि नारी दोहरे स्तर पर सामाजिक बिडंबनाओं को झेलती है। एक आम व्यक्ति के स्तर पर और दूसरा अपने नारी होने की पीड़ा के स्तर पर—

औरतों के चेहरे समाज के दर्पण हैं/ पुरुषों जैसे
किंतु जो दिखलाते हैं उनमें मिठास है
पुरुष गिड़गिड़ाते हैं औरतें चुपचाप थाम लेती हैं बेबसी।¹⁴

‘औरत की पीठ’ कविता में रघुवीर सहाय को स्त्री की पीठ व सीना दोनों ही दर्द की अभिव्यक्ति करते प्रतीत होते हैं। औरतों के सीने में बहुत सारे दुख हैं किंतु वह उन्हें प्रकट नहीं करती, परंतु दुःखों का यह बोझ उसकी झुकी पीठ से झलकता हुआ, पूरा इतिहास बताता हुआ कवि को स्पष्ट नजर आता है—

औरत की पीठ उसका इतिहास है
उस पर जुल्म का असर वहाँ देखो
अपने सीने को अगर उसने छिपा रखा हो।¹⁵

‘स्त्री का रूप’ कविता में कवि यह रेखांकित करता है कि किस प्रकार पुरुष ने औरत को विज्ञापन बनाकर उसे बाजार में उतार दिया है। कवि की संवेदनशील दृष्टि विज्ञापन में हँसती स्त्री की छिपी पीड़ा को ढूँढ लेती है—

एक औरत लो / और उसके कपड़े तले उसका तन छुओ
उस पर झुर्रियाँ हैं
एक पुरुष लो
उसको छुओ/वह चिकना है।
पुरुष राजा है/ स्त्री दासी
अहा! अहा! / टेलीविजन।¹⁶

‘भीड़ में मैकू और मैं’ कविता में कवि मध्यवर्गीय समाज के खोखलेपन और दोगले चरित्र की पोल खोल देता है, जो बाहरी तौर पर नारी के प्रति संवेदनशील होने का नाटक करता है, किंतु जब उसके लिए कुछ करने की बारी आती है तो उसके मध्यवर्गीय संस्कार जाग जाते हैं—

गया बाजपेयी से पूछ आया देश का हाल
पर उढ़ा नहीं सका एक नंगी औरत को
कंबल रेलगाड़ी में बीस अजनबियों के सामने।¹⁷

कवि एक और तरह की बिडंबना को ‘मेरी स्त्री’ शीर्षक कविता में उभारता है जो व्यापक स्तर पर उन्हें अपने समाज में दिखती है। पुरुष समाज औरत से जिस निष्ठा व समर्पण की अपेक्षा रखता है खुद उस पर कभी भी खरा नहीं उतरता है। वह स्त्री को प्यार के झाँसे में रखकर अपने आप पूरी तरह से मुक्त होना चाहता है। उसका समस्त लेकर भी उसे कुछ देना मुनासिब नहीं समझता—

प्यारे दर्शकों, यह जो स्त्री आप देखते है सो मेरी स्त्री है।
इसकी मुझे प्रीति है।
पर यह भी मेरे लिए एक बिडंबना है।
क्योंकि मुझे इसकी प्रीति इतनी प्यारी नहीं
जितनी यह मानती है कि है
...यह निर्दोष है और अनजान भी।¹⁸

रघुवीर सहाय की ‘भय’ शीर्षक कविता में अत्यधिक दायित्व बोझ के चलते नारी की अपने सजने-सँवरने के प्रति विमुखता का वर्णन है। मेहनत करते-करते नारी का शरीर पुरुष के समान हो गया है तथा वह भय और अत्याचार से जल्दी ही अधेड़ लगने लगी है। नारियों की सौंदर्यप्रियता जगजाहिर है परंतु उसी के प्रति अरुचि के होने से उनके दर्द को समझा जा सकता है—

कितनी सचमुच है वह स्त्री
कि एक बार इसके सारे बदन का एक व्यक्ति बन गया है
उसके बाल अब घने काले नहीं
दुःख उसे केशों का नहीं है
वह उदास नहीं डरी हुई है अधेड़ है औरत है
सुंदर है
होनी की तस्वीर एकदम उसके मन में चमक गई है इस क्षण
वह जवानी में बहुत कष्ट उठा चुकी है।¹⁹

‘दयावती का कुनबा’ शीर्षक कविता में रघुवीर सहाय ने एक साथ तीन पीढ़ियों में स्त्रियों की दशा का यथार्थ चित्रण किया है। समय बदल गया, पर न तो स्त्रियों के प्रति समाज की धारणा बदली है और न स्त्रियों की दशा, उनके लिए समय मानो अटक-सा गया है—

इच्छाएँ दाबकर बदलकर स्वभाव को
जैसे ससुराल में पसंद था
रोगों को झेलकर, दिखलाकर सगुन
चार बच्चे पैदा किए।

.....

तो अंतिम साँस तक घिसटती दयावती
दोनों विधवाओं को छोड़ गुजर जाती है
पोतियों की खबर हमको पता नहीं
वे अपनी दादी की तरह कहाँ
बोझ कम करने के लिए विदा होती हैं²⁰

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि रघुवीर सहाय की नारी चेतना, नारी को उसकी वास्तविक स्थिति में देखने से निर्मित हुई है। वे नारी को आँसुओं की झिलमिलाहट के बीच देखने के पक्षपाती नहीं रहे हैं, जिससे कि उसका यथार्थ स्वरूप ही आँखों से ओझल हो जाए, बल्कि पूरी यथास्थिति को समझकर और उसके कारणों की छानबीन कर उसके दुःख-दर्द को समझने के हिमायती रहे। नारी-जाति का बचपन, जवानी और बुढ़ापा कोई भी अवस्था और पुत्री, पत्नी, माँ, बहिन आदि कोई भी स्वरूप उनकी पैनी, संवेदनशील व यथार्थ दृष्टि से अछूता नहीं रह पाया है।

संदर्भ

1. सुरेश शर्मा, रघुवीर सहाय का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृ० 97
2. रघुवीर सहाय, सीढ़ियों पर धूप में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ० 115
3. सुरेश शर्मा, रघुवीर सहाय का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृ० 54
4. रघुवीर सहाय, सीढ़ियों पर धूप में, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृ० 135
5. रघुवीर सहाय, आत्महत्या के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ० 53
6. सुरेश शर्मा, रघुवीर सहाय का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2002, पृ० 82
7. रघुवीर सहाय, हँसो-हँसो जल्दी हँसो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ० 25
8. रघुवीर सहाय, एक समय था, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ० 111
9. सुरेश शर्मा (संपादक), रघुवीर सहाय रचनावली भाग-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृ० 216
10. रघुवीर सहाय, हँसो-हँसो जल्दी हँसो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ० 36
11. रघुवीर सहाय, आत्महत्या के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ० 49
12. रघुवीर सहाय, हँसो-हँसो जल्दी हँसो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ० 37
13. वही, पृ० 56
14. सुरेश शर्मा (संपादक), रघुवीर सहाय रचनावली भाग-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2000, पृ० 234
15. रघुवीर सहाय, एक समय था, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ० 106
16. वही, पृ० 108
17. रघुवीर सहाय, आत्महत्या के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ० 57
18. रघुवीर सहाय, एक समय था, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2003, पृ० 117
19. रघुवीर सहाय, हँसो-हँसो जल्दी हँसो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ० 26
20. रघुवीर सहाय, कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ० 63-64

मोहन राकेश की कहानी फौलाद का आकाश और आखिरी सामान में विघटित दांपत्य जीवन

जितेंद्र शर्मा

यूजीसी हिंदी नेट, शोधार्थी

महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

मोहन राकेश अपने युग के बड़े ही सजग और सचेत कहानीकार रहे हैं। उन्होंने हिंदी की नई कहानी को एक निश्चित दिशा ही नहीं दी, अपितु दशा भी दी है। नई कहानी के रूप को परिवर्तित कर उसे एक नया मोड़ देने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी कहानियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि राकेश मात्र एक कहानीकार नहीं, अपितु एक अन्वेषक भी हैं। उनकी कहानियों ने हिंदी कहानी साहित्य को गौरवपूर्ण स्थान दिलाया है। दांपत्य जीवन के संबंधों की तलाश उनकी कहानियों में सर्वत्र दिखाई देती है। वास्तव में वे ऐसे साहित्यकार थे, जिनमें बीज बोने की क्षमता थी। इस विषय में जयदेव तनेजा ने ठीक ही कहा है, 'यदि जीवन के प्रति आगाध अटूट, आस्था और मानव जीवन की अपूर्णता के भीतर से संपूर्णता को पाने की अंतहीन तलाश को कोई सार्थक नाम दिया जा सकता है, तो वह नाम है मोहन राकेश।'¹ यद्यपि जयदेव तनेजा ने लहरों के राजहंस के संबंध में यह मत व्यक्त किया है किंतु उनका यह मत राकेश की कहानियों के विषय में भी सही दिशा निर्देश करता है। राकेश ने सदा ही कहानी को युग की प्राणशक्ति को व्यक्त करने का एक साधन माना है। उन्होंने एक स्थान पर इस विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा भी है, 'जिन स्रोतों से हम कहानी लिखने की प्रेरणा लेते हैं उनका क्षेत्र भी काफी विस्तृत हो गया है। हमारे चारों ओर जीवन का हर अणु इन्हीं प्रभावों से चलित हो रहा है। हम उन प्रभावों को पहचान सके तो हर अणु की अपनी एक कहानी है।'²

मोहन राकेश की कहानियों में दांपत्य जीवन के संबंधों को लेकर एक प्रकार की लगातार चलनेवाली तलाश दिखाई देती है। उनकी कहानियों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि कहानियों में सुखी गृहस्थ जीवन बितानेवाले दंपतियों की संख्या न के बराबर है। लगभग छियासठ कहानियों में से एक भी कहानी ऐसी नहीं है जिसमें पति पत्नी संतोषपूर्वक वैवाहिक जीवन का आनंद ले रहे हों। यदि यह कहा जाए तो उचित ही होगा कि सुखी गृहस्थ जीवन राकेश के पात्रों की नियति नहीं है। इसके विपरीत विवाह उनके जीवन में प्रेम की अंत्येष्टि का दूसरा नाम है। इस बारे में जयदेव तनेजा लिखते हैं 'राकेश की कहानियों में पुरुष और स्त्री, पति-पत्नी बनकर भी प्रेम, सौहार्द एवं पारस्परिक समझदारी विकसित करने में असमर्थ रहते हैं। उनके मन की भटकन उन्हें पारिवारिक सुख का आनंद लेने नहीं देती और वे सब अंततः आधे अथवा अधूरे रहकर निरंतर भटकने की नियति को ढोते हुए साथ-साथ जीने के लिए अभिशप्त दिखाई पड़ते हैं।'³ राकेश ने अधिकतर कहानियों में कुछ विशिष्ट प्रकार के मुद्दों और समस्याओं को बार-बार उठाया है, हम उन्हें समस्याओं पर यहाँ दांपत्य जीवन के संबंधों की तलाश के संदर्भ में विशिष्ट

कहानियों का विवेचन कर रहे हैं—

फौलाद का आकाश

‘फौलाद का आकाश’ एक ऐसी कहानी है जिसमें राकेश ने पति-पत्नी के बीच दिन-ब-दिन पनपते दांपत्य संबंध तथा अलगाव और तनाव को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस कहानी में दांपत्य जीवन के संबंधों की गहरी तलाश दिखाई देती है। कहानी की नायिका ‘मीरा’ अपने दांपत्य संबंधों को लेकर असंमजस में है। यही कारण है कि वह एक तनावपूर्ण स्थिति में जी रही है। दांपत्य जीवन की इस तनावपूर्ण स्थिति में वह उचित अनुचित का निर्णय नहीं ले पाती है। उसे कई बार लगता है कि उसके दांपत्य संबंधों में जो खालीपन आया है उसका कारण वह स्वयं है, तो कभी उसे लगता है कि दांपत्य संबंधों में दरार पैदा होने का कारण, वह नहीं बल्कि रवि है। इस दंपति के बीच, दांपत्य जीवन में और संबंधों में एक ऐसा तनाव है जिसके परिणामस्वरूप दोनों न चाहते हुए भी एक-दूसरे को झेलते जाने के लिए विवश हैं। यदि हम यह कहें कि कहानी के नायक रवि का औपचारिकता से परिपूर्ण व्यवहार और मीरा की व्यक्तिनिष्ठता दांपत्य जीवन के संबंधों की तलाश का कारण है, तो अनुचित नहीं होगा। फैक्ट्री में काम करनेवाले ‘रवि’ के साथ दस साल की जिंदगी व्यतीत करके भी ‘मीरा’ रवि के साथ आत्मीय संबंध बनाने असमर्थ रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे दोनों के दांपत्य जीवन में भावुकता समाप्त होने लगती है। रवि अपने व्यस्त जीवन में केवल प्रेम की औपचारिकता का निर्वाह करता है। इतना ही नहीं रवि उसे संतुष्ट करने के लिए प्रयत्न तो करता है, पर मन में स्वयं शकित है कि मीरा खुश नहीं है। दोनों के दांपत्य जीवन में एक विशेष दूरी है और अलगाव भी है। मीरा को रवि की भावुकता भरी बातों से सख्त नफरत है किंतु वह अपने अंतरंग क्षणों में जितना ही उसके नजदीक जाता है फाँसले का अहसास दोनों में उतना ही ज्यादा होता जाता है, यही बात मीरा के संदर्भ में भी स्वयं मीरा प्रतीत करती है। मीरा को उसके व्यवहार से भी शक होने लगता है। एक स्थान पर तो मीरा को उसके व्यवहार से लगता है कि ‘उसकी बात में शब्द कम आँकड़े ज्यादा होते हैं। आँकड़े, आँकड़े, आँकड़े! मीरा को लगता है कि उससे प्यार करते वक्त भी वह मन-ही-मन चुंबनों की गिनती करता रहता होगा। तभी तो न उसका आवेश एक चरम पर पहुँचकर एकाएक रुक जाता था।¹⁴

तात्पर्य यह है कि दांपत्य जीवन में ‘काम’ वह शारीरिक और मानसिक आसक्ति है, जो मानव से मानव के रिश्ते को रेशमी डोर से बाँधती है। यदि दांपत्य संबंधों में कहीं दरार पैदा हो जाती है तो यह रेशमी बंधन भी अर्थहीन हो जाते हैं। मीरा और रवि के जीवन में भी दांपत्य संबंधों में बिखराव आने का एक मात्र कारण संबंधों की तलाश ही है। कहानी में आगे यह दिखाई देता है कि मीरा और रवि के बीच बढ़ती दूरियाँ उस समय जिंदगी के फासले को और भी ज्यादा बढ़ाती हैं, जब मीरा का सहपाठी ‘राजकृष्ण’ फैक्ट्री की हड़ताल तुड़वाने आता है। दोनों एक-दूसरे की ओर देखते हैं, और भूतकाल में कहीं खो जाते हैं। उस समय राजकृष्ण भी अपनी भूल का अहसास करता है और मीरा भी। मीरा का राजकृष्ण से मिलने जाना और रवि की बेरुखियों को औपचारिकतावश सहते रहने में जो भाव है, वही उसके दांपत्य जीवन की पीड़ा और संबंधों की तलाश को व्यक्त करता है। कहानी में निरंतर बढ़ते अलगाव का उत्तरदाई मीरा कभी स्वयं अपने-आपको तो कभी रवि को मानती है। इस प्रकार की अनिश्चयात्मक स्थिति में

मानसिक यंत्रणा और तनाव को झेलने के लिए मीरा विवश है किंतु मीरा का रवि के अनुसार ढल न पाना या रवि को अपने अनुसार न ढाल पाना उनके दांपत्य संबंधों में दीवार बन जाता है। मीरा के वैवाहिक जीवन की विडंबना एक मध्यवर्गीय मानसिकता है, जो धन और मान सम्मान के लिए किसी भी हद तक व्यक्ति को गिरने देती है, जैसे रवि का मीरा को 'रेस्ट हाउस' में मंत्री राजकृष्ण के पास भोजना और उसके माध्यम से मिल की हड़ताल तुड़वाना इसी मानसिकता का परिणाम है। मीरा के साथ उसके पति की अप्रत्यक्ष स्वीकृति से राजकृष्ण मीरा का बलात्कार करता है, जिसके परिणामस्वरूप मीरा का अपने पति के प्रति विश्वास टूट जाता है। इतना ही नहीं तो इस हादसे के कारण आगे चलकर दोनों के दांपत्य संबंधों में दरार पड़ जाती है और वैवाहिक जीवन टूटने की कगार पर आता है।

मीरा के जीवन में रवि के साथ रहते हुए जो यांत्रिक एकरसता आ गई है, उसी के कारण पूर्व-सहपाठी राजकृष्ण से उसकी भेट कहानी को एक नए मोड़ पर लाना चाहती है, पर ऐसा नहीं हो पाता। और जीवन यों ही यंत्रवत चलता रहता है। संक्षेप में कहना हो तो हम यह कह सकते हैं कि यह कहानी फौलाद की तरह जड़ और ठंडे होते जाते संबंधों को लेकर लिखी गई है, जिनका भार ढोने के लिए भारतीय नारी विवश है। वास्तव में यह कहानी दांपत्य जीवन के तनाव को और उस तनाव में जी रही मीरा की असंमजस की स्थिति को स्पष्ट करती है। उसे कई बार यह लगता कि अपने इस प्रकार के जीवन के लिए वह और उसकी स्थितियाँ जिम्मेदार हैं, पर कभी उसे ऐसा भी लगता है कि उसके दांपत्य जीवन में सारा दोष रवि का ही है। डॉ॰ सुषमा अग्रवाल ने इस कहानी के विषय में ठीक ही कहा है, 'इस युगल के मध्य जो तनाव है, एक-दूसरे को निरंतर झेलते जाने की मजबूरी है, उसका कारण रवि के व्यवहार की औपचारिकता और मीरा के व्यक्तित्व की व्यक्तिनिष्ठता और भावुकता है।'⁵ इस कथन से स्पष्ट होता है कि राकेश ने इस कहानी में दांपत्य जीवन में सुख की तलाश, एक-दूसरे के प्रति आस्था और विश्वास को माना है। यदि यह न हो तो दांपत्य जीवन के संबंधों में एक प्रकार का तनाव और बिखराव आ ही जाता है।

आखिरी सामान

मोहन राकेश ने इस कहानी में एक विवाहिता नारी की उस स्थिति का चित्रण किया है जिसमें उसका कोई दोष न रहते हुए भी उसे विषम स्थितियों और अकेलेपन की पीड़ा को झेलना पड़ा है। राकेश की यह कहानी उस नारी की कहानी है जिसे समाज में एक विशिष्ट और सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ है—यह नारी है मिसेज 'बेला भंडारी'। मिसेज बेला भंडारी का व्यक्तित्व बहुत ही मोहक और आकर्षक है। उनके गरिमामय व्यक्तित्व के कारण ही लोग उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। मिसेज भंडारी जहाँ भी जाती हैं सभी उसके रूप और सौंदर्य के गुण गाते हैं। उनके प्रति मिस्टर भंडारी को भी अपने पत्नी के इस आकर्षक और मोहक व्यक्तित्व पर गर्व है। मिस्टर भंडारी एक महत्वाकांक्षी व्यक्तित्व है। जीवन में उनकी अनेक आशाएँ और अपेक्षाएँ हैं। अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मि॰ भंडारी अपनी पत्नी बेला भंडारी को अपने अधिकारी की वासना पूर्ति का साधन बनाना चाहते हैं किंतु बेला भंडारी एक स्वाभिमानी स्त्री होने के कारण परपुरुष की वासना का साधन बनने के लिए तैयार नहीं है। वह किसी भी कीमत पर अपनी अस्मिता को बेचना नहीं चाहती और यहीं पर उसे अपने दांपत्य संबंधों का खोखलापन

नजर आने लगता है। जब मिसेज बेला भंडारी उनके पति के अधिकारी की वासनापूर्ति का साधन बनने को तैयार नहीं होती तो अधिकारी रूठ जाता है और वह अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए मिस्टर भंडारी पर चोरी का इल्जाम लगाकर उसे जेल भिजवा देता है। पति के जेल जाने के बाद मिसेज भंडारी का जीवन बहुत विकट हो जाता है। अंतः उनके घर की हर वस्तु नीलाम होने लगती है। एक भरा-पूरा और संपन्न परिवार दांपत्य संबंधों में दरार पड़ जाने के कारण बिखर जाता है। अब इस घर का आखिरी सामान 'मिसेज भंडारी' ही है, जिस समय उन्हें नीचे बुलाया जाता है तब वह अनुभव करती हैं, 'सीढ़ियाँ उतरते हुए उन्हें लगा, जैसे वे आप नहीं उतर रहीं, घर का आखिरी सामान नीचे पहुँचाया जा रहा है।'¹⁶ मिसेज भंडारी को लगता है कि वह एक ऐसा सामान है जिसे कभी भी नीलाम किया जा सकता है। मिसेज भंडारी की इस त्रासद पूर्ण स्थिति का चित्रण करते हुए डॉ॰ सुषमा अग्रवाल ने ठीक ही कहा है, 'वास्तव में मिसेज बेला भंडारी का यह रूप एक बिखरी हुई नारी का है जो अपने परिवेश के वहशीपन से संतुष्ट तो है किंतु अपने अस्तित्व-रक्षण के लिए प्रयत्नशील भी बनी रहती है। वह अपने इस प्रयत्न में अकेला अनुभव करती है।'¹⁷

राकेश जी ने इस कहानी में मिसेज बेला भंडारी के माध्यम से नारी जीवन की उन विषमताओं और पीड़ाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है जहाँ परिवेश के वहशीपन के कारण पति भी साथ देने को तैयार नहीं होता। यह कहानी न केवल दांपत्य जीवन के संबंधों पर प्रश्नचिह्न लगाती है अपितु यह भी स्पष्ट करती है कि वर्तमान जीवन का मुख्य आधार केवल अर्थ ही है, 'लेखक मोहन राकेश इस कहानी में विघटित दांपत्य जीवन की ओर संकेत करना चाहता है। आज दुनिया में वही आदमी सफल है जिसके पास पैसा है, पदवी है।'¹⁸ इस कहानी में दांपत्य संबंधों के खोखलेपन को जहाँ व्यक्त किया गया है वहीं रचनाकार के समष्टिबोध को भी अभिव्यक्ति मिली है। इस कहानी में मिसेज भंडारी का पीड़ाबोध यथार्थ रूप में व्यक्त हुआ है। वस्तुतः यह कहानी दांपत्य जीवन में अवांछित पीड़ाओं को भोगती हुई शोषित नारी की कथा-व्यथा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राकेश की कहानियों में दांपत्य जीवन के संबंधों को लेकर चलने वाली कहानियों की संख्या कम ही है किंतु इन कहानियों में कदाचित ही कोई कहानी ऐसी मिलेगी जिसमें दांपत्य जीवन के संबंध संतोषजनक हो। राकेश ने लगभग छियासठ कहानियाँ लिखी हैं पर इन कहानियों में ढूँढने से भी ऐसी कहानी नहीं मिलेगी जिसमें दांपत्य जीवन के संबंध सुखद हों या जिसमें पति पत्नी जीवन का आनंद उठा रहे हों। इस संदर्भ में गोविंद जी का मत दृष्टव्य है, 'सुखी गृहस्थी राकेश के पात्रों की नियति नहीं है। विवाह उनके जीवन में प्रेम की अंत्येष्टि का दूसरा नाम है। राकेश की कहानियों में पुरुष और स्त्री, पति-पत्नी बनकर भी प्रेम, सौहार्द एवं पारस्परिक समझदारी विकसित करने में असमर्थ रहते हैं।'¹⁹ इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि दांपत्य जीवन बिताने वाले राकेश के पात्रों में एक प्रकार का भटकाव और दुराव है। उनके जीवन का भटकाव ही उन्हें दांपत्य जीवन के सुख का आनंद नहीं लेने देता। राकेश की कहानियों में अधिकतर ऐसे ही दांपत्य जीवन का चित्रण किया गया है जहाँ कथानायक या नायिका को नए संबंधों की तलाश है। नए संबंधों की इस तलाश के अनेक कारण हैं किंतु इनमें मुख्य कारण विवाह के बाद पैदा होनेवाले वे संबंध हैं जिन्हें सामाजिक स्तर पर सामान्यतः स्वीकारा नहीं जाता। यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा की दांपत्य जीवन के संबंधों की तलाश

को लेकर राकेश ने जो कहानियाँ लिखी हैं उसमें दांपत्य जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का बड़ा ही सूक्ष्म और मार्मिक विवेचन हुआ है।

संदर्भ

1. जयदेव तनेजा, लहरों के राजहंस विविध आयाम, कार्तिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 20
2. मोहन राकेश, साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ० 5
3. जयदेव तनेजा, लहरों के राजहंस विविध आयाम, कार्तिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 39
4. मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2008, पृ० 114
5. डॉ० सुषमा अग्रवाल, मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ० 238
6. मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2008, पृ० 173
7. डॉ० सुषमा अग्रवाल, मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ० 141
8. जयदेव तनेजा, मोहन राकेश : रंग शिल्प और प्रदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 252
9. गोविंद चातक, आधुनिक हिंदी नाटक का अग्रदूत मोहन राकेश, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2003, पृ० 39

जितेंद्र शर्मा सुपुत्र श्री सतपाल शर्मा
धर्म सिंह कॉलोनी, गली नंबर 8,
तहसील नरवाना, जिला जींद (हरियाणा)
मो० 8683030850
Email : jitendersharma@gmail.com

मीराकांत के नाटकों की वर्तमान में प्रासंगिकता

डॉ० सरला शर्मा

शोध निर्देशक, विभागाध्यक्ष (हिंदी विभाग)

बी०एन० विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज०)

मोनिका यादव

शोधछात्रा, हिंदी विभाग

बी०एन० विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज०)

प्रासंगिकता ही साहित्य को गरिमा प्रदान करती है। जो साहित्य समय व्यतीत होने के साथ वर्तमान देश एवं काल में भी उपयोगी सिद्ध होता है वही प्रासंगिक कहलाता है। वर्तमान में मानवीय मूल्य गिरते जा रहे हैं। आज आधुनिकीकरण एवं 21वीं शताब्दी की ओर बढ़ते कदम, औद्योगिकरण, उपभोक्तावादी सभ्यता के कारण मानव संस्कारों एवं नैतिकता का हास हो रहा है। व्यक्ति एवं समाज की अस्मिता पर प्रश्नचिह्न लग चुका है। संस्कृति का निरंतर क्षरण होता देखा जा सकता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में मानव मूल्यों की रक्षा के सम्मुख एक प्रश्नचिह्न लग चुका है। आज आंतकवाद, नशा युक्त समाज, वेश्या समस्या, भूख एवं गरीबी, मानव की बढ़ती आकांक्षाएँ, दिखावटीपन, स्त्री-पुरुष संबंध, कर्तव्यहीनता, पारिवारिक विघटन, शिक्षा एवं रोजगार तथा बढ़ते भ्रष्टाचार आदि ऐसे मुद्दे हैं, जो मीराकांत के नाटकों में देखे जा सकते हैं। इस संदर्भ में मीराकांत का साहित्य प्रासंगिकता की कसौटी पर खरा उतरता है।

वर्तमान में भी जनता अपने मूल अधिकारों से वंचित है। मीराकांत ने शोषित, दलित, पीड़ित एवं पिछड़े वर्ग के जनसमूह को उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया है। जिन अभावों के चलते व्यक्ति सफल सामाजिक जीवनयापन करने में अक्षम हो जाता है। मीराकांत ने वर्तमान मानव परिस्थितियों को अपने नाटकों में चित्रित किया है। उनके नाटकों का विषय विस्तृत एवं गहन है जिसमें आधुनिक भावबोध को उद्घाटित कर, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, मूल्य विघटन एवं मानव मन की ग्रंथियों का विश्लेषण कर आधुनिक मानव को घुटन से निकालने का प्रयास किया है। इनके नाटकों में स्त्री समस्याओं का बड़ी गहराई से चित्रण देखने को मिलता है। वर्तमान में स्त्री जिन समस्याओं से रूबरू हो रही है उन समस्याओं का चित्रण इन्होंने अपने साहित्य में किया है। आज औरत हर क्षेत्र में पुरुषों के लिए चुनौती खड़ी कर रही है, जिसके कारण पुरुष भयभीत हो गए हैं। समय और देशकाल के अनुरूप समस्याएँ तो बदल रही हैं परंतु पुरुषों का स्त्रियों के प्रति व्यवहार अधिक बदलता है, यह कहना असंभव है। इसलिए मीराकांत ने अपने नाटकों में स्त्री-संबंधित युगीन प्रश्नों को उठाया हो और पाठकों को स्त्री की वर्तमान परिस्थिति एवं भविष्य पर सोचने को मजबूर कर देते हैं। इसी स्थिति को आधार बनाकर मीराकांत ने 'नेपथ्य राग' नाटक में मेधा एवं उसकी माँ के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है कि कामकाजी स्त्रियाँ अपने कार्यस्थलों पर पुरुषों द्वारा प्रताड़ित हो रही हैं। पुरुष सहकर्मी उनके साथ अनुचित एवं असभ्य

व्यवहार करने से नहीं चूकते।

माँ : तुम्हारे ऑफिस में क्या खास बात है तुम क्या इसे आज के जमाने की कोई नई प्रॉब्लम समझ रही हो?

मेधा : (स्वर के आर्द्रता) ममा...ममा, मन में एक घुटन-सी होती है। समझ में नहीं आता क्या करूँ...।¹¹

इसी नाटक में माँ खना नामक ज्योतिष का उदाहरण देते हुए मेधा को समझाती है कि खना एक बहुत बड़ी विदुषी थी, इतने पर भी उसकी जिह्वा इसलिए काट ली गई कि कहीं वो पुरुष समाज के लिए चुनौती न बन जाएँ। यहाँ जिह्वा काटने का वास्तविक अर्थ है मौन कर देना अर्थात् अधिकार विहीन कर देना। खना अपनी अवस्था पर खेद व्यक्त करते हुए वराहमिहिर से कहती है कि 'आषाढ़ अभी नहीं आया...आषाढ़ आने में कई संवत्सर बीत जाएँगे कई युग...यह नेपथ्य है...इसे मंच तक पहुँचने में समय लगेगा...कल्पांत कई युग...।'¹²

'कंधे पर बैठा था शाप' नाटक के माध्यम से मीराकांत ने एक बार फिर नारी को बुद्धिमती होने पर एवं पुरुष के एकपक्षीय निर्णयों द्वारा उसे उपेक्षित एवं तिस्कृत दिखाया है। वर्तमान समय में जो स्त्री जितनी बुद्धिमती होती है उसे उतनी ही अवेहलना एवं संघर्ष झेलना पड़ता है। प्रस्तुत नाटक में विद्योत्तमा काशी नरेश की विदुषी कन्या है, उन्होंने अपने शास्त्रीय ज्ञान से सभी गुणीजनों को पराजित कर दिया। प्रतिशोध स्वरूप विद्योत्तमा के शास्त्रीय ज्ञान का उपहास करने एवं तिरस्कार करने हेतु उनका विवाह मूढमती कालिदास से छलपूर्वक करवा दिया जाता है। इस प्रकार उसे विदुषी होने का दंड दिया जाता है। दूसरी तरफ वह अपने साथ हुए छल को भूलकर नारी हृदय से पति को स्वीकार करना चाहती है तो कालिदास एकपक्षीय निर्णय लेते हुए पुनः उसका अपमान कर देते हैं।

विद्योत्तमा : तो यह एक पति का निर्णय है...स्वामी का...आप स्वयं अपना जीवन कैसे बिताना चाहते हैं और वह निर्णय आप ले चुके हैं...पत्नी के बारे में विचार किए बिना...व्यंग्य से निर्णय...हाँ निर्णय! पुरुष का एकल निर्णय...सदा की भाँति एक पक्षीय।¹³

इस प्रकार विद्योत्तमा के माध्यम से नाटककार ने स्पष्ट किया है कि स्त्रियाँ सदा से पुरुषों द्वारा अवेहलना प्राप्त करती रही हैं और जाने यह क्रम: कब समाप्त होगा या यों ही निरंतरता को प्राप्त करेगा।

'अंत हाजिर हो' नाटक समाज में एवं रिश्तों में बढ़ रही बदनीयति को स्पष्ट करता है। यहाँ एक पिता अपनी ही पुत्रियों को हवस का शिकार बनाता है, जो शिक्षित वर्ग के मुँह पर तमाचा है। आज का शिक्षित वर्ग भी 'अंत हाजिर हो' के पिता जैसा ही हो गया है। शिक्षा के द्वारा सिखाए पाठ को भूल कामवासना में अंधा होकर मर्यादाओं का उल्लंघन करता दिखाई दे रहा है। पुरुषों की इस बदनीयति से स्त्री वर्ग सदा से पीड़ित रहा है लेकिन अब शिक्षा के कारण आई सजगता के परिणामस्वरूप ये घटनाएँ सामने आने लगी हैं। पुरुषों की कामवासना के कारण, स्त्रियाँ केवल शारीरिक एवं मानसिक शोषण का ही शिकार नहीं होती, बल्कि इस प्रकार हुई घटनाएँ नारी की आत्मा तक को कुचल देती हैं। आएदिन अखबारों में समाचारों में एवं अपने आस-पास इस प्रकार की घटनाएँ होती देखी एवं पढ़ी जाती हैं। आज स्त्री स्वयं के घर में भी असुरक्षित है। आज राम, कृष्ण, कबीर, तुलसी, मीरा आदि की जन्मभूमि किस शाप का फल

भुगत रही है? भारतीय संस्कार आज मात्र बिखरे रिश्तों पर शोक मनाते नजर आ रहे हैं। नाटककार ने इसी शोक, सांस्कृतिक विशृंखलता को या यों कहें अपवित्र होते रिश्ते को प्रोफेसर पिता के माध्यम से एवं छोटी के माध्यम से शोक, भय, अलगाव, त्रासदी, घुटन, मानसिक विशृंखलता आदि का चित्रण किया है जिसका अंत छोटी की मौत पर जाकर होता है। पर क्या छोटी की मौत ऐसे रिश्तों का अंत माना जा सकता है? आज न जाने कितनी छोटी हैं जो पिता द्वारा ही छली जाती हैं। इस प्रकार की मृत्यु द्वारा ऐसे कृत्यों को बढ़ावा मिलता है। लेखिका ने स्पष्ट किया है कि नारी को सजग एवं सतर्क होकर ऐसे रिश्तों का प्रतिकार करना चाहिए, जिससे न जाने कितनी ही स्त्रियों की कमजोर एवं विवश होकर नहीं अपितु निडर एवं निर्भीकतापूर्वक ऐसे कृत्यों का प्रतिकार कर सके तभी स्त्री सम्मान बच सकेगा। छोटी (तनु) का इस प्रकार के अंत से पाठक एवं दर्शक प्रतिकार करते हुए कहते हैं—‘अंत हाजिर हो’। इस प्रकार की घटनाओं का अंत छोटी की मृत्यु से न होकर दुष्कर्म की मृत्यु पर होना चाहिए।

रोली : (दृढ़ संकल्प के साथ खड़े होकर) ये अंत हमें मंजूर नहीं।

दर्शक : नहीं...ये अंत हमें भी मंजूर नहीं बिल्कुल नहीं। ये अंत नहीं हो सकता है।¹⁴

वर्तमान समय में मनुष्य अध्यातावाद की तरफ अग्रसर होते हुए भी मानसिक सुख प्राप्त करने में असमर्थ है, इसका मुख्य कारण है बढ़ती हुई इच्छाएँ। मनुष्य की इच्छाओं को मीराकांत ने ‘ईहामृग या मृगतृष्णा’ का नाम दिया है। मृगतृष्णा का अर्थ है वह इच्छा जो पूरी होकर भी पूरी नहीं होती वर्तमान में प्रत्येक मानव अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु आपाधापी का जीवन व्यतीत कर रहा है। वह अधिक-से-अधिक सुख-साधनों को पाने की चाह में वास्तविक सुख को पीछे छोड़ आगे बढ़ता जा रहा है। बढ़ती इच्छाएँ कहीं-न-कहीं पारिवारिक विघटन, अलगाव, कुंठा, घुटन आदि का कारण बनती हैं। इसी को स्पष्ट करते हुए मीराकांत कहती है—‘जीवन की इस मरुभूमि में तृष्णा तृप्ति बस मृगतृष्णा है, सागर पर लहरों का नर्तन भीतर तो अवसाद साधन है। अंतस् रे...।¹⁵

मीराकांत ने अपने नाटकों में खोखले, औपचारिक होते स्त्री-पुरुष संबंधों को उजागर किया है। आज चाहे कारण जो भी रहा हो दांपत्य जीवन पुराने मूल्यों को खोता जा रहा है। पति-पत्नी के संबंधों में दरार, टूटने एवं अलगाव पैदा होता जा रहा है। समकालीन युग में लगभग सभी संबंध झूठ की चादर ओढ़े हुए प्रतीत हो रहे हैं व आज नए संबंधों के अनुसार स्त्री-पुरुष संबंध एक छत के नीचे रहने तक सिमटकर रह गए हैं। आज उन संबंधों से अपरिचयपन की बू आ रही है। ऐसे संबंध समाजिक जीवन को यातना-दायक बनाकर छोड़ देते हैं। स्त्री अथवा पुरुष न चाहते हुए भी वर्तमान पति-पत्नी के रिश्तों को निभाने हेतु मजबूर हैं। मीराकांत के नाटक ‘तीन अकेले साथ-साथ’ में ऐसे ही दांपत्य जीवन या प्रेमी जीवन की तरफ इशारा किया गया है जो आज बोज़ बनकर रह गए हैं। ऐसे संबंधों के कारण आज जीवन में विविध समस्याएँ, नारी जीवन में विवशता, उपायहीनता आदि के दिग्दर्शन होते हैं। जीवन में नए मूल्यों के आगमन से जो अविश्वास एवं आस्थाहीनता बढ़ रही है उसका चित्रण हमें मीराकांत के नाटकों में देखने को मिलता है। ‘गली दुल्हन वाली’ में नगीना की शादी को आज पूरे 25 साल हो गए हैं आज जब वह पीछे मुड़कर अपनी जिंदगी में झाँकने की कोशिश करती है तो वह रज्जाक से केवल प्रताड़ना ही पाती है। रज्जाक हेतु वह स्त्री या पत्नी नहीं केवल कामवासना पूर्ति का माध्यम है। उसने इस रिश्ते में केवल प्रताड़ना, मार एवं उत्पीड़न को ही प्राप्त किया है। यद्यपि गली का नाम तो

उसके नाम पर पड़ गया है, किंतु क्या वह स्वयं की पहचान बनाने में भी सफल सिद्ध होती है? 'पीटता और गली से बाहर करता है। कभी गर्म दोपहरों में तो कभी ठंडी रातों में फिर पीटता, फिर बाहर करता, पर जिंदगी का चक्का चलता रहा, चलता ही रहा।'⁶ इस प्रकार 'नगीना रज्जाक द्वारा हर प्रकार शोषित एवं अपमानित होती रही।

'पुनरपि दिव्या' में भी दिव्या एवं पृथुसेन प्रेम-प्रेमिका के रूप में पाठकों के सम्मुख आते हैं दिव्या पृथुसेन से एकनिष्ठ प्रेम करती है तथा अपना स्त्रीत्व उस पर न्यौछावर कर देती है परंतु पृथुसेन राजनीति दाँव-पेंचों के वशीभूत होकर उसे धोखा दे देता है। तत्पश्चात दिव्या, पिता के घर को भी त्याग देती है क्योंकि वह गर्भधारण कर चुकी थी। ऐसी स्थिति में वह कहाँ जाए अतः वह दासी धर्म ग्रहण कर अपने पुत्र एवं स्वयं का भरण-पोषण करने की सोचती है परंतु ऐसा संभव नहीं होता। अंत में पुत्रविहीन हो वह वेश्या धर्म धारण कर लेती है। इस प्रकार एक प्रेमी की निर्दयता के कारण प्रेमिका को दुर्दिन देखने पड़ते हैं। अपने दुःखों को याद करते हुए वह स्वयं से वार्तालाप करते हुए कहती है— '...परंतु किस-किस दुख पर रोऊँ...गत जीवन की स्मृति वीभत्स भी है और दारुण भी...भविष्य की कल्पना शून्य है। सब ओर दुःख का पारावार है।'⁷ इस प्रकार एक स्त्री पत्नी एवं प्रेमिका दोनों ही रूपों में पुरुष से हारी है। वर्तमान समाज में आज भी यही परिदृश्य दिखाई देता है। स्वार्थवश ही पुरुष उसे अपनाता है एवं समाज में पति-पत्नी संबंधों का जैसा चित्रण मीराकांत ने किया है वही आज की प्रासंगिकता है। आर्थिक विपन्नता ही पारिवारिक एवं सामाजिक द्वंद्व को पैदा करती है। मीराकांत ने 'पुनरपि दिव्या', 'भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर' तथा 'तीन अकेले साथ-साथ' में इसी का चित्रण कर इसे ही सामाजिक बुराइयों के मूल में होने की बात स्वीकारा है। 'पुनरपि दिव्या' में इसी अर्थ संघर्ष एवं भूख के चलते दिव्या स्वयं को दासी कार्य हेतु बिक्री कर देती है—

दिव्या : मैं दासी कर्म कर...अपना विक्रय कर गर्भ के प्राणी की रक्षा करूँगी।

धाता : तुम दास्य करोगी? मेरे माणिक तुम निर्जन जीवन बिताओगी?

दिव्या : अर्मां उपाय क्या है?⁸

तीन अकेले साथ-साथ' में भी मध्यवर्गीय संघर्ष को दिखाया गया है। जहाँ रज्जाक कमाकर ले आता है तो घर में सालन व भात पक पाता है नहीं तो बचे हुए टुकड़ों को ही पकाकर गुजारा किया जाता है। नगीना प्लेश बैंक पद्धति द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति से पाठकों को अवगत करवाती है—'मैंने छींके से सूखे टुकड़े निकाले गोश्त के दो-तीन टुकड़े रात को बचाकर रखे थे। नरगिस से कहा कि बगार बनाकर टुकड़े और गोश्त चढ़ा दे चूल्हे पर! हल्की आँच पर पड़े-पड़े गल जाएँगे। मासूम बोली...(नरगिस के स्वर में) अम्मी क्या टुकड़े बनेंगे आज? मैंने कहा...ऐ पराये घर जाएगी सँभलकर बोलना सीख...बच्चों से कहना हलीम बना रहे है...।'⁹

पाश्चात्यकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण आज भारतीय समाज मूल्य विहीनता के दौर से गुजर रहा है। पारिवारिक विघटन होना भी पश्चिमी देशों का प्रभाव माना जा सकता है। आज संयुक्त परिवारों की जगह एकल परिवार अधिक नजर आ रहे हैं। संयुक्त परिवार को आज की युवा पीढ़ी अपनी आजादी का बाधक मानती है। एकल परिवारों के कारण उन पर किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं होती। वे अपनी मर्जी अनुसार कहीं भी आ-जा सकते हैं, कैसा भी पहन-ओढ़ सकते हैं और आजकल तो खान-पान भी घर में न बनकर बाहर होटलों से ही आ रहा है। ये सब पाश्चात्यकरण का ही प्रभाव है। आज परिवारों में लोग अपनी मर्जी के मालिक हैं। इसी

प्रभावाधीन लोग नशे की हालत में भी देखे जा सकते हैं। जिसके कारण भारतीय संस्कारों की धज्जियाँ उड़ते देखी जा सकती हैं। इसका चित्रण मीराकांत ने 'कागजी बुर्ज', 'हुमा को उड़ जाने दो' आदि नाटकों में देखा जा सकता है। 'हुमा को उड़ जाने दो' नाटक में हुमायूँ परिस्थितिवश स्वयं को अकेला पाती हैं। इसी अकेलेपन को दूर करने के लिए वे नशे का सहारा लेते हैं।

हुमायूँ (गंभीर और उदास स्वर में) क्या बताएँ...हमेशा से अंदर ही अंदर एक खला-सी रही...एक बियावान...उसी खला का साथ निभाती...चलती-चली आई है ये हमारे साथ...यूँ समझिए हमारी तन्हाइयों की हमराह है ये।¹⁰ परिस्थितिवश हुमायूँ नशे के आदि हो गए थे। हुमायूँ ही नहीं आज न जाने कितने युवक हैं जो पाश्चात्यकरण के प्रभावाधीन नशे के गर्त में डूबते जा रहे हैं।

मीराकांत ने अपने साहित्य के माध्यम से कश्मीर के लोगों उदाहरण देते हुए विश्वबन्धुत्व एवं भाईचारे का पाठ पढाया है ताकि राष्ट्रीयता की अवधारणा को जिंदा रखा जा सके। मीराकांत के नाटक 'उत्तर-प्रश्न एवं 'काली बर्फ' में क्रमशः कश्मीर के उत्तर अधिकारी एवं कश्मीर में बढ़ रहे आतंकवाद के कारण विस्थापित होती हुई जिंदगियों का बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कश्मीर केवल भारत का एक टुकड़ा नहीं है वह भारत के लोगों के लिए राष्ट्र की सबसे बड़ी मिशाल है। लेकिन आज आतंकवादी गतिविधियों एवं चुनावी प्रक्रिया ने इसे राष्ट्रवाद के उन्माद का प्रतीक बना दिया है। कश्मीर को विशेष दर्जे एवं उत्तराधिकारी के प्रश्न पर उत्तर देते हुए 'उत्तर-प्रश्न नाटक में श्रीकृष्ण कहते हैं...परंतु मैं कह चुका हूँ कि कश्मीर की स्थिति भिन्न है...विशेष है। यहाँ का शासक भी यहीं का होना चाहिए। ऐसा मेरा मत है।...मेरे रहते यहाँ का राज बाहरी शक्तियों के हाथ में! नहीं कदापि नहीं! मैं चाहता हूँ कि यहाँ का उत्तरदायित्व किसी कश्मीरवासी को ही सौंपा जाए जो यहाँ की मिट्टी और सुगंध को बनाए रखे।'¹¹ लेखिका कश्मीर में आतंकवाद का मुख्य कारण उत्तराधिकार की समस्या को ही मानती हैं जो बिल्कुल ठीक है जबसे भारत आजाद हुआ है तब से लेकर आज तक उत्तराधिकार ही वह प्रश्न है, जिसे आधार बनाकर पड़ोसी देश वहाँ आतंकवादी गतिविधियों के कारण खून की नदियाँ बहाने तक नहीं चूकते। अतः लेखिका इसका उपाय बताते हुए 'उत्तर-प्रश्न' के माध्यम से कहती है कि कश्मीर का उत्तराधिकारी वहाँ का होना चाहिए ताकि समय-समय पर इस मुद्दे को आधार बनाकर आतंकवाद को जो बढ़ावा मिल रहा है। उस पर विराम-चिह्न लगाया जा सके एवं वहाँ शांति का साम्राज्य स्थापित हो सके। ताकि घाटी के लोग भी अपना जीवन अमन-चैन से व्यतीत कर सकें। कश्मीर पर कब्जा करने लिए भी कारगिल युद्ध हुआ था। क्या दुनिया उस घटना को भुला सकती है? जाने कितने ही घर उजड़ें होंगे। घाटी खून से नहा ली थी। अतः कश्मीर पर कब्जे को लेकर होने वाले रक्तपात से सदा के लिए छुटकारा मिल जाएगा।

लेखिका द्वारा रचित 'काली बर्फ' नाटक में भी कश्मीर में आतंकवाद एवं आतंकवाद के कारण विस्थापन की समस्या का उठाया गया है। धरती का स्वर्ग कहलाने वाला कश्मीर न जाने कब आतंकवाद के कारण खून से स्नान कर जाए? लेखिका ने इसका सजीव चित्रण किया है। इन हमलों के कारण कभी राजनीति तो कभी असंतुष्ट मानसिकता वाले लोग जो स्वयं को शोषित मानते हैं। इन्हीं गतिविधियों के कारण हजारों बेगुनाह त्रासदीपूर्ण जीवन जीने को बाधित हैं।

इस प्रकार आतंकवाद से हमारा देश की नहीं अपितु संपूर्ण विश्व जल रहा है। आतंकवाद आज संपूर्ण विश्व हेतु ज्वलंत समस्या है। इस समस्या को सामंजस्यपूर्ण तरीकों से सुलझाना चाहिए ताकि विश्वबन्धुत्व एवं मानवतावाद का स्वप्न पूर्ण हो सके। 'काली बर्फ' नाटक आज और

अधिक प्रासंगिक हो गया है। क्षेत्रीय व राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के प्रयासों ने इसे और अधिक अर्थपूर्ण बना दिया है। यह शांतिपूर्ण सहअस्तित्व सदा से ही कश्मीरियत का मूल मंत्र भी रहा है।¹²

भ्रष्टाचार ने अपनी जड़ों से व्यक्ति अथवा किसी एक समाज को नहीं अपितु संपूर्ण विश्व को जकड़ रखा है। मीराकांत ने भ्रष्टाचार का उल्लेख 'काली बर्फ' नेपथ्य राग', पुनरपि दिव्या', 'भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर', 'उत्तर प्रश्न' एवं 'हुमा को उड़ जाने दो' आदि नाटकों में किया है। 'भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर' के माध्यम से लेखिका ने साहित्य के क्षेत्र में पैर पसार रहे भ्रष्टाचार का वर्णन भी किया है। जिसके चलते योग्य एवं प्रतिभाशाली युवावर्ग को भी साहित्य जगत में अनेक विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। इसी के चलते उस व्यक्ति विशेष का जीवन तक मानसिक विक्षिप्तता एवं गुमनामी के अँधेरों में गुम हो जाता है। भुवनेश्वर के इसी दर्द को बयाँ करते हुए सुषमा भटनागर कहती हैं—'विमाता की बात करते हो...और उनका क्या जो जीवन में कदम-कदम पर आपके साथ विमाता-सा व्यवहार करते हैं? आपकी प्रतिभा को आपकी मेहनत को सयास कुचल देते हैं...आपकी हस्ती मिटा देने का प्रण करते हैं...क्या वे विमाता नहीं? वो साजिश की कोई पत्र-पत्रिका मेरा लिखा एक शब्द न छापें क्या वो विमाता का व्यवहार नहीं था?'¹³ इस प्रकार लेखिका ने साहित्य के क्षेत्र में फैल रहे भ्रष्टाचार से भी पाठकों को अवगत कराया है। 'काली बर्फ' में भी कश्मीर में चुनाव के कारण फैलते भ्रष्ट तंत्र को दिखाया गया है। जहाँ चुनावों से पहले अनेक वायदों से घाटी गूँज उठती है लेकिन चुनाव होने के पश्चात घाटी के लोगों के दुख-दर्द से किसी नेता का कोई मतलब नहीं होता। घाटी के इसी भ्रष्ट चुनाव-तंत्र पर वार्तालाप करते हुए राज टाठा जी से कहता है—'इलैक्शन तो होते हैं...एक सरकार जाती है दूसरी आती है...पूरी वादी पोस्टरों से दब जाती है...रंग-बिरंगे वायदे हवा में उछाले जाते हैं पर वो लौटकर कभी नहीं आते...वो वायदे भी बस यादों की शकल ले लेते हैं...ऐसे में किस पर भरोसा करें...किस तरफ उम्मीद से देखें...बताइए?'¹⁴

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि मीराकांत के नाटक आधुनिक रूप में प्रासंगिक हैं समाज के हर वर्ग को देखते हुए उन्होंने नाट्य-रचना की है। उन्होंने समाज के हर वर्ग को अपने नाटकों के माध्यम से सजग एवं सतर्क रहकर जीवनयापन करने की अपील की है। ताकि समाज में बढ़ रहे हर प्रकार के दुष्कर्मों, कुकृत्यों आदि का मुँहतोड़ जवाब दिया जा सके। दूसरी तरफ उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से ही विश्वबंधुत्व, भाई-चारे, मानवतावाद, धैर्य आदि को बनाए रखने की अपील की है, जिसके कारण उनका साहित्य वर्तमान में भी प्रासंगिकता लिए हुए है। हर्षबाला शर्मा के अनुसार—'इनके नाटक असल में अपनी अनुगूँजों से इतिहास रचते हैं। नाटक की एक व्याख्या नहीं होती समय और देशकाल के अनुरूप अपनी सार्थकता का निर्वाह करता है। विद्वता के बने-बनाए सीमित दायरों को तोड़ते हुए विद्वता की सामाजिकता को इतिहास से वर्तमान तक स्थापित करती मीराकांत अपने नाटकों के माध्यम से एक नई दस्तक देती है।'¹⁵

संदर्भ

1. मीराकांत, नेपथ्य राग, पृ० 11-12
2. वही, पृ० 4
3. मीराकांत, कंधे पर बैठा था शाप, पृ० 55

4. मीराकांत, अंत हाजिर हो, पृ० 70
5. मीराकांत, ईहामृग, पृ० 30
6. मीराकांत, तीन अकेले साथ-साथ, पृ० 36
7. मीराकांत, पुनरपि दिव्या, पृ० 53
8. वही, पृ० 43
9. मीराकांत, तीन अकेले साथ-साथ, पृ० 37
10. मीराकांत, हुमा को उड़ जाने दो, पृ० 35
11. मीराकांत, उत्तर-प्रश्न, पृ० 28-29
12. मीराकांत, काली बर्फ, पृ० 92
13. मीराकांत, भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर, पृ० 9
14. मीराकांत, काली बर्फ, पृ० 134
15. संवेद पत्रिका-72, जनवरी 2014, पृ० 104

मोनिका यादव पुत्री श्री रामावतार
450/4, शिव कॉलोनी
रिवाड़ी (हरियाणा) 123401
मो० 9467430518
monika79898yadav@gmail.com

मीडिया में महिलाओं की बढ़ती भूमिका

डॉ० राखी उपाध्याय

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

डी०ए०वी० (पीजी) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखंड)

मीडिया से तात्पर्य जनसंचार के माध्यमों—समाचारपत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन तथा चलचित्रों से है। मीडिया अथवा जनसंचार माध्यम किसी भी समाज या देश की वास्तविक स्थिति के प्रतिबिंब होते हैं। देश के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक फलक पर क्या-कुछ घटित हो रहा है? इससे आमजन मीडिया के द्वारा ही परिचित होते हैं। जनसंचार माध्यमों के विभिन्न रूपों ने आज विश्व के लगभग हर कोने तक अपनी पहुँच बना रखी है। मीडिया की शक्ति का आकलन उसकी व्यापक पहुँच के मद्देनजर किया जा सकता है, लेकिन इतनी शक्तियों और लगभग स्वतंत्र होने की वजह से मीडिया की देश और समाज के प्रति महत्वपूर्ण जिम्मेदारी भी है, इसीलिए लोकतंत्र में व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बाद मीडिया को चौथा स्तंभ माना जाता है।

समाज में मीडिया की भूमिका संवाद वहन की होती है। वह समाज के विभिन्न वर्गों, सत्ता केंद्रों, व्यक्तियों और संस्थाओं के मध्य सेतु का कार्य करता है। मीडिया समाज का निर्माण व पुनर्निर्माण करता है। इतिहास में ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जब मीडिया की शक्ति को पहचानते हुए लोगों ने इसका उपयोग लोक परिवर्तन के भरोसेमंद हथियार के रूप में किया है। अंग्रेजों की गुलामी से सिसकते भारतीयों में देशभक्ति व उत्साह भरने में मीडिया का बड़ा योगदान रहा है।

मीडिया आज एक जाना पहचाना शब्द है। यह शब्द 'मीडियम' का बहुवचन है। अतः इसका शाब्दिक अर्थ कहा जा सकता है 'अनेक माध्यम'। यह सत्य भी है क्योंकि मीडिया अनेक माध्यमों से सूचनाएँ एकत्र करता है तथा उसे आमजन तक पहुँचाता है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मीडिया शब्द सूचना तंत्र अथवा सूचना तंत्र का सूचक बनकर तेजी से उभरा है और फिर स्थापित हो गया। देखा जाए तो मीडिया मनुष्य की सूचना के प्रति रुझान का विस्तार है। मनुष्य अपनी अधिकाधिक इंद्रियों से सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिए उत्सुक रहता है। मनुष्य की इसी प्रकृति ने दृश्य, श्रव्य तथा दृश्य-श्रव्य माध्यम को विस्तार दिया। मीडिया शब्द बहुत लोकप्रिय हो रहा है और इसलिए यह हिंदी में भी आ गया है। यह माध्यम का ही एक रूप है जो लैटिन शब्द 'मीडियस' से निकला है जिसका अर्थ है—मध्य, अर्थात् यह संप्रेषण की प्रक्रिया का ही प्रतीक है जिसमें संदेश भेजना और उसे प्राप्त करना शामिल हो जाता है। आज दर्शकों की भूमिका बहुत सक्रिय हो गई है इसलिए संदेश प्राप्त करना या उसे देखने की बजाय इसे पाठक से जोड़ा जाता है क्योंकि रीडर शब्द में अधिक क्रियाशीलता है। आज मीडिया को पढ़ते हुए चित्रों की दुनिया और उनके संदेश महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। एक ही मीडिया उत्पादन दो भिन्न लोगों के लिए अलग अर्थ रखता है। मीडिया उत्पादन वीडियो से जुड़ा है जिसे पढ़नेवाले अपने

अलग-अलग ढंग से पहचानते हैं।

मीडिया ने आज अपने जाल एवं संजाल के द्वारा अधिक से अधिक लोगों को अपने-आप से जोड़ लिया है। भारत में लोगों का आर्थिक स्तर निम्न है, साक्षरता का प्रतिशत कम है तथा जागरूकता के प्रति समाज के रुझान में भी भारी कमी है। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में भी मीडिया अर्थात् विभिन्न संचार माध्यम गाँव-देहातों, गली-मौहल्लों, अल्प साक्षर एवं निरक्षरों तक अपनी पकड़ बनाते जा रहे हैं। जहाँ अखबार नहीं है वहाँ टेलीविजन है, जहाँ टेलीविजन नहीं, वहाँ अखबार है, जहाँ अखबार और टेलीविजन नहीं है, वहाँ रेडियो है। इसका अर्थ यह है कि मीडिया का सतत विस्तार हो रहा है। मीडिया के इस आयाम को सकारात्मक कहा जा सकता है।

मीडिया समाज को दर्पण दिखाने का कार्य कर रहा है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है, लेकिन उस दर्पण में लोगों को अपना प्रतिरूप आदर्श लग रहा है। समाज का प्रतिबिंब देख, बदलने के स्थान पर उसी में ढलते जा रहे हैं। मीडिया समाज की समस्याओं को हल करने का प्रयास करता है तथा लोगों को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। इस प्रकार यह सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। डेनिस मंकवील ने इस संदर्भ में कहा है, 'मीडिया समाज परिवर्तन की यंत्रशक्ति है।' जबकि रश्मि बोहरा कहती हैं, 'अब वर्तमान के निरंतर बढ़ते प्रभाव का सच स्वीकारना ही होगा और यह 'वर्तमान' मीडिया द्वारा निर्मित है। बिखरे हुए वर्तमान का मुकम्मल 'आज' बनाने की जिम्मेदारी मीडिया को बेशक किसी ने न दी हो, पर मीडिया अपने लिए यह भूमिका स्वाभाविक रूप से स्वीकार कर उसे उत्साह के साथ निभा रहा है। मास मीडिया और समाज के सहसंबंधों के बारे में हम प्रायः यहीं तक सीमित रहते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि 'मीडिया स्वयं अपना एक स्वरूप एवं एक शक्तिशाली चरित्र विकसित कर चुका है। समाज पर मीडिया का बहुआयामी प्रभाव है। प्रिंट मीडिया की बात करें तो यह समाज की सेवा करने का एक सशक्त माध्यम है। इस संदर्भ में मुकुल श्रीवास्तव का कथन है, 'प्रिंट मीडिया का कोई विकल्प नहीं है।' मीडिया के बहुआयामी क्षेत्रों में कार्य करने का आरंभ प्रिंट मीडिया से ही हुआ।

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में भारतीय मीडिया पर वैश्विक बाजारवाद का गहरा प्रभाव पड़ा। जिससे भारतीय मीडिया में पश्चिम मीडिया की भाँति नए-नए सरोकारों का उदय हुआ। भारतीय मीडिया में ऐसी नई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया, जिन्होंने इससे पूर्व में चले आ रहे पुराने मानकों को एक झटके में ध्वस्त कर दिया। भारत में भी प्रिंट मीडिया के साथ-साथ इलैक्ट्रॉनिक मीडिया और साइबर मीडिया ने अपनी अच्छी खासी जगह बना ली है। इसलिए विश्व परिदृश्य में भारतीय मीडिया को आज 'एशियाई मीडिया हब' कहा जाने लगा है।

इलैक्ट्रॉनिक युग में समाचारपत्रों में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। अनेक दैनिक समाचार-पत्र, वीडियो, प्रदर्शन टर्मिनल, कंप्यूटर तथा फोटो कंपोजिंग व्यवस्था आदि साधनों के संयोजन से इलैक्ट्रॉनिक पद्धति द्वारा मुद्रित किए जाते हैं। तकनीक संचार क्रांति की सफलता के परिणामस्वरूप देश के अनेक समाचार-पत्रों के स्वरूप में परिवर्तन आया है। डॉ॰ महासिंह पूनिया प्रिंट मीडिया को मिल रही चुनौतियों की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं, 'यद्यपि आज प्रिंट मीडिया अथवा प्रेस को एक जबरदस्त चुनौती इलैक्ट्रॉनिक मीडिया अर्थात् रेडियो, दूरदर्शन और अब इंटरनेट से मिल रही है। लेकिन कुछ ऐसे तात्त्विक कारण हैं, जिनके कारण पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रिंट माध्यम का कोई विकल्प नहीं मिल सका। भले ही रेडियो और टी॰वी॰ माध्यमों की

पहुँच तुरंत और व्यापक के दो तत्त्वों के कारण अपेक्षाकृत अधिक है, लेकिन मानव की मनोवैज्ञानिक संतुष्टि का महज स्वाभाविक तत्त्व उसे प्रिंट मीडिया तक बरबस ही पहुँचा देता है।'

विख्यात पत्रकार व कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने यह उचित ही कहा है कि मीडिया संसार की एक बड़ी ताकत है तो उसके सिर पर जोखिम भी कम नहीं है। पर्वत की चोटियाँ हिम से चमकती हैं और राष्ट्रीय रक्षा की महान दीवारें बनती हैं, उन्हें ऊँचा होना पड़ता है। जगत में समाचार-पत्र यदि बड़प्पन पाए हुए हैं, तो उनकी जिम्मेवारी भी भारी है। बिना जिम्मेवारी के बड़प्पन का मूल्य ही क्या है और वह बड़प्पन तो मिट्टी मोल हो जाता है, जो अपनी जिम्मेदारी को नहीं सँभाल पाता।'

मीडिया का सबसे बड़ा साधन वर्तमान समय में टेलीविजन है। समाचार चैनल की बढ़ती हुई संख्या इसके सशक्त होने के प्रमाण प्रस्तुत करती है। इसके साथ ही मनोरंजन के चैनल भी लोगों को प्रभावित करते हैं। मीडिया के द्वारा लोगों को शिक्षा मिलती है। रेडियो प्रोग्राम के द्वारा स्वास्थ्य संबंधी जानकारी, वातावरण व अन्य महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसी मीडिया के द्वारा लोगों में छुपी हुई प्रतिभा का उजागर सबके सामने होता है। मीडिया के माध्यम से देश-दुनिया की लाइव न्यूज देखने को मिल जाती है। दुनिया के किसी भी कोने में घटित होने वाली घटना की जानकारी तुरंत प्राप्त हो जाती है। आज पूरी दुनिया मीडिया के कारण हमारी पहुँच से बाहर नहीं है। सभी विषयों के अलग-अलग चैनल, अलग-अलग क्षेत्रीय भाषाओं के चैनल के द्वारा मीडिया सबके घरों में मौजूद हैं।

समाज के जितने भी मुद्दे हैं वह सब मीडिया से जुड़े हैं। इस प्रकार मीडिया और समाज दोनों मिलकर ही मास मीडिया को जन्म देते हैं। 'मीडियम इज द मैसेज (Medium is the message, 1967) नामक पुस्तक में मार्श मैक्लुहान ने यह बताया है कि 'सभी मीडिया मानवीय संकाय का विस्तार है चाहे वो मानसिक हो या शारीरिक। पहिया पैर का विस्तार है, पुस्तक आँखों का विस्तार है, कपड़ा, त्वचा का विस्तार है। विद्युत परिपथ (इलेक्ट्रिक सर्किट), केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (सेंट्रल नर्वस सिस्टम) का विस्तार है। इसी तरह उन्होंने मीडिया को मानव का विस्तार कहा था।'

मैक्लुहान की इस बात को आगे बढ़ाते हुए यह कहना उचित होगा कि वास्तविक समाज या संसार का तकनीकी रूप में ऑनलाइन विस्तार की सोशल मीडिया है। (Social media is the technological extension of our society transcendent time and space) आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, ऐसी वेबसाइट और एप्लिकेशंस जो यूजरों (उपभोक्ताओं) को सामग्री तैयार करने और उसे साझा करने में समर्थ बनाए या सोशल नेटवर्किंग में हिस्सा लेने में समर्थ करे उसे सोशल मीडिया कहा जाता है व विकिपीडिया के मुताबिक, सोशल मीडिया लोगों के बीच सामाजिक विमर्श है जिसके तहत के परोक्ष समुदाय व नेटवर्क पर सूचना तैयार करते हैं, उन्हें शेयर (साझा) करते हैं या आदान-प्रदान करते हैं। कुल मिलाकर सोशल मीडिया या सोशल नेटवर्किंग साइट्स ऐसा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है जिसके जरिए लोग उक्त माध्यम में शामिल सदस्यों के साथ विचारों (तस्वीरों तथा वीडियो) का आदान-प्रदान कर सकते हैं।

सोशल मीडिया का जन्म 1995 में हुआ। क्लासमेट्स डॉट कॉम नामक एक साइट से इसका आरंभ हुआ। जिसके जरिए, स्कूलों, कॉलेजों, कार्यक्षेत्रों और सेना के लोग एक-दूसरे से जुड़ सकते थे। इसके पश्चात् 1996 में 'बोल्ड डॉट कॉम' नाम की सोशल साइट बनाई गई। वर्ष

1997 में एशियन एवेन्यू नाम की एक और साइट एशियाई-अमरीकी कम्यूनटी के लिए आरंभ की गई। सोशल मीडिया के क्षेत्र में सबसे बड़ा परिवर्तन फेसबुक और ट्विटर के प्रयोग के सामने आया। फेसबुक का जन्म 4 फरवरी 2004 में हुआ। मार्क जकरबर्ग ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए 'फेसबुक' को विकसित किया। धीरे-धीरे इसका विस्तार दूसरे कॉलेजों और विश्वविद्यालयों तक पहुँचा और वर्ष 2005 में अमरीका की सीमा से पार यह विश्व के दूसरे देशों में पहुँच गया।

24 फरवरी 2009 में Jan Koum तथा Brian Acton ने माउंटेन व्यू, कैलिफोर्निया से 'व्हाट्सअप' का अविष्कार किया। वाट्सऐप मैसेंजर, स्मार्ट फोन पर चलने वाली एक प्रसिद्ध तत्क्षण मेसेजिंग सेवा है। इसकी सहायता से इंटरनेट के द्वारा दूसरे वाट्सऐप उपयोगकर्ता के स्मार्टफोन पर टेक्स्ट संदेश के अलावा ओडियो, छवि, वीडियो तथा अपनी स्थिति (लोकेशन) भी भेजा जा सकता है। सितंबर 2015 की स्थिति के अनुसार वाट्सऐप पर 1 अरब से अधिक उपयोगकर्ताओं के साथ, यह विश्व का दूसरा सबसे लोकप्रिय तत्क्षण मैसेंजर है।

विश्वभर में लगभग 200 सोशल नेटवर्किंग साइट्स हैं जिनमें आर्कुट, फेसबुक ट्विटर ट्विटर, माई स्पेस, लिंकडइन, फिलकर, इंस्टाग्राम, व्हाट्सअप, स्नेप चेट सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। एक सर्वे के अनुसार विश्वभर में 1 अरब 28 करोड़ फेसबुक का प्रयोग करने वाले हैं। विश्वभर में इंस्टाग्राम यूजरों की संख्या 15 करोड़, लिंकडइन यूजरों की संख्या 20 करोड़, माईस्पेस यूजरों की संख्या 3 करोड़ और ट्विटर यूजरों की संख्या 12 करोड़ के आस-पास है। आजकल युवाओं की पहली पसंद स्नेपचैट है।

आधुनिकता के दौर में यदि न्यू मीडिया की भूमिका की बात महिलाओं के संदर्भ में करें तो महिलाओं के मुद्दों और आंदोलनों को मीडिया में अधिक महत्त्व नहीं मिलता और महिलाओं को यही शिकायत रहती है कि महिलाओं के मुद्दों को मीडिया अच्छी तरह कवर नहीं कर रहा है। लेकिन कई स्त्री कार्यकर्ताओं ने महिलाओं के मुद्दों पर प्रेस और मीडिया की भूमिका को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा है। महिलाओं के आंदोलन और मीडिया के संबंध में कहा गया है कि मीडिया और प्रेस महिलाओं के मुद्दों के प्रति संवेदनशील है और उनका रुख सकारात्मक है फिर भी समान रूप से मीडिया मुद्दों को कवर करने पर अभी बहस की जा सकती है। महिलाओं का यह कथन है कि मीडिया पर अब धीरे-धीरे महिलाओं के मुद्दों के प्रति सहानुभूति का दबाव अब बढ़ने लगा है। अधिकतर स्त्री पत्रकार भी अब महिलाओं को बताना चाहती हैं और वे इन मुद्दों के प्रति सहयोगात्मक रवैया रखती हैं। अब आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भी महिलाओं की संख्या मीडिया के क्षेत्र में बढ़ रही है। महिलाएँ अनेक क्षेत्रों में काम कर रही हैं और इसलिए उनकी व्यापक प्रतिभा की पहचान हो रही है। वैश्विक आधार पर भी महिलाओं की भूमिका को व्यापक रूप में स्वीकार किया जा रहा है कि महिलाएँ जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी भूमिकाएँ निभाएँगी तभी वे संविधान में दिए गए समता के सिद्धांत सामाजिक न्याय की प्रतिपूर्ति एवं विषमताओं को दूर करने वाला होगा।

भारत में स्वतंत्रता आंदोलन में भी महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में लाने के लिए सार्थक भूमिका अदा की है। राजनीति से लेकर व्यवसाय प्रबंधन, संस्कृति, कला ज्ञान के क्षेत्र में भी वे पीछे नहीं हैं। इसलिए मीडिया महिलाओं की किस प्राथमिकता में आता है? यही 'प्रोफेशन' को चुनने का आधार होगा और यही कारण है कि पहले जहाँ इस क्षेत्र में महिलाओं

की संख्या नगण्य थी वहीं रेडियो, दूरदर्शन, प्रिंट मीडिया सभी जगह इनकी संख्या में विस्तार हो रहा है।

यह विस्तार यह सिद्ध करता है कि अब निरंतर यह संख्या बढ़ती ही जाएगी क्योंकि ज्ञान, गुण, वैचारिक शक्ति, तर्क, लेखन और प्रस्तुति में महिलाओं की भूमिकाओं को सराहा जा रहा है। इसी कारण मीडिया महिलाओं की विशेषता का क्षेत्र बन जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह प्रयोग केवल भारत में ही नहीं बल्कि वैश्विक आधार पर हो रहा है। मीडिया में महिला पत्रकारों ने शांति और समाज के विभिन्न क्षेत्रों के लिए पत्रकार के रूप में ऐसी भूमिकाएँ निभाई हैं। जिसके लिए उन्हें स्मरण किया जाता है। जब समाज में महिलाओं का बराबरी के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में योगदान और उपस्थिति बढ़ेगी तो उससे मीडिया अलग नहीं हो सकता।

न्यू मीडिया ने भारतीय महिलाओं को मुखर बनाया है। जेम्स स्टीफेन की वाणी को पत्रकारों ने सार्थकता प्रदान की है 'औरतें मर्दों से अधिक बुद्धिमती होती हैं, क्योंकि वे जानती कम, समझती अधिक हैं।'

भारतीय संस्कृति में तो महिलाएँ ही सृष्टि की समग्र अधिष्ठात्री हैं, पूरी सृष्टि ही स्त्री है क्योंकि इस सृष्टि में बुद्धि, निद्रा, सुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, जाति, लज्जा, शांति, श्रद्धा, चेतना और लक्ष्मी आदि अनेक रूपों में स्त्री ही व्याप्त है। नारी कुदरत की बनाई अनिवार्य रचना है, जिसके उत्थान हेतु समाज के बुद्धिजीवी वर्ग ने सतत् संघर्ष किया है। आज की बहुमुखी प्रगतिशील नारी उसी सतत् प्रयास का परिणाम है। आज महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपना प्रभुत्व कायम किया है। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी इससे अछूता नहीं है। नए समाज में नारी जागरण भी एक प्रेरकशक्ति के रूप में उभरा है। महिला समाज ने सदियों से अपने ऊपर पुरुष समाज द्वारा होनेवाले अत्याचारों का प्रतिरोध करना आरंभ कर दिया। आनेवाले समय में दलित जागरण और नारी-जागरण ही नए समाज की पुनर्संरचना करेंगे। इसलिए मीडिया ने नारी जाति में जागरूकता पैदा की है। वर्तमान समय में न्यू मीडिया महिलाओं के पक्ष में बहुत प्रभावकारी हथियार के रूप में उभरा है। इसकी पारदर्शिता और सत्यता को महिलाओं ने आवाज दी है। न्यू मीडिया ने वह जरिया उपलब्ध कराया है जहाँ सामाजिक परिवर्तन के लिए महिलाएँ अपनी सोच को आवाज दे सकती हैं। वह अपनी आवाज दुनिया के सामने उठा सकती हैं। यह जिम्मेदारी पहले किसी मीडिया ने नहीं उठाई थी। समाज में महिलाओं की स्थिति को हमेशा दूसरे लोग अपने तरीके से प्रस्तुत करते रहे हैं लेकिन न्यू मीडिया एक ऐसा प्लेटफार्म है जहाँ महिलाएँ अपनी सोच को स्वयं ही प्रस्तुत कर रहे हैं और जो उनकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण साबित हो रहा है।

निश्चित रूप से न्यू मीडिया महिलाओं की स्थिति में सुधार का एक माध्यम साबित हो रहा है। सोशल मीडिया से घरेलू हिंसा तक को रोकने में बहुत मदद मिल रही है। लोग संबंधित वीडियो देखकर काफी प्रभावित होते हैं और फिर बाद में उस पर अमल भी करते हैं। महिलाओं के बारे में आनेवाले सकारात्मक संदेशों का भी लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और यह लोगों की सोच और विचारों में परिवर्तन करने में 'सहायक' सिद्ध हो रहे हैं। यदि न्यू मीडिया में सकारात्मक संदेशों को बढ़ावा दिया जाता रहा तो आनेवाले समय में महिलाओं की स्थिति में और बदलाव की काफी गुंजाइश है। पत्रकारिता को अपना कार्यक्षेत्र बनाने वाली कुछ महिलाओं का मानना है कि न्यू मीडिया बहुत सशक्त माध्यम बन सकता है महिलाओं को जागरूक और सशक्त

बनाने के लिए। 'रोटी कपड़ा और मोबाइल' का जुमला तो आज बिलकुल सटीक बैठ चुका है।

न्यू मीडिया के सशक्त माध्यम के द्वारा महिलाएँ अपनी बातें इस प्लेटफार्म पर स्वयं ही रख सकती हैं। इसके लिए उन्हें किसी पुरुष की मध्यस्थता की जरूरत नहीं है। न्यू मीडिया अन्य मीडिया से अलग है। इसके लिए महिलाओं को जागरूक होना पड़ेगा है। उन्हें इस बात को समझना होगा कि उनके विकास और सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए स्वयं भी आगे आना होगा। जब तक महिलाएँ दूसरों पर निर्भर रहेगीं तब तक उनकी स्थिति में परिवर्तन नहीं आ सकता। न्यू मीडिया महिलाओं से संबंधित सभी तरह के सामाजिक, सांस्कृतिक मुद्दों को बहुत ही आसानी से सबके सामने लाने का काम कर रहा है। इसी के कारण समाज पर एक तरह का दबाव भी बना है कि वे महिलाओं के साथ अपने व्यवहार में भी परिवर्तन लाए।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि न्यू मीडिया एक ऐसा लोकतांत्रिक मंच है जहाँ महिलाएँ अपनी बातें, अपनी समस्याएँ, अपनी संवेदनाएँ, अपनी भावनाएँ तथा अपने विचार आसानी से एक बड़ी जनसंख्या के सामने किसी प्रतिबंध के बिना रख सकती हैं तथा समाज की मुख्यधारा से जुड़ सकती हैं। महिला के प्रति दया या करुणा वाली सोच विकसित कर महिला के कल्याण के लिए मीडिया को कार्य नहीं करना है बल्कि एक संतुलित और समानता वाला नजरिया निर्मित कर महिला के विकास की ओर कदम बढ़ाना है क्योंकि कल्याण तात्कालिक और पराश्रित होता है जबकि विकास जीवंत और स्वाश्रित।

संदर्भ

1. डॉ॰ राजेश मिश्र, मीडिया मंथन, पृ॰ 15
2. डॉ॰ महासिंह पूनिया, पत्रकारिता का बदलता स्वरूप, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला संस्करण 2004, पृ॰ 2014
3. स्वर्ण सुमन, सोशल मीडिया, पृ॰ 24
4. डॉ॰ मीनाक्षी वशिष्ठ, पत्रकारिता का बदलता स्वरूप
5. प्रो॰ विजय कुलश्रेष्ठ, साइबर पत्रकारिता

Email : drrakhi418@redfmail.com

कहानी-संग्रह 'तीन के घेरे' का विश्लेषण विविध संदर्भ में

अपसाना खान

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

डॉ० रेशमा अंसारी

शोध निदेशक, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

कहानी का हमारे जीवन में विशेष स्थान है क्योंकि इसका अस्तित्व मानव के साथ ही बना हुआ है। हमारे जीवन का हर क्षण एक कहानी है। कहानी के माध्यम से किसी भी बात को सरलता से समझा और समझाया जा सकता है। यही वजह है कि जनजीवन में कहानी विधा आदिकाल से लोकप्रिय विधा रही है। किसी बात की सीधी अभिव्यक्ति की तुलना में कहानी के माध्यम से सरलता से जटिल से जटिल बात भी समझाई जा सकती है। हिंदी साहित्य में इस विधा को समृद्ध करने में अनेक विद्वानों, साहित्यकारों ने अपना अमूल्य योगदान दिया है। इनमें महिला कथाकारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बंग महिला से लेकर वर्तमान के नए सृजनकर्ताओं तक ने अपना योगदान दिया है जिसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। महिला कहानीकारों में कृष्णा अग्निहोत्री ने अपनी सहज और सरल भाषा शैली के माध्यम से इस विधा को समृद्ध किया है। कृष्णा जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित करने के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उद्घाटन कर इसके समाधान के रास्ते भी बतलाए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के अंतर्गत कृष्णा के कहानी-संग्रह 'तीन के घेरे' का विविध संदर्भों में विश्लेषण किया गया है। कृष्णा जी के इस संग्रह की अधिकांश कहानियों के केंद्र में नारी अवश्य है किंतु उन्होंने नारी को केंद्र में रखते हुए विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भी अभिव्यक्त किया है। उनकी कहानियों में नारी जीवन के विविध आयाम देखने को मिलते हैं।

सन् 1962-63 में कृष्णा अग्निहोत्री की छोटी सी कहानी 'सरनी' धर्मयुग में प्रकाशित हुई थी इसके बाद उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखीं। कृष्णा जी अपने लेखन के उद्देश्य के बारे में कहती हैं, 'साहित्य मेरी साँसों से जुड़ा हुआ है। जिंदगी लिखे बिना कटती नहीं। लिखने से मेरा अपना अवसाद कम होता है और दूसरों का दुख बाँटने की खुशी भी होती है। कृष्णा जी कहानी के पात्र को अपने रिश्तेदार तथा आस-पास के व्यक्तियों पर ही देखा, जाना और चित्रित किया। आपकी कहानियों में काम संवेदना की कई स्थितियाँ पाई जाती हैं, जो कहानी पढ़ते ही समझ जाते हैं कृष्णा जी की सारी कहानियों को कठौती के नाम से संगृहीत किया गया है इस के तीन भाग हैं।' कृष्णा जी ने अधिकांश कहानियाँ यथार्थ के धरातल पर लिखी हैं। कृष्णा जी

के अनुसार, 'कथा विषय अधिकतर किसी यथार्थ घटना से या स्वयं के अहसास ही से प्रेरित हो कागज पर उतरता है। मैं अधिकतर कहानियों को तीन बार विचार कर लिखती हूँ। मान लो मैंने किसी किशोरी को अपना विषय बनाया तो उसके साथ जुड़ी घटना, उसका परिवेश, संवाद और कहानी लिखने का कारण तय होता है। यदि संतोष न हुआ तो चार बार में भी कथा बनती है, पर यह सिलसिला उपन्यास में नहीं रहता। उपन्यास का विचार पूर्व में ही पूरी तरह बुन लेती हूँ।'²

'टीन के घरे' कृष्णा जी का प्रथम कहानी-संग्रह है जिसका प्रकाशन 1970 में हुआ। इस संग्रह में 11 कहानियाँ संकलित हैं जो जीवन के विविध आयामों को प्रस्तुत करती हैं। फिर समस्या नारी पर होनेवाले अत्याचार की हो या नारी शोषण, उसका अकेलेपन, बुढ़ापा, जातिवाद अथवा तलाक की, इन्हें यथार्थ रूप में कृष्णा जी ने उद्घाटित किया है। 'कृष्णा अग्निहोत्री की आत्म-स्वीकृति है कि आज का कथाकार परंपरागत कथानक की मान्यताओं को भले ही नकारे, लेकिन कहानी कथानक के अस्तित्व के बिना कहानी नहीं रह सकेगी। मेरी कहानियाँ भी जीवन के विविध खंड-सत्यों की अनुभूतियाँ हैं, आधुनिकता के स्वर भारतीय संस्कृति के डैनों में सिमटे हुए हैं और व्यक्ति के मन की छोटी-बड़ी सभी कमजोरियों की संवेदनात्मक स्थितियाँ प्रस्तुत की गई हैं।'³ इस कहानी-संग्रह की प्रतिनिधि कहानी 'टीन के घरे' के केंद्र में नारी है जिसके जीवन के संघर्षों को कृष्णा जी ने वाणी प्रदान की है। इस कहानी की नायिका बूढ़ी गंगा अपना पूरा जीवन अपने बच्चों के सुख-सुविधाओं में लगा देती है लेकिन जब बच्चे उसे महत्त्वहीन समझते हैं तो वह पूरी तरह टूट जाती है। गंगा के जीवन की यही त्रासदी रहती है कि वह जीवनभर अपने पति से उपेक्षा पाती है और संतानों की भी उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। उसकी बहू उसे सभी कार्यों से दूर रखती है और बच्चों को भी उसके पास जाने नहीं देती है। वह टीन के कमरे में घिरकर खाँसती रहती है। बड़े बेटे के उपनयन संस्कार में भी उसे पूछा नहीं जाता। गंगा को टीन के सफेद चादरों की चमक के घरे में त्रासदीपूर्ण जीवन जीने को विवश होना पड़ता है। अपना पूरा जीवन परिवार के लिए होम करने वाली गंगा को दूसरों की खुशियों का खयाल रहता है लेकिन उसकी खुशियों से किसी को कोई वास्ता नहीं होता। यह टूटते परिवार की यथार्थ कहानी है।

इस संग्रह की कहानी 'एक भटकता मन' एक नारी के मानसिक संघर्ष की कहानी है जो वैवाहिक जीवन के अंतर्द्वंद्व का सजीव चित्रण करती है। कथानायिका वर्षा का वैवाहिक जीवन अकेलेपन की त्रासदी झेल रहा होता है। वर्षा का विवाह परंपरावादी संजय के साथ होता है। संजय नौकरी की वजह से वर्षा से दूर रहता है और वह अकेलेपन की समस्या से जूझ रही होती है। उसके जीवन के खालीपन को दूर करने संपादक देवेंद्र आता है जो स्वयं भी अपने परिवार से उदासीन रहता है। देवेंद्र वर्षा की मानसिक पीड़ा को दूर करने का प्रयास करता है। वर्षा इसी कशमकश में जीती है। उसका भटकता मन के बीच पति संजय और शुभचिंतक देवेंद्र के घरे के बीच घूमता रहता है। कृष्णा जी के 'टीन के घरे' संकलन की कहानी 'आक्टोपस' भी नारी पर केंद्रित कहानी है जिसे जीवन में अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ता है। टूटते हुए परिवार की दास्तां बयां करती इस कहानी की कथानायिका माँ आशु अपने शराबी पति की प्रताड़ना का शिकार होती है। पति उसके जिस्म पर जलता हुआ सिगरेट दागता है। आशु अपने पति से अलग हो जाती है। अकेलेपन में उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लेखिका ने एक

अकेली औरत पर समाज के कामांध पुरुषों की पड़ने वाली गिद्ध दृष्टि का यथार्थ चित्रण किया है। वह मजबूरीवश कभी भटनागर अंकल तो कभी राजेश अंकल का सहयोग लेती है और कामकाजी महिला के रूप में अनेक तरह की विपरीत परिस्थितियों का सामना करती है। उस पर उसके अधिकारी की भी बुरी नजर रहती है। अनैतिक संबंधों से इनकार करने पर उसे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ता है। अनजानी दुनिया के इस तरह के संघर्षों से वह अपनी बेटी नीतू को भी दूर रखना चाहती है।

प्रतिनिधि कहानी 'टीन के घरे' की तरह इस संकलन की चर्चित कहानी 'कुटुंब' टूटते परिवार की कहानी है जिसमें एक वृद्ध विधवा की त्रासदी का वर्णन किया गया है जिसमें संयुक्त परिवार में बेटा-बहू, दामाद, बेटी, नातिन, पोते सभी साथ में रहते हैं। कुटुंब की सुख-सुविधाओं के लिए खटकने वाली विधवा नारी को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। परिवार के सदस्यों के बीच भी मनभेद बना रहता है। अनिता पाटीदार और डॉ० मनीषा शर्मा अपने शोधपत्र 'समकालीन कहानी में बदलते पारिवारिक मूल्य' में लिखती हैं, 'कुटुंब' में पारिवारिक मूल्यों अत्यंत सशक्त रूप में प्रस्तुतीकरण हुआ है। मालकिन परिवार की मुखिया है। इस कुटुंब में बेटा, बहू, पोते, नातिन, बेटी, दामाद तथा अन्य रिश्तेदार साथ में रहते हैं किंतु भाई का बहन के प्रति व्यवहार कुछ इस प्रकार है—'अब उठाओ पोटली और भाई की आज्ञा मान विदा लो बिछालो डेरा सड़क के किनारे, किसी भी जगह।'⁴ इस प्रकार बेटा, बहन और दामाद को घर से निकलवा देता है तथा बहू, बेटा प्रसन्न हो जाते हैं। वहीं मालकिन बेबस और असहाय होकर कहती है 'बेटा, मैं इस कुटुंब से भरपाई मेरे लिए शहर में कोई छोटी-मोटी कोठरी ढूँढ दो, मैं अब यहाँ नहीं रहना चाहती।'⁵ यहाँ मूल्य विघटन का जो चित्र उभरकर आया वह कारुणिक एवं दर्दमय है।⁶ वस्तुतः मन मारकर कुटुंब को बचाते रहने की एक विधवा नारी की यह कहानी पाठकों को पारिवारिक मूल्यों के विघटन के प्रति सोचने पर विवश करती है।

इस संकलन की एक अन्य प्रसिद्ध कहानी 'चेंज' समाज की गंदी सोच को उजागर करती है। कथा नायिका श्यामली कामकाजी महिला है जो पड़ोस के अरविंददेव के घर आती है। दो बच्चों के पिता अरविंद की पत्नी के बीमार पड़ने पर श्यामली उसका सहयोग भी करती है। लेकिन एक-दूसरे के सहयोग और एक महिला का पुरुष से बात करना समाज को नागवार गुजरता है और दोनों के चरित्र पर कीचड़ उछाली जाती है। अरविंद का तबादला हो जाता है। इस कहानी का मर्म यह है कि समाज में उस 'चेंज' की जरूरत है जो एक नारी और पुरुष के रिश्ते को पवित्र नजरों से भी देखने का प्रयास करे।

छोटी बालिका पम्मी और उसकी माँ की अंतर्वेदना लेखिका ने 'अबोध पीड़ा' में अभिव्यक्त की है। पम्मी के पिता उसकी माँ को धोखा देकर दूसरी स्त्री के साथ रहने लगते हैं जिससे पम्मी और उसकी माँ को मानसिक आघात लगता है। पम्मी को लेकर उसकी माँ मायके चली जाती है लेकिन कुछ दिनों बाद उसका मामा उन्हें घर से निकाल देता है। पम्मी की नानी भी मजबूरीवश मौन रहती है। एक नारी किस तरह विवाह के बाद अपने ससुराल में प्रताड़ित होती है और सहयोग के लिए मायके में भी पराएपन का अपमान झेलना पड़ता है, उसका मर्मस्पर्शी चित्रण लेखिका ने किया है। इसी संकलन की कहानी 'प्यार' की कथानायिका नीरा है जिसके अंतर्मन की वेदना का लेखिका ने सुंदर चित्रण किया है। गरीब घर की लड़की नीरा सुरेंद्र की पहली पत्नी जानकी के होते हुए भी उसके साथ विवाह करती है। संस्कारवान जानकी

के मन में नीरा के प्रति कोई ईर्ष्या या द्वेष नहीं है। नीरा शारीरिक रूप से बीमार रहकर भी परिवार के प्रति समर्पित रहती है लेकिन सुरेंद्र चरित्रहीन पुरुष है जो एक और जवान लड़की के साथ समय व्यतीत करता है। प्यार पाने को तरसती नीरा का झुकाव सुरेंद्र के सहयोगी अशोक की तरफ होता है। अशोक विवाहित है जो नीरा को पसंद तो करता है लेकिन उसका भी भरा-पूरा परिवार रहता है जिसे नीरा बिखरते हुए नहीं देखना चाहती।

कृष्णा जी ने इस कहानी-संग्रह में 'टपरेवाले' नामक कहानी को भी शामिल किया है जो उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'टपरेवाले' का ही संक्षिप्त रूप है। इस कहानी का कथानायक गोरेलाल है जिसके माध्यम से लेखिका ने टपरेवालों के जीवन के यथार्थ का चित्रण किया है। इस कहानी में निम्नवर्गीय परिवार की टपरे में नारकीय जिंदगी का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। गोरेलाल अपना पूरा जीवन अपने बड़े परिवार की खुशियों के लिए न्योछावर कर देता है और अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि टपरेवालों का अस्तित्व टपरे में ही है।

इस संकलन की एक और चर्चित कहानी 'टुरी' एक गरीब और निम्न जाति की नारी की कहानी है। टुरी छत्तीसगढ़ की रहती है जो माँग जाति में जन्मी अवैध संतान रहती है। वह अंबू की बेटी के रूप में चित्रित है। अंबू बताता है, 'इसकी माँ छत्तीसगढ़ की थी...मैं झाड़ू लेकर गया था, उसे कोई बाबू से गर्भ रह गया था। मुझे अच्छी लगी ले आया। बड़ी भली थी।' टुरी की माँ के निधन के बाद अंबू दूसरा विवाह करता है। टुरी सौतेलेपन का शिकार होती है। शानो मेमसाब को कोई संतान न होने पर वह टुरी को बेटी के रूप में पालने अपने घर ले आती है। लेकिन शानो के पति और सास को यह बात पसंद नहीं आती। उसे कभी अपनी बेटी नहीं मानते। 'टुरी बड़ी होकर चिकनी और आकर्षक लगने लगी। उसके बाल घने और घुमावदार थे...आँखें अब उथले बड़े फैले ताल की-सी हो आई थीं। कमर में चाबी का गुच्छा, पीठ पर रंगती दो चोटियाँ और सफेद दाँतों को फिसलाकर हँसने की आदत।'⁸

शानो को जब संतान होती है तो टुरी उसे बताए बिना माँग बस्ती में अपने पिता को खोजने निकलती है लेकिन रास्ते में टाँगेवाला उसका गलत फायदा उठाने का प्रयास करता है। टुरी का विवाह एक पंजाबी किराने वाले से कर दिया जाता है लेकिन यहाँ भी उसे प्रताड़ित होना पड़ता है। टुरी को घर से निकाल दिया जाता है। शानो उसका विवाह माँग जाति के देवा के साथ करती है जिससे टुरी झोपड़ी में रहने को विवश हो जाती है। देवा शराब और अफीम का नशा करता है और वह चरित्रहीन भी है। विरोध करने पर टुरी के साथ मारपीट करता है। इस प्रकार टुरी का पूरा जीवन यातना और संघर्षपूर्ण रहता है। शानो के समक्ष टुरी अपनी पीड़ा इस तरह व्यक्त करती है, 'माँ, यदि भूलकर भी कभी मुझे आप सबने टुरी न मान बेटी समझा होता तो मेरे छः बेटे भी कूड़े के कीड़ों की तरह केवल बिलबिलाकर न जीते...वे इंसानों की जिंदगी और अधिकार अब कभी न पा सकेंगे।'⁹

इस संकलन की 'अंतिम स्त्री' कहानी कामांध अमित बेनर्जी की कहानी है जिसके अनैतिक संबंध की वजह से उसकी पत्नी आत्महत्या कर लेती है। दो माह बाद अमित फिर से स्त्रियों से संबंध बनाता है। वह बीन से विवाह करता है और सुधरने का प्रयास भी करता है लेकिन अंत में पुनः शराब और वासना के फेर में पड़ जाता है।

कृष्णा जी के इस संग्रह में 'दो रीती आँखें' नारी रिक्तता की कहानी है। वहीं 'पीछे वाली गली' कहानी व्यवस्था का विरोध करती प्रस्तुत है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्णा जी के

कहानी-संग्रह 'टीन के घेरे' में संकलित कहानियाँ नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों में 'टपरेवाले' का गोरेलाल और 'टुरी' की नायिका टुरी ये दो पात्र ही निम्नवर्गीय हैं जबकि अन्य पात्र मध्यमवर्गीय परिवार से हैं। कृष्णा जी की कहानियों की भाषा शैली सहज व सरल है। कथानक की बनावट यथार्थकारी है।

संदर्भ

1. सुमा एस०, नए साहित्य नए प्रश्न कोमा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ० 203
2. hindi.webdunia.com/article/indian-hindi-literature/
3. नीहार गीते, कृष्णा अग्निहोत्री : संपूर्ण साहित्य का मूल्यांकन, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ० 246
4. कृष्णा अग्निहोत्री, टीन के घेरे, कुटुंब, अक्षरा प्रकाशन, 1970, पृ० 53
5. वही, पृ० 56
6. अनिता पाटीदार, मनीषा शर्मा, समकालीन कहानी में बदलते पारिवारिक मूल्य, 2015 www.allsubjectjournal.com
7. कृष्णा अग्निहोत्री, टीन के घेरे, कुटुंब, अक्षरा प्रकाशन, 1970, पृ० 114
8. वही, पृ० 114
9. वही, पृ० 119

विभाजन की विभीषिका का दर्द और कृष्णा सोबती की कहानियाँ

राकेश प्रधान

शोधार्थी, हिंदी विभाग

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

डॉ० रेशमा अंसारी

शोध निदेशक, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

भारत की आजादी के 75 वर्ष हो चुके हैं और पूरे देश में आजादी का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। भारत सरकार ने प्रतिवर्ष 15 अगस्त को स्वतंत्रता दिवस के एक दिन पूर्व 14 अगस्त को विभाजन की विभीषिका स्मृति दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया है। प्रसिद्ध साहित्यकार भीष्म साहनी की तरह प्रसिद्ध महिला साहित्यकार कृष्णा सोबती का भी सामना विभाजन की विभीषिका से हुआ था। कृष्णा सोबती ने अपनी रचनाओं में इसका सूक्ष्म अंकन किया है। कृष्णा जी की कहानी 'सिक्का बदल गया', 'मेरी माँ कहाँ' और उपन्यास 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान' इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं जिनमें विभाजन की पीड़ा का यथार्थ चित्रण किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में कृष्णा सोबती की कहानियों में विभाजन की पीड़ा की विवेचना की गई है।

नारी अस्मिता की अनोखी रचनाकार कृष्णा सोबती आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी हर रचना में उनकी संवेदनाएँ जीवित हैं, उनके दिल की धड़कन उनके हर शब्द के साथ पाठकों के हृदय में धड़क रही है। वे 94 वर्ष तक जीवित रहीं और जीवन के 70 वर्ष रचनात्मक लेखन को दिए। बहुत कम लिखा लेकिन जो लिखा वह इतना सटीक और सृजनात्मक कि उसे कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अपना शत-प्रतिशत योगदान दिया। उनकी रचनाओं का अँग्रेजी सहित अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। उनके अवसान से हिंदी गद्य साहित्य ने अपना एक अद्वितीय रचनाकार खो दिया।

कृष्णा सोबती का जन्म गुजरात में 18 फरवरी 1925 को गुजरात (अब पाकिस्तान) में हुआ और 25 जनवरी, 2019 को उन्होंने अपनी अंतिम साँसे लीं। उनका पूरा जीवन रचनात्मक सृजन का रहा। लाहौर, शिमला और दिल्ली में उनकी शिक्षा हुई। पंजाबी विश्वविद्यालय, पटिलाया सहित भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला की भी वे राष्ट्रीय फेलो रहीं जहाँ उन्होंने गंभीर अध्ययन किया। कृष्णा जी ऐसे समय की गवाह रहीं जब देश आजाद हुआ, आजादी के जश्न के साथ विभाजन की पीड़ा देखी, समझी और सहन की। जब हिंदुस्तान और पाकिस्तान में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घट रही थीं तब कृष्णा जी इन घटनाओं की प्रत्यक्ष गवाह रहीं, दोनों जमीन को उन्होंने अच्छे से देखा।

बकौल सारा राय, 'हिंदुस्तान के बँटवारे और पाकिस्तान के जन्म के इर्द-गिर्द घटे खून-खराबे के बीच से वे गुजरीं। इतिहास हमारे जीवन में एक नदी की तरह बहता है, उन्होंने कहा है, बँटवारा और उसके परिणाम उनके अपने होने के आभास में, उनके घर, शहर और मुल्क के बोध में अंगारों की तरह जलता-बुझता रहता है जीवन और मृत्यु को इतने करीब से देख चुकने से ही उनका वह आत्मबोध बनता है जो उनके काम की जड़ों तक पहुँचकर उन्हें सींचता है। 2013 में 'राजस्थान पत्रिका' के एक साक्षात्कार में कृष्णा जी उस 'नश्वरता का गहरा दर्द जो इंसान की धमनियों में बराबर बहता रहता है' की बात करती हैं। यही शाश्वत क्षणभंगुरता है जिसमें उनके लेखन की नींव पड़ी है (हंस, अप्रैल 2019)।' कृष्णा जी का एकमात्र कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ 'बादलों के घेरे' जिसमें 24 कहानियाँ संकलित हैं। 'मेरी माँ कहाँ' और 'सिक्का बदल गया' कहानी में विभाजन की पीड़ा, अपनी धरती और अपनों को छोड़ने का दर्द। सांप्रदायिक हिंसा, बदलते मानवीय रिश्तों का लेखिका ने मार्मिक चित्रण किया है।

मेरी माँ कहाँ

'मेरी माँ कहाँ' कहानी स्वतंत्रता के पूर्व भारत में विभाजन की त्रासदी को दर्शाती है। बँटवारे के समय हिंदू और मुसलमान के बीच हुए दंगों की त्रासदी का बालमन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका यथार्थ चित्रण कृष्णा जी ने इस कहानी में प्रस्तुत किया है। कृष्णा सोबती जी 'मेरी माँ कहाँ है' में विभाजन के दौरान धर्म की आड़ में होने वाले खून-खराबे के बीच मानवता और इंसानियत की घटनाओं का भी चित्रण करती हैं। कथानायक एक ब्लोच रेजीमेंट का बहादुर मुस्लिम युनुस खाँ है। बँटवारे की वजह से भारत और पाकिस्तान के बीच दंगे हो रहे होते हैं और हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे को मार-काट रहे हैं। हर तरफ लाशें ही नजर आती हैं।

'युनुस खाँ ने जब आसमान की ओर देखा तो चाँद आधी मंजिल पार कर चुका था। आज चार दिन के बाद उसने चाँद-सितारे देखे हैं। अब तक वह कहाँ थी? नीचे, नीचे, शायद बहुत नीचे...जहाँ की खाई इंसान के खून से भर गई थी। जहाँ उसके हाथ की सफाई बेशुमार गोलियों की बौछारें कर रही थीं। लेकिन, लेकिन वह नीचे न था। वह तो अपने नए वतन की आजादी के लिए लड़ रहा था।'

इस कहानी के मुख्य पात्र युनुस खाँ के माध्यम से कृष्णा जी बँटवारे के उस भयावह दृश्य को प्रस्तुत करती हैं जो आज भी रोंगटे खड़ा कर देता है। 'क्या लंबी सड़क पर खड़े-खड़े युनुस खाँ दूर-दूर गाँव में आग की लपटें देख रहा है? चीखों की आवाज उसके लिए नई नहीं! आग लगने पर चिल्लाने में कोई नयापन नहीं! उसने आग देखी है। आग में जलते बच्चे देखे हैं, औरतें और मर्द देखे हैं। रात-रातभर जलकर सुबह खाक हो गए मुहल्लों में जले लोग देखे हैं।' इसके आगे कृष्णा जी ने बँटवारे की त्रासदी का और भी दर्दनाक चित्रण कुछ इस तरह किया है, 'सड़क के किनारे-किनारे मौत की गोदी में सिमटे हुए गाँव, लहलहाते खेतों के आसपास लाशों के ढेर। कभी-कभी दूर से आती हुई अल्ला-हो-अकबर और हर-हर महादेव की आवाजें। हाय, हाय...पकड़ो-पकड़ो...मारो-मारो...।'² कृष्णा जी इस कहानी के माध्यम से यह बतलाना चाहती हैं कि किस तरह बँटवारे की त्रासदी से पूरे देश में भयावह वातावरण निर्मित हुआ था और दंगे-फसाद में अनगिनत निर्दोषों की हत्याएँ की गई थीं।

गाड़ी से लाहौर जाते समय युनुस खाँ को रास्ते में एक घायल लड़की पड़ी मिलती है।

‘देखो जरा ठहरो! यूनुस खाँ का हाथ ब्रेक पर है। यह-यह क्या? एक नन्ही सी, छोटी सी छाया! छाया? नहीं-रक्त से भीगी सलवार में मूर्च्छित पड़ी एक बच्ची!’³ उसे देखकर यूनुस खाँ के मन में इंसानियत और मानवता जाग उठती है। उसे अपनी मरहूम बहन याद आ जाती है। वह यूनुस खाँ जो काफिरों को मारता फिर रहा था उसे स्वयं समझ नहीं आता है कि वह क्यों रुकता है और उसमें भावना कहाँ से आ जाती है। ‘वह ऐसा क्यों कर रहा है-यूनुस खाँ खुद नहीं समझ पा रहा...। लेकिन अब इसे वह न छोड़ सकेगा...काफिर है तो क्या?’ उस लड़की को देखकर यूनुस खाँ को अपनी मरहूम बहन की याद आ जाती है। ‘सनसनाती हवा में-कब्रिस्तान में उसकी फूल-सी बहन मौत के दामन में हमेशा-हमेशा के लिए दुनिया से बेखबर...और उस पुरानी याद में काँपता हुआ यूनुस खाँ का दिल-दिमाग!’⁴

यूनुस खाँ जो काफिरों को मारता फिर रहा था, वह उस घायल लड़की को लाहौर के एक अस्पताल में दाखिल करा देता है। दंगे के दौरान कोई मुस्लिम दंगाई लड़की के सामने ही उसके भाई का सिर काटकर हत्या कर देता है और उसे बुरी तरह घायल कर देता है। इस घटना से वह भयभीत हो जाती है। वह अस्पताल में बेहोशी में ही बड़बड़ाती है-

कैंप, कैंप...कैंप आ गया। भागो...भागो...जल्दी...

कुछ नहीं, कुछ नहीं-देखो, आँखें खोलो...

आग, आग...वह गोली...मिलटरी...

बच्ची उसे पास झुके देखती है और चीख मारती है...।

डाक्टर, डाक्टर...डाक्टर, इसे अच्छा कर दो।

डाक्टर अनुभवी आँखों से देखकर कहता है, तुमसे डरती है। यह काफिर है, इसलिए!⁵ वह धीरे-धीरे ठीक हो जाती है लेकिन काफी सहमी हुई रहती है। यूनुस खाँ चाहता है बच्ची का कोई नहीं वह उसके साथ ही रहे। ‘ट्रक में यूनुस खाँ के साथ बैठकर बच्ची सोचती है-ब्लोची कहीं अकेले में जाकर उसे जरूर मार देनेवाला है...गोली से-छुरे से!’

यूनुस खाँ प्यार से उसके सिर पर हाथ रखते हुए समझाता है कि वो उसे अपने पास रखेगा और उसकी बच्ची बनकर रहेगी। लेकिन उस लड़की को यूनुस खाँ पर विश्वास नहीं होता। अचानक वो लड़की चीखने लगती है। नहीं...लड़की खान की छाती पर मुट्ठियाँ मारने लगी, तुम मुसलमान हो-तुम...। एकाएक लड़की नफरत से चीखने लगी, मेरी माँ कहाँ है! मेरे भाई कहाँ हैं! मेरी बहन कहाँ है...? यहीं पर कहानी का समापन हो जाता है!⁶

वस्तुतः हम देखते हैं कि इस कहानी में लेखिका ने भारत-पाक विभाजन के दौरान तत्कालीन समय में गुजराँवाला, बजारीबाद और लाहौर में हुए दंगों के वातावरण का सजीव चित्रण किया है। लेखिका ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि धर्मांध होकर लोग किस तरह मार-काट मचाते हैं लेकिन उनके भीतर भी इंसानियत की चिंगारी कहीं-न-कहीं सुलग रही होती है।

सिक्का बदल गया

भारत विभाजन की पृष्ठभूमि में लिखी गई यह कहानी बँटवारे के समय देश की तत्कालीन परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। इस कहानी की मुख्य पात्र विधवा नारी शाहनी है जो गाँव के जमींदार शाह जी की पत्नी है। शाहनी अपनी पत्नी व बेटे की मृत्यु के उपरांत अकेली रहती है। उसे अपने पति और पुत्र की प्रायः याद आती रहती है। चनाब के दरिया में वह पिछले

पचास वर्षों से नहाते आ रही है। 'कितना लंबा अरसा है! शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुलहिन बनकर उतरी थी। और आज...शाहनी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाह जी की लंबी-चौड़ी हवेली में अकेली है।'⁷

शाहनी अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए शोरा को अपना पुत्र मानती है। वह अपनी माँ जेना के मरने के बाद शाहनी के पास ही पलकर बढ़ा होता है लेकिन विभाजन के बाद परिस्थितियाँ बदल जाती हैं। शाहनी धार्मिक महिला है और पूजा-पाठ उसके नित्य कर्म हैं। उदार व्यक्तित्व शाहनी सभी से आत्मीय व्यवहार रखती है लेकिन विभाजन के बाद की परिस्थितियाँ इतनी बदल जाती हैं कि हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच नफरत, अविश्वास और हिंसा की भावना जल उठती है। शाहनी ने जिस शोरा का अपने पुत्र के रूप में पालन-पोषण किया था, वह भी सांप्रदायिक रंग में रंगने लगता है। वह अनगिनत हत्याएँ करता है और उसकी नजर शाहनी के धन-दौलत पर रहती है। वह शाहनी की हत्या करने की भी सोचता है। विभाजन के बाद अपने ही गाँव के लोगों के बीच हृदय परिवर्तन को देखकर वह भीतर से टूट जाती है।

कहानी की मुख्य पात्र शाहनी एक आदर्शवान, निश्चल और साफ हृदय की नारी पात्र के रूप में चित्रित है। उसके आत्मीय व्यवहार की वजह से जाते समय पूरा गाँव उसके पीछे उमड़ पड़ता है। विभाजन के दौरान अपनी जमीन को छोड़ जाने का दर्द क्या है कृष्णा जी ने इसका गहराई से अंकन किया है—'शाहनी के कदम डोल गए। चक्कर आया और दीवार के साथ लग गई। इस दिन के लिए छोड़ गए थे शाहजी उसे? बेजान सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है—क्या गुजर रही है शाहनी पर! मगर क्या हो सकता है! सिक्का बदल गया है।'⁸ बँटवारे की इस त्रासदी के बीच वह कुछ भी नहीं ले जाती। सारा कुछ त्याग कर देती है। थानेदार दाऊद खाँ उसे बँटवारे में जाते समय अपने पास सोना-चाँदी रखने लेने की बात कहता है। 'शाहनी अस्फुट स्वर से बोली, 'सोना-चाँदी!' जरा ठहरकर सादगी से कहा, 'सोना-चाँदी! बच्चा, वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।'⁹

दाऊद खाँ लज्जित-सा हो गया, 'शाहनी, तुम अकेली हो, अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नगदी ही रख लो! वक्त का कुछ पता नहीं...' 'वक्त?' शाहनी अपनी गीली आँखों से हँस पड़ी, 'दाऊद खाँ, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिंदा रहूँगी!' कितनी गहरी वेदना और तिरस्कार के साथ कह दिया शाहनी ने।¹⁰ शाहनी के सामने शोरा का सच भी सामने आता है—'शोरा आन खड़ा हुआ पास। दूर खड़े-खड़े उसने दाऊद खाँ को शाहनी के पास देखा तो शक गुजरा कि हो-न हो कुछ माँग रहा है शाहनी से। 'खाँ साहिब, देर हो रही है...' शाहनी चौंक पड़ी। देर-मेरे घर में मुझे देर! आँसुओं के भँवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पले हुए...नहीं, यह सब-कुछ ठीक नहीं। ठीक है—देर हो रही है, पर नहीं, शाहनी रो-रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान ले लाँघेगी यह देहरी, जिस पर वह एक दिन रानी बनकर आ खड़ी हुई थी।'¹¹

विभाजन की इस त्रासदी से लोगों का बदलना ही सिक्का बदलना है। विभाजन की वजह से सत्ता के बदलने के साथ-साथ सारी परिस्थितियाँ ही बदल जाती हैं। वह टुक में बैठकर अतीत की स्मृतियाँ लिए अनजानी राह पर चले जाने की मजबूरी के साथ सभी से विदा होती है। 'रात को शाहनी जब कैंप में पहुँचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा—राज पलट गया है...सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आई!...और शाहजी की शाहनी की आँखें और

भी गीली हो गई। आसपास के हरे-हरे खेतों से घिरे गाँवों में रात खून बरसा रही थी। शायद राज पलटा खा रहा था और-सिक्का बदल रहा था...¹²

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कहानी में कृष्णा जी विभाजन की त्रासदी और इसका लाभ उठाने वाले अपनों की गद्दारी का सूक्ष्म अंकन किया है। यह कहानी एक विधवा नारी की अपनी जमीन और अपना देश छोड़ने की अंतर्वेदना का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करती है।

इस कहानी की समीक्षा करते हुए डॉ॰ जयश्री सिंह लिखती हैं, 'इस कहानी के माध्यम से लेखिका समय के बदल जाने पर लोगों में होने वाले परिवर्तन का वर्णन करती हैं। वक्त के बदल जाने पर लोग भी कैसे बदल जाते हैं, इसका जीवंत उदहारण इन चरित्रों के माध्यम से उकेरती हैं। लोगों की स्वार्थपरक नीति का उल्लेख कर उनकी हृदयहीनता को दर्शाने का प्रयास करती हैं।'¹³

लेखिका ने शाहनी के माध्यम से एक ऐसी आदर्शवान भारतीय नारी का चित्रण किया है जिसके लिए धन-दौलत और सोना-चाँदी का कोई मोल नहीं है, मोल है तो अपनों की यादों का, और गम है तो अपनों से बिछड़ने का। लेकिन शाहनी का मन तब और भी आहत होता है जब वह अपनों को बदलते देखती है। बावजूद इसके शाहनी के आदर्श उसे अपनी मनोवृत्ति को सदैव ऊँचा बनाए रखने के प्रति प्रोत्साहित करते हैं। वह जाते-जाते अपनी हवेली, जेवरात, धन-दौलत सब त्याग देती है। जाते-जाते गाँव वालों को आशीर्वाद ही देकर जाती है।

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि कृष्णा सोबती जी अपनी कहानियों के माध्यम से विभाजन की त्रासदी को दर्शाने के साथ ही आदर्शवान भारतीय नारी के संस्कारों को भी चित्रित करती हैं। लेखिका यह बतलाना चाहती हैं कि किस तरह बदलते वक्त में त्रासदी के साथ-साथ लोगों की सोच में भी परिवर्तन आ जाता है।

संदर्भ

1. कृष्णा सोबती, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2017, पृ० 185
2. वही, पृ० 185
3. वही, पृ० 186
4. वही, पृ० 186
5. वही, पृ० 188
6. वही, पृ० 189
7. वही, पृ० 134
8. वही, पृ० 138
9. वही, पृ० 138
10. वही, पृ० 139
11. वही, पृ० 139
12. वही, पृ० 139
13. जयश्री सिंह, सिक्का बदल गया, रचनाकार, 2018- www.rachanakar.org/2018/08/blog&post&17-html.

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों का विश्लेषण विविध संदर्भों में

अपसाना खान

शोधार्थी, हिंदी विभाग,

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

डॉ० रेशमा अंसारी

शोध निदेशक, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाली प्रसिद्ध महिला साहित्यकार डॉ० कृष्णा अग्निहोत्री के कथासाहित्य का केंद्रबिंदु नारी है। सीधे-सादे, सरल और सहज स्वभाव की कृष्णा जी के कथासाहित्य के सभी पात्र उनके अपने हैं, उनके रिश्तेदार हैं, उनके पास-पड़ोस के लोग हैं और उनकी अच्छी-बुरी सभी प्रकार की भावनाओं से जुड़े हुए हैं। इन्हें रचकर कृष्णा जी सारी समसामयिक मनःस्थिति से मुक्त हो जाती हैं और इनके आलिंगन में उनका हिंसक मन शांत हो जाता है। लेखिका ने विघटित हो रहे सामाजिक मूल्यों को अपने कथासाहित्य में गहरी संवेदनाओं के साथ अभिव्यक्त किया है। परिवार और समाज के प्रत्येक वर्ग के अनेक कड़वे-मीठे अनुभवों को उन्होंने अपने कथासाहित्य में तराशा है। उनके अधिकांश उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्रण यथार्थ के धरातल पर होता है तथा वे सामान्यतः यह उजागर करना चाहती हैं कि समाज में पुरुषवर्ग नारी का चाहे जिस रूप में जहाँ-तहाँ अवसर मिलने पर दोहन-दर-दोहन करता है।

उपन्यास सिर्फ मनोरंजन का ही माध्यम मात्र नहीं है, विभिन्न सामाजिक समस्याओं के प्रति मानव समाज को सजग कर विकास के पथ पर अग्रसर करता है। उपन्यास आधुनिकयुग की देन है जिसमें मानव-जीवन की विषमताओं, नैतिक मान्यताओं, अंतर्मन की विभिन्न स्थितियों आदि का उद्घाटन कथा के माध्यम से संभव होता है। उपन्यास के माध्यम से पाठक आत्मोपलब्धि का प्रयास करता है। यह आत्मोलब्धि देशकाल अथवा व्यक्ति तथा समाज के अनुसार बदलती रहती है।¹ मुंशी प्रेमचंद की दृष्टि में साहित्य 'जीवन की आलोचना' करने वाला 'मानव संस्कार का एक सशक्त अस्त्र' है। इसलिए उन्होंने 'विचारों का प्रचार' और 'उत्कर्ष का अनुभव' करने के उद्देश्य से 'मानवचरित्र का चित्र' उपन्यास के माध्यम से उपस्थित किया। इसलिए उन्हें कथा जगत में मानव की प्रतिष्ठा करने का श्रेय दिया जाता है।² वस्तुतः उपन्यास मानव जीवन और मानव समाज का यथार्थ अंकन कर विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान की राह भी दिखाता है।

कृष्णा अग्निहोत्री का उपन्यास 'बात एक औरत की' उपन्यास में स्त्री और पुरुष के संबंध को लेकर लिखी गई एक अत्यंत मर्मस्पर्शी गाथा देखने को मिलती है। मुख्य नायिका कनु है जिसका पति संजय एक तरफ तो उसे एक संस्कारवान पत्नी के रूप में देखना पसंद करता है

तो दूसरी तरफ वह अपने दोस्तों के बीच पार्टियों में पाश्चात्य संस्कृति का निर्वहन करते देखना चाहता है। कनु बचपन से ही प्यार से वंचित रहती है। उस पर उसके चाचा की भी गंदी नजर पड़ती है जिससे वह पीड़ित रहती है। इस उपन्यास में कनु की मौसेरी बहन शालो की भी कहानी है जो देखने में बहुत सुंदर है और उस पर घर की नौकरानी के बेटे की बुरी नजर रहती है। वह उसके साथ मारपीट कर दुष्कर्म करता है जिसे कनु देख लेती है। शालो का विवाह कर दिया जाता है लेकिन विवाह के बाद भी उसके जीवन में खुशियाँ नहीं आतीं। उसे उसकी सास की प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है। शालो गर्भवती होती है लेकिन टी०बी० की बीमारी की वजह से उसका गर्भपात हो जाता है। शालो कनु के दूर के रिश्ते के चाचा के प्रेमजाल में फँसकर अपना जिस्म सौंप बैठती है और उसे गर्भ ठहर जाता है। बाद में यह गर्भ गिरा दिया जाता है। शालो पश्चात्ताप के आँसू बहाती हुए कहती है, 'कनु मैंने यह सब पाप किए थे न, इसलिए तो शादी के बाद शिव सा पति पाकर भी सुखी नहीं रह सकी हूँ। बीमारी...वह भी इतनी बुरी।'¹³

कनु का विवाह पुलिस के बड़े अधिकारी डिप्टी एस०पी० संजय से होता है। कनु को सास से ज्यादा सहयोग नहीं मिलता और संजय के लिए कनु सिर्फ भोग की वस्तु थी। उसे कनु की भावनाओं, उसकी तकलीफों से कोई मतलब नहीं रहता। कनु सोचती है, संजय जैसे ही पति होते हैं क्या? वहशी..! जानवर! सुख-दुख और अपनेपन के दो शब्द तक नहीं पूछते। परिचय-अपरिचय के बीच कोई सेतु नहीं...वासना की कमजोर रस्सी।¹⁴ कनु अँग्रेजी सीख लेती है और संजय के साथ उसके मित्रों की पार्टी में क्लब जाती है। उसकी सुंदरता से सभी आकर्षित होते हैं लेकिन घर आकर उसे अक्सर संजय मारपीट करता है। संजय व्याभिचार में आकंठ डूबा रहता है और इस वजह से उसकी नौकरी भी चली जाती है। नौकरी छूट जाने के बाद संजय अपनी पत्नी के पास लौटना चाहता है। कनु गर्भवती होती है लेकिन पहला बच्चा कुछ ही दिनों में निमोनिया की वजह से मर जाता है। कनु फिर गर्भवती होती है और नीलिमा का जन्म होता है लेकिन सास और पति के ताने व मारपीट से तंग आकर घर छोड़ देती है। संजय से तलाक के बाद कनु के जीवन में कलेक्टर अमर आता है जिससे विवाह करना चाहती है लेकिन अमर को सिर्फ कनु का जिस्म चाहिए होता है। वह बिना विवाह के कनु से संबंध रखना चाहता है। कनु कहती है, 'सब ठीक से साफ है, मुझ पर जो बीता वह लौटाया नहीं जा सकता और तुम्हारा विचार भी स्पष्ट है कि बरसात से बचने के लिए यदि दो यात्री एक पेड़ के नीचे थककर कुछ समय काट लें तो जीवनसाथी नहीं बन सकते।'¹⁵

कृष्णा जी ने इस उपन्यास में कनु के माध्यम से नारी के विद्रोही स्वर को मुखर किया है। कनु यह सवाल उठाती है कि 'पुरुष कभी भी पुरुषत्व खोकर बेचैन नहीं होता, स्त्री क्यों त्रस्त होती है? उसे क्यों स्त्रीत्व खो जाने से अपना अस्तित्व बिखरता दिखता है?'¹⁶ अपने पति की बेवफाई और ससुराल के असहयोगात्मक रवैये से त्रस्त कनु आत्मनिर्भर बनना चाहती है लेकिन उसे वहाँ भी नारी पर कुदृष्टि की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कनु का क्रोध इन स्वरों के साथ मुखर होता है, 'स्वार्थ के अतिरिक्त रिश्ता कुछ नहीं। सेक्स ही सेक्स को लेकर दुनिया विक्षिप्त है।'¹⁷ कनु की तरह ही श्यामा, शुभा, शाली, सलमा, प्रीति, रजनी, उमा, आनंदी नामक पत्नियाँ भी अपने-अपने पतियों के लिए भोग्या बनी हुई हैं।

कृष्णा जी का चर्चित उपन्यास 'टपरेवाले' ऐसे निम्नवर्गीय लोगों के जीवन पर आधारित है जो महानगरीय जीवनशैली में आर्थिक विपन्नता की वजह से तुच्छ जीवन जीने को विवश हैं।

टप्पर में रहनेवाले निम्नवर्गीय परिवारों की लड़कियाँ आर्थाभाव की वजह से देह-व्यापार करने को विवश हैं और ऐसा एक भी परिवार मुश्किल से मिलता है जहाँ कि लड़कियों के शरीर का सौदा न होता हो। उपन्यास की भूमिका में कृष्णा जी लिखती हैं, 'इस उपन्यास के सारे पात्र यथार्थ हैं और खंडवा के शक्कर तालाब के पास रहते हैं। मेरे पिता स्वर्गीय रामचंद्र तिवारी इनके व हरिजनों के मसीहा कहलाते थे। हमारे घर में पिता की उपकारी प्रवृत्ति आलोचना का विषय रहती, पर वे गुपचुप अपने खर्च से इन्हें मदद भी करते हैं। सरस्वती मेरे साथ बचपन में खेलती थी। गोरेलाल हमारे घर बरसों ईमानदारी से काम करता रहा।'⁸

कानून को ताक में रखकर गरीबों की मजबूरी का फायदा उठाना और गरीबी की वजह से अपनी देह का सौदा करने पर विवश होने जैसी परिस्थितियों का कृष्णा जी ने सूक्ष्म अंकन किया है। उपन्यास में शकुन नामक पंद्रह वर्षीय किशोरी के साथ हुए अत्याचार का भी चित्रण है। उसका परिवार चोरी-छिपे कच्ची शराब बनाने का व्यवसाय करता है जिससे परिवार का पालन-पोषण किया जा सके। पुलिस का जब छापा पड़ता है तो शकुन को भी उठाकर थाने लाया जाता है। शकुन के साथ पुलिस बलात्कार करती है और वह आत्महत्या कर लेती है। शकुन की माँ मुन्नी इस सदमे से पागल हो जाती है। लेखिका ने निम्नवर्गीय लोगों के जीवन की उन वास्तविकताओं को पूरे साहस के साथ उद्घाटित किया है। इस उपन्यास में अनेक स्त्रियों की कहानियाँ हैं और सभी पितृसत्तात्मक समाज के सामने यातना झेलने को विवश हैं।

कृष्णा अग्निहोत्री जी ने 'कुमारिकाएँ' में कुँवारी लड़कियों की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है। अकेली रहने वाली लड़कियों को अपने जीवन में किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, कृष्णा जी ने उसका गहराई से अंकन किया है। कृष्णा जी इस उपन्यास की भूमिका में समाज से अनेक सवाल पूछती हुए लिखती हैं, 'क्या सारी जिंदगी को एक घटना के लिए त्यागा जा सकता है? कैसी होती हैं वे स्थितियाँ जब जिजीविषा ही खत्म होने को तत्पर हो जाती है? क्या धर्म, शील और नैतिकता की कोई सर्वमान्य व्यावहारिक परिभाषा गढ़ी जा सकती है? यदि समाज की संस्थाएँ इतनी समर्थ नहीं हैं कि वे बेटियों को सुरक्षित रख सकें तो फिर उन्हें यह अधिकार कहाँ से मिला कि वे परिस्थितियों से लड़ती इन विवश लड़कियों का परिहास करें?' समय, परिस्थितियों के साथ अब धर्म, शील और नैतिकता की परंपरावादी मान्यताएँ खोखली और बेबुनियाद होती जा रही हैं—और बेबुनियाद तथ्यों के लिए व्यक्तित्व का गला घोटना अन्याय है। 'यदि विवाह जिंदगी है तो प्रत्येक लड़की को यह जिंदगी जीने की सुभिता प्रदान करना सामाजिक कर्तव्य होना चाहिए। इतिहास, अतीत में झूठी मर्यादा के लिए इन अविवाहित लड़कियों का जीवन कुंद करना एक असामाजिक कार्य है।'⁹

नारी-जीवन के विविध आयामों को अभिव्यक्त करते उपन्यास 'टेसू की टहनियाँ' की मुख्य नायिका सीता है जिसे शिक्षित और आदर्शवान नारी के रूप में चित्रित किया गया है। सीता की माँ की बचपन में ही मृत्यु हो जाती है। उसकी पूरी परवरिश उसके पिता करते हैं और उसे मूल्यों की शिक्षा देते हैं। सीता का विवाह इंजीनियर प्रकाश से होता है जिसके लिए सीता को देखने की अपेक्षा विवाह में मिलने वाले दहेज का महत्त्व रहता है। 'भाग्य ने ही सीता से प्रकाश को जोड़ा। दहेज की बात प्रमुख थी, वह तय हो जाने के बाद प्रकाश ने सीता को देखना उचित नहीं समझा।'¹⁰

कृष्णा जी का उपन्यास 'बौनी परछाइयाँ' में नारी को केंद्र में रखकर विभिन्न सामाजिक

समस्याओं को उजागर कर उसके समाधान के रास्ते बतलाए गए हैं। इस उपन्यास में यौन शोषण से संबंधित घटनाओं की बहुलता है जो नारी को सिर्फ भोग्या के रूप में ही प्रस्तुत करती हैं। कथानायिका गुलबदन उर्फ गुल्लो है जिसके इर्द-गिर्द ही पूरा कथानक घूमता है। गुल्लो पढ़ाई में प्रतिभावान रहती है। वह डॉक्टर बनना चाहती है और उसे डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए छात्रावास भेज दिया जाता है। गुल्लो को परीक्षा में पास होने के लिए अपने विभागाध्यक्ष त्रिवेदी से शारीरिक संबंध बनाने को विवश होना पड़ता है। गुल्लो का विवाह उज्जैन में स्मगलिंग का व्यवसाय करने वाले अनवर से होता है। विवाह के बाद अनवर स्मगलिंग के व्यवसाय के सिलसिले में दूसरे देश चला जाता है। इधर गर्भवती गुल्लो को सास प्रताड़ित करती है। गुल्लो को बेटी होती है। अनवर वापस आकर अपनी माँ के कहने पर गुल्लो से मारपीट करता है और उसे घर से निकाल देता है। गुल्लो अपने घर लौट जाती है। उसके पिता का निधन होता जाता है। गुल्लो और उसकी माँ का जीवन दुखी हो जाता है। गुल्लो का परिचय ब्रजेंद्र से होता है और दोनों विवाह करते हैं। गुल्लो भी अपनी बच्ची के संरक्षण के लिए अपना धर्म बदलकर विवाह करने मजबूर रहती है। वह गुलबदन से बहार बन जाती है। लेकिन कुछ समय बाद सौतेलापन की समस्या खड़ी हो जाती है। उसके दोनों विवाह असफल रहते हैं। गुल्लो अंततः अपनी बेटी के साथ कनाडा चली जाती है।

‘निष्कृति’ कृष्णा अग्निहोत्री जी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने मध्यकालीन इतिहास पात्रों जोधा व मीरा से प्रेरणा ली है। कृष्णा जी इतिहास के पन्नों में गुम हो चुकी जोधाबाई को नायिका के रूप में स्थापित करने का प्रयास करती हैं। उपन्यास की शुरुआत राजा भारमल और जोधा के बीच संवाद से होती है। ‘अकबर को अपने वश में करने का एक ही रास्ता है बेटी...’ ‘क्या?’ जोधा ने भोले चेहरे को पिता की ओर उठाया। उनकी भावनाओं पर अधिकार।¹¹

कृष्णा जी का प्रसिद्ध उपन्यास ‘नीलोफर’ एक आंचलिक उपन्यास है जिसमें अनेक विषयों को लेखिका ने उठाया है। इस उपन्यास को लिखने से पहले कृष्णा जी अपनी बहन डॉ॰ उमा न्यू वेद के सहयोग से दुबई की यात्रा पर गई थी। वहाँ उन्होंने दासत्व की दर्दनाक व दुखभरी कहानी का अनुभव किया जिसके आधार पर नीलाफेर की रचना करने की प्रेरणा मिली। भारत वापस लौटने पर प्रसिद्ध लेखक शानी द्वारा मध्यप्रदेश अकादमी की ओर से किसी एक अंचल का अध्ययन कर कुछ लिखने के लिए प्रेरित किया गया।

कृष्णा जी ने मध्यप्रदेश के अमरकंटक, मंडवा, बैतूल आदि क्षेत्रों का दौरा किया और बैगाज की काली जिंदगी ने उन्हें हैरत में डाल दिया। विकासक्रम में आदिवासियों का पिछड़ापन, भ्रष्ट शासकीय नीतियाँ और मासूम, भोली सुंदर आदिवासी नीलोफर जिसे सिर्फ शोषण ही भुगतना पड़ता है, इस उपन्यास के मूल में है। इसमें नीलोफर के तीन जन्मों में भी उसकी गुलामी और शोषण की कहानी खत्म नहीं होती। तीन भागों में विभाजित इस उपन्यास में गुलाम प्रथा, बैगा आदिवासियों का जीवन और आधुनिक नारी के साथ होने वाले विश्वासघात का लेखिका ने यथार्थ चित्रण किया है। अलग-अलग सामाजिक स्थितियों में नारी की व्यथा, उसकी पीड़ा, अत्याचार और नारी-शोषण का लेखिका ने प्रासंगिक चित्रण किया है।

राजनीतिक, सामाजिक और पारिवारिक परिवेश में लिखे गए कृष्णा जी का प्रसिद्ध उपन्यास ‘अभिषेक’ में स्वतंत्रता के लंबे अरसे बाद भी भारतीय परिवार, समाज व राष्ट्र में व्याप्त

सोलहवीं शताब्दी की जातिवादिता, अर्थ और स्वार्थ की घेराबंदी, पिछड़ी मानसकिता और एक बड़े वर्ग का पिछड़ापन नारी को केंद्र में रखकर उद्घाटित किया है। इस उपन्यास की भूमिका में कृष्णा जी लिखती हैं, 'यांत्रिक प्रगति के बावजूद भारत भटक रहा है, जिन हरिजनों के लिए हमारे नेता आवाजें बुलंद कर हंगामा तक खड़ा करते हैं और जिन्हें राष्ट्रीय आरक्षण प्राप्त है वे हरिजन स्वयं ही अपने आपकी भलाई नहीं समझते। इस तरह का एक बड़ा समुदाय पिछड़ा हुआ है। लेकिन क्या इन दुःस्वप्नों से निराश ही रहेंगे? या आतंकित व तटस्थ रह निर्जीव जीवन जिएँगे? या कोई समाधान है? ऐसे ही कई ज्वलंत प्रश्नों को लेकर नए राष्ट्रीय अभिषेक की बात मेरा यह उपन्यास प्रस्तुत कर रहा है।'¹²

वस्तुतः कृष्णा जी ने अपने कथासाहित्य में नारी जीवन के विभिन्न आयामों को उद्घाटित किया है। कृष्णा जी ने सरल व सजह भाषा में अपने उपन्यासों की रचना की है। छोटे-छोटे वाक्य, सारगर्भित, तथ्यपूर्ण, तर्क-संयमित भाषा से और भी निखर उठे हैं। साधारण बोल-चाल की भाषा को ही लेखिका ने अपनी कथावस्तु का आधार बनाया है। संवाद का पैनापन, ताजगी, खुलापन उनके कथासाहित्य को निखारते हैं। हिंदी, उर्दू, फारसी, अरबी और पात्रानुसार आंचलिक भाषा का प्रयोग उनके कथासाहित्य को जीवंत बना देता है। प्रतीक और बिंब उनके कथानक को रोचक बनाकर यथार्थानकन में सहायक होते हैं। उनके कथासाहित्य में तात्कालिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, निरर्थकता बोध, काम संवेदना, आंचलिकता सहज मिल जाते हैं। डॉ० वेदप्रताप अमिताभ लिखते हैं कि स्थितियों और मनःस्थितियों को व्यक्त करने में सक्षम भाषा कृष्णा जी के पास है और उसे अधिक संप्रेषण-सक्षम बनाने के लिए वे उसे बिंबों-अप्रस्तुतों से समृद्ध करती हैं।

संदर्भ

1. घनश्याम राय, हिंदी उपन्यास : भारतीय (अनुदित) उपन्यासों के संदर्भ में, शोधप्रबंध, डी० फिल की उपाधि हेतु, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 2002, पृ० 3
2. चंद्रभानु सोनवणे, हिंदी उपन्यास : विविध उपन्यास, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1977, पृ० 10
3. कृष्णा अग्निहोत्री, बात एक औरत की, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982, पृ० 34
4. वही, पृ० 37
5. वही, पृ० 143
6. वही, पृ० 171
7. वही, पृ० 144
8. कृष्णा अग्निहोत्री, टपरेवाले, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976, पृ० 7
9. कृष्णा अग्निहोत्री, कुमारिकाएँ, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण 2010, उपन्यास की भूमिका से, पृ० 7-8
10. कृष्णा अग्निहोत्री, टेसू की टहनियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, द्वितीय संस्करण 2014, पृ० 27
11. कृष्णा अग्निहोत्री, निष्कृति, भारतीय पुस्तक परिषद, नई दिल्ली, संस्करण 2016, पृ० 13
12. कृष्णा अग्निहोत्री, अभिषेक, अमन प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2013, भूमिका, पृ० 7

जीवन की सौंदर्यपूर्ण अनुभूति का आख्यान 'जिंदगीनामा'

राकेश प्रधान

शोधार्थी, हिंदी विभाग

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

डॉ० रेशमा अंसारी

शोध निदेशक, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग

मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ०ग०)

हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकारों ने सिर्फ विभाजन की विभीषिका को ही अपने कथासाहित्य का आधार नहीं बनाया है अपितु विभाजन के पूर्व जीवन की सौंदर्यपूर्ण अनुभूतियों, अनेकता में एकता और सांस्कृतिक बहुलता की स्थितियों को भी अपने कथानक का आधार बनाया है। प्रसिद्ध महिला साहित्यकार कृष्णा सोबती की कालजयी रचना 'जिंदगीनामा' विभाजन के पूर्व पंजाब के आंचलिक जीवन पर आधारित है। यह उपन्यास सन् 1979 में प्रकाशित हुआ जिसे भारतीय साहित्य अकादमी से 1980 में पुरस्कृत किया गया। वास्तव में इस उपन्यास के प्रकाशन के बाद कृष्णा जी का नाम हिंदी कथासाहित्य में लोकप्रिय हो गया। पंजाब के आंचलिक जीवन को आधार बनाकर लिखे गए इस उपन्यास में विभाजन के पूर्व की स्थिति-परिस्थितियों और अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध ग्रामीणों की विद्रोही मानसिकता का यथार्थ चित्रण किया गया है। वरिष्ठ लेखक एवं आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, 'कृष्णा सोबती ने जिंदगीनामा नामक वृहद उपन्यास लिखा। वे इसे कई खंडों में आगे बढ़ाना चाहती थीं। विभाजन और उसके बाद का भारत उसका प्रिय विषय था। इसे लिखने के लिए उन्होंने बहुत शोध किया था, परिश्रम किया था। उपन्यास सम्मानित-समादृत हुआ किंतु पूरा नहीं लिखा जा सका।'¹

हिंदी कथासाहित्य में विभाजन से पूर्व अनेक रचनाएँ सामने आई हैं किंतु उन सबमें 'जिंदगीनामा' अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। यह उपन्यास श्री गुरु गोविंदसिंह के इस फारसी कथन को समर्पित है—'चूँ कार अज्र हमाँ हीलते दरगुजशत, हलाहस्त बुर्दन ब-शमशीर दस्त।' जब दूसरे सब रास्ते कारगार न हो सकें तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठा लेना जायज है।

भारतीय साहित्य अकादमी से सम्मानित कृष्णा सोबती जी का उपन्यास 'जिंदगीनामा' पंजाब के उस दौर के आंचलिक जीवन का ताना-बाना है जब विभाजन और पाकिस्तान जैसे शब्द की भी कोई अवधारणा नहीं थी। 'लेखन को जीवन का पर्याय माननेवाली कृष्णा सोबती की कलम से उतरा एक ऐसा उपन्यास जो सचमुच जिंदगी का पर्याय है—जिंदगीनामा, जिसमें न कोई नायक, न कोई खलनायक। सिर्फ लोग और लोग और लोग। जिंदादिल। जाँबाज। लोग जो हिंदुस्तान की ड्योढ़ी पंचनद पर जमे, सदियों गाजी मरदों के लश्करों से भिड़ते रहे। फिर भी फसलें उगाते रहे। जी लेने की सौंधी ललक पर जिंदगियाँ लुटाते रहे। जिंदगीनामा का कालखंड

इस शताब्दी के पहले मोड़ पर खुलता है। पीछे इतिहास की बेहिसाब तहें। बेशुमार ताकतें। जमीन जो खेतिहर की है और नहीं है, वही जमीन शाहों की नहीं है मगर उनके हाथों में है। जमीन की मालिकी किसकी है? जमीन में खेती कौन करता है? जमीन का मामला कौन भरता है? मुजारे आसामियाँ। इन्हें जकड़नों में जकड़े हुए शोषण के वे कानून जो लोगों को लोगों से अलग करते हैं। लोगों को लोगों में विभाजित करते हैं।

जिंदगीनामा का कथानक खेतों की तरह फैला, सीधा-सादा और धरती से जुड़ा हुआ। जिंदगीनामा की मजलिसें भारतीय गाँव की उस जीवंत परंपरा में हैं जहाँ भारतीय मानस का जीवन-दर्शन अपनी समग्रता में जीता चला जाता है। जिंदगीनामा-कथ्य और शिल्प का नया प्रतिमान, जिसमें कथ्य और शिल्प हथियार डालकर जिंदगी को आँकने की कोशिश करते हैं। जिंदगीनामा के पन्नों में आपको बादशाह और फकीर, शहंशाह, दरवेश और किसान एक साथ खेतों की मुँडेरों पर खड़े मिलेंगे। सर्वसाधारण की वह भीड़ भी जो हर काल में, हर गाँव में, हर पीढ़ी को सजाए रखती है।¹² इस उपन्यास की शुरुआत लंबी कविता से होती है जिसमें जीवन का मर्म छिपा हुआ है। यथा—

इतिहास/ जो नहीं है/ और इतिहास/ जो है
वह नहीं/ जो हकूमतों की/ तख्तगाहों में
प्रमाणों और सबूतों के साथ
ऐतिहासिक खातों में दर्ज कर
सुरक्षित कर दिया जाता है
बल्कि वह/ जो लोकमानस की
भागीरथी के साथ-साथ/ बहता है
पनपता और फैलता है/ और जनसामान्य के
सांस्कृतिक पुख्तापन में/ जिंदा रहता है।¹³

इस उपन्यास की भूमिका में दी गई आठ पृष्ठों की कविता विभाजन के फलस्वरूप उस वेदना का अहसास कराती है जिसकी पीड़ा आज भी दोनों मुल्कों के लोगों के दिलों को झकझोरती है। इस कविता के माध्यम से लेखिका तत्कालीन समय की स्वर्णिम यादों के सागर में गोते लगाती प्रतीत होती है। लेखिका ने पंजाब की धरती के सौंदर्य और उस धरती को छोड़ने की पीड़ा का वर्णन भी किया है—

फिर कभी नहीं पुकारेंगी/ कच्चे कोठों से
चिट्ठी दूधशोख/ पंजाब की बेटियाँ।
टप्पों के बंद जोड़/ अपने माहिबों को
अपने दिलगीरों को।
कौन जानेगा/ कौन समझेगा
अपने वतनों को छोड़ने
और उनसे मुँह मोड़ने के दर्द को
पीड़ा को!
जेल्लहम और चनाब/ बहते रहेंगे इस धरती पर
लहराते रहेंगे/ खुली-डुली हवाओं के झोंके

इस धरती पर/ इसी तरह
बिलकुल इसी तरह
सिर्फ हम यहीं नहीं होंगे।
नहीं होंगे/ फिर कभी नहीं होंगे/ नहीं!⁴

यह कविता ही 'जिंदगीनामा' उपन्यास की भूमिका कही जा सकती है। इस उपन्यास में कोई केंद्रीय कथा नहीं है और न तो कोई नायक अथवा खलनायक, यह अनेक पात्रों के कथानक को प्रस्तुत करता है। प्रेम के अनेक रूप इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं।

'जिंदगीनामा' उपन्यास के प्रथम भाग 'जिंदारुख' में 1905 से लेकर 1915 तक के कालखंड को चित्रित किया गया है। जिसमें पंजाब की पूरी संस्कृति, खेत-खलिहान, कोर्ट, कचहरी, पीर, फकीरों तथा लोग-लुगाइयों के स्वाभाविक जीवन से जुड़ी है। इस उपन्यास में कथा का कोई महत्त्व नहीं है, बल्कि पंजाब के लोकजीवन पर रचित इस महाकाव्य के लालित्य का भी रहा है। यह पंजाब के गाँव की दास्तान सुनाता है जिसमें भारतीय मानस का जीवन दर्शन अपनी समग्रता में जीवंत हो उठा है। इस उपन्यास में सांप्रदायिकता, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ, सांस्कृतिक एवं सामाजिक पक्ष भी अपने सुंदरतम रूप में प्रस्तुत किया गया है।⁵ जिंदगीनामा का कथानक खेतों की तरह फैला, सीधा-सादा और धरती से जुड़ा हुआ। जिंदगीनामा की मजलिसें भारतीय गाँव की उस जीवंत परंपरा में हैं जहाँ भारतीय मानस का जीवन-दर्शन अपनी समग्रता में जीता चला जाता है। जिंदगीनामा-कथ्य और शिल्प का नया प्रतिमान डालकर जिंदगी को आँकने की कोशिश करते हैं। जिंदगीनामा के पन्नों में बादशाह और फकीर, शहशाह, दरवेश और किसान एक साथ खेतों की मुँडेरों पर खड़े मिलेंगे। सर्वसाधारण की वह भीड़ भी जो हर काल में, हर गाँव में, हर पीढ़ी को सजाए रखती है।⁶ इस उपन्यास में अनेक पात्र हैं और सभी की अलग-अलग कहानियाँ हैं। इस उपन्यास में आजादी के पूर्व और आजादी के बाद के भारत की परिस्थितियों को भी कृष्णा जी ने चित्रित किया है। इस उपन्यास में कथानक की तुलना में दृश्यों का क्रम ज्यादा है जो डेरा जट्टा गाँव की अनेक स्मृतियों को सँजोए हुए है।

यह उपन्यास कुछ व्यक्ति विशेष के कथानक को प्रस्तुत करते हुए पूरे जेल्हम और चनाब नदियों के बीच के गुजरात नाम के अंचल का परिदृश्य प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास का मुख्य पात्रशाह है जिसे गाँव के साहूकार के रूप में चित्रित किया गया है। गाँव के लोग अपनी विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए प्रभावशाली शाह के पास आते हैं और वह जरूरत के समय गाँव के लोगों की हरसंभव सहायता करता है। उसके इस कार्य में उसकी दूसरी पत्नी शाहनी सहयोग करती है। शाह की पहली पत्नी गौरजा का विवाह के कुछ दिनों बाद ही निधन हो जाता है। दूसरी पत्नी शाहनी से उसे महरी चाची के कहने पर पीर सयाने के दरबार में मन्नत माँगने पर पुत्र की प्राप्ति होती है। महरी चाची विधवा हुआ करती थी और एक मेले में वह गणपतशाह के प्रति आकर्षित हो गई थी। वह अपने पति की सारी जायदाद छोड़कर गणपतशाह के साथ भाग जाती है और महरी चाची बन जाती है। कुछ समय बाद गणपतशाह का भी निधन हो जाता है और वह पुनः विधवा बन जाती है। हालाँकि उसे परिवार में पूरा मान-सम्मान दिया जाता है।

1907 से 1915 के बीच का कालखंड सामाजिक और राजनीतिक परिवेश से संबंधित है। इस काल में औपनिवेशिक नीतियों अथवा ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र का यथार्थ चित्रण किया गया है। पुलिस का भ्रष्ट तंत्र, जेल में बंद गाँव के लोगों के परिवार की परेशानियाँ भी चित्रित

की गई हैं। बड़ी शाहनी का गर्भवती होने पर पूरे गाँव में उत्सव मनाया जाता है। बड़ी शाहनी के पुत्ररत्न की प्राप्ति होने तक पूरे गाँव में त्योहार का वातावरण रहता है। पूरे गाँव को खिलाया-पिलाया जाता है, अनेक रीति-रिवाज संपन्न किए जाते हैं। किसानों और मेहनतकशों का शाहों द्वारा शोषण भी किया जाता था। शाहों के आर्थिक दुष्चक्र में फँसे किसानों का किस तरह शाह शोषण करते हैं, इसका चित्रण भी लेखिका ने किया है। यह सामाजिक यथार्थ का प्रमाणित रूप है।

किस तरह साहूकारों के जाल में सौ रुपए के ब्याज की मूल रकम एक हजार रुपए तक पहुँच जाती है, शाह जैसे धनी लोगों का मुकदमा जीतना, ब्रिटिश उपनिवेशवादी व्यवस्था और भ्रष्ट न्यायिक व्यवस्था, गाँव में शहदाद की हत्या, तरशाह द्वारा बरकती को उठा ले जाना व अन्य आपराधिक घटनाओं का प्रमाणिक चित्रण भी लेखिका द्वारा अत्यंत कौशल के साथ किया गया है जिससे परिवेश यथार्थ और जीवंत बना रह सके। लोहड़ी और बैसाखी के साथ सावन में बरसात के मौसम का भी चित्रण किया गया है—‘सावन की जल-बिंबियाँ यह आ और वह जा! फणकारे मारते पनीले मीह एसे घिर-घिर आए ज्यों गाज़ी मरदों के लश्कर! बादल गरजें-कड़कें, कड़ाकों से मानो फौजों की टुकड़ियाँ! बिजली लप्प-लप्प चमके ज्यों तलवारें! चमा-चम्म! झमा-झम्म!’⁷

पंजाब के ग्रामीण जीवन में फौज में भर्ती होना, लड़ते हुए शहीद होना अथवा फौज से रिटायर होकर गाँव में बसने का भी एक महत्वपूर्ण पहलू रहा है। इस तरह के अनगिनत किस्से ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग रहे हैं। जहाँदादजी ने आप ही खुलासा किया—

‘मद्रासी मनुक्ख निस्वतन स्वभाव से ही ठंडा है। कद-बुर्ती छोटा संजम-मरजादावाला। इधर अपनी पल्टन का फुल्ल-फैलाव ज्यादा। शोर-शराबा ज्यादा, धक्का-मुक्की ज्यादा।

गंडासिंह हँसे-गज-गज के बाजू-बाँहें उठें बुनेखाल, गिलजई, दुरानी, पठानों के तो देखनेवाले को लगे बंदे हाथापाई कर रहे हैं। चलो जहाँदाद, आगे चलो।

तो जी, उस दिन झाँसी टेशन पर समझो भाँगड़ा पड़ गया। पर अपनी पंजाबी पल्टन का हवलदार मेजर गुल बादशाह झाँसी टेशन पर एसे सजा रहा ज्योंक पठान ब्लोच दरों पर सजते हैं। पीडी काठी, रंग विलायती। माँ गालबिन अँग्रेज थी उसकी। बड़ा दक्ख अँग्रेज पठान का। खड़ा-खड़ा मुस्कराता रहा। अपनी पल्टन तो उस पर फिदा थी न! मद्रासी पल्टन ने मुँह-माँह बहुतेरे चढ़ाए पर हवलदार मेजर अपने रौबदाब में मस्ता।⁸

फौज से सेवानिवृत्त हुए जहाँदाद और गंडासिंह फौज के किस्से सुनाकर पूरा गाँव का मनोरंजन करते हैं। गाँव में सभी ग्रामीणों का एकसाथ बैठकर किस्से सुनना-सुनाना, हँसी-मजाक करना ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग रहा है। गाँव में मजलिस में होनेवाली चर्चा का विशेष महत्व रहता है। शाह दरबाज में लगने वाली मजलिस में मौलादाद, फतेह अलीजी, कृपाराम आदि के बीच होने वाली बातचीत में पंजाब की ग्रामीण संस्कृति के अनेक पहलू उद्घाटित होते हैं। ‘जहाँदाद जी ने अपने साथी को मजलिस में पेश किया, बादशाहो, यह हैं अपने अजीज दोस्त साहिब खाँ। अपने 40 पंजाबी पल्टन के ही हैं।’⁹ मजलिस में एक चिट्ठी पढ़ी जाती है—‘पुत्र नसीबसिंहा, अपनी भूरी गाय के लिए एक बड़ी सोहणी खड़केदार टल्ली खरीदी है। हठीली भूरी चलेगी तो पिंड सुनेगाश सुनकर तेरा जी बड़ा राजी होगा। मजलिस को बताना, गदर नादिरगर्दी से डरकर कलकत्ते का बड़ा हाकम इस्तीफा दे गया है! —आपका बाबा तुफैलसिंह¹⁰

इस मजलिस में देश की राजनीतिक स्थिति पर भी चर्चा होती है। गाँव में एकाध अखबार आता है जिसे छोटा काशीशाह पढ़कर सुनाता है। कभी-कभार अखबार जहाँदाद जी भी पढ़ लेते थे, 'देखो, इधर लाट कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े किए, उधर तन-तनाव बढ़ गया! ओहो जी, सरकार नरे एस कर भी दिया तो कयामत क्या आ गई! ये हदबंदियाँ जमानों से होती आईं। खालसों काबुल तक का इलाका घेर डाला था पंजाब में!

दूर क्यों जाना कमईलाहीजी, अपने कोटला, ककराली, खारी, खरियाली पहले कश्मीर रियासत के भिंबबर तहसील में लगे हुए थे। बाद में सरकार अँग्रेजी ने अपनी तरफ खींच लिए। और शाह साहिब, पहले शाहपुर जिले के आठ पिंड अपने जिला गुजरात में लगे हुए थे। बजावत और तवी के इलाके को स्यालकोट में लगा दिया। सरकार जो चाहे करे। सरकार जो हुई! शाहों के यहाँ जन्मे लालीशाह के उत्सव पूरे गाँव में चलते रहते हैं। गायन के लिए हुस्नां और बुद्धां को बुलाया जाता है जिसके माध्यम से कृष्णा जी पंजाब के लोकगीतों की परंपराओं को जीवंत बना देती है। हुस्नां और बुद्धां जैसी हसीन गायकों को चाँद की संज्ञा दी जाती है। 'रेत पर बैठी टोलियाँ पूरे चाँद पर कुर्बान हो-हो गईं। कहीं टप्पे, कहीं पूर्ण भगत, कहीं सस्सी-पुनू। कहीं मिर्जा-साहिबाँ की तान...'¹²

मजलिस में बहुत सी चर्चाओं के बहाने लेखिका ने अपने प्रसंगों को जीवंत बनाया है। इसमें पंजाब के इतिहास से लेकर लाहौर के जालिम सुबेदार मीर मन्नु, अब्दाली शाह दुर्गानी, सिख प्रतिरोध, गुरु गोविंदसिंह जी की भूमिका आदि की चर्चाएँ शामिल हैं। इस उपन्यास में धर्म और जाति से ऊपर उठकर प्रेम-प्रसंग भी हैं। विधवा ब्राह्मणी का मुसलमान से और तारेशाह का छोटी जाति की नारी से प्रेम यह दर्शाता है कि तत्कालीन समय में प्रेम जाति और धर्म के भेदभाव से परे सहज और प्राकृतिक था। डेरा जट्टा गाँव से ही यह जानकारी भी मिलती है कि तत्कालीन समय अर्थात् बीसवीं सदी के प्रारंभ में किस तरह पंजाब के लोग इंग्लैंड और कनाडा में बसते गए। यथा-गदरवारों का यह नारा कनाडा से ही चला है! बादशाहो, सोचने वाली बात है। हुकूमत दिल्ली में बैठी हो और लड़ाई-बगावत छेड़ लो आप कनाडा से...'¹³

इस उपन्यास के अंत में द्वितीय विश्व युद्ध (1914) का भी जिक्र किया गया है जिसके लिए डेरा जट्टा गाँव से लोगों को फौज में जबरन भर्ती किए जाने का चित्रण कृष्णा जी ने किया है। युद्ध के दौरान गदरी आंदोलन की शुरुआत होती है। कृष्णा जी इस उपन्यास का अंत गदरी क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति और समर्थन की भावना के साथ गुरुगोविंदसिंह जी के इस संदेश के माध्यम से करती हैं- 'चूँ कार अज हमाँ हीलते दरगुजशत। हलाहस्त बुर्दन ब-शमशीर दस्त!! जब दूसरे सब रास्ते कारगर न हों सकें तो जुल्म के खिलाफ तलवार उठा लेना जायज है।'¹⁴

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिंदगीनामा उपन्यास विभाजन के पूर्व पंजाब की लोकसंस्कृति पर आधारित उपन्यास है जिसमें कृष्णा जी ने अत्यंत कौशल के साथ सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण किया है। लोकसंस्कृति के साथ-साथ तत्कालीन पंजाब की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों का भी यथार्थ चित्रण किया है।

संदर्भ

1. विश्वनाथ त्रिपाठी, नया ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, फरवरी 2019, पृ० 10
2. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2020, फ्लैप से
3. वही, पृ० 8

4. वही, भूमिका से
5. सारिका, साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत कृष्णा सोबती के उपन्यास 'जिंदगीनामा' में वर्णित विविध स्वर, शोधश्री, अक्टूबर-दिसंबर 2019, पृ० 99-102
6. कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020, आवरण से
7. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 106
8. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 339
9. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 339
10. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 216
11. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 184
12. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 173
13. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 363
14. वही, छठा संस्करण 2003, पृ० 185

नागरिकता संशोधन कानून 2019 की संवैधानिकता और राजनीतिक परिदृश्य

डॉ० अविनाश प्रताप सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ०प्र०)

आधुनिक लोकतांत्रिक देशों में नागरिक और नागरिकता कानून का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। संप्रभुता संपन्न इन देशों में नागरिकता के अलग-अलग कानून हैं। जिसके आधार पर वह देश अपने यहाँ नागरिकता प्रदान करते हैं। भारतीय संविधान में भी नागरिकता संबंधी उपबंध उल्लिखित हैं। यद्यपि नागरिकता संबंधी पूरी विधि संविधान में उल्लिखित नहीं है। संविधान का भाग दो केवल उन वर्गों के लोगों के बारे में उल्लेख करता है जो संविधान लागू होने के समय अर्थात् 26 जनवरी 1950 ई० को भारतीय नागरिक माने गए थे और नागरिकता से संबंधित शेष बातों के लिए विधि बनाने की शक्ति संसद को प्रदान करता है। संविधान का अनुच्छेद 11 संसद को इस विषय पर विधि बनाने की शक्ति देता है। भारतीय संसद ने नागरिकता संबंधी प्रावधानों की पूर्ति के लिए 1955 ई० में भारतीय नागरिकता अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम में संविधान लागू होने के पश्चात नागरिकता प्राप्ति और समाप्ति से संबंधित प्रावधान दिए गए हैं। भारतीय नागरिकता अधिनियम 1955 में दिए गए प्रावधान के आधार पर वर्तमान की नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार ने संसद के दोनों सदनों से दिसंबर 2019 ई० में नागरिकता संशोधन कानून 2019 पारित कराकर ऐतिहासिक निर्णय लिया। इस संशोधन कानून के उपरांत पाकिस्तान, बांग्लादेश एवं अफगानिस्तान में वर्षों से परिवार सहित प्रताड़ित ऐसे अल्पसंख्यकों जो 31 दिसंबर 2014 या उससे पूर्व भारत में रह रहे थे, उनको भारत की नागरिकता प्रदान किए जाने का प्रावधान किया गया। इस संशोधन अधिनियम में यह उल्लिखित है कि पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से धार्मिक आधार पर प्रताड़ित हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, परासी तथा ईसाई समुदाय के अल्पसंख्यक समुदायों को भारत की नागरिकता प्रदान की जाएगी। 12 दिसंबर 2019 को भारत के माननीय राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के उपरांत यह संशोधन लागू हो गया। लेकिन नागरिकता संशोधन कानून 2019 के लागू होने के साथ ही इस पर हिंसक विरोध भी प्रारंभ हो गया। इस संशोधन की संवैधानिकता पर भी निराधार प्रश्न भी उठाए जाने लगे। उनके स्थानों पर विरोध के नाम पर लूटपाट-आगजनी कर देश को अस्थिर करने का भी प्रयास किया गया। देश के अंदर और वैश्विक पटल पर भारत की न्यायप्रियता और अखंडता स्थापित मानवीय मूल्यों की प्रासंगिता को भी चोटिल करने का कलुषित प्रयास देखने को मिला। प्रस्तुत शोधपत्र में नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 की संवैधानिकता तथा वोट बैंक की राजनीति के लिए भारत की एकता अखंडता को नुकसान पहुँचाने वाले निराधार प्रतिपक्ष की राजनीति के परिप्रेक्ष्य पर तथ्यात्मक विश्लेषण समीचीन है।

नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 के माध्यम से प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी की नेतृत्व वाली केंद्र सरकार ने संविधान की सर्वधर्म समभाव जैसी मूलभावना को प्रतिस्थापित किया है। वर्षों से धार्मिक आधार पर प्रताड़ित हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, परासी तथा ईसाई समुदाय के लोगों को भारत की नागरिकता प्रदान कर पूरे दुनिया को मानवता का अमर संदेश दिया है। सर्वविदित है कि आधुनिक लोकतंत्र में नागरिकता प्राप्त होना सुखद अनुभूति है। यह व्यक्ति की गरिमा तथा गौरव का प्रतीक है। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में नागरिक होना पंसद करता है क्योंकि साधारण निवासी की अपेक्षा नागरिक कतिपय विशेष अधिकार का उपयोग-उपभोग करता है।² नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 से पूर्व इसमें आठ बार 1957, 1960, 1985, 1986, 1992, 2003, 2005 और 2015 में संशोधन किया जा चुका है।³ इस विधेयक को कानून का रूप देकर वास्तव में मोदी सरकार ने अपने एक और वादे के माध्यम से राष्ट्रीय एकता-अखंडता को अक्षुण्ण बनाने का मार्ग प्रशस्त किया है। इस विधेयक के कानून बन जाने के बाद उसका विरोध जारी है। विपक्षी दल अफगानिस्तान, पाकिस्तान और बांग्लादेश के अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच अंतर करने के कारणों को समझने के लिए तैयार नहीं है। या फिर यह कहें कि वोट बैंक की राजनीति के कारण वह इसे समझना नहीं चाह रहे हैं। वास्तव में यह तथा कथित प्रतिपक्षी दल वर्षों से तुष्टिकरण की राजनीति के माध्यम से सत्ता प्राप्त करते रहे हैं। लेकिन उनका यह तिलिस्म अब टूटा है। इससे बौखलाहट में ऐसे कृत्यों को बढ़ावा दे रहे हैं जो राष्ट्र और समाज विरोधी हैं।⁴

नागरिकता कानून पर वोट बैंक की राजनीति करने वाले विपक्षी दलों ने संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन का आरोप लगाया है। जबकि अनुच्छेद 14 तर्कसंगत विभेद पर आधारित कानून बनाने की अनुमति देता है।⁵ नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 का विरोध करने वालों को इस बात का संज्ञान क्यों नहीं हो रहा है कि यह कानून नागरिकता छीनने का नहीं अपितु नागरिकता प्रदान करने का प्राविधान करता है। स्वयं प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि नागरिकता संशोधन कानून किसी की भी नागरिकता छीनने के लिए नहीं, यह नागरिकता देने के लिए है, हमारे तीन पड़ोसी देशों के वे अल्पसंख्यक, जो अत्याचार की वजह से भागकर भारत आने के लिए मजबूर हुए उन्हें कानून में कुछ मदद की गई है, रियायत दी गई है।⁶ उन्होंने भारत के सभी मुसलमानों को आश्वस्त करते हुए कहा कि इस कानून से किसी भी मुसलमान नागरिक की नागरिकता नहीं समाप्त हो रही है। विपक्ष के राष्ट्र विरोधी प्रयास से सभी को सजग रहना चाहिए।⁷ नागरिकता कानून के विरोध के नाम पर जिस प्रकार से संपूर्ण देश को हिंसा में झोंकने का प्रयास किया गया वह किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं माना जाना चाहिए। विरोध का अधिकार के नाम पर हिंसा को स्वीकार नहीं किया जा सकता। नागरिकता कानून का विरोध करने उतरे तमाम लोगों का नहीं पता किसके लिए है और उसका देश के किसी भी नागरिक से कोई मतलब नहीं, भले ही वह चाहे जिस पंथ का हो। इस अज्ञानता से तमाम सेलिब्रेटी कहे जानेवाले लोग भी ग्रस्त हैं। विपक्ष बहुत ही सुनियोजित तरीके से अफवाह फैला रहा है कि यह कानून देश के मुसलमानों के खिलाफ है।

प्रश्न बहुत सरल है किसी को आश्रय देने से क्या बिगड़ता है। मजहबी उत्पीड़न के शिकार लोगों को यदि भारत आश्रय देता है तो इससे भारतीय मुसलमानों या किसी अन्य का अहित कैसे हो सकता है? प्रश्न यह भी उठाया जा रहा है कि इन तीनों इस्लामिक देशों के 06

समुदायों को नागरिकता मिल रही है तो उन देशों के मुसलमानों को क्यों नहीं? इसका सीधा उत्तर यह है कि ये तीनों देश घोषित रूप से इस्लामिक राष्ट्र हैं, इसलिए वहाँ मजहबी आधार पर मुस्लिम उत्पीड़न की बात हास्यपद है। इन तीनों देशों में मुसलमान बहुसंख्यक हैं, साथ इस्लाम धर्म राज्य का धर्म स्वीकार किया गया है। इस कारण तार्किक पक्ष यही है कि इन देशों में अल्पसंख्यक समुदाय जो वर्षों से प्रताड़ित हो रहा था। अपने प्राणों और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए भारत में शरण लिया है। यदि भारत उन्हें शरण नहीं देगा तो दुनिया का और कौन देश शरण देगा तथा क्यों देगा।⁹ वाजपेयी सरकार में वरिष्ठ कांग्रेसी नेता डॉ॰ मनमोहन सिंह ने यह माँग की थी कि बांग्लादेश से प्रताड़ित होकर आए अल्पसंख्यकों को नागरिकता दी जानी चाहिए। यह माँग उन्होंने राज्यसभा में नेता विपक्ष के रूप में की थी। प्रत्येक कानून का एक संदर्भ और उद्देश्य होता है। सीए का भी विशेष संदर्भ और उद्देश्य है। सामुदायिक आधार पर विभाजन से पाकिस्तान और बांग्लादेश मुस्लिम बहुल राज्य बने, जिन्होंने इस्लाम को अपना राजधर्म घोषित किया। इससे वहाँ गैर इस्लामिक लोगों मुख्यतः हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, परासी तथा ईसाइयों पर अत्याचार होने लगे। इन देशों में इनकी संख्या लगातार घटती गई। पाकिस्तान में हिंदुओं की जनसंख्या 12 प्रतिशत से घटकर 02 प्रतिशत और बांग्लादेश में 22 प्रतिशत से घटकर 08 प्रतिशत हो गई है।¹⁰

इस कानून के माध्यम से ऐसे बेघर, गरीब, मजबूर, दलित लोगों को अधिकार और सम्मान के साथ भारत में जीवन जीने का हक मिला। इसका विरोध करना वास्तव में दलितों और महिलाओं का विरोध है। क्योंकि इन तीनों देशों में उत्पीड़न का शिकार ज्यादातर दलित और महिलाएँ ही हैं। पाक से भारत आने वालों में ज्यादातर दलित हिंदू हैं, फिर भी कई दलित नेता नागरिकता कानून का विरोध करने में लगे हैं।¹¹ भारतीय संसद द्वारा पारित नागरिकता कानून संशोधन को कुछ राज्य जहाँ एन०डी०ए० से इतर सरकारें हैं, वहाँ पर अपने विधानसभाओं में प्रस्ताव पारित कर इस कानून को अपने प्रदेश में नहीं लागू करने का निश्चय किया जाना संघीय ढाँचे पर सीधे तौर पर हमला है। केरल, पंजाब, राजस्थान, पश्चिम बंगाल सहित कुछ राज्यों ने भेदभाव और सामाजिक अंसतोष पैदा करने वाला कानून बताकर समाज में भ्रम की स्थिति पैदा की है। यह प्रस्ताव न केवल अंसवैधानिक है बल्कि अप्रत्याशित भी है। जो देश के संघीय ढाँचे के लिए भी निश्चित रूप से खतरा पैदा करते दिख रहा है।¹² पंजाब सरकार ने तुष्टिकरण की राजनीति की हद ही पार कर दी। अपने प्रस्ताव के माध्यम से विधानसभा में सरकार की ओर से कहा गया कि एन०पी०आर० राष्ट्रव्यापी एन०सी०आर० का पहला पड़ाव है। जिसका लक्ष्य एक वर्ग को भारतीय नागरिकता से वंचित करना है और इन आशंकाओं को देखते हुए केंद्र सरकार को एनपीआर के प्राविधानों को बदलना चाहिए।¹³ सर्वविदित है कि नागरिकता पर कानून बनाने का एकाधिकार संविधान भारतीय संसद को देती है। यदि किसी राज्य के मुख्यमंत्री यह कहें कि वह संसद द्वारा पारित नागरिकता कानून को अपने प्रदेश में लागू नहीं करेंगे तो इसे संवैधानिक अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, जिसके गंभीर परिणाम होंगे। जो लोग ऐसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे रहे हैं, वे एक बेहद खतरनाक राह पर बढ़ रहे हैं। देश की जनता को सतर्क रहना होगा कि संवैधानिक मूल्य एवं लोकतांत्रिक जनजीवन किसी तरह अस्थिर न हो जाएँ।¹⁴ विपक्षी दलों का इस प्रकार का कृत्य राष्ट्रीय एकता-अखंडता पर प्रहार के रूप में देखा जाना चाहिए। मुसलमानों के मन में उनके द्वारा बैठाए गए भ्रम का फायदा कट्टरपंथी ताकतें उठाती नजर आ

रही हैं।¹⁵ वास्तव में नागरिकता कानून में हुए संशोधन और एनआरसी तैयार करने की चर्चा से डरे घुसपैठियों के वापस बांग्लादेश लौटने की आ रही खबरों से देश में वोट बैंक के सौदागर तिलमिला उठे हैं।

नागरिकता कानून का विरोध राजनीतिक दायरों से बाहर निकलकर संवैधानिक और धार्मिक-सांस्कृतिक धरातल पर भी होने लगा है। झूठ के सहारे सीएए का विरोध संवैधानिक और सांस्कृतिक धरातल पर खतरनाक तो है ही, राजनीतिक रूप से अनैतिक भी है। नागरिकता या जनगणना जैसे विषय संघ सूची में ही हैं। संसद द्वारा बनाए गए कानून का अनुपालन प्रत्येक राज्य को करना ही पड़ेगा। इसे न मानने का अर्थ है-संविधान का उल्लंघन और अपमान है।¹⁶ मूलरूप से देखें तो नागरिकता कानून को लेकर कांग्रेस सहित इस कानून से असहमत दल दो सवाल उठा रहे हैं, पहला सवाल यह है कि संविधान सिर्फ पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के लिए और दूसरा सवाल यह है कि यह कानून धार्मिक भेदभाव करता है। इन्हीं दो सवालों के इर्द-गिर्द देश में भ्रामक वातावरण तैयार कर इन राजनीतिक दलों द्वारा साबित करने का प्रयास किया जा रहा है कि यह कानून मुस्लिम विरोधी है। जबकि नागरिकता संशोधन कानून संवैधानिकता की कसौटी पर खरा है। यथार्थ में इस कानून का उद्देश्य क्या है? उसे ठीक से समझने की जरूरत है। विवाद स्वतः ही समाप्त हो जाएगा। क्योंकि इस कानून का न तो भारत के मुसलमानों से कोई लेना-देना है और न ही यह इस्लाम के आधार पर भेदभाव करता है। अपितु यह कानून हर व्यक्ति से समानता के साथ-साथ कानून के द्वारा हर व्यक्ति को समान संरक्षण की भी बात करता है। स्वयं महात्मा गांधी का भी स्पष्ट विचार था कि भारत के बँटवारे के समय पाकिस्तान में रह रहे हिंदुओं को भारत में आने का अवसर दिया जाना चाहिए। इसी बात का उल्लेख 23 दिसंबर 2019 को प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि महात्मा गांधी जी ने कहा था पाकिस्तान में रहने वाले हिंदु और सिख साथियों को जब लगे कि उनको भारत आना चाहिए तो उनका स्वागत है।¹⁷ 30 जनवरी 2020 को भारत के माननीय राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने भी नागरिकता संशोधन कानून पर बजट सत्र से पहले संसद की संयुक्त बैठक को संबोधित करते हुए कहा कि मुझे खुशी है कि संसद के दोनों सदनों द्वारा नागरिकता संशोधन अधिनियम लागू करने से राष्ट्रपिता की इच्छा पूरी हुई है, साथ ही उन्होंने अल्पसंख्यकों पर पाकिस्तान में हो रहे अत्याचार की निंदा भी की।

नागरिकता संशोधन कानून 2019 को संसद द्वारा पारित करने उपरांत उसे लागू किया जाना सरकार की मानवता एवं मनवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता का परिचायक है। भारतीय संस्कृति मानवता के महान संस्कार को पोषक भी है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया' की परिकल्पना का साकार स्वरूप है। प्राचीनकाल से मानवीय मूल्य और राष्ट्रीय चेतना भारत में रची-बसी है। ऐसे में जब पड़ोस के तीन देशों में धार्मिक आधार पर अपने अल्पसंख्यक नागरिकों के साथ अमानवीय यातनाओं और भेदभाव किए जाने के उपरांत अपने जीवन रक्षा के लिए वर्षों से भारत में रिफ्यूजी का जीवन व्यतीत कर रहे 06 समुदायों को नागरिकता प्रदान किया जाना भारतीय संसद और सरकार का अत्यंत महत्वपूर्ण और पुण्य कार्य है। इसका विरोध राजनीतिक अपरिपक्वता है। सीएए संवैधानिक रूप से पूरी तरह वैध है। यह प्रातड़ित लोगों को मानवीय आधार पर आसरा देने वाला कानून है। तुष्टिकरण और वोट बैंक की राजनीति से ऊपर उठकर एकता-अखंडता की सर्वोच्चता सभी को स्वीकार करना ही चाहिए।

संदर्भ

1. डॉ० जयनारायण पांडेय, सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहाबाद, 2020, पृ० 46
2. बसंतीलाल वाबेल, भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, 2011, पृ० 51
3. डॉ० ए० के० वर्मा, नागरिकता कानून एवं उसकी विकास यात्रा, नागरिकता संशोधन कानून : ऐतिहासिक कदम और निर्मूल शंकाएँ, डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृ० 7
4. संजय गुप्त, नागरिकता कानून पर दुष्प्रचार, दैनिक जागरण, 15 दिसंबर 2019, पृ० 12
5. वही
6. नरेंद्र मोदी, भयभीत विपक्ष जनता में फैला रहा है भ्रम, दैनिक जागरण 23 दिसंबर 2019, पृ० 1
7. वही
8. संजय गुप्त, अराजकता फैलाने वाली राजनीति, दैनिक जागरण, 22 दिसंबर 2019, पृ० 15
9. बलवीर पुंज, नागरिकता संशोधन कानून पर बवाल क्यों?, नागरिकता संशोधन कानून : ऐतिहासिक कदम और निर्मूल शंकाएँ, डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृ० 15
10. डॉ० ए० के० वर्मा, नागरिकता कानून को सही संदर्भ में देखने से इनकार, दैनिक जागरण, 27 दिसंबर 2019, पृ० 10
11. दिव्य कुमार सोनी, पड़ोस के अल्पसंख्यकों की घातक अनदेखी, दैनिक जागरण
12. ए० सूर्यप्रकाश, संघीय ढाँचे पर हमला करते राज्य, दैनिक जागरण, 29 जनवरी 2020 पृ० 10
13. वही
14. वही
15. हरेंद्र प्रताप, अभिव्यक्ति की आजादी का घातक इस्तेमाल, दैनिक जागरण, 28 जनवरी 2020, पृ० 14
16. प्रो० निरंजन कुमार, सीएए विरोध का खतरनाक रूप, दैनिक जागरण, 3 जनवरी 2020, पृ० 10
17. कीर्ति दूबे, बीबीसी न्यूज, 24 दिसंबर 2019, <https://www.bbc.com>

हिंदी साहित्य के उत्थान में पत्रकारिता का योगदान

रश्मि सिंह

शोधछात्रा, हिंदी विभाग

आर०के०डी०एफ० विश्वविद्यालय, राँची

मुद्रणालयों के स्थापना के कारण न केवल सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारों का प्रचार-प्रसार हुआ, बल्कि पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा विचारों का भी आदान-प्रदान सहज रूप में होने लगा। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने हिंदी साहित्य के उत्थान में अभूतपूर्व प्रगति किया। भारतेंदुयुग के ज्यादातर साहित्यकार पत्र-पत्रिकाओं के संपादन कार्य से जुड़े हुए थे, भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', तथा प्रतापनारायण मिश्र आदि साहित्यिक पत्रकारिता के प्रकाशन द्वारा हिंदी साहित्य के उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे एक बहुत ही सुंदर, मधुर और स्वच्छ रूप प्रदान किया तथा हिंदी साहित्य को एक नया रास्ता दिखाया। भारतेंदुयुग के प्रसिद्ध पत्रकार एवं साहित्यकार बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने 1871 ई० में 'हिंदी दीप्ति प्रकाश' नामक एक संवादपत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया तथा हिंदी के पाठक उत्पन्न करने के लिए बहुत परिश्रम किया करते थे यहाँ तक कि वह लोगों के घरों में जाकर संवादपत्र सुनाया करते थे। पत्रिकाओं के द्वारा ही सर्वप्रथम हिंदी समालोचना का सूत्रपात हुआ जिसमें पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' तथा बालकृष्ण भट्ट का नाम उल्लेखनीय है। उस समय के लेखक पत्र-पत्रिकाओं में गंभीर लेख लिखा करते थे जिससे राष्ट्रीय चेतना भी अधिक प्रखर रूप में सामने आया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन करते हुए हिंदी साहित्य की भाषा और व्याकरण की शुद्धता पर बहुत ध्यान दिया इस प्रकार 'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा हिंदीभाषा का परिष्कार उनकी पहली प्राथमिकता थी। हिंदी गद्य की कहानी विद्या का आरंभ भी 'सरस्वती' के द्वारा ही हुआ जिसका विकसित रूप प्रेमचंद युगीन कहानियों में देखने को मिलती है। 'सरस्वती' में पुराने तरीके की कविताओं और समस्यापूर्ति के स्थान पर खड़ीबोली की कविताएँ प्रकाशित होने लगी थी। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने अनेक साहित्यिक आंदोलनों को आगे बढ़ाने में भी अपना योगदान दिया अनेक साहित्यकारों को लेखनकार्य के लिए प्रेरित किया है। पत्र-पत्रिकाओं ने साहित्यिक के विभिन्न विधाओं को पल्लवित-पुष्पित किया तथा साहित्यिक चेतना और विभिन्न साहित्यिक विमर्शों को आगे बढ़ाने में अपना अहम योगदान दिया है।

'नई अर्थव्यवस्था और शिक्षा के कारण भारतीय जनता में एक ऐसी चेतना उत्पन्न हुई जिसके आधार पर वे कठिनाइयों को समझने और उनको दूर करने की कोशिश करने लगे। इसके लिए प्रैस से बेहतर और कोई साधन नहीं हो सकता था। इसके अग्रदूत भी राजा राममोहन राय थे।' राजा राममोहनराय के सहयोग से सन् 1821 ई० में 'संवाद कौमुदी' नामक बँगला पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ जिसका संचालक ताराचंद दत्त और संपादक भवानीचरण वंधोपाध्याय थे। यह

एक साप्ताहिक पत्र थी जिसमें सामाजिक समस्याओं से संबंधित लेख छपते थे। 'हिंदी में साहित्यिक पत्रिकाओं का एक लंबा और समृद्ध इतिहास है। इसका आरंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया था। उनके शब्दों में—'हिंदी नई चाल में ढली 1873 ई० में' परंतु हिंदीभाषा की चिंता के संकेत उससे भी पहले मिलने लगे थे। 30 मई 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित हिंदी के पहले समाचारपत्र 'उदंत मार्तंड' के आश्विन वादि-3' के अंक में उसके संपादक युगलकिशोर शुक्ल ने 'अशुद्धता' शीर्षक से एक टिप्पणी लिखकर 'समाचार-दर्पण' की भाषा त्रुटि पर तीखा व्यंग्य किया था।² इस प्रकार हिंदी के प्रारंभिक समाचारपत्रों ने भी हिंदी गद्य के उत्थान में अपना योगदान दिया। 'भारतेंदु ने बनारस से 15 अगस्त 1867 को एक कविता केंद्रित पत्रिका 'कवि वचन सुधा' प्रकाशित की। उस पत्रिका के साथ ही कविता के पाठकों का विस्तार हुआ। बाद में गद्य साहित्य भी कवि वचन सुधा में छपने लगा था। 'कवि वचन सुधा' का आदर्श वाक्य था—'अपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै।' यानी भारत अपने सत्व को प्राप्त करें। भारतेंदु ने हिंदी के नए कवियों की रचनाएँ ही नहीं, श्रेष्ठ विदेशी रचनाएँ भी प्रकाशित कीं। सात साल से ज्यादा समय तक 'कवि वचन सुधा' निकलने के बाद भारतेंदु ने 15 अक्टूबर 1873 को हरिश्चंद्र मैगजीन का प्रकाशन प्रारंभ किया। उसके केवल आठ अंक ही निकल सके। उसके बाद उसका नाम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया।³ हरिश्चंद्र चंद्रिका पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, 'हिंदी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले पहल इसी 'चंद्रिका में प्रकट हुआ। जिस प्यारी हिंदी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौड़कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका में हुआ। भारतेंदु ने नई सुधरी हुई हिंदी का उदय इसी समय में माना है। उन्होंने 'कालचक्र' नाम की अपनी पुस्तक में नोट किया है कि हिंदी नई चाल में ढली, सन् 1873 ई०।'⁴ लाला श्रीनिवासदास का नाटक 'तप्तासंवरण' सर्वप्रथम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' में ही छपा था। 'मैगजीन में प्रकाशित हरिश्चंद्र का 'पाँचवें पैगंबर', मुंशी ज्वालाप्रसाद का 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत स्वप्न' बाबू कार्तिकप्रसाद का 'रेल का विकट खेल' आदि लेख बहुत दिनों तक लोग बड़े चाव से पढ़ते थे।⁵ इस प्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सन् 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधनी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। 'हिंदी गद्य की सर्वतोमुखीगति का अनुमान इसी से हो सकता है कि पचीसों पत्र-पत्रिकाएँ हरिश्चंद्र जी के जीवनकाल में निकलीं इनमें से अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ तो थोड़े ही दिन चलकर बंद हो गईं पर कुछ ने लगातार बहुत दिनों तक लोकहित साधन और हिंदी की सेवा की है जैसे—बिहार बंधु, भारत मित्र, भारत जीवन, उचितवक्ता दैनिक हिंदोस्थान, आर्यदर्पण, ब्राह्मण, हिंदी प्रदीप।⁶ 'मित्रविलास' ने पंजाब में हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस तरह भारतेंदुकाल के पत्रकारों में पं० प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट तथा पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' का हिंदी गद्य के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पं० प्रतापनारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' बालकृष्ण भट्ट के 'हिंदी प्रदीप' तथा पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' के 'आनंदकादंबिनी' साहित्यिक पत्र थे जिसमें बहुत ही सुंदर मौलिक गद्य प्रबंध तथा कविताएँ छपा करती थीं। इन पत्रिकाओं को उस समय आर्थिक संकटों का भी सामना करना पड़ता था। 'हिंदी प्रदीप' को कई बार बंद होना पड़ा था। 'ब्राह्मण' के संपादक पं० प्रतापनारायण मिश्र को ग्राहकों से चंदा माँगते-माँगते थककर कभी-कभी पत्र में इस प्रकार याचना करनी पड़ती थी—

आठ मास बीते, जजमान।

अब तौ करौ दच्छिना दाना⁷

भारतेंदु युग के सर्वाधिक समर्थ निबंधकार बालकृष्ण भट्ट ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से निबंध साहित्य को समृद्ध किया। 'भट्ट जी ने 'हिंदी प्रदीप' में कालिदास, श्री हर्ष, भवभूति, बिल्हण, बाण, त्रिविक्रम भट्ट, हरिश्चंद्र, भारवि, क्षेमेंद्र तथा गोवर्धन आदि कवियों के जीवन और योगदान पर लेख प्रकाशित किए और आलोचनाएँ भी छपीं। 'नल दमयंती', 'किरातार्जुनीयम', 'सौ अजान एक सुजान' और 'भाग्य की परख' जैसे नाटक और व्यंग्य रचनाएँ भी 'हिंदी प्रदीप' में प्रकाशित हुईं। 1908 में माधव शुक्ल की कविता छापने के लिए 'हिंदी प्रदीप' पर जुर्माना लगा, जिसे न चुका पाने के कारण उसका प्रकाशन बंद हो गया।⁸ नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1896 में आरंभ हुआ जिसका हिंदी साहित्य के उत्थान में विशेष स्थान है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल नागरीप्रचारिणी पत्रिका पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—'स्थापना के तीन वर्ष पीछे ही सभा ने अपनी पत्रिका (ना०० पत्रिका) निकाली जिसमें साहित्यिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक सब प्रकार के लेख आरंभ ही से निकलने लगे थे और जो आज भी साहित्य से संबंध रखनेवाले अनुसंधान और पर्यालोचन का उद्देश्य रखकर चल रही है। 'छत्रप्रकाश', 'सुजानचरित्र', 'पृथ्वीराजरासो' आदि पुराने ऐतिहासिक काव्यों को प्रकाशित करने के अतिरिक्त तुलसी, जायसी, भूषण, देव ऐसे कवियों की ग्रंथावली के भी बहुत सुंदर संस्करण सभा ने निकाले हैं। 'मनोरंजन पुस्तकमाला' में 50 से ऊपर भिन्न-भिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकें निकल चुकी हैं। हिंदी का सबसे बड़ा और प्रामाणिक व्याकरण तथा कोश (हिंदी शब्दसागर) इस सभा के चिरस्थायी कार्यों में गिने जाएँगे।'⁹

हिंदी साहित्य के उत्थान में 'सरस्वती' का योगदान अद्वितीय है। 'सरस्वती' पत्रिका 1900 में इलाहाबाद में इंडियन प्रेस से निकली। 1903 में महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक बने। 'द्विवेदी जी ने जिस लगन, निष्ठा, योग्यता और परिश्रम से 'सरस्वती' का संपादन किया वह पत्रकारिता के इतिहास में अत्यंत विरल है। इसके माध्यम से उन्होंने गद्य की भाषा को व्यवस्थित किया। अभी तक पद्य की भाषा ब्रजभाषा बनी हुई थी किंतु उन्होंने गद्य की भाँति पद्य की भाषा के लिए भी खड़ीबोली को चुना। इस प्रकार गद्य-पद्य की भाषा की विभाजक रेखा को मिटाकर उनके एकीकरण का जो कार्य संपन्न हुआ, उसका बहुत अधिक महत्त्व है। अनेक कवि लेखकों को प्रोत्साहित प्रतिष्ठित करने का श्रेय भी 'सरस्वती' को ही है।'¹⁰ आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि 'यद्यपि द्विवेदी जी ने हिंदी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा आदि की खरी आलोचना करके हिंदी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया। यदि द्विवेदीजी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण विरुद्ध और ऊटपटाँग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिसमें भाषा की समझ और योग्यता भी उन्होंने अपना सुधार किया।'¹¹ जिन रचनाकारों की रचनाएँ 'सरस्वती' में छप जाती थीं वे भी चर्चा में आ जाते थे। 'सरस्वती' ने सर्जनात्मक साहित्य की हर विधा के उत्थान में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती', 'गुलबहार', मास्टर भगवानदास की कहानी 'प्लेग की चुड़ैल' आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' 1903 में द्विवेदीजी के संपादन में 'सरस्वती' में ही छपी थी। गिरजादत्त वाजपेयी की कहानी 'पंडित और पंडितानी',

बंगमहिला (राजेंद्रबाला घोष) की कहानी 'दुलाईवाली', वृंदावनलाल वर्मा की कहानी 'राखी बंद भाई', विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की पहली कहानी 'रक्षाबंधन' 1913 में सरस्वती में ही छपी थी। प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'सौत' 1915 में तथा 1916 में 'पंच परमेश्वर तथा चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' 1915 में 'सरस्वती' में ही छपी थी। 'हिंदी मासिकों में सबसे विशिष्ट एवं स्मरणीय नाम 'सरस्वती' का है जिसके साथ आधुनिक हिंदी साहित्य के उद्भव के सूत्र अनुस्यूत है।¹² हिंदी साहित्य के छायावादीयुग के मूर्धन्य रचनाकार जयशंकर प्रसाद का कहानी जगत में आगमन इंदु के प्रकाशन से आरंभ हुआ—'1909 में काशी से 'इंदु' का प्रकाशन आरंभ हुआ और इसी के माध्यम से 'प्रसाद' का कहानी-साहित्य में प्रवेश हुआ। 'प्रसाद' की प्रारंभिक महत्त्वपूर्ण कहानियाँ—'आग', 'चंदा', 'गुलाम', 'चितौर-उद्धार' आदि 'इंदु' के प्रारंभिक वर्षों में प्रकाशित हुईं।¹³ पं० विश्वंभरनाथ जिज्जा की पहली मौलिक कहानी 'विदीर्ण हृदय' तथा राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह की कहानी 'कानों में कँगना' 1913 में इंदु में ही प्रकाशित हुई थी। इस प्रकार 'इंदु' पत्रिका को छायावाद की नींव डालने का भी श्रेय जाता है। 'सन् 1918 ई० में काशी से 'हिंदी गल्पमाला' नामक मासिक पत्र प्रकाशित हुआ। इस पत्र में कहानियों के कलात्मक विकास में बड़ा योग दिया। इसके प्रथम भाग के द्वितीय अंक में श्रीजी०पी० श्रीवास्तव की 'मैं न बोलूँगी' कहानी प्रकाशित हुई।¹⁴

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक साहित्यकार इलाचंद्र जोशी की पहली कहानी 'सजनवाँ' हिंदी गल्पमाला में ही छपी थी। जयशंकर प्रसाद की बहुत सी कहानियाँ जैसे—'पत्थर की पुकार', 'करुणा की विजय', 'उस पार का योगी', 'खंडहर की लिपि', 'प्रतिमा', 'पाप की पराजय' तथा 'दुखिया' आदि कहानियाँ गल्पमाला के बाद के अंकों की प्रतिष्ठित कहानियाँ हैं। 1920 में 'चाँद' का प्रकाशन प्रयाग से आरंभ हुआ। शुरू-शुरू में यह साप्ताहिक था जो कि 1923 में मासिक हो गया। इसमें नारी-विषयक समस्याओं तथा लेखिकाओं को प्राथमिकता दी जाती थी। चाँद में ही महादेवी वर्मा की अधिकांश रचनाएँ छपती थीं। नवंबर 1928 में 'चाँद' के फाँसी अंक में चार कहानीकारों की चार महत्त्वपूर्ण कहानियाँ प्रकाशित हुई थीं जिसमें पांडेय बेचन शर्मा उग्र की 'जल्लाद', चतुरसेन शास्त्री की 'फंदा', जनार्दनप्रसाद झा द्विज की 'विद्रोही के चरणों पर' तथा विश्वंभरनाथ कौशिक की 'फाँसी'। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफन', 'चाँद' में ही 1936 में प्रकाशित हुई थी। मुंशी प्रेमचंद ने सर्जनात्मक साहित्य रचने के समानांतर पत्रकारिता में भी अपना अहम योगदान दिया। 'प्रेमचंद द्वारा संपादित 'हंस' (बनारस, 1930) भी तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनने में समर्थ हुआ था। प्रकाशित होते ही 'हंस' समकालीन हिंदी कथासाहित्य का प्रतिनिधि पत्र बन गया। कथासाहित्य के अतिरिक्त इसमें उच्चकोटि की कविताएँ, एकांकी, निबंध और आलोचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं।¹⁵ इस पत्रिका का नामकरण 'हंस' छायावाद के महत्त्वपूर्ण कवि और नाटककार जयशंकर प्रसाद द्वारा दिया गया है। राजेंद्र यादव ने 1986 में 'हंस' का संपादन शुरू किया तथा अपने जीवन के अंतिम समय तक 'हंस' के संपादक बने रहे। इनकी मृत्यु के बाद 'हंस' संजय सहाय के संपादन में निकल रही है। 'मतवाला' का प्रकाशन 1923 में कलकत्ता से आरंभ हुआ जो कि हिंदी का पहला हास्य-व्यंग्य प्रधान साप्ताहिक साहित्यिक पत्र था। इसमें सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जाता था तथा ब्रिटिश सरकार की नीतियों पर कठोर प्रहार किया जाता था। 1947 में अज्ञेय ने द्वैमासिक साहित्यिक पत्रिका 'प्रतीक' का प्रकाशन आरंभ किया। 'प्रतीक' ने नई पीढ़ी

के रचनाकारों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अज्ञेय ने जनवरी 1951 में 'प्रतीक' को मासिक कर दिया। उस समय 'प्रतीक' की प्रसिद्धि इतनी थी कि जिन रचनाकारों की रचनाएँ इसमें प्रकाशित होती थीं वे रचनाकार भी रातों-रात प्रसिद्ध हो जाते थे। त्रिलोचन शास्त्री, रंगेय राघव, शमशेरबहादुर सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, शिवप्रसाद सिंह, जगदीश गुप्त तथा विद्यानिवास मिश्र 'प्रतीक' में अपनी रचनाओं के प्रकाशित होने पर ही प्रतिष्ठित हुए। 1952 में 'प्रतीक' का प्रकाशन बंद हो गया परंतु अज्ञेय ने 1973 में 'प्रतीक' का प्रकाशन पुनः आरंभ किया तथा इसका नाम 'नया प्रतीक' रखा। हिंदी साहित्य के उत्थान में 'कल्पना' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 'कल्पना' का प्रकाशन बदरी विशाल पित्ती ने 1949 में हैदराबाद से आरंभ किया। इस पत्रिका ने कई साहित्यकारों को पुष्पित और पल्लवित किया। कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'विमल उर्फ जाँएँ तो जाँएँ कहाँ' को उस समय के सभी प्रसिद्ध प्रकाशकों ने जब छापने से मना कर दिया था, तब बदरीविशाल पित्ती ने उस उपन्यास को 'कल्पना' में प्रकाशित किया। मार्कंडेय 'चक्रधर' उपनाम से काफी समय तक 'कल्पना' के सभी अंक में साहित्य समीक्षा का एक स्तंभ 'साहित्यधारा' नाम से लिखते थे।

पत्रिकाओं ने साहित्यांदोलनों में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है नई कविता आंदोलन को आगे बढ़ाने में 1954 में प्रकाशित 'नई कविता' पत्रिका का बहुत बड़ा योगदान है। 'नई कविता' के पहले अंक को लेकर साहित्य जगत में तीव्र प्रतिक्रियाएँ हुईं। 'जुही की कली' का एक सामूहिक रूपांतर सामने आया। कवियों, समीक्षकों, विद्वानों और पाठकों में कविता के इस नए स्वरूप को लेकर आक्रोश, विभ्रम, संभ्रम और सहानुभूति की विविध अर्थ-छायाएँ संभव हुईं। अनेक समीक्षाएँ और टिप्पणियाँ लिखी गईं। नई कविता आधुनिक वैचारिक रचनाशीलता का प्रतिमान बन गई।¹⁶ वहीं 'कहानी' तथा 'नई कहानी' पत्रिकाओं ने हिंदी में नई कहानी आंदोलनों को जन्म दिया। धर्मवीर भारती 6 मार्च 1960 को 'धर्मयुग' के संपादक बने और 28 नवंबर 1987 तक धर्मयुग का संपादन किया। धर्मवीर भारती ने उत्कृष्ट साहित्य प्रकाशित कर 'धर्मयुग' को एक श्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका के रूप में स्थापित किए। इस प्रकार 'समकालीन भारतीय साहित्य' सरकार के संरक्षण में निकलने वाली एक श्रेष्ठ पत्रिका है। सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य को हिंदी में प्रकाशित करके इसने पूरे देश की सांस्कृतिक चेतना की एकता का निदर्शन किया है।¹⁷ 'ज्ञानोदय', 'नया ज्ञानोदय' के नाम से 2003 से पुनः प्रकाशित होने लगी है जो कि एक मासिक पत्रिका है। इस पत्रिका ने हिंदी साहित्य को पल्लवित करने में अपना अहम योगदान दे रही है। 'महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय से 'बहुवचन' (त्रैमासिक) और 'पुस्तकवार्ता' (द्विमासिक) ये दो नई पत्रिकाएँ निकलने लगी हैं। 'बहुवचन' हिंदी की सर्वाधिक पृष्ठ संख्या वाली अपने ढंग की अकेली पत्रिका है। 'पुस्तक वार्ता' में मुख्यतः पुस्तकों की समीक्षा प्रकाशित होती है।¹⁸ इस प्रकार से हिंदी के प्रमुख दैनिक समाचारपत्रों के द्वारा भी साहित्यिक रचनाओं को प्रोत्साहन मिला जैसे कि 'दैनिक भास्कर', 'अमर उजाला', 'दैनिक जागरण' तथा 'जनसत्ता' आदि। इसमें से 'जनसत्ता' ने हिंदी साहित्य के लिए सबसे अधिक योगदान दिया है। वर्तमान समय में बहुत सी पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं तथा हिंदी साहित्य के विभिन्न विधाओं की रचनाओं को समृद्ध कर रही हैं, ऐसी पत्रिकाएँ हैं—'अक्षरा', 'वागर्थ', 'कथादेश', 'परिकथा' तथा 'वसुधा' आदि।

निष्कर्ष

साहित्यिक पत्रकारिता की परंपरा को भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्णभट्ट, पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', महावीरप्रसाद द्विवेदी, मुंशी प्रेमचंद, अज्ञेय, धर्मवीर, भारती तथा राजेंद्र यादव आदि जैसे महान संपादकों ने समृद्ध किया। पत्रकारिता के कारण साहित्य में वैयक्तिकता की भावना को बल मिला। पत्र-पत्रिकाओं में ही सर्वप्रथम निबंध, कहानी कविताएँ तथा आलोचनाएँ छपती हैं तथा बाद में पुस्तक के रूप में आती हैं। हिंदी साहित्य के विभिन्न विधाओं को समृद्ध करने में, पाठकों तक साहित्य को पहुँचाने में एवं रचनाकारों को प्रेरित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

संदर्भ

1. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2019, पृ० 25
2. epgp.inflibnet.ac.in/Home/viewssubject/catid=k18
3. वही
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, सुधा पब्लिकेशंस, जयपुर, पृ० 310
5. वही, पृ० 311
6. वही, पृ० 308
7. वही, पृ० 308
8. epgp.inflibnet.ac.in/Home/viewssubject/catid=k18
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, सुधा पब्लिकेशन, जयपुर, पृ० 328
10. बच्चनसिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2019, पृ० 105
11. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, सुधा पब्लिकेशन, जयपुर, पृ० 356
12. डॉ० नगेंद्र एवं डॉ० हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, नई दिल्ली, 75 संस्करण 2021, पृ० 862
13. डॉ० रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तेरहवाँ संस्करण 2020, पृ० 381
14. वही, पृ० 381
15. डॉ० नगेंद्र एवं डॉ० हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स, नई दिल्ली, 75 संस्करण 2021, पृ० 588
16. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, छब्बीसवाँ संस्करण 2021, पृ० 234
17. डॉ० रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तेरहवाँ संस्करण 2020, पृ० 1133
18. वही, पृ० 1133

मं० 39, रैन बसेरा कॉलोनी
मांझी टोला, आदित्यपुर
जमशेदपुर 831013 (झारखंड)
मो० 8434600606
ईमेल: rashmianku1986@gmail.com

बाजारवाद और समकालीन हिंदी उपन्यास

कमलेश

उदारीकरण की नीति के कारण भारत में अर्थ का निवेश बढ़ा और अर्थ के निवेश बढ़ने के साथ-साथ बाजारवाद ने भी जोर पकड़ा। दूसरी ओर विश्व के सभी देशों का पारस्परिक संपर्क बढ़ने से वस्तुओं एवं संस्कृति का आदान-प्रदान भी बढ़ा है। पश्चिमी संस्कृति उपभोक्तावादी एवं बुद्धिवादी है जबकि भारतीय संस्कृति अध्यात्मवादी एवं मानवतावादी है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव एवं आयातित उत्पादनों के फलस्वरूप भारत में सुख-सुविधाओं के साधन बढ़े। व्यक्ति का महत्त्व गौण हो गया। व्यक्ति का मूल्यांकन गुणों के आधार पर न होकर घर में रखी भौतिक वस्तुओं से होने लगा। आर्थिक दृष्टि से संपन्न साधनयुक्त मानव का सम्मान बढ़ा। पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्ते गौण हो गया। परिवार बिखरने लगे। रिश्ते दरकने लगे। यहाँ तक सामाजिक संबंध भी बिगड़ने लगे। मानव अर्थ के आधार पर नए-नए रिश्ते बनाने लगा। आयातित वस्तुओं के कारण देश में निर्मित वस्तुओं की माँग घटने लगी। इस प्रकार बढ़ते बाजारवाद का प्रभाव सामाजिक एवं पारिवारिक रिश्तों पर पड़ा साथ ही भारतीय कुटीर उद्योगों पर भी पड़ा है जिसके कारण बेरोजगारी बढ़ी है। प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन अर्थ अर्थात् उसकी कीमत के आधार पर किया जाने लगा।

आज के इस भौतिकवादी युग में मानवमूल्यों में उथल-पुथल मची हुई है। परंपराएँ संक्रमण की स्थिति से गुजर रही हैं, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में बदलाव आ रहा है। प्राचीनता के प्रति विद्रोह और नवीनता के प्रति मोह बढ़ता जा रहा है। अस्तु, समाज में मूल्य बदलाव की प्रक्रिया ने मानव को बहुत प्रभावित किया है। मानव की संचित चित्तवृत्तियों एवं धारणाओं का प्रतिफलन ही साहित्य है। धारणाएँ समाज सापेक्ष होती हैं तथा साहित्य में इनकी परिणति मूल्य का रूप ग्रहण कर लेती है। साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं होते। जीवन के श्रेष्ठ आचरण ही साहित्य में मूल्यों की संज्ञा प्राप्त करते हैं। वहीं साहित्य के मूल्यों की अभिव्यक्ति बिंबात्मक अथवा प्रतीकात्मक होती है। आज के इस भौतिकवादी युग में मानव मूल्यों में उथल-पुथल मची हुई है।

वर्तमान भौतिकयुग में चारों तरफ प्रतिस्पर्द्धाओं का दौर है। चित्त में वित्त का वास हो गया है। पूँजी संचार के माध्यमों और नाना प्रकार के विज्ञापनों से हमारे मानस को अपनी ओर मोड़ रही है। इसने एक उन्माद पैदा कर दिया है अब सत्य के स्थान पर असत्य तथा यथार्थ के स्थान पर आभासी यथार्थ प्रमुख है। हमारी प्राथमिकताएँ बदल गई हैं और बाजार हमारी प्राथमिकताओं व आवश्यकताओं को निर्धारित कर रहा है। बाजार हमारे लिए नहीं, हम बाजार के लिए बन गए हैं। बाजार का सिद्धांत है कि वह अपने लिए नायक चुनता है, लेकिन बहुत सोच-समझकर वह इस कार्य को अंजाम देता है। वह इसमें ऐसा कोई जोखिम नहीं उठाना चाहता, जहाँ उसका पैसा डूब जाए। वह केवल फायदे का सौदा करना चाहता है। बाजारवाद ने दुनिया को इतना प्रभावित किया है कि आज संबंधों में भी बदलाव आ चुके हैं और घर-परिवार का अर्थ बदल रहा है। इस बदलाव के पीछे पूँजी की असीम शक्ति है। श्रम की उपेक्षा हो रही है। निश्चय ही प्रत्येक

व्यक्ति जीवन में आनंद चाहता है। बाजार की ताकतें राजनीतिक सत्ता-सूत्रों का संचालन कर रही हैं। यहाँ तक कि लेखकों, बुद्धिजीवियों और कलाकारों की बौद्धिक दुनिया में बाजारवाद ने सेंध मारी है। विशेष रूप से कलाएँ बाजार की रखैल हो गई हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति ने आदमी को सामाजिक चिंताओं से विमुख करके आत्मकेंद्रित कर दिया है। इसने मूल्य संस्कृति को हर किस्म की नैतिक चेतना को विस्थापित करके वर्तमान के सुख और आनंद को ही सब-कुछ बना दिया है।

बाजारीकरण से प्रेस भी अछूता नहीं है। अखबारों के संपादक, संवादाता, मालिक एवं अन्य कर्मचारी पैसे के लिए बिकने लगे हैं इसलिए समाचार पत्रों में छापे गए संपादकीय लेखों, टिप्पणियों, साक्षात्कार आदि की मौलिकता संदेह के घेरे में आ जाती है। 'आब्जेक्शन मी लार्ड' में समाचारपत्रों पर व्यंग्य किया गया है, 'बाजार ने बौद्धिक सत्ता को निगल लिया है। स्वतंत्र चिंतन के लिए कोई जगह नहीं रही। शेखर उवाच, 'लेकिन करें भी क्या। बाजार की स्थिति ऐसे है कि मौलिकता के भरोसे कोई कैसे रहे? सुमेश उवाच, 'यानी मालिक खुद गुलाम है, गुलाम मालिक, गुलाम संपादकों का रचा अखबार आजाद ख्याली का दर्पण कैसे होगा? शेखर।'¹

बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण मानव मूल्यों का हास हुआ है। मानव सदाचार को भूलकर केवल पैसे को ही जीवन का सब कुछ मान बैठा है। 'पारिजात' उपन्यास का पात्र इंद्रकुमार वैद कहता है, 'हम बाजार से जुड़े तो रुपए-पैसे गिनने में अदब व आदाब भूल गए। ...आम बोलचाल में सिर्फ नफे-नुकसान का मुहावरा बोलते हैं। उनसे पूछो अगर कि कैसी तबीयत है मरीज की, तो जवाब आएगा फर्क तो पड़ा है रुपए में आठाना।'²

वर्तमानयुग उपभोक्तावादी युग है। मनुष्य भावनाओं के सहारे जीवित नहीं रहता, अपितु वह प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन उपयोग की दृष्टि से करता है। उसके लिए पारिवारिक, सामाजिक रिश्तों का, मानव मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं रहा है। अपितु वह तो अर्थ को ही सर्वोपरि मानने लगा है। कानून, संविधान, लोकतंत्र सभी तो भाषणबाजी तक सीमित रह गए हैं क्योंकि स्वयं राजनेताओं, पूँजीपतियों, क्रांतिकारियों आदि ने इनका उपहास किया है, 'लोकतंत्र सिर्फ संविधान में है, सरकारी बयान और राजनेताओं के भाषण में है, बाकी कहीं नहीं। वास्तविकता यह है कि यहाँ तो पूँजीपतियों का राज है। बाजार हर जगह घुस गया है और यही बाजार यहाँ सब-कुछ तय करता है—नीति, नियम, कानून, सब कुछ। बाजार के पीछे पैसे की ताकत है और यह पैसा आज का सबसे बड़ा भगवान है और गरीबों, गरीब देशों का यम भी। शहरों जंगलों में पटी पड़ी ये लाशें, ये सब क्या कहती हैं? पूरी मनुष्य जाति पर चंद लोगों का राज, उनका कब्जा, इसी पैसे के बल पर। इन्हीं के कारण तो आज ये नक्सली, माओवादी इस तरह से सिर उठा रहे हैं विद्रोह पर उतर रहे हैं। आम लोग सामाजिक न्याय के अभाव में विवश होकर प्रतिरक्षा में हथियार उठा रहे हैं, एक आर-पार की लड़ाई तो होनी ही है।'³

पूँजीवादीयुग में बाजारवाद का प्रभाव प्रत्येक वस्तु पर पड़ा है। वर्तमानयुग में प्रत्येक वस्तु यहाँ तक कि मानव का मूल्यांकन भी उसकी बाजारी क्षमता को देखकर किया जाने लगा है। महानगरीय जीवन पर तो बाजारवाद का पूर्ण प्रभाव है, 'दिल्ली एक हाट'। जहाँ हर शय वाजिबी दामों पर बिक सकती है। तिजारत स्त्री देह से लेकर आँसुओं तक की होती है। उसूलों से लेकर असलहे तक की। खून बेचकर गंदुम खरीदना पुराने लोगों का शगल था। अब नए बाजार विकसित हुए हैं। किडनियों की खरीद फरोख्त का बाजार बिल्कुल नया है।'⁴

वर्तमान में कंपनियों में बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा है। विभिन्न कंपनियाँ अपनी उत्पादित

वस्तुओं को अधिक-से-अधिक मात्रा में बेचना चाहती हैं। इसके लिए उसी माल का उत्पादन करने वाली दूसरी कंपनी के मुकाबले उसे उठना होता है, जिसमें अनेकशः संघर्ष भी होते हैं 'दिल्ली दरवाजा' उपन्यास का पात्र हाकर किरदार को हंटर की उपयोगिता बताते हुए कहता है, 'लड़के ने अपने तर्क जारी रखते हुए कहा कि दो नमक बनाने वाली कंपनियाँ दुश्मन हो सकती हैं...दो कोल्ड ड्रिक्स बनाने वाले आपस में लड़ सकते हैं...दो डिटिर्जिन पाउडर बनाने वालों में युद्ध छिड़ सकता है। यानी दुश्मनी का रिश्ता चलता रहता है, दोस्ती का चले न चले...। इसलिए वह उसका हंटर खरीद लें।'⁵

पूँजीवाद के प्रभाव के फलस्वरूप बाजारवाद भी बढ़ा है अर्थात् प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में प्रतिस्पर्धा आई है और इस प्रतिस्पर्धा में उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादन भी बाजार में बेचे जा रहे हैं किंतु अंत में सफलता उन्हीं उत्पादकों को मिलती है जो उपभोक्ता के मन के अनुरूप उच्च गुणवत्ता वाला उत्पादन बाजार में उतारता है। 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में साबुन उत्पाद के माध्यम से इसे स्पष्ट किया गया है, 'हिंदुस्तान लीवर या सर्फ एक्सेल से। चोले के भीतर केवल धोखा है। बस बाहरी टीम-टाम हैं, विज्ञापन है। हमारा साबुन गलतफतमी का झाग नहीं पैदा करता है, पर मैल काटता है। जिस दिन लोग तात्कालिकता की चकाचौंध से बाहर क्षितिज के पार देखेंगे ...हम बाजी मार जाएँगे।'⁶

बाजारवाद के चलते धर्म एवं धार्मिक स्थलों का व्यावसायिकरण हो गया है। धर्मस्थलों के आसपास अनुयायियों की रुचि के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं की बिक्री के लिए दुकानें खोल दी जाती हैं, 'यात्रियों की सुख-सुविधाओं के लिए पाँव फैलाता धार्मिक कारोबार, छोटे-मोटे कई होटल। कदम-कदम पर चाय-कॉफी, अल्पाहार और स्नैक्स के रेस्तरां। चमत्कार, श्रद्धा और धार्मिक-भावना के पालन-पोषण के लिए पवित्र वस्तुओं की एक और दुनिया-धूप, चंदन, अगरबत्ती, भौमिया जी की तस्वीर, कपूर, केसर, बरक, दीया-बाती, सिंदूर, कुंकुम आदि की कई दुकानें, मंदिर से सटी हुई। कहीं जड़ी-बूटी बिकती हुई तो कहीं मंत्रित-चमत्कारित लाकेट, तावीज बिकते हुए। सारे पाप-पुण्य, लाभ-हानि मंदिर जी के नाम।'⁷

आधुनिक युग में दूरदर्शन, समाचार-पत्र, रेडियो, इश्तिहार आदि के माध्यम से विभिन्न उत्पादों के विज्ञापन देकर ग्राहक को आकर्षित किया जाता है। ग्राहक भी विज्ञापन की चकाचौंध से प्रभावित होकर उत्पादन की गुणवत्ता के बारे में सोचे-समझे बिना उत्पादन खरीद लेता है जबकि गुणवत्तापरक उत्पादन बाजार में नहीं टिकता। 'टीवी विज्ञापनों ने सर्फ, सनलाइट और रिन साबुन को मोर-मुकुट पहना दिया था। गाँव-गाँव इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साबुनों के एजेंट बन गए थे जो चार-चार मुँह से उनके गुणगान कर उन्हें बेच रहे थे। पिता की बात फिर कानों में गूँजने लगी। उदासी भरे स्वर में पिता अंतिम दिनों में अक्सर कहा रहते थे-वस्तुओं का जमाना आ रहा है। साबुन आदमी को खा रहा है सच...इन करोड़ों के विज्ञापनों वाले साबुन ने हमें खा डाला।'⁸

आगे चलकर उपन्यास की पात्र संघमित्रा विज्ञापन के प्रभाव को स्पष्ट करती है, 'बिक्री गुणवत्ता और कम लागत के आधार पर नहीं, वरन् विज्ञापनों के जादू से होती है। अब जमाना तगड़ों का है, आवारा पूँजी का है, तिकड़मियों का है। अब मेहनत और ईमानदारी की पूछ नहीं ...अब बाटा के जूते बिकेंगे...लीवर के साबुन बिकेंगे, पर हमारी थालियाँ यूँ ही धरी-की-धरी रह जाएँगी।'⁹

औद्योगिक क्रांति के कारण विश्व के सभी देशों में पारस्परिक लेन-देन बढ़ा जिससे मुक्त बाजार का एक नया संबल मिला जिसके कारण विभिन्न देशों में उत्पादित उत्पादन अन्य देशों

में जाने लगे। जिससे पूँजीवाद का विश्व में स्थापत्य होता चला गया। अमीरी-गरीबी का अंतर कम होने के स्थान पर और भी बढ़ गया, 'यह सूचना क्रांति का प्रारंभिक दौर था। मुक्त बाजार की विषैली हवाओं के झकोरे आने शुरू हो गए थे। दुनिया में पूँजीवाद ने अपने डैने फैलाने शुरू कर दिए थे। साम्यवाद दुनिया के क्षितिज पर घायल पक्षी की तरह फड़फड़ा रहा था।'¹⁰

पर्यावरण प्रदूषण के कारण वायु, जल आदि प्रदूषित हो गए हैं जो इंसान के लिए लाभदायक स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु आवश्यक है। 'काशी का अस्सी' उपन्यास में बाजारवाद के प्रभाव से सभी वस्तुएँ तो बाजार में विक्रय के लिए आ गई हैं और उपभोक्ता है कि डिब्बा बंद वस्तुएँ ही खरीदने लगा है, 'इंसान को इस धरती पर जिंदा रखने वाली यही चीजें—यही हवा, यही पानी, यही धूप, यही ठंड उसी तरह पैकेटों, डिब्बों, बोतलों, पोलिथिन में बेची जाएँगी जैसे कि नमक, जैसे कि मसाला, जैसे कि चाय, चावल, दाल। जिसे जीना होगा, झक मारकर मुँह माँगे दाम पर खरीदेगा, वरना मरे इनके बगैर।'¹¹

इक्कीसवीं सदी में बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद ने अधिक जोर पकड़ा है। बाजार केवल बाजार तक ही सीमित नहीं है। वह घरों में भी प्रविष्ट हो चुका है। सेठ बाजारवाद के संदर्भ में कहता है, 'बाजार वह है जो तुम्हारे दरवाजे पर है, पोर्टिकों में है, ड्राइंगरूम में है। बेडरूम में है, अलमारी में है, किचन में है, टायलेट में है और यही क्यों तुम्हारे बदन पर है, सिर के बालों से लेकर पैरों के नाखूनों तक है। ऐसा कि जो तुम्हारे घर तक जाए या तुम्हें देखे, उसके लार टपकने लगे, उसकी नाँद और उसका चैन छिन जाए, तड़प उठे कि यह चीज, जो तुम्हारे पास है, उसके पास सुबह नहीं तो शाम तक आ जाए और जब तक वह आए अब तक न खाना अच्छा लगे, न पीना, न जीना।'¹² इसी संदर्भ में पात्र हीरालाल भी कहता है, 'बाहर का पानी गंदा, बोतल का पानी साफ/ बाहर की हवा मैली, डिब्बे की हवा साफ/ बाहर की धूप पस्त, अंदर की मस्त/ बाहर की ठंड अंडबंड, भीतर की चाकचौबंद/ नदी की गंगा जहर, बोतल की पेप्सी लहर।'¹³

पूँजीपतियों ने अपने नए-नए उत्पादन बाजार में उतार दिए हैं और उन्हें बेचने के लिए नए-नए हथकंडे अपना रहे हैं। विज्ञापन तो उनका पुराना हथकंडा है। विज्ञापन में उत्पादन की खरीद पर कहीं आकर्षक पुरस्कार का लालच दिया जाता है तो कहीं ब्याज मुक्त आसान किस्तों की बात की जाती है तो कहीं ऋण सुविधा उपलब्ध करवाने की घोषणा की जाती है, 'हर एक के घर में टीवी दाखिल हो चुका है और वह भी चोर दरवाजे से। किसी के घर कर्ज के रास्ते, किसी के घर पेट के रास्ते। उन्हें कोई मतलब हो या न हो, इज्जत का सवाल था, घर की औरतें और बच्चे कब तक पड़ोस में फिल्म और सीरियल देखते।'¹⁴

उत्पादक कंपनियों अपने उत्पादों का विज्ञापन के द्वारा प्रचार-प्रसार कर उपभोक्ताओं को आकर्षित करती हैं और उपभोक्ता भी विज्ञापन में आकर्षक रूप से विज्ञापित उत्पादन के प्रति आकर्षित होकर उसके गुण-दोषों की विवेचना किए बिना उसे खरीद लेता है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में हारपिक का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इसे स्पष्ट किया है, 'अच्छा देखो, तुमने टीवी पर देखा कि हारपिक गंदे से गंदे पुराने कमोड के सारे दाग छुड़ा देता है। तुम उसे सच नहीं मानती तो क्या तुम बरसों से चले आ रहे फिनाइल को छोड़कर हारपिक खरीदतीं?'¹⁵

मानव जीवन को सुखद, सुविधामय बनाने के लिए बाजार में नित नए-नए साधन अर्थात् उत्पाद आ रहे हैं। जिनमें मोबाइल फोन एक महत्वपूर्ण साधन है जो प्रारंभ में तो व्यक्ति की हैसियत का सूचक था किंतु आज साधारण से साधारण व्यक्ति के पास मोबाइल है। इसका एक दुष्प्रभाव

अवश्य दिखाई देता है कि व्यक्ति की निजता पर आक्रमण अवश्य हुआ है, 'अब तो खैर पानवाले, सब्जीवाले और नाई-मोची भी मोबाइल रखने लगे हैं। इस मोबाइल ने आदमी के कहीं से बचने के लिए कोई सुराग नहीं छोड़ा है। जब जिसका मन आए, आपको पकड़ सकता है। भले ही आप कमोड पर बैठे हों या गाड़ी चला रहे हों। आपके दिन का कोई समय आपके अपने लिए नहीं बचा है।'¹⁶

बड़ी-बड़ी कंपनियाँ अथवा डिपार्टमेंटल स्टोर अधिक से अधिक सामान बेचकर लाभ कमाना चाहते हैं जिसके लिए भिन्न-भिन्न तरीके खोजे जाते हैं। उपभोक्ताओं को छूट का लालच दिया जाता है जिसके कारण वे अनावश्यक वस्तुएँ भी खरीद लेते हैं। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में 'एंबर डिपार्टमेंटल स्टोर' फिल्मी हीरो रविकांत के जन्मदिन पर भारी छूट देकर सामान बेच रहा है और प्रचार किया जाता है कि स्वयं रविकांत स्टोर में उपलब्ध रहेंगे, 'टीवी, मोबाइल फोन और डीवीडी प्लेयर से लेकर सोफासेट, कुर्सियाँ तक स्टोर से ऐसे साफ हो रही थीं, जैसे कि वे भारी छूट पर न मिलकर मुफ्त में बाँटी जा रही हों।'¹⁷

बाजार में उत्पादन को बेचने के लिए नए-नए हथकंडे अपनाने पड़ते हैं। एक कुशल प्रबंधक अथवा कर्मचारी ही अपनी तार्किक सोच से उत्पादन को अधिक मात्रा में बेच सकता है। उपन्यास का पात्र भट्ट 'माई यशोदा डेयरीज' में सी०ई०ओ० के पद पर काम करते हुए दूध की अधिक बिक्री के लिए सुझाव देता हुआ कहता है, 'अपने घरों में रहनेवाले दरभंगा, सासाराम, मधुबनी के नौकरों से पूछिए। यदि आप अपने दूध का सबसे छोटा पैकेट पाँच रुपए का कर देते हैं, तो आपके पाउडर की खपत दुगुनी हो जाएगी...'¹⁸

कंपनी संचालक अथवा उसके बड़े अधिकारी कंपनी को चलाने के लिए ऐसे उत्पादनों पर अधिक बल देते हैं जिनकी बाजार में खपत अधिक होती है अर्थात् वे सामान्य व्यक्ति की आवश्यकता एवं रुचि को दृष्टिपथ में रखते हुए विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास का पात्र के०वी० समझता है कि चालीस के पार आते-आते स्त्रियों का वजन बढ़ जाता है, उनके हाथ-पैर दर्द करने लगते हैं, इसलिए वह मालिश करने वाला यंत्र बनवाता है, 'मिडिल क्लास औरतें 'मिडिल एज' यानी कि चालीस के पार आते-आते अपने बढ़ते वजन और दुखते हाथ-पाँवों से परेशान रहती हैं, यह के०वी० से ज्यादा और कौन जानता है। के०वी० ने इस तरह के सामान बनाने वाली कंपनियों का जाने कहाँ से जुगाड़ करके नमूना दिया कि वे मालिश करने वाला चूहानुमा 'वाइब्रेटर' बनाएँ। बाद के दिनों में के०वी० की पत्नी के लिए हर समय उनके पलंग के पास पड़ा रहने वाला है यह चूहा कितना बड़ा वरदान सिद्ध हुआ।'¹⁹ इसी प्रकार कंपनी को फायदा पहुँचाने के लिए अन्य विभिन्न वस्तुओं का निर्माण भी करवाता है।

पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन आर्थिक आधार पर होता है। व्यक्ति को विशेषकर व्यवसायी व्यक्ति को बाजार में टिकने के लिए, लाभ कमाने के लिए चालाक बनना पड़ता है एवं दिखावा करना पड़ता है। कोमल मनोभावों एवं आत्मा को कोई महत्त्व नहीं रह गया है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास का कलाकार भट्ट के सामने कहता है, 'कला की आत्मा बाजार के शोर में खो गई है।...अब सिर्फ कला की प्रतिभा से काम नहीं चलेगा, बिकने के लिए उसे और बहुत सारी चतुराई चाहिए। अपनी आत्मा तक पहुँचने के लिए एक कलाकार कितने मुश्किल रास्तों से गुजरता है।'²⁰

आगे चलकर भट्ट पारसी कलाकार की ही भाँति अपनी मनःस्थिति एवं अपनी सोच के बाजारीकरण के बारे में बताता है, 'पर जाने कहाँ से उसके अंदर एक चालाक आदमी आकर बैठ

गया है। यह आदमी फूँक-फूँककर कदम रखता है। उसका प्यार, उसका आदर-भाव, उसकी सहानुभूति, उसकी करुणा सबके उसे दाम मिलने वाले हैं। वह यह जानता है, पर वह किसी को बताता नहीं। वह खुद को भी नहीं बताता कि वह सब-कुछ अपने फायदे के लिए करता है।²¹

बाजारवाद के प्रभाव से हमारी सभ्यता एवं संस्कृति में बहुत बड़ा अंतर दिखाई देता है। खान-पान, रहन सहन, यातायात, मनोरंजन, संचार आदि के साधनों का नवीनीकरण हुआ है जिसके कारण बीमारियों एवं अपव्यय में भी वृद्धि हुई है। 'उधर के लोग' उपन्यास में विस्तार से इस प्रकार के परिवर्तन पर प्रकाश डाला गया है जिसे निम्न पंक्तियों में सांकेतिक रूप से देखा जा सकता है, टंडे का मतलब कोका-कोला हो गया था। नया मुहावरा, पहले आविष्कार रहा था और फिर दुनिया के लोगों को उसकी जरूरत समझा रहा था। बाजार का यह नया मुहावरा, नई नस्लों की जरूरतों का बाप बन गया था। क्या यह बिलकुल गलत था? शायद इससे हमारी जिंदगी कुछ आरामदेह जरूर हुई थी। अब टी०वी०, कार और घड़ी जैसी चीजों के लिए सालों पहले बुकिंग नहीं करनी पड़ रही थी। लड़कियाँ उन 'मुश्किल दिनों' में घर में बंद होकर, असुविधा और शर्म से भरे दिन गुजारने से मुक्त हो गई थी। लड़कों को दूध-बादाम की जगह 'हाई-प्रोटीन फूड' मिल रहा था जो जल्दी ही उनकी मांसपेशियों को मर्दाना खूबसूरती दे सकता है।²²

संदर्भ

1. आब्जेक्शन मी लार्ड, निर्मला भुराड़िया, पृ० 260
2. पारिजात, नासिरा शर्मा, पृ० 169
3. साथ चलते हुए..., जयश्री राय, पृ० 146
4. दिल्ली दरवाजा, ज्ञान प्रकाश विवेक, पृ० 24
5. वही, पृ० 92
6. सेज पर संस्कृत, मधु कांकरिया, पृ० 11
7. वही, पृ० 14
8. सेज पर संस्कृत, मधु कांकरिया, पृ० 48
9. वही, पृ० 49
10. वही, पृ० 152
11. काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ० 138
12. वही, पृ० 142
13. वही, पृ० 143
14. वही, पृ० 150
15. एक ब्रेक के बाद, अलका सरावगी, पृ० 15
16. वही, पृ० 17
17. वही, पृ० 68
18. वही, पृ० 77
19. वही, पृ० 118
20. वही, पृ० 210
21. वही, पृ० 210
22. उधर के लोग, अजय नवारिया, पृ० 121

Email : kumaridrkamles@gmail.com

21वीं सदी के उपन्यासों में चित्रित नारी का बाह्य सौंदर्य

संगीता राव

शोधछात्रा, हिंदी विभाग

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ० आशा सहारन, शोध निर्देशिका

विभागाध्यक्ष एवं अधिष्ठाता, मानविकी संकाय

बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक

सौंदर्य वह वस्तु या पदार्थ है जिसे देखते ही मानव चक्षु विस्मय मुग्ध हो जाए, हृदय आनंदित तथा मस्तिक चक्षु व हृदय दोनों का समर्थन करते हुए उल्लसित हो जाए वहाँ सौंदर्य की सत्ता विद्यमान रहती है सौंदर्य शब्द का प्रयोग व्यावहारिक जगत में आकर्षक वस्तु के लिए प्रयोग किया जाता है, तथा मानवीय जगत में 'सुंदर' शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हो, भाव, स्वभाव, तथा, गुण धर्म आदि सौंदर्य के वाचक गुण होते हैं।

नारी का बाह्य सौंदर्य

नारी सौंदर्य को मैत्रेयी पुष्पा ने कुछ इस तरह परिभाषित किया है—'लड़की अति सुंदर थी सो देवी मानी गई? देवी होना सुंदरी होना होता है या सुंदरी होना देवी होना।'¹ यदि नारी सौंदर्य की चर्चा की जाए तो ईश्वर की सबसे सुंदर रचना नारी को ही माना गया है। नारी रूप-सौंदर्य व भाव सौंदर्य दोनों ही स्तरों पर सर्वश्रेष्ठ है। अतः रचनाकार की सुंदर रचना में सौंदर्य की सृष्टि कर नारी रूप-सौंदर्य के मनोरम, हृदयस्पर्शी, भावनायुक्त रूप प्रस्तुत किए गए हैं। इसके साथ ही नारी सौंदर्य के सरस, कमनीय, लावण्ययुक्त बाह्य रूप की सृष्टि की गई है। नारी बाह्य सौंदर्य में सर्वप्रथम नेत्र वह शरीरांग है जो रूप-सौंदर्य को सर्वाधिक प्रभावित करता है। वहीं आंतरिक सौंदर्य मन-मास्तिष्क को अधिक प्रभावित करता है। सौंदर्य की सत्ता जहाँ बाह्य व आंतरिक दोनों की समन्विति है। रचनाकार बाह्य सौंदर्य दर्शित करने हेतु बाह्य शरीरांगों का आकर्षणमय रूप प्रस्तुत करता है, वही आंतरिक सौंदर्य दर्शयित करने के लिए भावों की मधुरता को व्यक्त करता है।

नारी-सौंदर्य चित्रण में पैरों के नखों से शुरू कर सिर के बालों तक के सौंदर्य का वर्णन मिलता है। नारी रूप सौंदर्य को दो अवस्थाओं में चित्रित किया गया है—संयोगावस्था में प्रफुल्लित तथा वियोगावस्था में दुःखी, मलिन व विह्वलतायुक्त। रूप का सर्वप्रथम संक्षिप्त अर्थ मुखाकृति से लिया जाता है। जैसे—'एक पल भी पूरा नहीं गुजरा होगा कि उसका चेहरा आरक्त हो उठा था। कानों तक उसके गाल लाल हो गए थे। नजरें झुक गई थीं और उसके होठ थरथराने लगे थे।'²

गोपाल माथुर जी ने उपन्यास में सपष्ट किया कि बाह्य सौंदर्य का महत्त्व आंतरिक सौंदर्य की अपेक्षा अधिक है। जैसे—'हम किसी को पहले उसकी देह से पहचानते हैं। मन हमेशा देह के बाद आता है। देह चाक्षुष होती है और पहली ही निगाह में अपने सुंदर असुंदर होने का भेद प्रकट कर देती है, पर मन खुलने में समय लेता है।'³

नारी के सुंदर हाथ दीप्ति बढ़ाने का काम करते हैं। यथा—‘हवा में अपनी गोरी-गोरी लंबी बाहें लहराई तो आह क्या कहना जैसा माहौल बन गया।’⁴ ‘मुझे उसका हाथ असाधारण रूप से उज्वल लगा जैसे वहीं से उजाला फूट रहा हो। वह नहीं जानती थी कि मैं उसके हाथ को देख रहा था।’⁵ नारी के कपोल लालिमा व स्निग्धता संपन्न आकर्षण उत्पन्न करते हैं। ‘आछरी माछरी’ की जुनजुनाली का रूप सौंदर्य आकर्षण उत्पन्न करने वाला है। ‘जुन जुनाली रति या रंभा नहीं और न ही कोई दूसरी गंधर्व कन्या ही थी, पर आँखों में, होठों में लाल-गुलाबी गालों में, नाक में नक्श में चाल में, ढाल में चेहरा चौखट में उनसे किसी बात में तिलभर भी कम नहीं थी।’⁶

साहित्य में नारी सौंदर्य वर्णन प्राचीनकाल से होता आया है। नारी बाह्य सौंदर्य में देखा गया है कि नारी के समस्त शरीरावयव की कांति मानस-पटल में सौंदर्य का सर्जन कर सौंदर्याकर्षण उत्पन्न करते हैं। नारी के सुंदर, मृगनयन समरूप नेत्र, झीने वस्त्रों में दर्शित आकर्षण उत्पन्न करते हैं। ‘स्वप्न ही रास्ता है’ में लेखिका का मानना है—‘इस देह का अपना सौंदर्य है, इस देह का अपना गौरव है, इस देह के अपने अनुष्ठान हैं।’⁷

नेत्र सौंदर्य के संबंध में बताया गया है कि नेत्र सौंदर्य शरीर की सुंदरता को द्विगुणित करता है। नेत्रों का हाव-भाव व कटाक्षयुक्त होना तथा नेत्रों की कोमलता, चंचलता व मादकता, नारी तारुण्य में चार चाँद लगाने का काम करते हैं। नेत्र नारी सौंदर्याभास का आधार है। नेत्रों से सौंदर्य की अनुभूति होती है, वहीं नेत्र दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता भी रखते हैं। नेत्रों की मधुवर्षा दूसरों को निकट आने का आमंत्रण देती है। नारी नयनों में वह शक्ति है जो किसी का संयम भी तोड़ सकती है।

परिधान केवल बाहरी आवरण ही नहीं अपितु व्यक्तित्व की अभिजात्य निःसर्ग अनुस्यूति है जिसमें परिधान, प्रसाधन, सजगता, शालीनता समाहित है। ‘धुँधले अतीत की आहटें’ में लेखक गोपाल माथुर ने सिंधिया के सौंदर्य प्रसाधन व पहनावे से नारी सौंदर्यता को अभिव्यक्त किया है—‘सिंधिया वैसे ही मेरी राइटिंग टेबल के पास बैठी हुई थी, अपनी प्रिंटेड हरी लाँग स्कर्ट में। उसके माथे पर लगी हरी बिंदिया सफेद रोशनी में नहाकर जैसे और भी खिल उठी।’⁸

सुहागन नारी सौंदर्य बढ़ाने के लिए रूप-सज्जा व शृंगार को धारण करती है, ताकि वह अधिक सौंदर्यवान लगे। हेमंती की माँ भी शृंगार करने के लिए हेमंती को कहती है—‘सुहागन जबलो साड़ी न पहरे, माँग न भरे, बूँदा न लगाए व शोभत नइया। उन्होंने उत्तर दिया। मैंने गुलाबी सिल्क की साड़ी पहनी माथे पर बिंदिया लगाई और तनिक सी माँग भरी।’⁹

केश-सज्जा नारी के सौंदर्य में वृद्धि करता है। नारी के छोटे या बड़े केश सौंदर्य की भिन्नता की ओर इंगित करते हैं। कुछ नारी केश बाँधकर सौंदर्य की वृद्धि करती हैं तथा कहीं नारी के खुले केश उसके सौंदर्य में वृद्धि करते हैं। ‘महिका ने चेहरे पर बिखरे बालों को कान के पीछे करते हुए कहा।’¹⁰ ‘महिका के सौंदर्य पर चुटकी लेते हुए राहुल ने कहा—ओ तेरी! जहर लग रही है तू।’¹¹

रूपयौवना नारी के सौंदर्य की अभिवृद्धि में अलंकारों का प्रयोग सौंदर्य को प्रभावी बनाता है। वस्त्राभूषण, अंजन, स्नान, पान आदि शरीर सज्जा के प्रसाधन बाह्य सौंदर्य की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का आंतरिक व बाह्य मूल्यांकन करते समय सर्वप्रथम अंकनकर्ता की दृष्टि उसके बाह्य व्यक्तित्व पर ही जाती है। तदुपरांत हम उसके भीतर झाँकते हैं। उपन्यासकार की दृष्टि से नारी का बाह्य व्यक्तित्व अर्थात् उसका शरीर पक्ष अछूता नहीं रहा। ‘धुँधले अतीत की आहटें’ की संजना का बाह्य व्यक्तित्व उसके बाह्य सौंदर्य को व्यक्त करता है। ‘बड़ी-बड़ी आँखों वाला गोरा चेहरा, जिस पर हमेशा वह काला चश्मा चढ़ाए रहती

थी। उसका ढीला-ढाला जूड़ा, जिसमें वह कई पिनें खोसें रहती थी, उसके बिंदास व्यक्तित्व का एक अहम् हिस्सा हुआ करता था और उस पर वह मुस्कराती थी।¹²

नारी का वस्त्र पहनने, ओढ़ने का तरीका व साज-सज्जा देखते ही आकर्षित करती है। उपन्यासकार की अवसरानुकूल वेश-विन्यास, साज-सज्जा आदि की सुंदर प्रस्तुति रूपाकर्षण पैदा करती है—‘हरे गुलाबी साटन का घाघरा था। सुनहरी गोटा जड़ा और सिलरोदार गुलाबी चुनरी उसका अनुपम रूप था।’ नारी केश सज्जा उसके सौंदर्य की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं। क्योंकि इस भौतिकता प्रधान युग में किसी भी व्यक्ति की दृष्टि का आकर्षण केंद्र बाह्य सौंदर्यांकन होता है। क्योंकि नारी सुकोमल आंगिक सौंदर्य की धनी होती है, वहीं दूसरी ओर शृंगारिक सामग्री उसके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाती है। उन्होंने ब्राउन कलर का प्रिंटेड गाउन पहन रखा था, जिस पर उनके खुले बाल असावधानी से बिखरे हुए थे। वे न तो ज्यादा लंबे थे और न ही छोटे। वे जितने थे उन पर फब रहे थे।’

मानव स्वभाव से ही सौंदर्यप्रिय प्राणी रहा है। मानवीय सौंदर्य चेतना का संबंध ऐंद्रिय संवेदनाओं से होने के कारण मनुष्य सर्वप्रथम नेत्रादि से सौंदर्य के दर्शन करता है अतः सौंदर्य संबंधी धारणानुसार रूपगत सौंदर्य का महत्त्व अधिक रहा है। 21वीं सदी के उपन्यासकार मानवीय रूप में नारी रूप-सौंदर्य के चित्रण में सफल रहे, इन्होंने नारी शरीर सौंदर्य का वर्णन अपने उपन्यासों में यथास्थान चित्रित किया है—‘वह बाथरूम से नहाकर बाहर निकली ही थी, बाथिंग गाउन पहने हुए, सघः स्नाता! उसने अपने बाल धोए थे और उसके गीले बाल उसकी पीठ पर लापरवाही से बिखरे हुए थे, उसका चेहरा इतना निर्दोष और अछूता लग रहा था, मानो किसी नई-नई प्रकाशित किताब का मुखपृष्ठ हो। उसकी आँखें जिनमें मैं उदासी देखने का आदी हो चला था, अपने इष्ट के ध्यान में खोई हुई थी।’

संदर्भ

1. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 121
2. गोपाल माथुर, धुँधले अतीत की आहटें, बोधि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 150
3. वही, पृ० 150
4. हरिसुमन बिष्ट, आछरी माछरी, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 234
5. गोपाल माथुर, धुँधले अतीत की आहटें, बोधि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 139
6. वही, पृ० 259
7. लवलीन, स्वप्न ही रास्ता है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 99
8. गोपाल माथुर, धुँधले अतीत की आहटें, बोधि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 202
9. बटुक चतुर्वेदी, हेमंतिया उर्फ कलेक्टरनीबाई, देवभारती प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, पृ० 215
10. सत्य व्यास, दिल्ली दरबार, हिंदी युग्म प्रकाशन, मयूर विहार, फेज-2, नई दिल्ली, पृ० 90
11. वही, पृ० 96
12. वही, पृ० 129

सहायक प्रवक्ता

अहीर कॉलेज, रेवाड़ी (हरि०) 123401

मो० 8053947277

ई-मेल : prof.sangeetarao12@gmail.com

वैश्वीकरण, हिंदीभाषा और समाचारपत्र

शैव्य कुमार पांडेय

शोध छात्र-पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

समाज तर्कसंगत जीवन का केंद्र है जिसमें रहने वाले व्यक्ति सामाजिक ढाँचे में एक-दूसरे से जुड़े हैं। समाज की विकास यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण घटक 'संचार' है जिसके व्यवस्थित स्वरूप को समाज कहते हैं। डॉ॰ बालेंदुशेखर तिवारी लिखते हैं कि 'भाषा ने ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से भिन्न प्रमाणित किया है, मनुष्य के व्यवहार को समाज का दर्जा दिया है।' व्यापक अर्थ में समझे तो संचार की अनुपस्थिति में मानव जीवन की कल्पना करना असंभव है। संचार से संपूर्ण पारिस्थिकीय तंत्र बँधा हुआ है। पौधों का बढ़ना, चिड़ियों का चहकना, मौसम का बदलना आदि सभी में संचार का कोई-न-कोई रूप उपस्थित है। इसमें मानव संचार की अवस्था सबसे अलग है। अर्जन और संप्रेषण की शक्ति से मानव ने संचार क्रांति को जन्म दिया। इसकी पाँच अवस्था को प्रमुख रूप से रेखांकित किया जा सकता है। पहला चरण है मौखिक संचार जिसके अंतर्गत मानव ने भाषा का आविष्कार किया। जब मानव आदिमानवकाल में था तब उसके पास संचार करने का कोई सुनियोजित तरीका नहीं था। उस दौरान जब आदिमानव ने आग को स्पर्श किया होगा तो मुख से आग ध्वनि निकली और ध्वनियों का यह क्रम अर्जन और संप्रेषण के माध्यम से मौखिक भाषा के रूप विकसित होता चला गया। मौखिक भाषा, शाब्दिक और अशाब्दिक दो रूपों में विकसित हुई। दूसरे चरण में मानव ने लिखित संचार की व्यवस्था को विकसित किया। मौखिक भाषा के सहयोग से आदिमानव एक-दूसरे के साथ संप्रेषण कर समूह के रूप में रहने लगे। परंतु जो ज्ञान उन्होंने कठिन प्रयास से प्राप्त किया था उसे दूसरी पीढ़ी तक सुरक्षित अवस्था में पहुँचाने की ललक ने शिलालेखों पर चित्रमय लेखन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया।

शिलालेख पर अंकित होनेवाले संदेश क्योंकि एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में आसान नहीं थे। इस कारण पत्तों से होते हुए लेखन की प्रक्रिया कागज पर लिपि के रूप में विकसित हुई। संचार के व्यवस्थित स्वरूप ने आदिमानव को समूह से समाज में रहने योग्य बनाया। तीसरे चरण में मुद्रित संचार तकनीकी का विकास हुआ। यह अभूतपूर्व आविष्कार रिचर्ड (2014) मीडिया एंड कल्चर 'जर्मन के योहानेस गुटेनबर्ग ने सन् 1431 में प्रिंटिंग प्रेस के रूप में की।' इन्होंने मूवेबल टाइप की भी रचना की। इनके द्वारा छापी गई बाइबल गुटेनबर्ग बाइबल के नाम से प्रसिद्ध है। प्रिंटिंग प्रेस ने जन अभिव्यक्ति को नया आयाम दिया। समाज में धीरे-धीरे जनअभिव्यक्ति हेतु समाचारपत्र व पत्रिकाओं का विकास होने लगा। पश्चिम के देशों में जनसंप्रेषण हेतु समाचारपत्र, पुस्तकों और पत्रिकाओं का प्रयोग तीव्र गति से किया जाने लगा। भारत में इसका असर काफी बाद में देखा गया। इस कारण भारत में पहला समाचारपत्र सन् 1780 को कलकत्ता से बंगाल गजट नाम से प्रकाशित हुआ। चौथे चरण में दूरसंचार तकनीकी का विकास हुआ जो

कि टेलीग्राफ प्रणाली से शुरू होती है। पाँचवाँ चरण पारस्परिक क्रियात्मक संचार प्रणाली का है। इस चरण का आरंभ इंटरनेट के साथ ही शुरू हो गया। संचार माध्यमों के कन्वर्जेंस ने पूरी दुनिया को आभासी (वर्चुअल) प्लेटफार्म पर खड़ा कर दिया है। आभासी (वर्चुअल) संचार प्रणाली के विकास से सूचनाओं के ग्रहण करने की गति जहाँ तीव्र हुई है वहीं फीडबैक देने की स्थिति पहले से ज्यादा स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

समाचारपत्र और भाषा

भारतीय में समाचारपत्रों के उद्भव के साथ ही लेखन एवं हिंदीभाषा का विकास हुआ। समाचारपत्रों के माध्यम से ही विभिन्न विचारों, लेखों, कहानी, कविता, हास्य-व्यंग्य का संप्रेषण समाज में किया गया। डॉ॰ श्रीशचंद्र जैसल (2002) पुस्तक 'संयुक्त प्रांत की हिंदी पत्रकारिता' में भाषा चेतना का विकास में लिखा है कि 'नवजागरणकाल हिंदी पत्रकारिता का शैशवकाल था। इससे पूर्व तो हिंदी गद्य का समुचित विकास भी नहीं हुआ था।' (पृष्ठ-23)। इस काल में जहाँ समाचारपत्र अँग्रेजों के उत्पीड़न के विरुद्ध मुखर थे वहीं लेखन में हिंदीभाषा में सुधार का कार्य भी किया जा रहा था। भाषा के स्तर पर सुधार का मुख्य कारण यह था कि जो खबर प्रकाशित हो उसे जनमानस आसानी से ग्रहण कर सके। सूचनाओं के ग्रहण करने के दौरान ग्रहणकर्ता के मन में असमंजस की स्थिति न रहे। भाषा के विकास से जुड़ी एक रिपोर्ट नागरी प्रचारणी सभा ने 1990 में प्रकाशित की। रिपोर्ट अनुसार—'हिंदी व्याकरण के कारकों, समास, मात्राओं, अनुस्वार, खड़ी पाई, ध्वनियों तथा अँग्रेजी ध्वनियों और विरामचिह्न आदि की समस्याओं का उल्लेख मिलता है।' वहीं 'भारत मित्र' अखबार में भाषा की अनुस्थिरता पर 1906 में हुए ऐतिहासिक विवाद से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा के स्तर पर तत्कालिक संपादक काफी चिंतित थे। 'भारत मित्र' की भाषा पर पुस्तक में लिखा है कि हिंदी में परिनिष्ठ गद्य का युग अभी नहीं आया था तथापि उसकी सारी संभावनाएँ व्यक्त हो गई हैं।' 'भारत मित्र' और 'बिहार बंधु' समाचारपत्र की आपसी खींचातानी से यह स्पष्ट हो जाता है कि 1906 तक हिंदी समाचारपत्रों की भाषा में शुद्ध रूप से हिंदी के मानकीकृत स्वरूप को ग्रहण नहीं कर पाई थी। हिंदी समाचारपत्रों में भाषा व शैली के स्तर पर परिनिष्ठ गद्य रूप ग्रहण करने का आरंभिक समय था। हिंदीभाषा के मानकीकरण की दृष्टि से द्विवेदीयुग की सरस्वती पत्रिका मील का पत्थर साबित हुई। सरस्वती पत्रिका के जरिए खड़ीबोली हिंदी के प्रत्येक अंग को गढ़ने-सँवारने का कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया। हिंदी भाषा के मानकीकरण हेतु 'गैर सरकारी प्रयास काका कालेलकर समिति 1941, नागरी प्रचारणी समिति 1945, आचार्य नरेंद्रदेव समिति 1947 ने बहुत प्रयास किया, इन समितियों ने भाषा की एकरूपता को निर्मित करने का प्रयास किया। भाषा को लेकर किए गए समितियों के प्रयास को समाचारपत्र से अलग कर नहीं देखा जा सकता। यही कारण है कि समाचारपत्र लेखन एवं हिंदी भाषा को अलग कर दिया जाए तो हिंदी के वर्तमानस्वरूप की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसे हिंदी के पहले समाचारपत्र 'उदंत मार्तंड' के प्रथम संपादकीय की भाषा के विश्लेषण से समझा जा सकता है। विजयदत्त श्रीधर (2011) उदंत मार्तंड (1826) : 'यह उदंत मार्तंड अब पहले पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंगरेजी...' (पृष्ठ-25) उदंत मार्तंड की पहली संपादकीय में जिस तरह विचारों को प्रस्तुत किया गया है उसमें 'पूर्ण विराम' का प्रयोग काफी लंबे वाक्य-विन्यास के बाद किया गया है। इसके साथ

ही 'अल्प विराम' का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया गया जिससे की दो बातों के बीच महत्वपूर्ण बातों पर बल देते हुए संप्रेषण किया जाना संभव है। इससे स्पष्ट होता है कि व्याकरण के स्तर पर हिंदी का मानकीय स्वरूप अब तक निर्मित नहीं हो पाया था। इसके साथ ही और शब्द की जगह 'औ' का प्रयोग, समाचारपत्र के लिए समाचार का कागज शब्द, अंग्रेजी के लिए अंगरेजी का प्रयोग भाषा के अल्प विकसित स्वरूप को रेखांकित करते हैं।

इस क्रम में विजयदत्त श्रीधर लिखते हैं कि (2011) अभ्युदय (1907) 'समय के हेर-फेर से बहुत सी बातें बदल गई हैं। भारतवासी इतने हतवीर्य हो गए हैं कि उन्हें... (पृष्ठ-48) अभ्युदय की प्रथम संपादकीय से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय तक भाषा का मानकीय स्वरूप धीरे-धीरे विकसित होने लगा था। पूर्णविराम, अर्द्धविराम तथा और का प्रयोग प्रचलन में आ चुका था जिससे भाषा काफी ज्यादा संप्रेषणीय हो गई। संपादकीय में लिखा संदेश सहजता से समझा जा सकता है। इसके साथ ही हिंदुस्तानियों के लिए भारतवासी शब्द का प्रयोग भारत शब्द के राष्ट्रवादी स्वरूप को भी रेखांकित करते हैं। इसी क्रम में विजयदत्त श्रीधर (2011) जनसत्ता (1983) 'यह कॉलम आपका है। आज मैं इसे हथिया रहा हूँ तो इसके कुछ कारण हैं।' जनसत्ता की संपादकीय की भाषा में छोटे-छोटे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिसे पढ़ना और समझना काफी सरल है। यहाँ भाषा के मानकीकरण के प्रत्येक पक्ष को ध्यान में रखकर पाठकों से आम भाषा में संवाद करने की कोशिश दिखाई पड़ती है। भाषा का यह नमूना मानकीकरण के विभिन्न पक्षों को बड़ी ही सुविधा से समझने का अवसर प्रदान करते हैं।

स्वाधीनता संग्राम और समाचारपत्र

भारत में स्वाधीनता संग्राम और समाचारपत्र दोनों ही एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। दोनों ने मिलकर जनअभिव्यक्ति को सशक्त बनाया। स्वाधीनता संग्राम में अमृत बाजार पत्रिका, केसरी, वंदे मातरम्, इंडियन ओपिनियन, द बंगाल हराकारू, संवाद कौमुदी, इंडियन मिरर, बंगदूत, कर्मवीर, विश्वबंधु इत्यादि अखबारों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इन समाचारपत्रों ने सामाजिक कुरीतियों के प्रति लोगों को जागरूक करने के साथ ही समाज को स्वाधीनता की राह सुझाई। समाचारपत्र उन दिनों लोगों की आम राय निर्मित करने में काफी सफल और सक्रिय रहे। इसी क्रम में 1895 ई० में 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' 1900 ई० में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' आदि पत्र-पत्रिकाओं का भाषा के विकास में अभूतपूर्व भूमिका रही। इसमें सरस्वती पत्रिका का योगदान अतुल्य रहा है। महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित सरस्वती पत्रिका खूब पढ़ी जाती थी। उन्होंने गद्य व पद्य, दोनों में ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली का प्रयोग किया। इसके कारण उन्हें काफी विरोध का सामना करना पड़ा। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन के दौरान सिर्फ आजादी की लड़ाई नहीं लड़ी। उन्होंने पत्रिका के माध्यम से लेखन विधा के सामने भी दर्जनों मानक प्रस्तुत किए। इससे हिंदीभाषा का साहित्य फूलता-फलता गया। प्रेमचंद की पत्रिका माधुरी, विष्णु राव पराङकर द्वारा संपादित पत्र दैनिक 'आज', ने भी हिंदीभाषा के मानक स्वरूप को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ ही समाचारपत्रों ने आजादी की लड़ाई में एक सशक्त माध्यम के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

आजादी के बाद अखबार

आजादी से पूर्व हिंदी समाचारपत्रों का कोई संगठित ढाँचा नहीं था। इसके साथ ही अंग्रेजों

के प्रेस कानून की वजह से समाचारपत्रों को स्वतंत्र रूप से कार्य करने में काफी कठिनाई का सामान करना पड़ता था। आजादी के बाद प्रेस की आजादी हेतु प्रथम प्रेस आयोग का गठन सन् 1952 में किया गया। प्रेस आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1954 में तीन भागों में प्रेषित की। आयोग ने सुझाव दिया कि 'प्रेस परिषद् की स्थापना की जाए' ताकि समाचारपत्रों को एक निश्चित एवं भयमुक्त परिवेश में कार्य करने का अवसर मिल सके। इसके साथ ही 'पत्रकारों की आचार-संहिता, पृष्ठानुसार मूल्य का नियम, चालीस प्रतिशत तक विज्ञापन, विज्ञापन परिषद् की स्थापना, प्रेस रजिस्ट्रार की नियुक्ति, एकाधिकार की प्रवृत्ति पर रोक, पत्रकारों के वेतन, कार्य अवधि का निर्धारण' किया जाना था। समाचारपत्र को बड़े-बड़े उद्योगपति द्वारा अर्थार्जन का साधन बनाया जा रहा था। इस पर अंकुश लगाने के लिए प्रेस आयोग की सिफारिशों में पत्रकारिता में विज्ञापन के हिस्से को 40 प्रतिशत निर्धारित करने की संस्तुति की गई। ताकि समाचारपत्र स्वतंत्र रूप से भारतीय समाज को जागरूक करते रहें। इसके साथ ही पत्रकारों के आर्थिक हितों की रक्षा की संस्तुति इस ओर संकेत देती है कि आनेवाले समय में पत्रकारों को एक आचार-संहिता एवं नियमानुसार कार्य करने का परिवेश मिलता रहे। इस दिशा में केंद्र सरकार ने कार्य करते हुए 'समाचारपत्र रजिस्ट्रार कार्यालय 1956, प्रेस परिषद् कानून 1965 में पारित किया और जुलाई 1966 में प्रेस परिषद् का गठन किया गया।' इस क्रम में द्वितीय प्रेस आयोग, श्रमजीवी पत्रकार कानून, बेज बोर्ड आदि का गठन किया गया। सामाजिक परिवर्तन से फैली जागरूकता ने समाचारपत्र की माँग को दिन-प्रतिदिन बढ़ाया। वहीं बढ़ती शिक्षा, विज्ञापन जगत के संगठित विकास ने समाचारपत्रों की प्रसार संख्या को घटने नहीं दिया। आजादी के बाद प्रमुख रूप से सन्मार्ग, जागरण, नवभारत, नई दुनिया, वीर प्रताप, धर्मयुग, अमर उजाला, प्रदीप, स्वतंत्र भारत इत्यादि अखबारों का विकास हुआ। यह समाचारपत्र सामाजिक विकास एवं परिवर्तन के पक्षधर बनकर समाज के पास पहुँचे। सकारात्मक विकास की परिभाषा पर केंद्रित इन समाचारपत्रों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि आदि के क्षेत्र में बेहतर कार्य करने हेतु सरकार का ध्यान आकर्षित किया और जनता की बात सरकार के समक्ष रखी। तकनीकी विकास ने संचार जगत में प्रतिस्पर्धा बढ़ा दी। इसका असर समाचारपत्र के प्रकाशन सामग्री और शैली पर पड़ा।

वैश्वीकरण

वैश्वीकरण की अवधारणा का जन्म वैश्विक आर्थिक ढाँचे के संग हुआ। इस अवधारणा ने विश्व के लगभग सभी देशों की अर्थव्यवस्था को एक वैश्विक मंच प्रदान किया। परिणामस्वरूप वैश्विक पूँजी की अवधारणा विकसित हुई। पूँजी की इस नई व्यवस्था ने उदारीकरण और निजीकरण का संदेश फैलाना शुरू कर दिया। घरेलू अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने का वादा कर सरकार ने विदेशी पूँजी के साथ उदारीकरण के लिए नियम-कानून में काफी संशोधन किया। इससे विदेशी उत्पाद भारतीय बाजार में आसानी से उपलब्ध होने लगे। अब एक ही छत के नीचे सभी तरह के उपभोग की वस्तुओं का क्रय-विक्रय करना संभव हो गया है। इस बाजारवादी व्यवस्था को मॉल कल्चर नाम दिया गया। विदेशी पूँजी अपने साथ विदेशी संस्कृति भी लेकर आई जिसका असर विकासशील देशों की संस्कृति पर पड़ने लगा है। समाजशास्त्री विचारक एस०एल० दोषी लिखते हैं, 'वैश्वीकरण एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें भौगोलिक दबाव कमजोर हो गए हैं और सांस्कृतिक और सामाजिक संबंधों की कसावट

भी ढीली पड़ गई है।' श्री दोषी ने वैश्वीकरण संदर्भ में इस बहस को जन्म दिया है कि सिर्फ पूँजीकरण के आलोक में उसका अवलोकन करना पर्याप्त नहीं है। उन्होंने सामाजिक संबंधों में तकनीकी तंत्र के हस्तक्षेप को समझने पर जोर दिया। भारतीय संस्कृति अपनी सामासिक समरसता के लिए जानी जाती है। विविधता के बावजूद लोगों को संवैधानिक रूप से एकता और समानता का अधिकार है परंतु जिस तरह से विदेशी पूँजी के निवेश ने तकनीकी तंत्र को भारत में विकसित किया है। उसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव सामने आए हैं। देवेन्द्रकुमार मेहँदीरत्ता (2011) लिखते हैं कि 'वर्ष 1991 के दशक में भारत ने अंतरिक्ष में अपने सैटैलाइट स्थापित करके निजी चैनलों को भी भारत से प्रसारण करने की आज्ञा दी।' (पृष्ठ-47) निजी चैनलों के आगमन से चौबीस घंटे समाचार का संप्रेषण करने वाले चैनलों की बाढ़ सी आ गई। चैनलों ने घंटों को अलग-अलग वर्ग के अनुसार बाँटकर समाचार प्रसारण आरंभ कर दिया। सुबह से समय वृद्धि लोगों के लिए व्यायाम की खबरों का पैकेज और राशि पंडितों का एक विशिष्ट कार्यक्रम प्रकाशित किया जाने लगा। दोपहर में महिलाओं के खाली समय को भुनाने के लिए सास-बहू और साजिश जैसे कार्यक्रम समाचार चैनलों ने शुरू किया। सायंकाल में 24 घंटे की हेडलाइन और रात को सनसनी फैलाने वाली खबरों ने भारतीय समाज के ताने-बाने को झकझोर कर रख दिया। समाचार चैनलों की लगातार प्रस्तुति ने समाचारपत्रों की लोकप्रियता को कम करने का भरपूर प्रयास किया। समाचार चैनलों से मिली चुनौती का सामना करने के लिए समाचारपत्रों ने अपने कलवेर में बदलाव लाया। इन सबके बीच विदेशी पूँजी निवेश भारतीय मीडिया में तीव्र गति से हस्तक्षेप करते हुए जनमानस को उपभोक्ता बनाने में जुटा है। अब जनमत का भी बाजारीकरण कर दिया गया है। लोगों की राय इलेक्ट्रॉनिक चैनल से लेकर समाचारपत्रों में प्रमुखता से प्रकाशित, प्रसारित हो रही है। इंटरनेट के आगमन ने तो पाश्चात्य सभ्यता का द्वार सीधा भारतीय जनता के शयनकक्ष तक पहुँचा दिया। पूरी दुनिया अब इंटरनेट के सर्च इंजन तक केंद्रित होती जा रही है। इससे एक आभासी विश्वग्राम निर्मित हुआ है। इस संदर्भ में गौरव त्यागी (2016) लिखते हैं कि प्रौद्योगिकी के विकास के कारण दूरियाँ इतनी घट गई हैं कि दूरदराज का क्षेत्र भी पड़ोस लगने लगा है। संचार क्रांति ने इसे संभव कर दिखाया है। (पृष्ठ-4) उक्त बातों से स्पष्ट है कि वैश्वीकरण ने वैश्विक अर्थव्यवस्था तंत्र विकसित करने हेतु संचार संसाधनों का प्रयोग अस्त्र के तरह किया है। इस अस्त्र के प्रभाव में भारतीय समाज आ चुका है। अधिक-से-अधिक लाभ कमाने के चक्कर में अब मीडिया घरानों ने सामाजिक सरोकार से भी समझौता करना शुरू कर दिया है।

उदारीकरण के बाद अखबार

समाज एक व्यवस्था जिसका संचालन संचार से होता है। संचार को बेहतर बनाने के लिए मानव ने लगातार आविष्कार किए। इस दिशा में कागज से तकनीक संसाधनों की विकास यात्रा अभूतपूर्व रही है। संचार क्रांति को तकनीकी विकास से अलग कर नहीं देखा जा सकता है। शंभूनाथ सिंह (1983) लिखते हैं कि संचार क्रांति अपने मूल रूप में एक तरह की प्रौद्योगिक क्रांति ही मानी जाती है।' (पृष्ठ-14) इस कारण से ही संचार प्रौद्योगिकी शब्द संसार में प्रचलन में आया जिसकी मूल अवधारणा ज्यादा से ज्यादा पूँजी कमाना है। बाजार का विस्तार संचार प्रौद्योगिकी के सहारे क्षेत्र विशेष से दूर-दराज तक फैलने लगा। इसका असर भारतीय समाचारपत्रों

पर भी पड़ा। समाचारपत्र संस्थान ने ज्यादा-से-ज्यादा विज्ञापन आय को कमाने की रणनीति तय की। स्मिता झा और निशांत बघेल (2011) लिखते हैं कि 'विज्ञापनदाताओं का रुझान दूसरे और तीसरे दर्जे के अखबारों की ओर बढ़ा है।' (पृष्ठ-7) यहाँ बाजार की माँग के अनुसार समाचारपत्रों ने स्थानीय खबरों को स्थान देना आरंभ कर दिया है। ताकि स्थानीय ग्राहकों तक अपनी पैठ बनाई जा सके। इसमें तकनीक संसाधन ने काफी अहम भूमिका निभाई। इंटरनेट के भारत आगमन के बाद संचारक्रांति शब्द में सूचना संचार प्रौद्योगिकी का नाम जुड़ गया। दूर तक सूचनाओं को पहुँचाने में दक्ष सूचना संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) ने सार्वजनिक जीवन में अपनी उपस्थिति दर्ज करानी शुरू कर दी। इसका असर भारतीय सामाजिक ढाँचे पर भी पड़ा। प्रांजलधर, कृष्णकांत (2018) पुस्तक न्यू मीडिया और बदलता भारत में लिखते हैं कि 'न्यू मीडिया के आने से सिर्फ सूचना प्रसारण में आसानी हुई हो, ऐसा नहीं है, बल्कि पूरे समाज का ताना-बाना बदला है।' (पृष्ठ संख्या-22) इंटरनेट का ज्यादा प्रयोग करने से युवा और बच्चे अवसादग्रस्त होते जा रहे हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का झंडा बुलंद कर आए न्यू मीडिया ने अश्लीलता का बाजार फैला दिया है।

इसे समाचारपत्रों में अश्लील चित्र के प्रकाशन से समझा जा सकता है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया से मिली चुनौती के बीच समाचारपत्रों ने अपनी नीतियों से समझौता करना सीख लिया है। अरविंद कुमार (2009) लिखते हैं कि भूमंडलीकरण के बाद अखबार का लक्ष्य नागरिकों के लिए खबर प्रस्तुत करना नहीं है, बल्कि खबरों को खूबसूरत ढंग से सजाकर 'उपभोक्ता' को बेचना है। नवभारत टाइम्स की शब्दावली में यह अखबार का 'रीडर फ्रेंडली' होना है। (पृष्ठ संख्या-179-180) अब अखबार में समाचार की प्रस्तुति पर ज्यादा बल दिया जाने लगा है। रंगीन पृष्ठों के सहारे पाठकों को विज्ञापन प्रदाताओं को उपभोक्ता के रूप में बेचने का खेल शुरू हो चुका है। समाचारपत्र की परिभाषा बाजार ने बदलकर रख दी है। विज्ञापन से ज्यादा कमाई करने की चाह के कारण जैकेट विज्ञापन का नया दौर समाचारपत्रों ने शुरू कर दिया। संपादकीय विभाग में प्रबंधकों का हस्तक्षेप बढ़ गया है। अब खबरों को एक उत्पाद के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। समाचारपत्रों की शर्त यह है कि यदि पाठक को सूचना, शिक्षा, मनोरंजन चाहिए तो उन्हें विज्ञापन देखना होगा, क्योंकि 16 रुपए की लागत का अखबार पाँच रुपए में बिकता है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना ज्यादा प्रासंगिक होगा कि आजादी से पहले बहुत सारे पत्र आर्थिक तंगी के कारण बंद हो गए लेकिन उन्होंने अपने लक्ष्य से भटकना स्वीकार नहीं किया। संचार क्रान्ति ने समाज के चौथे स्तंभ को कमजोर करना आरंभ कर दिया है। इस बीच समाचारपत्रों ने अपने पाँव आभासी दुनिया में पसारना शुरू कर दिए हैं। इसे इंटरनेट ने संभव बनाया है। तकनीकी विकास से लैस पाठकवर्ग के पास अब विकल्प की कमी नहीं रह गई है। मोबाइल के सहारे वह अपनी पसंद की खबर ऑनलाइन भी पढ़ सकता है। बस उसे तकनीकी रूप से दक्ष होने की जरूरत है।

संदर्भ

1. हरिकृष्ण रावत, सामाजिक शोध की विधियाँ, रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2013, पृ० 27, 244, 327
2. डॉ० देवव्रत सिंह, भारत में मीडिया शोध-एक आलोचनात्मक समीक्षा, जन मीडिया, अंक-40, 2015, पृ० 9
3. डॉ० विनय मोहन शर्मा, शोध प्रविधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973, पृ० 5

4. राम अहुजा, सामाजिक अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृ० 5
5. दिलीप मंडल, मीडिया का अंडरवर्ल्ड-पेड न्यूज, कॉरपोरेट और लोकतंत्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
6. प्रांजल धर, कृष्णकांत, न्यू मीडिया और बदलता भारत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
7. डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ, डॉ० बीना रूस्तगी, समाचारपत्र एवं समाचार-प्रेषण, नमन प्रकाशक, नई दिल्ली, 2006
8. मनोज लोढ़ा, समाचारपत्र जगत में अभूतपूर्व क्रांति-एक आर्थिक विश्लेषण, क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2010
9. अनंगपाल सिंह, भारत में प्रेस-एक सिंहावलोकन, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति-2010

द्वारा श्री विनोदकुमार पांडेय
रमना (शिव गंगा कालोनी)
लंका, वाराणसी 221011 (उ०प्र०)
मो० 9389488809
ईमेल : savypandey@gmail.com

भारतीय नवजागरण में स्त्री-चेतना

डॉ० नीतू बंसल

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेक्टर 11 चंडीगढ़

भारतीय नवजागरण 19वीं सदी के भारतीय इतिहास में एक ऐसी घटना है जिसने राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और राजनीतिक जीवन को आंदोलित किया साथ ही राष्ट्रीय चेतना को स्पंदित किया। एक नई चेतना को जन्म दिया। नई औपनिवेशिक शिक्षा, फ्रांसीसि क्रांति की चेतना, पश्चिमी इनलाइटमेंट आंदोलन, आधुनिक ज्ञान विज्ञान का प्रभाव भारतीय मानस पर पड़ा। उस समय भारतीय समाज में एक नए वर्ग का निर्माण हो रहा था। उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद की टकराहट में जिस नवजागरण की चेतना का जन्म हुआ उसने नई सामाजिक चेतना को खड़ा किया और यह नई सामाजिक चेतना नई स्त्री चेतना का संवाहक बना। इस नवजागरण के माध्यम से सुधार आंदोलन की जो लहर आई उसमें स्त्रियों की दशा सुधारना भी था। स्त्री समस्या को लेकर जो विचार मंथन हुआ उसमें राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर से लेकर महाराष्ट्र में कर्वे, ज्योतिबाफुले, रानाडे, आंध्र के वीरेशलिंगम् ने स्त्रियों की दुर्दशा पर न केवल चिंता व्यक्त की, वरन् सती प्रथा पर रोक, स्त्री शिक्षा का प्रचार, विधवा विवाह का समर्थन बालविवाह का विरोध कर स्त्रियों की दशा सुधारने के अथक् प्रयास किए।

19वीं सदी के तमाम विमर्शों में स्त्री के स्थापित होने से नवजागरण में स्त्री चेतना का स्वर मुख्य स्वर बन गया। नवजागरणकालीन स्त्रियों सावित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे, पं० रमाबाई, स्वर्णकुमारी आदि के प्रयासों ने स्त्री चेतना जगाने का भरसक प्रयास किया। स्त्री लेखन द्वारा समाज की कई पुरानी स्त्री-संबंधी धारणा को ध्वस्त किया गया, स्त्री जीवन की सार्थकता को पुनः परिभाषित किया गया, स्त्री की भूमिका का पुनर्गठन किया गया। नवजागरण की चेतना ने स्त्री के भीतर नई चेतना का संचार किया, एक नए युग का संदेश दिया। नवजागरण की स्त्री चेतना आँसू से सींचकर विकसित हुई और आग में तपकर कंचन हुई। आधुनिकयुग में यह स्त्री हजारों वर्षों की दासता को खुली चुनौती देती हुई पुरुषवादी सत्ता और व्यवस्था के हर प्रतिष्ठान, हर संस्था से भिड़ती है। इस यात्रा में भविष्य की स्त्री अपने भविष्य का रास्ता खुद तय कर सकती है, अपना इतिहास स्वयं रच सकती है।

भारतीय नवजागरण और सामाजिक सुधार

भारतीय नवजागरण 19वीं सदी की एक क्रांतिकारी घटना है। यह सामाजिक सांस्कृतिक, राष्ट्रीय नवनिर्माण का युग था। उस समय भारतीय समाज में एक नए वर्ग का उदय हो रहा था जिसका नाम था मध्यवर्ग। एक नई स्त्री का निर्माण हो रहा था। उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद की टकराहट में जिस नवजागरण की चेतना का जन्म हुआ उसने नई सामाजिक चेतना को खड़ा किया

और यह नई सामाजिक चेतना नई स्त्री चेतना के साथ आगे बढ़ी।

नई औपनिवेशिक शिक्षा, फ्रांसीसी क्रांति की चेतना, पश्चिमी इनलाइटमेंट आंदोलन, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का प्रभाव भारतीय मानस पर पड़ा। युवा भारतीय मानस को आइना दिखाया जिसमें अपना और अपने समाज की स्त्रियों का चेहरा देखकर अंदर तक हिल गए। स्त्रियों का जीवन इन्हें काफी कारुणिक एवं पाशविक लगा। नवीन, सामाजिक, मानवीय चेतना से युक्त इन युवाओं ने समाज सुधार की कमान जो एक बार बंगाल में पकड़ी तो सुदूर महाराष्ट्र फिर देश के कोने-कोने में फैल गई। 1817 में जेम्स मिल ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक में लिखा है—'कोई समाज कितना सभ्य है, इसका पता उस समाज में स्त्रियों की दशा देखकर चलता है।'¹ 19वीं सदी से ही सामाजिक राष्ट्र विमर्श, धार्मिक और स्त्री विमर्श का मुखर स्वर सुनाई पड़ता है। बंगाल में राजा राममोहन राय जो सती प्रथा के विरुद्ध आंदोलन के जनक थे का उद्देश्य सिर्फ स्त्रियों के ऊपर हो रहे जघन्य अत्याचारों को रोकना भर नहीं था, बल्कि इसके माध्यम से उनके द्वारा तथा कथित सभ्यता-मिशन की जमीन को भी अंदर से चुनौती देना था। उस समय समाज सुधार की धारा श्रृंखलाबद्ध तरीके से चली। नवजागरण व्यक्ति केंद्रित आंदोलन न होकर समाज केंद्रित आंदोलन था जिसमें समस्या की जड़ व्यक्ति केंद्रित न होकर समाज को माना गया। अतः इसका समाधान भी सामाजिक स्तर पर ही संभव था। यह ध्यान रखते हुए समाज सुधारकों ने पूरे भारत में अपनी कई संस्थाएँ खड़ी कीं। जैसे पूर्वी भारत में ब्रह्मसमाज, पश्चिम में प्रार्थनासमाज, उत्तर भारत में आर्यसमाज तथा दक्षिण भारत में थियोसोफिकल सोसायटी। इन सभी आंदोलनों में स्त्री से जुड़े मुद्दे व एजेंडे थे।

शंभूनाथ ने लिखा है—'नवजागरण के धर्मपुरुष ऐसे व्यक्तित्व थे, जो अंतर्विरोधों से भरे होकर भी सामाजिक सुधार में जी जान से लगे थे। वे स्त्रियों और दलितों के आत्मसम्मान के लिए लड़ रहे थे।'²

19वीं सदी के नवजागरण के माध्यम से सुधार आंदोलन की जो लहर आई उसमें स्त्रियों की दशा सुधारना, स्त्री प्रश्नों को संबोधित करना केंद्रीय विषय था। स्त्री समस्या को लेकर जो विचार मंथन हुआ उसमें राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर से लेकर महाराष्ट्र में कर्वे, ज्योतिबाफुले, रानाडे और तेलगू भाषी क्षेत्र में वीरेश लिंगम् (आंध्र का विद्यासागर) तक ने स्त्रियों की दुर्दशा, दयनीयता पर न केवल चिंता व्यक्त की है, वरन् स्त्री सुधार अभियान के अंतर्गत सती प्रथा पर रोक लगाकर स्त्री शिक्षा का प्रचार, विधवा विवाह पर बल, बालविवाह, अनमेल विवाह, बहु विवाह आदि का विरोध कर स्त्रियों की दशा सुधारने के अथक प्रयास किए। यदि सती प्रथा की समाप्ति राममोहन राय के जीवन का उद्देश्य बना तो वहीं विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा ईश्वरचंद्र विद्यासागर के जीवन का मिशन। 'मेरी समझ में विधवा विवाह बिल्कुल शास्त्रसम्मत है।'³ महाराष्ट्र में ज्योतिबाफुले, कर्वे आदि जातिवादी व्यवस्था में फँसी स्त्रियों को मुक्त कराने के लिए शिक्षा अभियान से उनका संबंध जोड़ा। दयानंद सरस्वती ने स्त्री शिक्षा को सामानाधिकार जन्मसिद्ध अधिकार घोषित कर वर्तमानयुग को स्त्रियों के लिए स्वर्णयुग बनाने की पहल कर दी तो वहीं स्त्री की दशा सुधारने के लिए साहित्यकार भी पीछे नहीं रहे। उन्होंने स्त्री मुद्दों से संबंधित विकृतियों के संदर्भ में बताया कि 'आर्य भारत में बहुपत्नीत्व, बालविवाह तथा स्त्री बहिष्कार जैसी कोई प्रथा विद्यमान नहीं थी।'⁴

भारतीय नवजागरण और स्त्री चेतना का स्वरूप

19वीं सदी के तमाम विमर्शों के केंद्र में स्त्री नवजागरण की चेतना, समाज सुधार की चेतना व संस्कृति की चेतना बन जाती है। सभी समाज सुधार आंदोलन की मुख्य कार्यसूचियों में स्त्री शीर्ष स्थान पर थी। 1829 का सती प्रथा कानून एवं 1856 का विधवा पुनर्विवाह कानून इसी अभियान की शृंखला की कड़ियाँ थीं। स्त्री जाति व शिक्षा की परिधि एवं चेतना की परिधि को विस्तार मराठा नवजागरण के दलित उन्नायक ज्योतिबाफुले द्वारा मिला। उनके संघर्ष यात्रा की सहयात्री थीं उनकी धर्मपत्नी साबित्रीबाई फुले जिन्होंने अपमान सहकर कमजोर वर्ग की लड़कियों का सबलीकरण में जी जान लगा दिया। पहली बार कोई स्त्री परिवर्तन और मुक्ति संघर्ष के रास्ते पर चलकर स्वयं अपनी लड़ाई कर्मभूमि पर लड़ती है।

‘स्त्री की धार्मिक बंधनों से आजादी खासकर भारत में एक कठिन मामला है। एक पितृसत्तात्मक समाज में आदर्शवादी स्तर पर स्त्री की पूजा की बात की जाती है, पर उसका वास्तविक दर्जा बंधुआ मजदूर से ज्यादा नहीं होता। 19वीं सदी में स्त्री के संदर्भ में सामाजिक सुधार का मामला उसके प्रति की जा रही कुछ बड़ी क्रूरताओं के विरोध तक सीमित है। ऐसी क्रूरताएँ सवर्ण घरानों में ज्यादा थीं।’⁵

‘पुरुष नारी को उतनी ही शिक्षा देता है जितनी उसके स्वार्थ में बाधक न हो।’⁶ ऐसी संकीर्ण मानसिकता का पोषण का हमारे पितृसत्तात्मक समाज ने ही किया है। ‘पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना ने हर देश की जमीन घेरी है। इसलिए राष्ट्रीय संरचना पर पितृसत्तात्मक मानसिकता हावी हो जाती है, इसलिए इसके विरोध को सार्वभौमिक घटना के रूप में लिया जाना चाहिए।’⁷ 19वीं शताब्दी में पंडित रमाबाई एक ऐसा पुनराविष्कृत नाम है जो हजारों वर्षों की स्त्री दासता के खिलाफ सक्रिय सामाजिक, बौद्धिक हस्तक्षेप करती है और उस दासता पर पड़ी ऐतिहासिक गर्द को साफ कर एक सृजनशील स्त्री के मानवीय पहचान, अस्तित्व, अधिकार, सम्मान, न्याय, स्वतंत्रता व आत्मनिर्भरता के लिए ऐतिहासिक पहल करती है। उसकी सामाजिक, बौद्धिक मानवीय जमीन तैयार करती है जिस पर खड़ी होकर स्त्री अपने भविष्य का रास्ता खुद तय करती है। उन्होंने परंपरागत भारतीय परिवार व्यवस्था को दोहरे मानदंडों की व्यवस्था बताते हुए कहा—‘प्रत्येक अवसर पर बेचारी लड़की को यह आभास कराया जाता है कि उसे अपने भाई के सौभाग्य में हिस्सा बाँटने का कोई अधिकार नहीं और यह कि वह परिवार में अनिच्छुक एवं अनामंत्रित मेहमान है।’⁸ रमाबाई ने 1882 पुणे में आर्य महिला समाज की विधवाओं और परित्यक्ताओं के नवजीवन के लिए 1889 में मुंबई में महाराष्ट्र का पहला विधवा आश्रम ‘शारदा सदन’ खोला। वह बंगाल की आदर्श स्त्री की भाँति घर की दुनिया के भीतर नहीं रहती और वहीं भारतेंदु की स्त्री भाँति गृह शिक्षा में सिमटकर कुल धर्म को अपना ध्येय नहीं मानती है बल्कि वह स्त्री की आधी आबादी को पूर्ण न्याय समान अधिकार, समान अवसर व समान भूमिका अपनाकर समाज और देश की उन्नति में अपना योगदान देती है, अपनी भागीदारी निभाती हैं और अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज करती है।

स्त्री लेखन द्वारा स्त्री चेतना का विकास

19वीं सदी का स्त्री लेखन एक युगांतकारी घटना थी। यह इतिहास के लिए ही नहीं वरन् स्वयं स्त्री के लिए भी चूँकि जिस समाज में स्त्री को बोलने की भी आजादी न हो वहाँ उसका

अपनी बात लिखकर कहना स्त्रियों के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अनुभव था। नवजागण के इतिहास और स्त्री लेखन के नवजागरण एवं इतिहास का स्वर्णिम अध्ययन पं. रमाबाई के लेखनसे प्रारंभ होता है। उनकी कृति 'द हाई कास्ट हिंदु वुमैन' स्त्री विमर्श का देशी पाठ है। रमाबाई का जीवन एवं लेखन पितृसत्तात्मक व्यवस्था में एक स्त्री का कर्ता के रूप में सक्रिय सामाजिक और बौद्धिक हस्तक्षेप है।

ताराबाई शिंदे की पुस्तक 'स्त्री-पुरुष तुलना' प्रश्नोत्तर शैली में पितृसत्तात्मक आलोचना का एक विस्फोटक दस्तावेज है जो नवजागरण के दौर में नई स्त्री चेतना संपन्न एक स्त्री द्वारा तैयार किया गया है जो स्त्री-पुरुष का एक समाजशास्त्र गढ़ना चाहती है। 'यदि विधवा को अपना उर्वरित जीवन अधियारा बदसूरत और भगवान का नाम लेकर बिताना है तो विधुर हुआ पुरुष भी यह स्थिति क्यों नहीं अपनाता? यह क्यों दूसरी शादी कर गृहस्थ धर्म अपनाता है? शास्त्रकर्ताओं की तिरछी नजर केवल स्त्रियों पर ही क्यों? धर्म तो सबके लिए समान है जो नारी के लिए, वही पुरुष के लिए क्यों नहीं होता? परंतु ऐसा नहीं।'⁹ तिरुमालंबा कन्नड की प्रथम महिला लेखिका हैं। उनकी कविताओं में कर्नाटक जातीयता का स्वर मुख्य रहा है। वे 14 वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थीं। कल्याणम्मा ने चार दशकों तक स्त्रियों की पत्रिका सरस्वती का संपादन किया। वैदिक समय में भी स्त्री शिक्षित थी। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—'वेदों की रचना केवल ऋषि-मुनियों ने ही नहीं की, विदुषी स्त्रियाँ भी इस काम में शरीक थीं। इन स्त्रियों के भी नाम वेदिक सूक्तों में विद्यमान हैं।'¹⁰

इसप्रकार नवजागरण कालीन स्त्री नायिकाओं ने नवजागरण का स्वर्णिम इतिहास लिखते हुए परंपरागत समाज की कई पुरानी स्त्री संबंधी धारणा को ध्वस्त किया। स्त्री जीवन की सार्थकता को पुनर्परिभाषित किया, स्त्री की भूमिका का पुनर्गठन किया। नवजागरण की चेतना ने स्त्री के भीतर नई चेतना का संचार किया। नए युग का संदेश दिया। नवजागरण की स्त्री मुखर है, प्रखर है, उसके पास ज्ञान व विवेक है। परिवर्तन की यात्रा का श्रेय भारतीय नवजागरण को जाता है जिसने स्त्रियों को प्रश्न पूछने का पाठ पढ़ाया, उसे भोक्ता की श्रेणी से निकालकर वक्ता की श्रेणी में पहुँचाया। 'आधुनिकयुग में नारी चेतना से प्रभासित नारी के पास अपने विचार हैं, व्यक्तित्व है, अनुभूति है, प्रश्न हैं, ...अभिव्यक्ति का साहस है, यह साहस ही चेतना है, जीवंतता है जो समाधान की ओर अग्रसर है।'¹¹

नवजागरणकालीन स्त्रियों का योगदान

नवजागरण के उस युग में स्त्री संघर्ष की प्रतीक साबित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे, रमाबाई, स्वर्णकुमारी देवी, मैडम के०आर० कामा, कल्पना जोशी, आनंदीबाई जोशी, कार्दबिनी, गांगुली, चंद्रमुखी बोस, साबित्रीबाई फुले जैसी अनगिनत संघर्षशील महिलाएँ थीं। वास्तव में स्त्री चेतना और नवजागरण की चेतना के विकास में हर संघर्षरत स्त्री का योगदान है जो अपने समय के प्रतिकूल सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, औपनिवेशिक सामंती, जातिवादी, प्रथाओं मान्यताओं, परिस्थितियों को भेदकर आगे बढ़ी और अन्य स्त्रियों के लिए आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया।

नवजागरण का स्वर्णिम इतिहास लिखने एवं स्त्री योगदान को अमूल्य धरोहर बनाने में नवजागरणकालीन उन स्त्री नायिकाओं का जीवन परंपरागत समाज की कई पुरानी स्त्री संबंधी धारणा को ध्वस्त कर रहा था साथ ही स्त्री संबंधी मिथ को भी तोड़ रहा था। नवजागरण की

चेतना ने स्त्री के भीतर नई चेतना का संदेश दिया, फिर इस संदेश को उन स्त्री समाज सुधारकों ने अपने जीवन में उतार लिया। मामला केवल एक स्त्री का नहीं था, बल्कि समूची स्त्री जाति और आधी आबादी का था, जीवन जीने का अधिकार, जीवन निर्णय का अधिकार।

निष्कर्ष

नवजागरण की इस यात्रा में 19वीं शताब्दी के अवसान पर पहुँचकर भारतीय स्त्री चेतना के वाहक एवं संवाहक द्वारा सभी चिह्नित स्त्रियाँ भारतीय नवजागरण की नई सामाजिक बौद्धिक मानवीय जमीन तैयार करती है, जिस पर खड़ी होकर भविष्य की स्त्री अपने भविष्य का रास्ता खुद तय कर सकती है। अपना इतिहास स्वयं रच सकती है। इस जमीन को तैयार करने में उनका जमीनी संघर्ष रचनात्मक व मूल्यपरक है। एक आम स्त्री का बढ़ता हर अगला कदम, नवजागरण का बढ़ता हुआ अगला कदम है। नवजागरण की स्त्री चेतना, आँसू से सींचकर विकसित हुई और आग में तपकर कंचन हुई, जो अपने स्वअस्तित्व के साथ सहअस्तित्व के लिए भी लड़ रही है। आधुनिकयुग की स्त्री हजारों वर्षों की दासता को खुली चुनौती देती हुई पुरुषवादी सत्ता और व्यवस्था के हर प्रतिष्ठा, हर संस्था से भिड़ती है। 'दुनिया की 98 प्रतिशत पूँजी पर पुरुषों का कब्जा है। पुरुषों के बराबर आर्थिक और राजनीतिक सत्ता पाने में औरतों को अभी हजार वर्ष और लगेंगे।'¹² हजारों वर्षों की स्त्री दासता के खिलाफ सक्रिय सामाजिक स्त्री दासता पर पड़ी ऐतिहासिक गर्द को साफ करना अनिवार्य है साथ ही इन स्त्रियों के आलोक में नवजागरण का नया पाठ तैयार करना भी जरूरी है।

समग्रतः भारतीय नवजागरण में स्त्री चेतना का स्वरूप और विकास आज की स्त्री की नींव मजबूत करता है और उसे प्रगति की ओर उन्मुख करता है।

संदर्भ

1. रमेश उपाध्याय, संज्ञा, आज का स्त्री आंदोलन, शब्द संधान प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृ० 51
2. शंभूनाथ, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ० 21
3. विनय घोष, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, संस्करण 1981, पृ० 92
4. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ० 53
5. शंभूनाथ, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ० 22
6. रमेश उपाध्याय, संज्ञा, आज का स्त्री आंदोलन, शब्द संधान प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010
7. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2010, पृ० 11-12
8. पं० रमाबाई, हिंदू स्त्री का जीवन, संवाद प्रकाशन, मुंबई, संस्करण 2006, पृ० 45
9. ताराबाई शिंदे, स्त्री-पुरुष तुलना, आनंद प्रकाशन, औरंगाबाद, पृ० 127
10. शंभूनाथ, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ० 410
11. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, भूमिका
12. कमला प्रसाद, स्त्री मुक्ति का सपना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009

Nitu Bansal
House no. 225, 1st floor,
phase 3A, Sector 53,
Mohali, Punjab 160059
Mob. 9359365789
bansal2012@redfmail.com

‘आषाढ़ का एक दिन’ की मल्लिका

डॉ० गौकरण प्रसाद जायसवाल

सहायक प्राध्यापक, हिंदी

शासकीय नवीन महाविद्यालय, आमदी (धमतरी) छंग०

मोहन राकेश को नाटककार के रूप में देश-विदेश में सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली। ‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक मोहन राकेश का प्रथम नाटक है जिसका प्रकाशन सन् 1958 में हुआ था। इसने राकेश को प्रथम श्रेणी के नाटककारों में लाकर खड़ा कर दिया। इसके लिए इनको ‘संगीत-नाटक अकादमी’ पुरस्कार भी मिला है। प्रस्तुत नाटक के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए गिरीश रस्तोगी ने लिखा है—‘आषाढ़ का एक दिन’ मोहन राकेश का पहला और सर्वोत्तम नाटक ही नहीं आज के हिंदी नाटक की पहली महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भी है। यह नाटक राकेश को हिंदी के शीर्षस्थ नाटककारों में प्रतिष्ठित करता है और हिंदी नाटक और रंगमंच के भारतीय नाटकों और रंगमंच को समकक्ष लाता है।¹

मल्लिका ‘आषाढ़ का एक दिन’ नाटक की नायिका है। वह अंबिका की पुत्री है तथा महाकवि कालिदास से भावात्मक, सात्विक एवं निस्वार्थ प्रेम करती है। मल्लिका नाटक की मूल चेतना ही नहीं, अपितु नाटक का प्राण भी है। डॉ० जयदेव तनेजा ने मल्लिका के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—‘मल्लिका नाटक की प्रमुख पात्र हो गई है। वही धुरी है जिसके चारों ओर नाटक के पात्र घूमते रहते हैं। संपूर्ण नाटक उसके व्यक्तित्व की छाया से अनुप्राणित है, वहीं दर्शक-पाठक की समूची सहानुभूति का एक मात्र आलम्बन बनती है।’²

मल्लिका आदर्श प्रेमिका है। वह कालिदास से अगाध प्रेम करती है। उसके प्रेम में न तो स्वार्थ है और न वह प्रतिदान ही चाहती है। उसका प्रेम भावात्मक, पवित्र, निश्छल है। वह अपने प्रेम को सब संबंधों से बड़ा मानती है। वह कालिदास के संबंध को लेकर लोकोपवाद को जानती है फिर भी अपराध का अनुभव नहीं करती। वह माँ से कहती है—‘मैं जानती हूँ माँ, अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख की बात जानती हूँ। फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबंध और सब संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है...।’³ उज्जयिनी में कालिदास को राजकवि के पद पर आरूढ़ किया जाता है तो मल्लिका को हार्दिक प्रसन्नता होती है और वह अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुई माँ से कहती है—‘माँ तुम सोच सकती हो आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ...राज्य उन्हें सम्मान दे रहा है, माँ! उन्हें राजकवि का आसन प्राप्त होगा...।’⁴

जब कालिदास उज्जयिनी जाने को तैयार नहीं होते तो माँ के रोकने पर भी मल्लिका जगदंबा के मंदिर में उसके पास चली जाती है और उन्हें उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित करती है। वह अपने अंतर्मन के भाव को कालिदास के समक्ष खोलकर रख देती है। वह कहती है—‘मैं जानती हूँ कि तुम्हारे चले जाने से मेरे अंतर को रिक्तता छा लेगी। बाहर भी संभवतः बहुत सूना

प्रतीत होगा। फिर भी मैं अपने साथ छल नहीं कर रही। मैं हृदय से कहती हूँ तुम्हें जाना चाहिए।⁵ मल्लिका कालिदास को समझाती है कि तुम्हारे अंदर जो प्रतिभा है, जो योग्यता है उसे लोग यहाँ ग्राम में नहीं समझ सकते, तुम्हारी प्रतिभा और व्यक्तित्व का विकास तो यहाँ से दूर रहकर ही हो सकता है। वह कहती है—‘तुम यहाँ से जाकर भी मुझसे दूर हो सकते हो... यहाँ ग्राम-प्रांतर में रहकर तुम्हारी प्रतिभा को विकसित होने का अवसर कहाँ मिलेगा। यहाँ लोग तुम्हें समझ नहीं पाते। वे सामान्य की कसौटी पर तुम्हारी परीक्षा करना चाहते हैं।’⁶ मल्लिका एक आदर्श प्रेमिका है, जो हमेशा उसके लिए उत्कर्ष चाहती है, इसीलिए वह कहती है—‘विश्वास करते हो न कि मैं तुम्हें जानती हूँ, जानती हूँ कि कोई भी रेखा तुम्हें घेर ले, तो तुम घिर जाओगे। मैं तुम्हें घेरना नहीं चाहती। इसलिए कहती हूँ जाओ।’⁷

कालिदास अपनी जन्मभूमि को छोड़कर उज्जयिनी नहीं जाना चाहता, क्योंकि उसे आशंका है कि वह वहाँ जाकर यहाँ की प्राकृतिक सुषमा और जन्मभूमि से अलग हो जाएगा। तब मल्लिका उसकी शंका को दूर करती हुई कहती है—‘यह क्यों नहीं सोचते कि नई भूमि तुम्हें यहाँ से अधिक संपन्न और उर्वरा मिलेगी। इस भूमि से तुम जो कुछ ग्रहण कर सकते थे, कर चुके हो। तुम्हें आज नई भूमि की आवश्यकता है, जो तुम्हारे व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण बना दें।’⁸ इतने पर भी कालिदास को उत्साह का अनुभव नहीं होता तब मल्लिका उसे विश्वास दिलाती है। वह कहती है—‘मेरी ओर देखो। अब भी उत्साह का अनुभव नहीं होता... विश्वास करो तुम यहाँ से जाकर भी यहाँ से अलग नहीं होओगे। यहाँ की वायु, यहाँ के मेघ और यहाँ के हरिण, इन सबको तुम साथ ले जाओगे। और मैं भी तुमसे दूर नहीं होऊँगी। जब भी तुम्हारे निकट होना चाहूँगी, पर्वत शिखर पर चली आऊँगी और उड़कर आते मेघों में घिर जाया करूँगी।’⁹

मल्लिका कष्टों को सहकर अपने प्रिय को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के लिए सदैव प्रोत्साहित करती है। यहाँ तक कि मल्लिका कालिदास को उज्जयिनी भेजकर रो पड़ती है तो माँ उसे समझाती है—‘रोओ नहीं, मल्लिका! तब वह उसे भी सुख मानती है। कहती है—‘मैं रो नहीं रही हूँ माँ! मेरी आँखों में जो बरस रहा है, यह दुःख नहीं है। यह सुख है माँ, सुख...।’¹⁰ इस प्रकार कह सकते हैं कि मल्लिका एक आदर्श प्रेमिका है।

मल्लिका एक भोली-भाली ग्रामीण प्रकृति की गोद में खिलवाड़ करने वाली अल्हड़ ग्राम्य बाला है। प्रकृति के गोद में खेल कूदकर पली-बढ़ी है। ग्राम प्रकृति के प्रति उनके मन में असीम अनुराग है। वर्षा में भीगना, पर्वत शिखर पर घूमना उसको अच्छा लगता है। वह अपने भोलेपन का परिचय देते हुए माँ से कहती है—‘आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ! ...ऐसी धारासार वर्षा! दूर-दूर तक की उपत्यकाएँ भीग गईं।...और मैं भी तो! देखो न माँ, कैसी भीग गई हूँ।’¹¹ मल्लिका अपने ग्राम से प्रेम करती है। वह अपने ग्राम परिवेश को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाना चाहती। तभी तो वह प्रियंगुमंजरी के कहने पर भी उसके साथ जाने से इंकार कर देती है। वह अपने ग्राम की महत्ता प्रकट करते हुए विलोम से कहती है—‘यहाँ के पत्थर पहले भी मूल्यवान थे, आर्य विलोम! यह और बात है कि पहले किसी ने उसका मूल्य समझा नहीं।’¹² इस प्रकार मल्लिका में प्रकृति के प्रति असीम प्रेम है।

मल्लिका के चरित्र में भावुकता एवं सहृदयता की प्रधानता है। मल्लिका का जीवन कोमल कल्पना, सहृदयता और भावुकता से भरा जीवन है। उमड़ते-घुमड़ते बादलों, प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर उसका रोम-रोम पुलक उठता है। उसकी भावुकता और सहृदयता का दर्शन

इस प्रकार होता है—‘मुझे भीगने का तनिक खेद नहीं। भीगती नहीं तो आज मैं वंचित रह जाती। चारों ओर धुआँ मेघ घिर आये थे। मैं जानती थी वर्षा होगी। फिर भी मैं घाटी की पगडंडी पर नीचे-नीचे उतरती गई। एक बार मेरा अंशुक भी हवा ने उड़ा दिया। फिर बूँदें पड़ने लगीं।’¹³ वह अपनी भावुकता और सहृदयता का परिचय देते हुए माँ से कहती है—‘नीलकमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय! मैं चाहती थी उसे अपने में भर लूँ और आँखें मूँद लूँ!...मेरा तो शरीर भी निचुड़ रहा है माँ। कितना पानी इन वस्त्रों ने पिया है! ओह!’¹⁴ वह फिर कहती है—माँ, आज के वे क्षण मैं कभी नहीं भूल सकती। सौंदर्य का ऐसा साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौंदर्य अस्पृश्य होते हुए भी मांसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी।¹⁵ मल्लिका अपनी इस कोमल कल्पना, भावुकता एवं सहृदयता के कारण ही अंत तक परिस्थितियों के थपड़े खाती रहती है।

मल्लिका के चरित्र में अहिंसा और करुणा के भाव के भी दर्शन होते हैं। जब कालिदास राजपुरुष दंतुल द्वारा आहत हरिण शावक को लेकर मल्लिका के घर पहुँचता है, तो मल्लिका का हृदय हरिण शावक के घावों को देखकर करुणा से छलक उठता है। वह माँ की चिंता किए बिना दूध लाकर हरिण शावक को पिलाती है।

मल्लिका हठी प्रवृत्ति की बालिका है। माँ अंबिका जब भी उसे समझाती है तो वह अपने हठ का प्रदर्शन करती है। जब अंबिका उसके विवाह की चर्चा करती है। तो वह माँ से विवाह की अनिच्छा स्पष्ट करते हुए कहती है—‘तुम जानती हो मैं विवाह करना नहीं चाहती, फिर उसके लिए प्रयत्न क्यों करती हो?...मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो उस पर किसी को आलोचना करने का क्या अधिकार है?’¹⁶ मल्लिका अपने हठ का प्रदर्शन उस स्थान पर भी करती है, जब वह कालिदास के उज्जयिनी भेजने के लिए माँ के रोकने पर भी जगदंबा के मंदिर में चली जाती है। माँ से कहती है—‘यह एक महत्वपूर्ण क्षण है, माँ! मुझे इस समय अवश्य जाना चाहिए।’¹⁷ उसके हठ का प्रदर्शन एक और स्थान पर मिलता है, जब मल्लिका की भावनाओं को समझकर अंबिका के नेत्रों में आँसू निकल पड़ते हैं, तब मल्लिका उसके रोने का कारण पूछती है। माँ के द्वारा केवल यह कह देने पर कि बैसे-बैसे मन उदास हो जाता है तो वह हठ करते हुए, माँ से कहती है—‘बैसे-बैसे मन उदास हो जाता है, परंतु बैसे-बैसे रोया नहीं जाता!...तुम्हें मेरी सौगंध है माँ, जो मुझे नहीं बताओ।’¹⁸

मल्लिका एक स्वामिभामिनी नारी है। प्रियंगुमंजरी उसके सामने किसी बड़े से बड़े अधिकारी से विवाह कर लेने का प्रस्ताव रखती है। उसके जीर्ण-शीर्ण घर को नए बनवा देने की बात कहती है और अपने साथ सखी रूप में काश्मीर ले जाना भी चाहती है परंतु मल्लिका अपने स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुँचाना चाहती। वह सभी प्रस्तावों को अस्वीकार कर देती है। जब प्रियंगुमंजरी जीर्ण-शीर्ण घर को नया बनवाने का प्रस्ताव रखती है तब मल्लिका प्रियंगुमंजरी से कहती है—‘आप बहुत उदार हैं परंतु हमें ऐसे ही घर में रहने का अभ्यास है, इसलिए असुविधा नहीं होती।’¹⁹ इस प्रकार उनका चरित्र उसे एक स्वाभिमानी नारी के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

मल्लिका में अद्भुत सहनशीलता और धैर्य है। कालिदास को वह स्वयं उज्जयिनी भेजती है। कालिदास उज्जयिनी में उत्कृष्ट काव्य कृतियों की रचना करता है। वह उसकी दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई कीर्ति को सुनकर प्रसन्न होती है। जब निक्षेप कालिदास के उज्जयिनी में ही रहने का आक्षेप लगाती है तो मल्लिका उससे आनंदित होती है। वह अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहती

है—‘...मुझे प्रसन्नता है कि वे वहाँ रहकर इतने व्यस्त हैं। यहाँ उन्होंने केवल ‘ऋतु-संहार’ की रचना की थी। वहाँ, उन्होंने कई नए काव्यों की रचना की है।’²⁰ निक्षेप यह भी कहता है कि मैंने व्यवसायियों के द्वारा उनके (कालिदास) संबंध में कुछ अपवाद सुना है। तब मल्लिका प्रतिउत्तर देती है—‘व्यक्ति उन्नति करता है, तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद जुड़ने लगते हैं।’²¹ माँ अंबिका के समझाने पर भी मल्लिका कालिदास से विवाह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं करती। वह अपनी सहनशीलता और धैर्य का परिचय देते हुए कहती है—‘माँ आज तक का जीवन किसी प्रकार बीता ही है। आगे का भी बीत जाएगा। आज जब उनका जीवन एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ की घोषणा नहीं करना चाहती।’²²

मल्लिका की सहनशीलता और धैर्य का परिचय उस स्थान पर भी मिलता है, जब निक्षेप द्वारा कालिदास और राजकुमारी प्रियंगुमंजरी के विवाह का समाचार सुनकर भी वह विचलित नहीं होती है। वह कहती है—‘उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण व्यक्तियों में से हूँ। वे असाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए था। ...सुना है राज-दुहिता बहुत विदुषी हैं।’²³ उसके इन चारित्रिक गुणों का उत्कृष्ट उदाहरण वहाँ भी देखने को मिलता है जब कालिदास अपने ग्राम आकर भी मल्लिका से नहीं मिलता तब भी मल्लिका के मन में किसी प्रकार का द्वेषभाव जाग्रत नहीं होता जबकि साधारण प्रेमिका के मन में ऐसी स्थिति में द्वेषभाव, घृणा उत्पन्न हो सकती है परंतु मल्लिका यहाँ भी साधारण ही है। प्रियंगुमंजरी उससे मिलने आती है। वह उसके सामने बड़ी सरलता और सौम्यता से अपने धैर्य का परिचय देती है—‘आप बहुत उदार हैं, परंतु हमें ऐसे ही घर में रहने का अभ्यास है, इसलिए असुविधा नहीं होती। ...मैं अपने को ऐसे गौरव की अधिकारिणी नहीं समझती...इस विषय की चर्चा छोड़ दीजिए।’²⁴ इस प्रकार मल्लिका में अद्भुत सहनशीलता और धैर्य दिखाई पड़ता है।

मल्लिका अंतर्द्वंद्व से ग्रसित नारी है। कालिदास के प्रति मल्लिका का प्रेम आदर्श, निश्छल एवं सात्विक है। कालिदास के ग्राम आने से उसका मन भीषण अंतर्द्वंद्व से भर उठता है। उसके मन में अनेक आशाएँ, आकांक्षाएँ उभरती जाती हैं। जब कालिदास मल्लिका के यहाँ नहीं आता तब उसका हृदय कराह उठता है—‘आज वर्षों के बाद तुम लौटकर आए हो! सोचती थी तुम आओगे तो उसी तरह मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अँधेरा-सा दिन होगा, जैसे ही एक बार वर्षा में भीगूँगी और तुमसे कहूँगी कि देखो मैंने तुम्हारी सब रचनाएँ पढ़ी हैं...’²⁵ वह निराश होकर कह उठती है—‘उज्जयिनी की ओर जानेवाले व्यवसायियों से कितना-कितना कहकर मैंने तुम्हारी रचनाएँ मँगवाई हैं। ...सोचती थी तुम्हें ‘मेघदूत’ की पंक्तियाँ गा-गाकर सुनाऊँगी। पर्वत-शिखर से घंटा-ध्वनियाँ गूँज उठेंगी और मैं अपनी यह भेंट तुम्हारे हाथों में रख दूँगी...।’²⁶ वह अपने हाथ से सिले गए पृष्ठों को देखकर तथा उनसे जुड़ी अपनी भावनाओं की असफलता व निरर्थकता से आहत हो उठती है—‘कहूँगी कि देखो, ये तुम्हारी नई रचना के लिए हैं। ये कोरे पृष्ठ मैंने अपने हाथों से बनाकर सिये हैं। इन पर तुम जब जो भी लिखोगे, उसमें मुझे अनुभव होगा कि मैं भी कहीं हूँ, मेरा भी कुछ है।’²⁷ इसी तारतम्य में वह निराश होकर अपने मन के द्वंद्व को स्पष्ट करती है—‘...आज तुम आए हो, तो सारा वातावरण ही और है। और...और नहीं सोच पा रही कि तुम भी वही हो या...?’²⁸

जब मल्लिका मातुल से यह समाचार सुनती है कि काश्मीर में विद्रोह शक्ति बढ़ जाने के कारण कालिदास ने वहाँ से पलायन कर संन्यास ले लिया है और वे काशी चले गए हैं, उसका

हृदय भीषण अंतर्द्वंद्व से भर जाता है, वह कहती है—‘नहीं, तुम काशी नहीं गए। तुमने संन्यास नहीं लिया। मैंने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था। ...मैंने इसलिए भी नहीं कहा था कि तुम जाकर कहीं का शासन-भार सँभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैंने तुम्हें शुभकामनाएँ दीं—यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभकामनाएँ ग्रहण नहीं कीं।’²⁹ मल्लिका अपने प्रिय के उत्कर्ष के लिए तन-मन सब-कुछ अर्पित कर देती है। तभी तो वह कालिदास के पतन का समाचार सुनकर आंतरिक पीड़ा से ग्रसित हो जाती है—‘मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रहीं, परंतु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे, और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है। और आज तुम मेरे जीवन को इस तरह निरर्थक कर दोगे?’³⁰ कालिदास की असफलता से मल्लिका को गहरी पीड़ा होती है। वह दुःख दारिद्र्य सब-कुछ सह लेती है, लेकिन जब कालिदास संन्यास ले लेते हैं तो वह टूट जाती है। मल्लिका अपने बीते दिनों को स्मरण करते हुए स्वयं से कहती है—‘..मैंने यह सब सह लिया। इसलिए कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रहे हो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी। और आज यह सुन रही हूँ कि तुम सब छोड़कर संन्यास ले रहे हो? तटस्थ हो रहे हो? उदासीन? मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस तरह वंचित कर दोगे?’³¹ इस प्रकार मल्लिका अंतर्द्वंद्व से ग्रसित नारी है।

मल्लिका कालिदास की एकांत प्रेमिका ही नहीं, वरन् उसकी प्रेरणादात्री भी है। उसी की प्रेरणा से कालिदास अमर और महाकवि बन जाते हैं। वही कालिदास को उज्जयिनी जाकर राज सम्मान ग्रहण करने को प्रेरित करती है। मल्लिका कालिदास को समझाती है कि तुम्हारे व्यक्तित्व के विकास लिए तुम्हें नई भूमि की आवश्यकता है। तब कालिदास यह कह देते हैं कि ‘नई भूमि सुखा भी तो सकती है!’³² तो मल्लिका उसे प्रेरित करते हुए कहती है—‘कोई भी भूमि ऐसी नहीं है जिसके अंतर में कोमलता न हो। तुम्हारी प्रतिभा उस कोमलता का स्पर्श अवश्य पा लेगी।’³³ स्वयं मोहन राकेश ने मल्लिका के चरित्र की इस विशेषता को उभारते हुए लिखा है—‘मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नहीं, भूमि में रोपित उस स्थिर आस्था का भी है जो ऊपर से झुलसकर भी अपने मूल में विरोपित नहीं होती।’³⁴ कालिदास ने भी मल्लिका को अपने काव्य लेखन की प्रेरणा स्वीकार करते हुए लिखा है—‘कुमारसंभव’ की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। ‘मेघदूत’ के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह विमर्दिता यक्षिणी तुम हो—यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की। ‘अभिज्ञान शाकुंतल’ में शकुंतला के रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं।’³⁵ वास्तव में मल्लिका कालिदास की प्रेरणादात्री है।

मल्लिका में उत्सर्ग का अथाह-सागर उमड़ता हुआ दिखाई देता है। उसमें उत्सर्ग की भावना कूट-कूटकर भरी है। वह कालिदास के प्रति संपूर्ण रूप से समर्पित है। वह अपने इस त्यागमय उच्चादर्श के कारण कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए विवश कर देती है। वह अपने मन के भाव को प्रकट करते हुए कहती है—‘हाँ! देखना मैं तुम्हारे पीछे प्रसन्न रहूँगी, बहुत घूमूँगी और हर संध्या को जगदंबा के मंदिर में सूर्यास्त देखने जाया करूँगी...।’³⁶ यहाँ तक कि विदा के क्षण में भी उसके उत्कर्ष के लिए प्रार्थना करती है—‘नहीं! विदा तुम्हें नहीं दूँगी। जा रहे हो, इसलिए केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।’³⁷ कालिदास का प्रियंगुमंजरी के साथ विवाह हो जाने पर भी मल्लिका के मन में द्वेष नहीं रहता। वह स्वयं के मोह को

कालिदास की प्रगति के मार्ग का व्यवधान समझकर अपने को उससे अलग कर लेती है। वह ग्राम पुरुष निक्षेप से कहती है—‘मैं, उनकी प्रगति में बाधा भी बन सकती थी। आपके कहने से मैं उन्हें जाने के लिए प्रेरित न करती, तो कितनी बड़ी क्षति होती।’³⁸

मल्लिका कालिदास के उत्कर्ष के लिए किसी भी परिस्थिति का सामना करने को तैयार दिखाई देती है। डॉ० श्रीमती मीना पिंपलापुरे मल्लिका के समर्पण भाव पर प्रकाश डालते हुए लिखती हैं—‘कालिदास के लिए मल्लिका किसी से भी टकरा सकती है, माँ से लेकर मातुल और राज्य कर्मचारियों तक। चाहती तो कालिदास को रोक सकती थी, अपना विवाह रचा सकती थी, उज्जयिनी जा सकती थी और यदि अवसर आता तो प्रियंगुमंजरी के स्थान पर काश्मीर में अपने प्रेमी के साथ हो सकती थी। पर उसके समर्पण में एक गहरी आदर्शवादिता है जिसे भावुकता भी कहा जा सकता है।’³⁹

मल्लिका एक ममतामयी माँ है। नाटक के अंत में मल्लिका के वात्सल्य का रूप दृष्टिगोचर होता है। वह अंतर्द्वंद्व के क्षणों में भी अपनी बच्ची को भी विस्मृत नहीं कर पाती है। वह बच्ची को बार-बार देखने, चुप कराने अंदर जाती है। अंत में वह कालिदास के पीछे भागती हुई अपनी बच्ची को बाँहों में देखकर रुक जाती है और उसे अपने वक्ष से चिपकाकर चूम लेती है।

मल्लिका एक साहसी नारी है। गाँव वाले उसके प्रेम-संबंधों को लेकर तरह-तरह की चर्चा करते हैं तब भी वह घबराती नहीं है। राजपुरुष दंतुल द्वारा कालिदास पर दबाव बनाए जाने पर मल्लिका उसे साहसपूर्वक फटकारते हुए कहती है—‘तुम्हें ऐसा लांछन लगाते हुए लज्जा नहीं आती?’⁴⁰ इसी तरह जब राजपुरुष दंतुल आहत हरिण शावक को कालिदास से ले लेना चाहता है तो मल्लिका उसे साहसपूर्वक कहती है—‘ठहरो, राजपुरुष! हरिण शावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनके लिए संवेदना का, कालिदास निःशस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिंता नहीं करेंगे।’⁴¹

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मल्लिका के चरित्र में जहाँ एक ओर आदर्श प्रेम, प्रकृति प्रेम, भावुकता, अहिंसा, करुणा और हठ जैसे गुण विद्यमान हैं वहीं दूसरी ओर उसके चरित्र में ममता, सहनशीलता, सहृदयता, साहस, स्वाभिमान, धैर्य, उत्सर्ग के गुण विद्यमान हैं। उसके चरित्र में प्रेरणादात्री के गुण भी परिलक्षित होते हैं।

संदर्भ

1. गिरीश रस्तोगी, मोहन राकेश और उसके नाटक, पृ० 44
2. डॉ० जयदेव तनेजा, समसामयिक हिंदी नाटकों में चरित्र सृष्टि, पृ० 107
3. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 1989, पृ० 13
4. वही, पृ० 22
5. वही, पृ० 44
6. वही, पृ० 44
7. वही, पृ० 45
8. वही, पृ० 45
9. वही, पृ० 46
10. वही, पृ० 48
11. वही, पृ० 6

12. वही, पृ० 78
13. वही, पृ० 7
14. वही, पृ० 8
15. वही, पृ० 8
16. वही, पृ० 12
17. वही, पृ० 33
18. वही, पृ० 10
19. वही, पृ० 71
20. वही, पृ० 51
21. वही, पृ० 51
22. वही, पृ० 25
23. वही, पृ० 52
24. वही, पृ० 71-73
25. वही, पृ० 58-59
26. वही, पृ० 59
27. वही, पृ० 59
28. वही, पृ० 59
29. वही, पृ० 92
30. वही, पृ० 93
31. वही, पृ० 94
32. वही, पृ० 45
33. वही, पृ० 46
34. मोहन राकेश, लहरों के राजहंस, पृ० 20
35. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, पृ० 102
36. वही, पृ० 47
37. वही, पृ० 47
38. वही, पृ० 52
39. श्रीमती मीना पिंपलापुरे, मोहन राकेश का नारी संसार, पृ० 164
40. वही, पृ० 18
41. वही, पृ० 20

मो० 9993199095

ईमेल : gaukaranjaiswal@gmail.com

विवाहोपरांत परिवार में महिला स्वास्थ्य : हृदयेश के साहित्य के संदर्भ में

ज्योति देवी, शोधछात्रा, हिंदी विभाग

डॉ० सुधारानी सिंह

विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग

शहीद मंगल पांडेय राजकीय महिला

स्नातकोत्तर महाविद्यालय, माधवपुरम्, मेरठ

स्वस्थ मनुष्य उसे ही कहा जा सकता है, जो शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ हो। जिस मनुष्य की शारीरिक या मानसिक मनःस्थिति ठीक नहीं होती। हम उसे बीमार या रोगी कहते हैं। कहा भी गया है कि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।'

स्वास्थ्य क्या है?

शाब्दिक रूप में देखें तो स्वास्थ्य का अर्थ है—'आरोग्य, निरोग्य या चित्त का शांत रहना।'¹ इसका तात्पर्य है कि हम मानसिक एवं शारीरिक रूप से ऐसी अवस्था में हों कि अपने सभी कार्यों को सुचारू रूप से कर सकें। स्वामी विवेकानंद ने स्वास्थ्य के विषय में कहा है कि 'एक कमजोर आदमी, जिसका शरीर या मन कमजोर है, वह कभी भी मजबूत काया का मालिक नहीं बन सकता है।'² विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहा है—'दैहिक, मानसिक और सामाजिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ होना (समस्या विहीन होना)।'³

स्वस्थ होना सिर्फ बीमारियों की अनुपस्थिति ही नहीं है बल्कि एक पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक खुशहाली की स्थिति है। स्वस्थ होने का वास्तविक अर्थ अपने आप पर ध्यान केंद्रित करते हुए जीवन जीने के स्वस्थ तरीकों को अपनाया जाना है।

स्त्री-पुरुष दोनों ही सृष्टि के आधार हैं। गृहस्थी रूपी गाड़ी के दो पहिए यदि दोनों ही पूर्णरूपेण स्वस्थ होंगे तभी वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन उचित प्रकार से कर पाएँगे। कहावत भी है—पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख घर में हो माया। इसलिए दोनों का स्वस्थ रहना अनिवार्य है किंतु स्त्रियों को अपना दायित्व निभाने के लिए अतिरिक्त देखभाल की आवश्यकता होती है। कारण उनकी शारीरिक संरचना एवं प्रकृति द्वारा उनको माँ बनने का दिया गया अनुपम उपहार है। इसलिए स्त्रियों को अपने खान-पान एवं उचित देखभाल की विशेष आवश्यकता होती है जिससे कि वह अपने शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व प्रसन्न रहकर परिवार एवं समाज के साथ अपने संतोषजनक एवं मधुर संबंध स्थापित कर अपने उत्तरदायित्वों को निभा सके।

स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं जिनसे महिला स्वास्थ्य भी अछूता नहीं है। हमारे भारतीय समाज में स्त्रियों को विवाह से पूर्व और विवाह के पश्चात् अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिनमें स्वास्थ्य संबंधी समस्या मुख्य है। उचित देखभाल एवं सही

खान-पान के अभाव में स्त्रियाँ अपनी जिम्मेदारियों के निर्वहन हेतु पूर्ण रूप से तैयार नहीं होतीं, जिस कारण उन्हें मानसिक एवं शारीरिक समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है। विवाह के पश्चात् एक नए परिवार का उत्तरदायित्व उनके कंधों पर आ जाता है। एक ओर जहाँ वे पारिवारिक जिम्मेदारियों का बोझ उठाती हैं, तो दूसरी ओर ससुराल पक्ष वालों का शोषण और व्यंग्यबाणों की पीड़ा भी सहन करती हैं, जिससे स्त्री का स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य में नारी जीवन के विविध पक्षों पर अपनी लेखनी चलाई है, जिनमें महिला स्वास्थ्य का चित्रण भी मुख्य रूप से उभरकर सामने आया है। इस विषय पर विभिन्न लेखकों ने अपने-अपने मतानुसार चर्चा की है। प्रगतिशील साहित्यकारों की श्रेणी में गिने जानेवाले हृदयेश जी ने भी अपने कथासाहित्य में महिला-स्वास्थ्य से जुड़ी पारिवारिक समस्याओं का प्रकटीकरण किया है।

‘अर्थाभाव’ की समस्या—‘अर्थाभाव’ की समस्या भी स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए एक बड़ी चुनौती है। परिवार वाले और पति जब चाहकर भी अपने स्वास्थ्य का ख्याल नहीं रख पाते तो स्त्री अपने स्वास्थ्य की ओर से बिल्कुल उदासीन हो जाती है। अपने पति और घर वालों को मानसिक और शारीरिक कष्ट से बचाने के लिए अपनी बड़ी-से-बड़ी बीमारी भी दरकिनार कर देती है। ‘किस्सा हवेली’ उपन्यास में शशिकला एवं ‘गृहस्थी’ कहानी में रोहणी के माध्यम से अर्थाभाव के कारण स्वास्थ्य पर पड़ते दुष्प्रभाव को चित्रित किया गया है। इंद्र की पत्नी रोहणी को गठिया रोग हो जाता है, कारण जच्चगी के समय अर्थाभाव में उचित देखभाल का न हो पाना। इंद्र बहुत चाहता है कि पत्नी की सहायता के लिए एक महरी लगा ले लेकिन आर्थिक समस्या के कारण वह बेबस है—‘पत्नी की काया इस योग्य नहीं है कि उससे चौका-बासन जैसे काम लिए जाएँ पानी में भीगने से तो रोग और भी जकड़ेगा। गठिया और पानी में पुरानी दुश्मनी है। पर महरी के छह रुपयों का कहाँ से प्रबंध किया जाए, यह समस्या भारी थी। साठ रुपए की आमदनी में सब मद इतने जकड़े हुए थे कि उसकी समझ में नहीं आता था कि कहाँ से कतर-व्योत की जाए?’¹⁴

गरीबी में परिवार के जीविकोपार्जन हेतु स्त्रियाँ अपना शारीरिक एवं मानसिक शोषण सहने को मजबूर हैं। ‘चार दरवेश’ उपन्यास में एक प्राइवेट संस्था में पढ़ाती कुछ महिलाएँ ऐसे शोषण का शिकार होती हैं। वे उसके विरोध में आवाज तो उठाती हैं किंतु ‘जिसकी लाठी उसी की भैंस’ वाली कहावत के चरितार्थ होने के कारण अपना स्वास्थ्य खोकर भी ‘संधि’ करने को मजबूर होती हैं। इन कॉलेजों में वे स्त्रियाँ अपने परिवार की जीविका चलाने के लिए विवश होकर जाती हैं ताकि अपने परिवार की आर्थिक सहायता कर सकें, लेकिन बदले में अपने ऊपर तनाव, शोषण, विरोध, अवसाद, कुंठा, अंतर्द्वंद्व और न जाने कितने विकारों को ओढ़ लेती हैं।

एक ओर लड़की को जहाँ देवी मानकर पूजते हैं, वहीं दूसरी ओर उन्हें पराया धन कहकर जन्म से ही उनके साथ भेदभाव शुरू हो जाता है जो कि आजीवन किसी-न-किसी रूप में उनके साथ जुड़ा रहता है और कभी-कभी उन्हें मृत्यु की परिणति तक पहुँचा देता है। बेटों को बेटियों की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। समाज का बेटियों के प्रति यही उपेक्षा भाव सीधा उनके स्वास्थ्य से जुड़ा होता है। ‘किस्सा हवेली’ उपन्यास में पार्वती एवं वीरेंद्रसिंह के माध्यम से बेटियों के प्रति उपेक्षित व्यवहार समाज की कुत्सित मानसिकता को दर्शाता है। पार्वती ने जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया है, जिनमें एक बेटा और एक बेटा है। वे बेटे का ख्याल अच्छे से रखते हैं और बेटा को उपेक्षित कर देते हैं—‘दोनों बच्चे रोते होते तो वह लड़के को पहले चुप कराने की कोशिश करती,

स्तनपान भी पहले उसी को कराती। पति भी लड़के से ज्यादा लाड़ लड़ाते थे।...वह पति को बताती कि मुन्ना छाती से चिपटता है तो हटाए नहीं हटता, मुन्नी बेचारी भूखी रह जाती है।⁵ समाज और परिवार को तो छोड़िए स्वयं बच्चे के माता-पिता भी अपने बच्चों में अंतर करते हैं।

वैधव्यता भी स्त्री जीवन एवं उसके स्वास्थ्य के लिए एक अभिशाप बन जाती है। वह समाज और परिवार में बिल्कुल उपेक्षित कर दी जाती है उसका अस्तित्व खत्म हो जाता है वह तो बस एक काम करने की मशीन भर रह जाती है। 'नया कानून' कहानी 'स्वस्थ-अस्वस्थ लोग' और 'किस्सा हवेली' उपन्यासों के माध्यम से लेखक ने स्त्री के विधवा जीवन की त्रासदी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। अपनी और अपने बच्चों की जीविका चलाने हेतु स्त्रियों को कितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं। परिवार और समाज के हजारों ताने व्यंग्य बाण और कष्ट स्त्री के तन और मन को बहुत पीड़ा पहुँचाते हैं। 'स्वस्थ-अस्वस्थ लोग' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने स्त्री-जीवन के इस ज्वलंत प्रश्न को समाज के सम्मुख उठाने का प्रयास किया है। मनोरमा के पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है। उसकी देवरानी और भाभी उसे नौकरानी बना लेती हैं। उसकी तबीयत खराब होने पर भी उसे घर का सारा काम करना पड़ता है और साथ में ताने भी झेलने पड़ते हैं- 'तू कमबख्तिन ने इसका सत्यानाश कर दिया। मुफ्त में काम नहीं कराती हूँ। खाने-पीने का पूरा खर्चा उठाती हूँ। मक्कार कहीं की। अपने खराब कर्मों के कारण पति को खा गई। सुचित्रा ने मामा को पत्र डाला। मामा बहन मनोरमा और भानजी सुचित्रा को अपने घर ले आए। मामी का व्यवहार भी वैसा ही क्रूर और कँटीला था।'⁶

समय पर भोजन न मिलने और सामर्थ्य से अधिक कार्य करने के कारण स्त्री का स्वास्थ्य प्रभावित होता है। कभी-कभी तो मानसिक पीड़ा इतनी गहरी होती है कि विधवा स्त्री अपने जीवन का अंत कर लेती है या अपनों के कटु व्यवहारों से वह जीवित लाश बन जाती है, जैसे कि 'नया कानून' की श्यामो अपने ससुराल एवं भाई-भाभी के अमानवीय व्यवहार के कारण अपने पुत्र राधे की मृत्यु को सहन नहीं कर पाती और नदी में डूबकर आत्महत्या कर लेती है। विधवा जीवन की त्रासदी का अंत आत्महत्या या मृत्यु के रूप में हमारे सभ्य समाज के मुख पर एक तमाचे की तरह है, जो आज भी प्रश्नचिह्न बनकर खड़ा हुआ कि कब तक स्त्रियों को निर्दोष और स्त्री होने की यातना झेलनी होगी। समाज और पति द्वारा स्त्री को मात्र एक वस्तु मान लेना और उससे वांछित-अवांछित सभी तरह के कार्य लेना स्त्रियों को शारीरिक पीड़ा के साथ-साथ मानसिक पीड़ा भी देता है। हृदयेश ने 'किस्सा हवेली' में अमानवीय कृत्य को चित्रित कर पाठकों को झकझोर कर सोचने के लिए विवश कर दिया है। औघड़ साधू, चौकीदार, सुरेंद्र सिंह और लक्ष्मी के माध्यम से इस विषय को वर्णित किया है। ठाकुर सुरेंद्र सिंह के पैर में एक बहुत पुराना छाजन है, जो कि किसी भी दवा से ठीक नहीं हो पाता। एक दिन एक औघड़ साधु उनके घर आकर बताता है कि छाजन पर दही-बूरा डालकर सात दिनों तक किसी काले कुत्ते या पतिव्रता स्त्री से चटवाया जाए तो छाजन एकदम ठीक हो सकता है। पहले एक काली कुतिया से छाजन चटवाया जाता है लेकिन वह टुक के नीचे आकर मर जाती है। उधर सुरेंद्र सिंह अपनी पत्नी पर शक करने लगते हैं तो वह बेबस हो जाती है उसका छाजन चाटने के लिए। पुरुष समाज की इस घृणित सोच का यह उदाहरण बहुत ही हृदय विदारक है- 'छाजन चाटने की स्वीकृति देते हुए उसे कोई खास हिचक या असहजता महसूस नहीं थी। वह एक नारी थी जो दासी का पर्याय होती है और तमाम गंदे, धिनौने, अधम काम करना जिसकी प्रकृति में, देह की नाड़ियों

में बहते रक्त की तरह शामिल हो जाता है।...अपने को सच्ची पतिव्रता साबित करने का उसके पास स्वयं चलकर आया यह एक अवसर था।”

छाजन चाटने के बाद लक्ष्मी मानसिक एवं शारीरिक रूप से बीमार रहने लगती है। अंतिम क्षणों में वह विक्षिप्त-सी होकर अपने पति से कहती है—‘खाली मना करने से क्या होता था और काम में आप मुझे जबरदस्ती रोकते थे कि नहीं। अपना मवाद चटवाने से मुझे क्यों नहीं रोका? आपने मुझे क्यों नहीं रोका? क्यों नहीं?’⁸

इस प्रकार स्त्रियों की जिंदगी पशुओं से भी बदतर है। वह समाज और परिवार के साथ-साथ जीवनसाथी के द्वारा भी शोषित की जाती है। स्त्रियों के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले इन कारकों के साथ-साथ अनेक अन्य कारण भी हैं। जैसे—पारिवारिक अवहेलना, अंधविश्वास, अविश्वास, संकोची स्वभाव, परिवार में असहयोग की भावना, प्रेम का अभाव इत्यादि।

पुरानी सोच और मान्यताएँ भी स्त्रियों में कुंठा और अंतर्द्वंद्व का भाव उत्पन्न कर देते हैं, जिनके कारण वह मानसिक व्याधियों का शिकार हो जाती हैं और अंततः स्त्रियों को अपने स्वास्थ्य से वंचित होना पड़ता है। कभी-कभी तो दुष्परिणाम के रूप में स्त्री अपने जीवन का स्वयं अंत कर लेती है, तो कभी-कभी वह रोगों के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाती है अथवा चलने-फिरने में असमर्थ होकर बेबस और लाचार हो जाती है। ये सारी परिस्थितियाँ और स्त्री के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले पारिवारिक कारकों को हृदयेश जी ने अपने उपन्यासों ‘किस्सा हवेली’, ‘गाँठ’, ‘साँड’, ‘चार दरवेश’, ‘स्वस्थ-अस्वस्थ लोग’ और ‘शब्द भी हत्या करते हैं’ और ‘पुनर्जन्म’ तथा कहानियों ‘नया कानून’, ‘गृहस्थी’, ‘भग्गो ताई’, ‘वह अपने से कह रही थी’, ‘नया मजिस्ट्रेट’, ‘गुल दोपहरिया के फूल’ इत्यादि रचनाओं के द्वारा पाठकों के सम्मुख ज्वलंत प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने समाज के सामने प्रश्न खड़े किए हैं। अपनी विकृति एवं घृणित सोच पर मंथन करने के लिए बेटियों को उनके अधिकार दिलाने एवं उचित देखभाल करने के लिए जिससे स्त्रियाँ मानसिक एवं शारीरिक रूप से सक्षम बनें और हमारे परिवार, समाज एवं देश का पूर्ण विकास हो सके, जो कि अभी तक अधूरा है।

संदर्भ

1. शब्दकोश विकीपीडिया नेट
2. sagaracademic.blogspot.com/2019/12/usV
3. WHOhi.m.wikipedia.org.net
4. संपूर्ण कहानियाँ (भाग-1), गृहस्थी, हृदयेश, पृ० 160
5. किस्सा हवेली, हृदयेश, पृ० 11
6. स्वस्थ-अस्वस्थ लोग, हृदयेश, पृ० 82
7. किस्सा हवेली, हृदयेश, पृ० 234-235
8. वही, पृ० 239

ज्योति देवी पत्नी श्री प्रदीप सिंह
ग्राम-बहादुरपुर, पोस्ट-रामराज,
जिला-मुजफ्फरनगर 251320 उ० प्र०
मो० 7088810245

Conceptual Development of Sonapat- Kundli Urban Complex

Ms. Vandana

Research Scholar, Ph.D.
Baba Mastnath University,
Asthal Bohar, Rohtak, Haryana.

Dr. Inder Singh

Professor, Baba Mastnath University,
Asthal Bohar, Rohtak, Haryana.

The National Capital Territory of Delhi, which had recorded an extraordinary growth during 1941-1951 practically doubling its population with lakhs of immigrants thronging to Delhi to take refuge in the aftermath of the partition of the country, continued to experience average decadal growth rate of above 50% since 1951 except in the last decade (1991-2001) when it was 47.02%. This is higher than that experienced by any of the four largest mega cities in India. The continuance of this trend made Delhi to reach the population level of 138 lakhs in 2001. The National Capital Region Planning Board Act 1985 empowers the Board under clause (f) of Section 8, to select in consultation with the State Government concerned any urban area outside the National capital Region having regard to its location, population and potential for growth which may be developed in order to achieve the objectives of the Regional Plan. Conceptually the genesis of the Sonapat Kundli urban Complex lies in the very formation of National Capital Region and National Capital Regional Planning Board in 1985. Kundli was conceptualized as Delhi Metropolitan Area town in Regional Plan 2001 whereas Sonapat was developed as part of Rest of NCR policy Zone. But due to only partial success of this plan, a new plan Regional Plan 2021 was suggested which comprised policy zones namely- (i) NCT-Delhi, (ii) Central National Capital Region (CNCR), (iii) Highway Corridor Zone and (iv) Rest of NCR. Sonapat Kundli Urban Complex is part of CNCR. The opportunities presented by CNCR need to be maximized to enable it to compete effectively with NCT-Delhi offering jobs, economic activities, comprehensive transport system, housing, social infrastructure and quality of environment, if not better at least at par with NCT-Delhi.

Aim of the study is to trace the conceptual development of Sonapat Kundli Urban Complex in Context of NCR planning process and also to enumerate the prospect of the region.

Establishment of NCRPB

Delhi, the National Capital had been facing unprecedented growth which had been a cause of serious concern to the Central Government. It had been recognized that the planned growth of Delhi is possible only in a regional context. In fact, the need for regional approach was felt as early as 1959 when the draft Master Plan for Delhi was prepared. Thereafter, the Master Plan of 1962 recommended that a statutory National Capital Region Planning Board should be set up for ensuring balanced and harmonised development of the Region. The genesis of Planning Delhi in its regional context had in its rapid urbanisation and its ability to offer 'wide opportunities' for large scale employment through specialisation and increased productivity in manufacturing and supporting services. Till 1951, Delhi was essentially an administrative centre with a population of 14.5 lakhs but, the expansion of industry, trade and commerce providing opportunities for economic development, in turn, began to transform its character from an administrative city to a multifunctional city and, exhibited a significant functional shift to industrial character in 1981 when its population size became 57.3 lakhs, recording a growth of about 300% since 1951. This phenomenal growth of population is due to increasing immigration with about 1.50 lakh migrants annually coming to Delhi in search of employment during 1971-81. Today, Delhi acts as a powerful job magnet at the national level. This had drawn job aspirants from far and wide but, more particularly from the neighboring States. As Delhi grew, its problems of land, housing, transportation and management of essential infrastructure like water supply and sewerage became more acute. The city lacked reliable and adequate sources of water, and thus had to depend upon the adjoining States to meet its water supply requirements. Delhi is a Union Territory occupying barely 1483 sq km of land. The physical expansion of Delhi, due to spread of urbanisation in the 1980s claimed about 40% of the total Territory area in 1981, compared to about 30% in 1971 and, it is growing at a rapid pace. The Master Plan for Delhi had initially assigned urban Delhi's population as 46 lakhs in 1981 against the trend based projections of 53 lakhs through a policy of diverting 7 lakhs to the 'ring' towns. Subsequently, this figure was revised to 53 lakhs. The 1981 Census, however, revealed a population of 57.3 lakhs. In other words, Delhi's growth has taken place at a much faster rate than anticipated. Worse still, the population of ring towns grew by 567101 during this period. In 1981, the city had 11.3 lakhs more population than what was envisaged at the start of the Plan and, 4.3 lakhs more than the revised capacity of 53 lakhs in 1976. The setting up of the statutory Board in 1985 and coming into operation of the first statutory Regional Plan - 2001, were important achievements in the balanced development of the National Capital Region.

NCR Plan 2001 and evolution of concept of DMA and satellite Towns

Delhi was besieged by a host of serious problems during 1980s. The gap in availability of essential services like water supply, power, transport and management

of solid waste were continuously increasing. The problem was being further aggravated due to increasing immigration. In our democratic system; migrants do not feel bound by physical boundaries of the States, while our administrative, development planning and resource allocation systems operate within the limits of territorial boundaries. The operation of this system, therefore, on the one hand had manifested in increasing congestion in Delhi and, on the other, acted as an obstacle to the integrated and balanced development of the Region without any regard to the physical boundaries. The enactment of the National Capital Region Planning Board Act, 1985 with the consent of the participating States and the adoption of the Regional Plan by them is a realisation of this reality. Consequently, the Plan had suggested policies and measures which would help in achieving the objective of the planned development of Delhi. Whether economic and demographic concentration in Delhi had already reached a point at which the social cost of agglomeration exceeds the benefits, could not be proved conclusively, but, it is clear that if this threshold had not been reached, it is likely to be reached in a relatively near future. It was also clear that alternatives to the further growth of Delhi should be identified. (Regional Plan 2001)

Delhi's growth was not confined to the boundaries of the Union Territory. This urban spatial expansion has spread into the surrounding areas of Uttar Pradesh and Haryana around Delhi, which along with Delhi UT constitute the Delhi Metropolitan Area (DMA). Owing to its location, the DMA excluding Delhi had exhibited growth characteristics similar to that of Delhi in recent years. In fact, while Delhi had grown only 53% during 1971-81, Faridabad-Ballabgarh, Ghaziabad and Gurgaon have grown 169.40%, 141.65% and 76.50% respectively. Delhi being limited in its territorial extent and, as opposed to it, the ring towns having relatively extensive areas for expansion, the unabated pouring of migrants into Delhi brought in manifold problems in the form of congestion and inadequacy of the basic services. This was accentuated as the ring towns were developed for industries and allied activities but not with adequate residential development. During 1961-81, the influx of migrants into Delhi was about 53000 a year which jumped to 1.23 lakhs a year during 1971-81. In addition, daily 3.06 lakh people commuted between Delhi and the OMA towns and, of which nearly 1.5 lakhs commuted to Delhi daily

from the OMA towns during 1987. The green belt around Delhi of the 1962 Master Plan has slowly vanished leading to a continuous sprawl of the metropolis engulfing the then ring towns which form the present Delhi Metropolitan Area. The inter-action between Delhi and the adjoining towns within the Delhi Metropolitan Area had become more and more intensive increasing inter-dependence with each other. The services, both economic and social, and also job opportunities to a great extent, serve the floating population from the OMA towns and the migrants. A study of population, density, growth and the problems of services of Delhi and the towns around shows marked characteristics leading to

clear identification of Delhi UT and the other towns within Delhi metropolitan Area as two distinct zones. The areas beyond the DMA upto the NCR boundary which is pre-dominantly rural and relatively industrially backward recording slower growth, and depending for higher level facilities on the DMA towns, specifically Delhi, stand out as the third zone distinctly different from the other two.

The prime objective of the Regional Plan was to contain Delhi's population size within manageable limits at least by the turn of the Century. As a strategy, after evaluating various alternative scenarios for development, it has been realised and recognised that, in order to save Delhi from population explosion, it is necessary to moderate the growth in the areas around it. At the same time, it is also recognised that any additional population in the DMA towns, excluding Delhi, will not to any extent moderate or reduce the problems of Delhi as their interdependence is intensive and necessarily mutual. The preliminary studies clearly concluded that economic activities with potential for large scale employment should necessarily be located outside the DMA, preferably at a distance which discourages daily interaction with Delhi. Thus, on the basis of these criteria, the zones which came out distinctly are Delhi UT, the DMA excluding Delhi UT and, the area beyond DMA within NCR, for effective application of the policies and implementation of proposals with a view to achieve a manageable Delhi and an harmoniously developed Region. These Policy Zones are described briefly as :

- **Delhi U.T.**

- **Delhi Metropolitan Area (excluding Delhi UT)** The Delhi Metropolitan Area, as envisaged comprised the controlled areas of the contiguous towns of Ghaziabad including Loni and NOIDA in Uttar Pradesh, Faridabad-Ballabgarh Complex, Gurgaon, Bahadurgarh, Kundli and the extension of Delhi ridge in Haryana, The total area of DMA excluding Delhi is about 16961 sq km and population of 8.08 lakhs in 1981 with a density of 476 persons per sq km. Kundli was part of this zone.

- **Rest of NCR** Rest of the NCR comprising an area of 27063 sq km, is predominantly rural in character and contains 83 urban centres and about 6046 villages. The population growth rate of towns in the NCR area beyond DMA had been generally lower than the national urban average during the decade 1971-81. Sonapat had been part of this zone.

NCR Plan 2021 and evolution of concept of CNCR and Functional Urban Complexes

The Regional Plan-2001, which was notified in January 1989, laid down development policies aimed at:

- (i) relieving the capital city from additional pressures,
- (ii) avoid adding new pressures on the capital and
- (iii) development of settlements in NCR to enable them to play their assigned

role.

The objective of the Regional Plan-2001 has been to achieve a balanced

and harmonious development of the region, leading to dispersal of economic activities and deflecting future in-migrants to Delhi, thereby leading to a manageable Delhi. In order to achieve these objectives the Regional Plan proposed three policy zones namely NCT-Delhi, DMA and the Rest of NCR.

The broad policy parameters for these zones and the extent to which these have been met during the last two decades are as under: NCT-Delhi (1,483 sq kms) to have restricted growth and decentralization of activities concentrated therein to the entire NCR. The Plan accordingly assigned a population of 112 lakhs including two lakhs rural population to this zone as against the estimated population of 132 lakh by 2001, thereby deflecting 20 lakhs people to the Rest of NCR. Against this assignment, Delhi has actually grown to 138 lakhs as per Census 2001 thereby overshooting the estimated population.

The DMA excluding NCT-Delhi (1,696.85 sq kms) comprising the controlled development areas of the contiguous towns of Ghaziabad-Loni and NOIDA in Uttar Pradesh, Faridabad-Ballabgarh complex, Gurgaon, Bahadurgarh, Kundli and the extension of Delhi ridge in Haryana. This zone was proposed to have a population of 38 lakhs (including one lakh rural population) by 2001.

However, the Census 2001 has shown that the DMA towns have attained a population of only 28 lakhs, though two of its towns i.e., Faridabad and Ghaziabad-Loni have come up very close to their assigned population, the rest are still far behind, especially Kundli which is still to take off. (NCR Plan 2021)

The Rest of NCR comprising an area of 27,063 sq kms for induced development specially of the priority towns complexes namely Meerut, Hapur, Bulandshahr-Khurja complex, Palwal, Panipat, Rohtak, Dharuhera-Rewari-Bhiwadi complex and Alwar. The Regional Plan-2001 had proposed that out of the additional 20 lakhs population slated to be deflected from Delhi, 19 lakhs would be accommodated in the Priority towns complexes and one lakh in the rural areas of NCR. Accordingly, a total population of 49 lakhs was assigned to the Priority towns by 2001, against which these towns attained a population of about 28 lakhs as per the Census 2001. They recorded slowest growth rate showing no inducement.

REGIONAL PLAN-2021

It is obvious from the above that the policy to contain the population of Delhi and deflecting 20 lakhs population outside to NCR had met with very little success. Also the induced growth envisaged for the Priority towns in the Rest of NCR had not taken place. Accordingly, the policy of restricted growth of Delhi has been reviewed and the Regional Plan-2021 proposes 'to harness the spread of the developmental impulse and agglomeration economies generated by Delhi for harmonized, balanced and environmentally sustainable spatio-economic development of the NCR with effective cooperation of the participating States'.

Therefore, the Regional Plan-2021 aimed 'to promote growth and balanced development of the National Capital Region' as per Section 10, Sub-section (2)

of the Act, 1985.

The above aim was sought to be achieved through:

(i) Providing suitable economic base for future growth by identification and development of regional settlements capable of absorbing the economic development impulse of NCT-Delhi.

(ii) To provide efficient and economic rail and road based transportation networks (including mass transport systems) well integrated with the land use patterns, to support balanced regional development in such identified settlements.

(iii) To minimise the adverse environmental impact that may occur in the process of development of the National Capital Region.

(iv) To develop selected urban settlements with urban infrastructural facilities such as transport, power, communication, drinking water, sewerage, drainage etc. comparable with NCT-Delhi.

(v) To provide a rational land use pattern in order to protect and preserve good agricultural land and utilise unproductive land for urban uses.

(vi) To promote sustainable development in the region to improve quality of life.

(vii) To improve the efficiency of existing methods of resource mobilisation and adopt innovative methods of resource mobilisation and facilitate, attract and guide private investment in desired direction. Keeping the above objectives in view, the Regional Plan-2021 has proposed the development of NCR through four policy zones namely- (i) NCT-Delhi, (ii) Central National Capital Region (CNCR), (iii) Highway Corridor Zone and (iv) Rest of NCR (Map 3.1 National Capital Region: Policy Zones) for which the following development policies had been envisaged.

1. NCT-Delhi

The basic policy for NCT-Delhi (1,483 sq kms) was to achieve environmentally sustainable development - development, taking into account the limitation of developable land and water. No new major economic activities i.e., industries, wholesale trade and commerce, which may result in a large scale job creation, both in formal as well as informal sectors, should be located in this zone.

2. Central National Capital Region excluding NCT-Delhi

The Central NCR (earlier Delhi Metropolitan Area as defined in Regional Plan-2001) comprised the notified controlled/development regulated areas of contiguous towns of Ghaziabad-Loni, NOIDA, Gurgaon, Faridabad-Ballabgarh, Bahadurgarh and Sonapat-Kundli and the extension of the Ridge in Haryana. These controlled development regulated areas, measuring 1,696 sq kms, have undergone changes. In many cases, new areas had been added.

In view of this, the present notified controlled areas of the above towns of Ghaziabad-Loni, Noida, Gurgaon-Manesar, Faridabad-Ballabgarh, Bahadurgarh and Sonapat-Kundli are designated as Central National Capital Region (CNCR) for Regional Plan-2021. The total area of CNCR (excluding NCT-Delhi) would

be 2,000 sq kms approximately.

The opportunities presented by CNCR need to be maximized to enable it to compete effectively with NCT-Delhi offering jobs, economic activities, comprehensive transport system, housing, social infrastructure and quality of environment, if not better at least at par with NCT-Delhi. All new major economic and non-polluting activities wanting to get located in NCT-Delhi should be located in the urbanisable areas planned in this zone. Keeping in view the physical growth and excessive pressure of development in the CNCR, the participating states will prepare a Plan for their respective areas falling in CNCR and a CNCR Planning Group would be assigned the power to coordinate and harmonize the Plan for CNCR under Section 32 of the NCRPB Act, 1985. Emphasis should be given to transportation, civic infrastructure, land use and conservation.

3. Highway Corridor Zone

A Highway Corridor Zone is proposed with a minimum width of 500 metres inclusive of green buffer on either side of the right-of-way (ROW) along the National Highway (NH) 1, 2, 8, 10, 24, 58 and 91 converging at Delhi to enable the planned and regulated development along these highways outside the existing controlled development regulated areas. Area of the Highway Corridor Zone is 300 sq kms approximately.

Activities permitted in the green buffer on both the sides of the highways have been listed in the zoning regulations in Chapter 17. However, in the Highway Corridor Zone excluding green buffer, the land use will be decided by the respective State Governments depending upon economic pressure, local situation and development potential of the area. The Highway Corridor Zone will be delineated and notified by the respective State Governments. However, utmost care will have to be taken while planning these zones to ensure that the activities being permitted in this zone are segregated from highway traffic through proper green belts, service roads and controlled access to the highways.

4. Rest of NCR

In the Rest of NCR (approximately 29,795 sq kms), the basic policy of Regional Plan-2001 for accelerated development of both urban and rural areas would continue. Infrastructure has to be substantially upgraded at local and regional level (both by State and Central Governments) in order to induce the growth in these areas, specifically in the identified settlements i.e., Metro Centres and Regional Centres. This will make them more attractive for locating economic and allied activities and for attracting private sector investment. Only activities necessary to sustain the local population of NCT-Delhi should be permitted.

Sonepat Kundli Multi functional Urban Complex: Prospects

The transportation network plays a vital role in development of any area. Keeping in the view, a plan has been making to strengthen the Sonipat-Kundli region rail and road network by expanding the railway lines and joining the surrounding roads with national highway. In this context, the expansion of

Delhi Metro has been planned up to Kundli after Narela. The establishment of various institutions namely Rajiv Gandhi Education City (RGEC) including 11 presumed organizations (National Law University and extension campus of IIT Delhi), National Institute of Food Technology, O.P. Jindal Global University, Entrepreneurship and Management (NIFTEM) provide a base to emerge the region as educational hub. In this plan Sonapat-Kundli urban compound has been notified as regional center in National Capital Region in which a big amount of whole expenditure has been invested on basic infrastructure such as roads, drainage, water supply, health facility, educational centers and community places etc. The land prices in Delhi having touched the skies, the proximity of well managed and reasonably priced residential, commercial and industrial sector of urban complex in Sonapat are becoming substitutes for people so that the city is being hailed as „*The Future City of Haryana*’. It has been truly said that some times, the development of one area becomes the curse for another. As both the state and Sonapat-Kundli region has dominance of agriculture and holds a momentous share at national and state level agricultural production, the acquisition of fertile and productive land for urban expansion has remained a big concern among the canvassers and an issue of debate between administrative authorities and conservationists. So without disquieting the farming land, the acquirement of waste and unproductive land for shaping the urban expansion will be an intelligent and eco-friendly decision for sustainable development. In fact, the speedy and proper directed growth of Sonapat-Kundli complex has generated a hope of its becoming the next cyber city in Haryana.

References

1. Census, 2001. District Census Handbook, Sonapat district, Haryana. Government of India New Delhi.
2. Census, 1991. District Census Handbook, Sonapat district, Haryana.
3. Census, 1981. District Census Handbook, Sonapat district, Haryana.
4. Census, 1971. District Census Handbook, Sonapat district, Haryana.
5. Kumar, Barun. Urban Economic Base of National Capital Region of India. Globe Publishing House, Delhi. 2008.
6. Regional Plan 2001. National Capital Region, National Capital Region Planning Board, Ministry of Urban Development, Government of India. 1989.
7. Regional Plan 2021. National Capital Region, National Capital Region Planning Board, Ministry of Urban Development, Government of India. 2005.
8. Town and Country Planning Organization. 2007. Evaluation Study of DMA Towns in National Capital Region (NCR). Ministry of Urban Development: Government of India.
9. Roy, Ananya. 'Why India Cannot Plan Its Cities: Informality, Insurgence And The Idiom Of Urbanization' Planning Theory, vol. 8, no. 1, 2009, pp. 76–87. JSTOR, www.jstor.org/stable/26165886. Accessed 22 Oct. 2020.
10. Shaw, Annapurna. 'Urban Policy in Post-Independent India: An Appraisal.' Economic and Political Weekly, vol. 31, no. 4, 1996, pp. 224–228. JSTOR, www.jstor.org/stable/4403721. Accessed 22 Oct. 2020.
11. https://www.academia.edu/38955628/National_Capital_Regional_Plan_2021_A_Geographical_Analysis accessed on 25.06.2021
12. http://ncrpb.nic.in/pdf_files/04_Chapter1_cma.pdf

Email : vandana.odse@gmail.com

Study Based On Literature Review On The Effect Of Yoga On The Fitness Of Kho Kho Player

Dr. B.S. Chouhan

Dean faculty of Physical Education
Bhupal Nobles' University, Udaipur (Raj.)

Mr. Rakesh kumar

Research Scholar,
Bhupal Nobles' University, Udaipur (Raj.)

India is a country of culture and tradition, with many norms and forms. Yoga and khokho are part of the culture for ages. Kho Kho is a simple game and believes to have come into existence in the ages of Mahabharata, it was known as rathera as it was played using chariots. It has its roots in the charakvyuha which was created on the thirteenth day of the war. The strategy adopted by Abhimanyu is also adopted today by the players. The game holds traditional importance especially in Maharashtra and is now known worldwide. The modern form of the game was given by Lokmanya Tilak shaped by Deccan Gymkhana Pune. The first match in the new form took place back in 1914 and was played at the national level since 1959. Since 1982 its international journey started. **(Badwe, 2021)**

Yoga is traditional science known to purify body and mind, is again getting popular and followed across the globe. Yoga has many forms and all having different benefits. Though many confuse and consider yoga and meditation as the same Overall we can conclude yoga is a blend of mediation, breathing skills and postures relax and develop a connection with the mind-body and our inner soul.

Kho kho player should possess the following skills as running, chasing and defending skills to excel in the game. Players need to be full attentive, responsive and judge the steps of the opponents.

Objective and Methodology

The objective of the study is to explore the existing literature about the benefits of yoga, effects of yoga on kho-kho players and draw conclusions based on the findings of the related study. This study will emphasise the drills which are overall benefited from practising yoga. The existing literature which is available on various platforms in the form of journals, reports and articles were explored to derive the conclusion.

Literature Review

Authors have done a study to find out the benefits of yoga over other

exercises. The study was conducted on 118 people following a sedentary life, two groups were formed. One was exposed to stretching and strengthening exercise and the other to hatha yoga. Balance, strength, flexibility and mobility were studied. It was found that both the groups have shown overall improvement as the experiment group was prior exposed to sedentary life, the yoga group had a good and active connection between mind and body. **(Gothe & McAuley, 2015)**

Practising yoga has now become the new trend to keep fit, flexible and to perform different forms add a new milestone in the yoga journey. Iyengar yoga involves physical as well as psychological activeness to perform the forms. A study was conducted to see the effect of Iyengar yoga on the flexibility of practicers for 6 weeks. It was found that yoga has a positive impact on increasing the flexibility of the spine and hamstring even people do it for a day in a week. **(Amin & Goodman, 2014)**

A study was conducted on 26 athletes for ten weeks. Two groups were formed one was exposed to yoga twice a week. Performance was measured before and after the completion of 10 weeks. It was found that yoga improved the flexibility and balance and body dimensions of the athletes resulting in improved performance. **(Polsgrove, Eggleston & Lockyer, 2016)**

The author studies the effect of physical activities on the fitness of players, total hundred females were studied. We have taken 25 participants in each group from the following categories as untrained, physical education students, kho-kho players, kabbadi players. The main study area was leg flexibility, strength and endurance. The conclusion of the study was

- Kho kho player had good flexibility of back and hamstring.
- Kabaddi players have good leg explosive strength
- The physical education group had the good cardiovascular endurance
- The untrained group which was not exposed to any physical activity were

lacking in all fields

The study concluded that physical activity should be part of our daily routine. Any form of physical activity in our life is required to keep us fit, flexible. **(Sana & Barman, 2017)**

Yoga is an old practice that is again gaining popularity throughout the world. For every player, it's essential to have good flexibility, mobility. If the coaches and trainers include yoga practices in the player's session it will help them to reap a lot of benefits. In this study, the author has studied 40 kabbadi and khokho players where the players were tested sit and reach test before and after completion of training of 180 days. It was found that in the group of 20 players who were exposed to yoga practice there was an improvement in flexibility and mobility. **(M, 2020)**

Every day new records are set by sportspeople, it's the result of continuous practice. Sports calls for an active and fit player, it is competition among the fittest to win with traits and skills required for a particular game. Khokho is one of

the very old games played in India. Authors have studied the role of physical and psychological being on the performance of the game, a survey was done on 60 players of khokho and atayapataya. **(Gouda SM, S &Virupaksha, 2018)**

In another study was done on 30 khokho players to see the impact of asanas on the overall development of players. Two groups were framed comprising 15 members each. One group was given yoga training for 6 weeks, it found a positive result of yoga exposure to the players and it was concluded it's essential to improve flexibility and strength of the players. **(Tandel, 2019)**

A study was done on the 40 players of kho-kho and gymnastics of Punjab. Two groups were framed and were given 6 weeks of training including yoga in their schedule. Yoga not only develops flexibility and strength but also aids in the balance and perceptions of the player.**(Rayat, 2015)**

Saravanakumar& Balasubramanian, (2015) had explored the effect of yoga and aquatic training on motor fitness components of the players. It was done on 90 players who were grouped into three groups. One of which was exposed to yoga practices another to aquatic activities and last control group for twelve weeks. It was found the groups exposed to Yogic practices and aquatic training have shown improvement on the motor fitness variables studied Kho-Kho players. The following variables were studied and the training responsible for their improvement are:

- Speed – aquatic training
- agility– aquatic training
- flexibility yogic practice

Kumar & Balasubramanian, (2015) had studied the effect of Yoga on the psychological change of khokho player. for the study 30 player were selected. Two groups were formed and 12 week training was given to one group. Psychological variables namely aggression, self-confidence and sports achievement motivation were selected as the criterion variable. The exposed group show positive results improved results than the control group.

In a study of 40 male khokho players who were divided into two groups, one was the control group and the other was an experimental group that was given training on yoga for 90 minutes thrice in a week. The study was conducted for 8 weeks. It was concluded that the yogic practices had significant improvement on the strength, flexibility and explosive power of the experimental group.**(Jerin, Prasanna, Chandrasekhar, Sundar &Senthikumar, 2020)**

Yoga and khokho are played and practised for ages, they are the games of India. Both involve mind and body connections impacting the physiological being. In this study, the author has created two groups one was exposed to yoga and the other to khokho for 12 weeks duration. The variables studied were Blood pressure, Respiratory and Heart rate, Vo₂ max. the test of the participants was done before and after the completion of 12 weeks. It was found that

- Yoga is good to improve blood pressure and respiratory and heart rate.
- Kho kho excels in improving vo2 max. Both proved to
- Both yoga and kho-kho are very good to improve circulo-respiratory efficiency

Yoga and khokho complement each other and should be practised together to have overall improved results. **(Laishram Singh, Laishram Singh & R. K. Singh, 2016)**

Findings

Physical activity should be part of everyone's life, it helps to keep us fit and maintain flexibility, mobility and strength. Even a short duration yoga routine was found to be beneficial in improving the spinal and hamstring flexibility of the practitioners. Yoga is found to have benefits in improving the functional fitness of one's body and it's easy to do, adapt by individuals of any age as it requires no equipment and is easy to perform. Sports are multi-dimension tasks involving physical and psychological beings. Yoga practice aids the performance of sportspersons. Iyengar is a form of yoga that helps to eradicate backbone pain and improve spine and hamstring flexibility. It helps to create a better mind-body connection which is the essence of the sportsperson. It was also noticed that the inclusion of yoga in the training schedules of the khokho players improve their motivation level and concentration in the game, making them more positive

Conclusion

From the existing studies, we have found out that yoga has a positive impact on the flexibility and mobility of players which improve their agility and running speed. Yoga should be part of the training of sports personnel's, it helps to improve their performance. Yoga and khokho complement each other and overall develop the players mental and physical being resulting in a good performance. This paper has given scope for future study to conduct a study on the player's performance in the matches who have incorporated yoga in their training sessions.

References

1. Amin, D., & Goodman, M. (2014). The effects of selected asanas in Iyengar yoga on flexibility: Pilot study. *Journal Of Bodywork And Movement Therapies*, 18(3), 399-404. doi: 10.1016/j.jbmt.2013.11.008
2. Badwe, A. (2021). Kho Kho - Did you know the game has roots as old as Mahabharata?. Retrieved 28 July 2021, from <https://www.kreedon.com/kho-kho-game/>
3. Gouda SM, R., S, S., & Virupaksha, D. (2018). Fitness and psychological variables of Atya-Patya and Kho-Kho players. *International Journal Of Yogic, Human Movement And Sports Sciences*, 3(1), 373-375.
4. Gothe, N., & McAuley, E. (2015). Yoga Is as Good as Stretching–Strengthening Exercises in Improving Functional Fitness Outcomes: Results From a Randomized Controlled Trial. *The Journals Of Gerontology Series A: Biological Sciences And Medical Sciences*, 71(3), 406-411. doi: 10.1093/gerona/glv127
5. Jerin, C., Prasanna, D., Chandrasekhar, D., Sundar, D., & Senthikumar, D. (2020). AN INFLUENCE OF YOGIC PRACTICES ON SELECTED MOTOR FITNESS VARIABLE

AMONG MEN KHO - KHO PLAYER. Journal Of Xi'an University Of Architecture & Technology, XII(IV), 2030-2036.

6. K.Saravanakumar, M., & Balasubramanian, D. (2015). Effects Of Yogic Practices On Selected Psychological Variables Of Male Kho-Kho Players. Asian Journal Of Applied Research (AJAR) 2015, 1(2), 17-22.
7. Laishram Singh, S., Laishram Singh, T., & R. K. Singh, R. (2016). Coparative Effect Of Yoga And Kho-Kho Game On Selected Physiological Variables Of Inter - College Female Athletes. International Reasearch Journal Of Physical Education And Sports Sciences, III(I). doi: DOI: 10.13140/RG.2.2.21215.07846
8. M, D. (2020). A study on flexibility and agility in yogic exercise of the kho-kho and kabaddi players Dr. Yallappa M. Journal Of Sports Science And Nutrition, 1(1), 37-39.
9. Md Iftekher, S., Bakhtiar, M., & Rahaman, K. (2017). Effects of yoga on flexibility and balance: a quasi-experimental study. Asian Journal Of Medical And Biological Research, 3(2), 276-281. doi: 10.3329/ajmbr.v3i2.33580
10. Polsgrove, M., Eggleston, B., & Lockyer, R. (2016). Impact of 10-weeks of yoga practice on flexibility and balance of college athletes. International Journal Of Yoga, 9(1), 27. doi: 10.4103/0973-6131.171710
11. Rayat, S. (2015). Effect of Practice of Yoga Exercises on Balance and Perception of National Level Players. IOSR Journal Of Sports And Physical Education (IOSR-JSPE), 2(4 (Jul–Aug. 2015), 25-30.
12. Sana, D., & Barman, A. (2017). A study on selected physical fitness components of Kho-Kho players, kabaddi players, physical education trainee students and untrained females. International Journal Of Yogic, Human Movement And Sports Sciences 2017, 2(2)(2), 421-424.
13. Saravanakumar, M., & Balasubramanian, D. (2015). Effects Of Yogic Practice And Aquatic Training On Motor Fitness Components Of Male Kho–Kho Players. Asian Journal Of Applied Research (AJAR) 2015, 1(2), 21-27.
14. Tandel, B. (2019). Effect of asana on explosive strength and flexibility on kho-kho players. International Journal Of Physiology, Nutrition And Physical Education, 4(1), 1104-1106.
15. Yallappa, M. (2020). A study on flexibility and agility in yogic exercise of the kho-kho and kabaddi players. Journal of Sports Science and Nutrition, 1(1), 37-39.

Ward no. 8, Near by SBI bank
VPO.Mirzewala, Dist. Sri Ganganagar (Raj) 335038
Phone. 8560080043
Libra.Tigers@gmail.com

Indian New Education Policy 2020: A Critical Analysis

Dr.Reenu Rani Mishra

Associate Professor

Department of Economics

S.B.S. Government (P.G) College Rudrapur
(Udham Singh Nagar) Uttarakhand 263153

Introduction

Education is the way of goal promoting education among the people of India lies in the objectives of the new education policy. A significant improvement in the quality of education enables the opportunity for all children to pursue your education and perform better internationally, inspiring the younger generation and provide an opportunities for the education for their choice. The Government of India has recently announced a new education policy based on the recommendations of an expert committee headed by Dr. Krishna swamy Kasturirangan, former chairman of the Indian Space Research Organization (ISRO). Innovations, research and advanced higher education system have been discussed in the new education policy. To examine the areas which look very dilapidated so that infrastructure can be built.

The new education policy 2020 pre-school to secondary level is set with the goal of making education Universal. It replaces 34 years old policy to a more inclusive, holistic and visionary policy to make India a knowledge hub by the end of the decade. Approved by the Union Cabinet on 29 July 2020, it outlines the vision of the new education system of the Government of India.

Fundamental principles of the policy

Ø To identify and promote the potentials of the students by sensitizing the teachers as well as the parents to promote the holistic development of the student in both academic and non-academic field.

Ø To promote the ability of the students to take a learning path according to their talent and interest.

Ø To promote the ability to learn and make logical decisions instead of rote learning for the science, social science, arts, sports and multidisciplinary world.

Ø To bridge the gap between Arts, Science, vocational and academic streams and curriculum activities.

Ø To promote multilingualism and teaching power.6- to establish synergy

in curriculum in all levels of education from early childhood Care, Education to schooling, higher education and education.

Key points of NEP 2020 in higher education-The main 5 key points of NEP2020 are in higher education-

1. Multiple entry and exit option in degree courses.
2. Closing M Phil programs
3. Single regulator for higher education Institutions.
4. Low stake board exam
5. Common entrance test for Universities.

Difference of new NEP 2020 with NEP 1986-The National Education Policy of 1986 focused on modernizing the education sector using information technology, restructuring teacher education, women empowerment and adult literacy. It was accepted that the autonomy of universities and colleges would improve the quality of education services but the old National Policy on Education 1986 failed to achieve the objective of quality education with employability skills.

The best research could not succeed in producing, publishing and generating patents. To make up for the failure of the old National Education Policy with the new National Education Policy 2020, a liberal education has been proposed supporting multidisciplinary and cross disciplinary education and research at undergraduate and postgraduate levels.

S.No. NEP 1986	NEP 2020
1. General education institute 10 (5+3+2)+2+3+2 is followed objectively the role of education for all round development of the students.	The first traditional education start from the foundation stage in the third year of the child.
2. There is no systematic and certified funded agency for university and colleges research.	To provide multidiscipline and end-subject liberal education with a general education structure of 5+3+3+4+4+1 suggested.
3. To give freedom to the students in the choice of two types of board exam, as well as subjects like Arts, Commerce and Science subjects.	School level exams are suggested except for the 10th and 12th board level exams.
4. Undergraduate programs are for 3to 4 as well as master education is of 2 years with specialization focus.	Optional subject choice is based on liberal education part.
5. All examinations and evolutions are controlled by the University.	All undergraduate and postgraduate entrance exams are based on the marks of NTA conducted by the national level.
6. Only recognized and permitted universities are allowed to provides online distance learning (OLC).	The teaching learning approach mainly focuses on classroom training, field work and research project.
7. Social engagement is optional for	The excepted student- faculty ratio in

- | | | |
|-----|--|--|
| | the student to direct as a part of the Curriculum at the undergraduate level. | the higher education system is 30:1. |
| 8. | The expected student faculty ratio in the higher education system is 20:1 and Research funding through UGC and other agencies is mainly for universities rather than colleges. | The undergraduate programs are for 4 years duration, with a diploma after one year, an advanced diploma after two years, a degree passed after three years and a project-based degree after 4 years of teaching. |
| 9. | Both single discipline and multidiscipline colleges are promoted. | Students have the freedom to choose subjects outside and outside their field of study. |
| 10. | After graduation two years B.Ed education is valid for teacher. | To become an assistant professor PhD with NET/SLET pass is mandatory. |
| 11. | Holders of a Bachelor's degree are not a direct admission to a Ph.D until a master degree is required. mainly for universities rather than colleges. | National Research Foundation (NRF) is formed to bring out competitive and innovative research proposal in all types of discipline. |

Reforms of new education policy –NEP 2020 will replace the old national education policy 1986.

- Every children should learn at least one option and be exposed to other occupations.
 - By 2025 at least 50% of the learners must have experience in vocational education through school and higher education system.
 - Students will have to be provided equal internship opportunities to learn vocational subjects during elementary education itself.
 - Capability of the digital infrastructure has to be enhanced to meet the E- education needs for school and higher education.
 - Efforts will be made to encourage the merit of the students belonging to SC, ST, OBC and SEDG.
 - By 2030 the number of youth which technical and vocational skills for employment, good jobs and entrepreneurship will be increased.
 - Under the New Education policy, the undergraduate course can be extended from 3 to 4 years and student will given multiple choices.
 - Under the new Education Policy, Government and private Institutions will be treated equally
 - Emphasis on e-Learning so that dependence on books can be reduced.
 - Through the new education policy, changes will be made in the educational curriculum for the person with disabilities.
- Problem face in implementation and NEP 2020-
- India has about 1000 Universities today time, doubling the Gross Enrolment Ratio in higher education by 2035, which is one of the stated features of the

policy, will mean we have to open a new university every week for the next 15 years which is the main challenges.

- The New education policy 2020 aims to bring 2 crore children in the school system, which are currently not in schools. This means that to meet the target in 15 years, about 50 schools will be required to be established every week which is not possible but is it definitely difficult.

- Most of the schools are not yet compliant with the full set of RTE infrastructure. Drinking water facilities, lack of common toilets and separate toilet for girls are not yet available in schools. it means that lack of infrastructure in school and college in country.

- No coordination between the demand of academia and industry. Industries in India face problems in finding suitable employees as the education provided is not suitable for working industries directly. A huge amount has been spent on provides separate training to the Employees.

- Funding is a big challenge in covid-19. The national education policy envisages an increase in education expenditure from 4.6 % to 6.0 % in GDP, which is about Rs 2.5 lakh crore per annum. This money will be spent for operational expenses like construction of schools and colleges, appointment of teachers and professors across the country, so this target also the main challenge of new education policy

Conclusion:

A well-defined and futuristic education policy for innovation is essential for every country as education is a major driver of the economic and social progress. Keeping in mind their own traditions and culture, different countries have adopted different education system. The Government of India has taken a giant leap forward by announcing its new education policy. NEP 2020 which is almost three decades after the interim major announcement were made to the old policy of 1986. NEP is a comprehensive effort to formulate the policy that considers various perspectives, global best practices in education, feedback form field experience, the mission is an ambitious but the implementation road-map will decide whether it will lead to a truly inclusive education that makes learners industry and future ready. India's National Education Policy 2020 is an important initiative aimed at improving quality attractiveness, affordability, creating innovative policies and opening up higher education to the private sector. The Indian National Education Policy has been formulated with the objective of promoting merit-based admission, merit as faculty members and research-based exposure and progress through technology. New Indian Education Policy 2020 will be the key to rebuild the Indian education system but this policy is not presented with any new policy because Gandhiji's concept of basic education was based on earning a livelihood. Gandhiji had also said that education should be job oriented. The New Indian Education Policy talks about employable education with skills.

References

1. Borah, Gunnie (2021) Faculty of Geography in Biswanath college Chariali. India Today Feb 9.
2. Bhardwaj Pandey, Amita (2020) professor, Department of Education and project head PMMMNMTT scheme, MHRD Webinar (National Education Policy 2020: An Overview) SLBSN Sanskrit University (Centre University) New Delhi-16. Published in Education 29/10/2020.
3. Kumar, Pramod (2016) National Education Policy, published in Healthcare, Oct 1.
4. Kamarapu, Prasad Balasri (2020) NEP-India-2020 published in Education August 2.
5. George, Andrew's Alex (2020) author and entrepreneur National Education policy 2020 July 31 www.clearias.com& http://pibphoto.nic.in.
6. Chanakya IAS Academy (AAROHAN) weekly News (New Education Policy)www.chankyaiadacademy.com.
7. Draft National Education Policy 2019, <https://innovate.mygov.in/wpcontent/uploads/2019/06/mygov15596510111.pdf>[3]
8. Aithal, P. S. & Aithal, Shubhrajyotsna (2019). Analysis of Higher Education in Indian National Education Policy Proposal 2019 and its Implementation Challenges. International Journal of Applied Engineering and Management Letters (IJAEML), 3(2), 1-35. DOI: <http://doi.org/10.5281/Zenodo.3271330>.
9. National Education Policy 2020. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep/NEP_Final_English.pdf referred on 10/08/2020.
10. Pradeep M.D, and Aithal, P. S., (2015). Learning through Team Centric Exercise & Key Point Pedagogy - An effective Learning Model for Slow Learners in Higher Education Training, International Journal of Multidisciplinary Research & Development, 2(9), 265-270. DOI: <http://doi.org/10.5281/zenodo.267765>.
11. Desai, M. S., & Johnson, R. A. (2014). Integrated systems-oriented student-centric learning environment. Campus-Wide Information Systems. 31(1), 24-45.
12. Aithal P. S. & Suresh Kumar P. M. (2018). Approaches to Confidence Building as a Primary Objective in Postgraduate Degree Programmes. International Journal of Applied Engineering and Management Letters (IJAEML), 2(1), 64-71. DOI: <http://dx.doi.org/10.5281/zenodo.1205185>.
13. Aithal, P.S. & Aithal, Shubhrajyotsna (2020). Analysis of the Indian National Education Policy 2020 towards Achieving its objectives, College of Management & Commerce, Faculty of college of engineering & Technology, Shrinivas University Manglore, India. DOI: <http://mpa.ub.uni-muenchen.de/102549>
14. Kumar, Deep (2020). A Critical Analysis and a Glimpse of New Education Policy – 2020, Aryabhata Knowledge University, Patna. International Journal of Scientific & Engineering Research, Vol-11, Issue 10, ISSN. 2229-5518, Oct 2020.

Mob. 9756728762
reenurenu311@gmail.com

The Role of ICT in Higher Education

Dr. Reshma Devi

Assist. Professor, Dept. of English
J.V. Jain College, Saharanpur, U.P.

The modern era is an age of information and communication technology. ICT means information communication technology – having three parts as mentioned above. The term ‘information and communication technologies’ has been used by the scholars since the 1980s. The abbreviation “ICT” became popular after it was used in a report to the UK Government by Dennis Stevenson in 1997, and then in the revised national curriculum for England, Wales and Northern Ireland in 2000. But, in 2012, the Royal Society proclaimed that the use of this term i.e. ICT should be discontinued in British Schools “as it has attracted too many negative connotations”.

During the recent times, the use of information technology witnessed tremendous changes in all the fields of society. All the fields of life including the educational institutions all over the world have undergone through the drastic transformation. In Watson’s explanation, ICT have transformed the way the people work today and are revolutionizing the complete education system. Therefore, if the educational institutions do not pace up with the advancements of technology, they will lag behind. Kofi Annan, the former secretary of United Nations Organization also, pointed out that “in order to gain the aim of Universal Primary Education we must ensure that ICT unlock the door of education systems.” So the educational institutions all over the world are trying to use ICT in the teaching – learning process, so that the learners may involve in teaching learning process whole heartedly. They also will be able to face the upcoming challenges of education system. Jeelani (2011) rightly proclaims, “It is only through education and the integration of ICT in education that one can teach students to be participants in the growth process in this era of rapid change.”

Meaning and Definitions of ICT :

As far as the meaning and definitions of ICT are concerned, **The United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization (UNESCO, 2010)**, defines ICT as “the forms of technology that are used to transmit, process, store, create, display, share or exchange information by electronic means.” The following extract taken from a UNESCO publication on educational ICT, elucidates this organization’s position on their initiative:

“Information and Communication Technology can contribute to universal

access to education, equity in education, the delivery of quality learning and teaching, teacher's professional development and more efficient educational management, governance, and administration. UNESCO takes a holistic and comprehensive approach to promote ICT in education. Access, inclusion and quality are among the main challenges they can address. The organization's intersectoral platform for ICT in education focuses on these issues through the joint work of three of its sectors: Communication and Information, education and Science." Hence this wide definition incorporates such technologies as radio, television, videos, DVDs, telephones, satellite systems and computers. The technologies related with these devices are video conferencing, e-mails, u-tubes, zoom meetings or Google meets etc.

According to the **Encyclopedia of Computer Science**, "Information and communication technology (ICT) is an imprecise term frequently applied to broad areas of activities and technologies associated with the use of computers and communications".

United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization As we have seen, has made ICT an integral part of education. UNESCO wants to integrate ICT with education. This integration will bring equality and reach of education to all the strata of society.

Historical Development :

The society became aware of its development during the 1960's and early 1970's. Earlier, all the fields of life witnessed this change of Communication and Technology. Information Technology affected all the aspects of life. With the passage of time ICT as reached to all the levels of education i.e., elementary, secondary and higher education. As far as the implementation of the different schemes of government is concerned, the scheme like Sarva Shiksha Abhiyan, Education Guarantee Scheme or RTE and National Literacy Mission etc. are concerned, it plays an important role in the implementation of these schemes. Hence, ICT has a great role to play in elementary as well as secondary school education. So varied opportunities are adopted in acquiring during the teaching learning process. Therefore, adoption of more and more technological innovations is embraced in the educational institutions to pace up with the new and current technology.

The role of ICT in Higher Education :

The ICT plays an important role in Higher education also. With the implementation of ICT in the teaching learning process, it may be transformed to the core. For Example, e-learning, blended learning etc. E-learning is a program that makes us aware of an information network such as internet etc. Web-based learning is also a subdivision of e-learning and makes reference to the learning using an internet browser, such as the model, blackboard or internet explorer (Tinio-2002). Blended learning are the learning models which are a mixture of the

face-to-face classroom teaching with e-learning solutions. Learners-centered learning environment is an atmosphere that gives attention to knowledge, skills and beliefs that the learners bring with them to the learning process. Where it is impelled from a paradigm of learning called constructivism.

Tools of ICT :

ICT plays a pivotal role in higher education. There are main four components of education : Teaching, learning, curriculum and educational program. ICT is added as the fifth important area of education (Sampat 2011). According to the draft on National Policy Information Communication Technology in School Education (drafted by the Department of School Education Literary, MHRD in 2011) ICTs are all devices, tools, contents, resources, forums and services... Which can be deployed for realizing the goods of teaching-learning, enhancing success to and reach of resources, building capacities, as well as management of education system.”

Importance of ICT for students in learning process :

Hence ICT make education process more fruitful and interesting. It has various benefits for students also. They can fruitfully use the potential of New ICTs to improve their learning. But for the best results, the students should have access to the digital technologies. The students should be well-versed with these devices. The students who belong to the lower strata of society or who are not economically strong they also should have been provided assistance and should be helped to the digital tools. Most importantly high quality e-content must be available for them.

Importance of ICT for teachers in teaching process:

As for as the role of ICT for the teachers in higher education is concerned, they should be proficient with all the new technologies. Training programs, like orientation programs as well as short term programs should be organized for them so that they may be well-versed in the handling of these modern ICTs tools. Because, the substantial knowledge of the teachers will help term for providing more productive and delightful, student-centered learning atmosphere. Painstaking planning must be there for the teachers for enhancing education in an alive & interesting way. Therefore, the teachers will be more and more accomplished with the importance of context, culture and the change process in planning for the integration of technology into the teaching-learning process, making it more fruitful and interesting.

Conclusion:

Therefore, it may be concluded with the pronouncement that the ICT plays an important and pivotal role in higher education. It describes the necessary conditions that must be created for successful technological integration in higher education. It offers various approaches that may be used in integrating ICTs into teaching leaning process. The teachers should be well-versed with the new

technologies for successful integration of ICTs into teaching learning process so that each and every learner especially from the lower strata of society may be benefited by the Information and Communication Technology in the education systems especially in higher education.

References

- Murray, James (2011-12-18). "Cloud Network Architecture and ICT-Modern Network Architecture".
- Becker, H.J. (2000, July). Findings from the Teaching Learning Computing Survey, Is Larry Cuban right? Retrieved October 2, 2001, from <http://www.wcrto.w.c.i.edu/ftlc/findings/ccsse.pdf>.
- Pearson, J. (2003). Information and Communications Technologies and Teacher Education in Australia *Technology, Pedagogy and Education*, 12(1) (39-58).
- William Melody et al., Information and Communication Technologies: Social Sciences Research and Train Report by the ESRC Programme on Information and Communication Technologies, 1, Roger Silverstone et al., "Listening to a long conversation: an ethnographic approach to the study of information and communication technologies in the home", *Cultural Studies*, 5(2), pages 204-227, 1991
- The Independent ICT in Schools Commission, *Information and Communications Technology in UK Schools Independent Inquiry*, 1997. Impact noted in Jim Kelly, What the Web is Doing for Schools Archived 2011-07-11 at the Way back Machine, *Financial Times*, 2000
- Royal Society, Shut down or restart? The way forward for computing in UK schools, 2012, page 18.
- "ICT in Education" UNESCO. Unesco, Retrieved 01 March 2016
- Tinio; V.L., (2002). ICT in Education : UN Development Programme, (Retrieved from <http://www.eprmers.org.on>. Dec. 2009).
- Arulsamay, S. & Siva Kumar, P. (2009). Application of ICT in Education, Hyderabad : Neel Kamal Publication.
- Das, B.C. (2002). Education Technology, New Delhi, Kalyani Publishers.
- Bhawmick, Debashis, (2014). ICT in education in India, *Edu tracts; A Monthly Scanner of Trends in Education*, 8(6), 5-6.

Nature of Existence in the Yogâcâra Buddhist School

(With Special Reference to Cheng Wei Shi Lun)

Rita Aggarwal

Research Scholar, Department of Buddhist Studies
University of Delhi

The Yogâcâra school also known as the consciousness-only school (Vijñaptimâtra) an influential idealistic school of Mahâyâna Buddhism. Therefore, with reference to the luminous past of Yogâcâra Buddhism and its development in India and China, this paper deals with the three Natures of existence in the Yogâcâra Buddhist school as mentioned in the “Ch’eng Wei Shi Lun” (Vijñaptimâtrata-siddhisâstra: The Treatise on the Doctrine of Consciousness-Only) of Xuan Zang. It should be understood that these three natures are all inseparable from consciousness. There are three aspects or natures of existence or being, under which all things may be regarded, depending upon the degree of the true understanding which we ourselves possess of these things. They are called: (1) Nature of imagination-only (parikalpita Svabhâva), (2) Nature of dependence on others for manifestation (paratantra Svabhâva), (3) Nature of Ultimate Reality (parinispâna Svabhâva). These three aspects are generally known as the 'Three Natures: or the Three Svabhâva'. The first two natures (parikalpita and paratantra) constitute the Empirical Reality, and the third one (parinispâna), the Absolute. To study and define the essence of these three natures is to define the essence of the Empirical Reality and the Absolute; and to establish the relation which links both of them, and to show the mechanism by means of which the imagined nature comes forth from the dependent nature, is to show the process of how the empirical world is created from the mind, that is nothing else than the dependent nature.

Introduction

The Yogâcâra school is the development of the logic of Buddhist thought. The founder of the Yogâcâra school is Maitreyanatha¹ and later on he is represented by his illustrious disciple Asanga and his more renowned brother, Vasubandhu² and Sthiramati. The Yogâcâra school, also known as cittamâtra (mind-only), Vijñânâvâda, Vijñaptimâtra is one of four schools of Buddhist Philosophy. In China this school is known as Faxing school or Weishi school and we owe a most important treatise of this school to a Chinese Master, Xuan Zang (7th century), the celebrated Ch’engwei shih lun, (a commentary on Vasubandhu’s Trimsikâ

(Thirty Verses) that, according to tradition, Kuiji helped Xuan Zang compile and translate from ten Sanskrit commentaries. Kuiji is considered by tradition to be the first patriarch of the Weishi (or Faxiang) school) whose aim was to demonstrate that all is only mind. The interest of all these was centered on metaphysics. Later on, the followers of this school were more interested in logic and epistemology; important among them were Dinnaga and Dharmakirti.

The principal theories of the Yogâcâra school are: the sole existence of consciousness (cittamâtra, vijñaptimâtra); the mental, illusory, unreal character of the empirical worlds; the structure of mind; the subconscious (alayavijñana), and the subliminal impression (vâsanâs), both of which have an important function in the theory of cognition; the three natures or forms of being (svabhâva); the two truths or levels of reality; the tathagatagarbha or Buddha Nature which exists in all living beings; the Absolute; the pure Mind (amalavijñana).

Xuan Zang returned to China in 645 from his pilgrimage to India and began to translate the Buddhist literature with the support of Emperor Taizong (626-649). In Cheng weishilun (The Treatise on the Doctrine of Consciousness-Only), Xuan Zang explained how there can be a common empirical world for different individuals who construct or ideate particular objects and who possess distinct bodies and sensory systems. According to Xuan Zang, the universal 'seeds' in the store consciousness account for the common appearance of things, and particular 'seeds' account for the differences. Xuan Zang wrote in the Cheng Wei Shi Lun, a commentary on the 'Thirty Verses' and the most influential Yogâcâra text in East Asia, "In order to refute the false attachment to a really existing realm outside the mind and its activities, we teach Consciousness Only, but if one believes that Consciousness Only really exists, this is no different from attachment to external objects, and it remains attachment to phenomena." Throughout Consciousness Only texts, including the 'Thirty Verses', we find similar reminders that, like all Buddhist discourse, these are provisional teachings, whose purpose is to promote the alleviation of suffering through letting go of attachment. They are not a means of explaining the universe; they are just words that can help us seek freedom.³

The 'Thirty Verses' focuses on a twofold model of practice and understanding the study of the functioning of consciousness and the study of the nature of phenomena although ultimately it suggests that these two are not separate.⁴ For the first, it uses a model of experience called the eight consciousness and teaches us how to practice with and understand consciousness to liberate ourselves from afflictive emotions like anger, selfishness, and laziness. For the study of nature of phenomena, it uses what is called the three-natures model, which is rooted in Mahâyâna teachings that emphasize letting go of delusion, letting go of the way of seeing that creates alienation: the delusion that our happiness or suffering are dependent on the slings and arrows of an external world from which we are separate. The three-natures teachings help us to realize the totality of our connection and intimacy with everything.

For Buddhism, mind is only the series, succession or current of vijñana (conscious states), cognition acts, representations, ideas, volitions, etc. These vijñana, etc., constitute the mind; outside of these vijñana, etc., there is nothing else. The mind is a whole, an abstract mental creation, which has no existence different and separate from its components. It is not an entity different and separate from the human beings which constitute it. For Buddhism, behind or under the mind there does not exist a spiritual entity, eternal, a soul, which transmigrates from one existence to another; rebirth is explained – without having recourse to the notion of ‘soul’ (atman)- through the theory of ‘series, succession, current of vijñanas’ (conscious states). Trimsikâ clearly states “Vijñana is the sole reality; the object in its form as substance, e.g. (chair, table, man etc.) and modes of attributes is a false superimposition (upacâra) on the states of consciousness which alone are real.” There are three strata of Vijñâna, namely; âlaya-vijñâna, mano-vijñâna and pravr̥tti (or visaya) vijñâna⁵.

This paper talks about the three Natures or Svabhâvas of Existence as mentioned in the Cheng Wei shih lun of Xuan Zang. It should be understood that these three natures are all inseparable from consciousness. Dr. Daisetz T. Suzuki in his Introduction to the Lankâvatâra Sûtra has written on the Three Svabhâvas:”There are three aspects or natures of existence or being, under which all things may be regarded, depending upon the degree of the true understanding which we ourselves possess of these things. They are called: (1) nature of imagination-only (parikalpitasvabhâva), (2) nature of dependence on others for manifestation (paratantra svabhâva), (3) nature of Ultimate Reality (parinispanna svabhâva). These three aspects are generally known as the 'Three Natures: or the Three Svabhâva'⁶.

The Three Natures(Svabhâvas) of Existence

Svabhâva means 'self-nature' or 'self-reality' or 'self-substance', the existence of which in some form is popularly accepted. The first form of Svabhâva by which we examine existence and the reality of things is assumed is called Parikalpita, 'imagined', that is, imagination in its ordinary sense. This is an illusion, for things are imagined to exist really where in fact there are none. It is like seeing a mirage which vanishes as one approaches. Imagined objects have, therefore, no objective reality. Because of consciousness, we find the projection of outside world, and there arises the apprehension of things as houses, trees, mountains, etc., existing independent of consciousness. But they do not exist in reality. Hence, they are called parikalpita⁷, unreal by their very nature. It might be held here that the tree may not exist outside, but the 'tree-idea' certainly exists as a subjective fact. But, the Vijñânavâdi has totally different positions. Take away the object, and the idea, the subjective fact, also loses its distinctive character as this or that idea.⁸For the Yogacara school, all the contents of mind (representations, ideas, cognitions, volitions, experiences, etc.), which are what the mind only and really is, are nothing other than the reactivation of the vâsanâs; and all these

contents of the mind are as unreal (abhutakalpa) as the dreams which are also produced by the reactivation of vâsanâs. Nothing real corresponds to them.

According to Sri Swami Chinmayananda,⁹ the first Svabhâva is called p'ien-chi in Chinese (parikalpa), because it is the 'self-nature' of objects that is grasped by chou-p'ien-chi-lu, i.e., false imagination in a general manner. The Parikalpas or false imagination being of numerous kinds, the text says: 'such and such imagination'. It signifies that there are a number of false imaginations (hsu-wang-fen-pi) which imagine and discriminate falsely. What is imagined (p'ien-chi) by these false imaginations is a great variety of imagined objects (suo-p'ien-chi), that is to say, the numerous Svabhâvas ['self-natures' or entities], Skandhas, Ayatanas, Dhatus, etc., are falsely conceived (wang-chi) as Atman or dharmas. These multiple entities falsely conceived are designated by one single name: 'nature of mere-imagination', Parikalpitasvabhâva. This Svabhâva absolutely does not exist, for, on examining it according to the scriptures and logical reason, one realizes that it does not exist at all.

The second form of Svabhâva by which we examine existence is Paratantra, 'depending upon another'. The Paratantra is called so because in order to arise and to subsist it depends on causes (vâsanâs)¹⁰. If the dependent nature is only mind, support of the manifestation of the object, why is it dependent, and why is it called 'dependent'? Because it is born out of its own impregnations- seeds (vâsanâs); it is dependent on conditions, and after its birth it is unable to subsist by itself a single instant¹¹. They are unreal insofar as they depend on the object for their determinate character.¹² This is a kind of scientific knowledge based on analysis. Buddhists make use of this knowledge to disprove the substantiality of individual objects, that is, the Svabhâvatva of things. According to them, there is nothing self-existing in the world, everything depends for its existence on something else, things are universally mutually conditioned, endlessly related to one another. Modern scientists declare that existence is no more than mathematical formulae.

The imagined view (parikalpita) of reality does not give us a true knowledge of it, and the relativity view (paratantra) reduces it into nothingness: if so, where does our boat of enlightenment get anchored? But there is a third way of viewing existence, called Parinispanna, 'perfect', which allows us to become truly acquainted with reality as it is. It is this 'perfected' knowledge whereby we are enabled to see really into the nature of existence, to perceive rightly what is meant by Svabhâva, and to declare that there is no Svabhâva as is imagined by the ignorant and that all is empty (sunya). 'Perfect or perfected' knowledge issues from Prajna, or Aryajnana, or sometimes simply Jnana, seeing into the suchness of things. It perceives things as they are, because going beyond the realm of being and non-being which belongs to discrimination, the principle of dichotomisation, it dives into the abyss where there are no shadows (anabhasa). This is called self-realisation (svasiddhi).¹³

This is again called seeing into the emptiness of things. Emptiness (sunyatâ),

however, does not mean “relativity”, as is thought by some scholars. Relativity-emptiness is on the lower plane of knowledge and does not reveal the real view of existence as it is. Emptiness taught in the Mahâyâna texts goes far deeper into the matter. It is the object of transcendental knowledge. As long as one stays in the world of relatively where logic rules supreme, one cannot have even the remotest idea of true emptiness or what is designated in the Prajnaparamita as Mahâsūnyatâ.¹⁴

All things arise from conditions. Rain comes from the accumulation of moisture in clouds, flowers come from seeds, babies come from parents, anger comes from perceived injuries, joy arises from being kind to those we love. According to Vasubandhu “whatever thing is conceptualized by whatever conceptualization” and “a conceptualization arising from conditions,” respectively. So, the complete, realized nature is that “a conceptualization arising from conditions” is *always* devoid of “whatever thing is conceptualized by whatever conceptualization.”¹⁵ Yogâcâra contribution to the development of Buddhist thought can be seen in the emphasis on the psychological aspects of delusion and liberation. They presented a philosophic psychology or philosophy of mind that sought to explain the process by which we unconsciously perpetrate delusion and bondage to self and dharmas, and also the process by which that delusion can be severed. The epistemic focus of this psychology came to the forefront in VijñaptimâtratâYogâcâra.

To Conclude, there are three svabhâvas, natures related with the modification of consciousness, namely; parikalpita (the imagined), paratantra (the dependent), and parinispanna (the perfect or absolute). First two of these natures (the dependent and the imagined) constitute the Empirical reality, and the third one, the Absolute refers to transcendental consciousness.

References

1. See Tucci, Some Aspects of the Doctrines of Maitreya-nâtha, pp. 2ff.
2. There is difference of opinion with regard to the date of Vasubandhu, whether he lived between A.D. 280-360 or 420-500. The former is the one now generally accepted.
3. See Connelly Ben, A Practitioner’s Guide Inside Vasubandhu’s Yogacara, pp. 12-13
4. Ibid.
5. Studies in Indian Thought, p.290
6. See, Ch’eng Wei-Shih Lun the Doctrine of Mere-consciousness, pp.623
7. Trimsikâ, 20.
8. Studies in Indian Thought, p.291
9. See, Ch’eng Wei-Shih Lun the Doctrine of Mere-consciousness, pp. 625
10. See, Philosophy of mind in Yogacara Buddhist Idealistic School, History of Psychiatry 16(4): 453-465 (London, Thousand Oak, CA and New Delhi) Sage publication.com
11. Ibid.
12. Studies in Indian Thought, p.291
13. See, Ch’eng Wei-Shih Lun the Doctrine of Mere-consciousness, pp.623
14. Ibid.
15. See Connelly Ben, A Practitioner’s Guide Inside Vasubandhu’s Yogacara, pp. 148

Crop Intensity And Crop Pattern Analysis In Nagpur District (During 1995-2015)

Mahesh choudhary
Prof. Irfan mehar

Introduction

Agriculture is the oldest industry in the world and the largest even today. The major part of population of the world is dependent upon it for living and its contribution to economic development of country is significant. Economic development may be defined as transformation of an economy which is predominantly agricultural and traditional into one of largely industrial and modern. 80.83% of the total population of district residing in rural areas are dependent on agriculture as the sources of their livelihood. The share of rural labour force employed in agriculture is very high in the district. Due to unstable weather condition farmers have to depend on both rainfed and ground water agriculture.

Two major crops sown in the region are Rabi crops and Kharif crops. Rabi crops also known as winter crops and these crops are mainly dependent on ground water irrigation. The crops sown during winter season are Wheat, gram mustard etc. Kharif crops also known as rainfed crops are sown in the month of June and July and harvested in the month of September and October. These crops are totally dependent on rain, where there is good rain there is huge production. The crops of this season includes Bajra, pulses, jowar mainly.

Study Area

The study area is located in the centre of the state between latitude 26°25"N and 27°40"N and longitude 73°10"E and 75°15"E. Topography of the district is fairly even with some scattered hills. Average elevation of the district is about 300 meter. There is lack of perennial river in the district. Study area falls in Arid and semi-arid region having 22-25cm average rainy days and 38.34 cm average annual rainfall. Soil is sandy or sandy loam type. In administrative setup 13 Tehsils are there - Nagaur, Deedwana, Khivsar, Jayal, Makrana, Degana, Riyan badi, Nawa, Parbatsar, Ladnu, Mundwa kuchaman city.

Methodology

In the present study cropping pattern and cropping intensity in Nagaur district will be analysed. The present study is based on secondary sources and these data are collected from various government reports, books, articles, and economic survey of Rajasthan.

Objectives of study

1. To analyse crop pattern in the district.
2. To analyse changes in crop pattern during 1995-2015.
3. To analyse crop intensity in the district.
4. To analyse changes in crop intensity during 1995-2015.
5. To find out reasons of changes in crop pattern.

Crop pattern

In Nagaur district agriculture mostly depends upon rain .If monsoon is delayed or rainfall or there is unequal distribution, the Kharif crops and Rabi crops are adversely effected unless there are good showers in January.

Crop Ara in Hect. (1995-2015)

S.N.	Crops	Year 1995	%	Year 2015	%	20 year change %
1	Bajara	564465	47.55	373728	33.70	-13.85
2	Tur and other Kharif					
	Plules	260528	21.94	369450	33.31	11.37
3	Wheat	48633	4.09	71637	6.46	2.37
4	Jowar	46780	3.94	97658	8.80	4.86
5	Mustred	107281	9.03	49254	4.44	-4.59
6	Til	108130	9.10	16383	1.47	-7.63
7	Cotton	6753	0.56	62187	5.60	5.04
8	Gram	14658	1.23	22985	2.07	0.84

Source-Directorate of Economics & Statistics, Rajasthan, Jaipur.

In 1995 almost 50 % of total crop area was occupied by only Bajra. After that other kharif pulses were having 21.94% crop area . Oilseeds and mustard ,Til were having almost equal crop area which was about 9 % . Wheat was having 4.09% crop area .Thus we can say that kharif crops were dominating in 1995 possessing $\frac{3}{4}$ of the total crop area. In 2015 Bajra and Tur and Kharif pulses were having almost equal area which was about $\frac{1}{3}$ of the total crop area. Jowar was having 3rd highest crop area about 9% and after that wheat and cotton were having crop area 6.46% and 5.60% respectively. In this duration crop area of Bajra has significantly reduced almost 15% and reduction in Til is about 7.5 which is second highest. Mustard crop area has been reduced to 4.44%. Thus we can say that increment in irrigation facilities has changed the cropping pattern.

Crop Intensity

It refers to raising of a number of crops from the same field during one agricultural year.

$$\text{Crop intensity} = \frac{\text{gross crop area}}{\text{net sown area}} * 100$$

Gross crop area – This represents the total area sown once and for more than once in a particular year, i.e the area is counted as many times as there are

sowing in a year . This total area is also known as total cropped area or total area sown.

Net sown area- This represents the total area sown with crops and orchards . Area sown more than once in the same year is counted once.

Crop Intensity

Year 1995					Year 2015			20 year change %
S.N.	Tehsil	Total Cropped Area	Net Area Sown	Crop intensity in percentage	Total Cropped Area	Net Area Sown	Crop intensity in percentage	
1.	Nagaur	376023	350538	107.27	129688	126261	102.71	-4.56
2.	Mundwa	-	-	118819	89351	132.98	-	
3.	Khivisar	-	-	132696	104086	127.48	-	
4.	Jayal	166950	160790	103.83	169726	156291	108.60	4.77
5.	Merta	190105	175120	108.55	157150	112304	139.93	31.38
6.	Riyabari	-	-	126393	95863	131.84	-	
7.	Degana	136815	129215	105.88	126713	109132	116.11	10.23
8.	Didwana	127059	119464	106.35	127944	112056	114.17	7.82
9.	Ladnun	93427	92178	101.35	89914	81227	110.70	9.35
10.	Parbatsar	139981	133975	104.48	79974	66698	119.90	15.42
11.	Makrana	-	-	22012	74049	29.72	-	
12.	Nawa	119941	100231	119.66	100784	65796	153.17	33.51
13.	Kuchaman	-	-	53093	35650	148.92	-	
14.	District	1350301	1261511	107.03	1479906	1228764	120.43	13.4

Source : District office (C.R.) Nagaur

The above table shows that in 1995 Net area sown was 1267511 hectare and crop intensity of district was 107.03%. Ladnu Tehsil was having lowest crop intensity (101.35%) and Nawa Tehsil was having highest crop intensity (119.66%). Net sown area in 2015 was almost equal to that of 1995 . It was slightly reduced to 1220764 hectares . Crop intensity of district increased to 120.43% . Nawa Tehsil was having highest crop intensity and Nagaur Tehsil was having lowest crop intensity (102.71%). Thus it is clear that in this duration net sown area has not increased but crop intensity has increased 13.4%.

Conclusion

Study area is an agricultural region and livelihood of rural people is mainly based on agriculture sector. Net sown area in the district is more than 70% of the total area. In the duration of 1995-2015 irrigation facilities and the use of fertilizers has changed crop pattern in the district. Crop area of pulses , wheat and cotton has increased and crop area of Bajra ,til, mustard has reduced in the period . In the Tehsils where irrigation facilities are available crop intensity increased mainly in Nawa , Kuchaman tehils. Crop pattern is still dominated by food grains and

very little crop area is devoted to commercial crops. Cotton occupied about 5.6% of total crop area.

References

1. **Agricultural statistics of Rajasthan** 1996-97 & 2014-15.
2. **Basu, Kaushik** (2012), india's emerging economy: performance and prospects in the 1990s and beyond (edited), new delhi: Oxford university press.
3. **Biswas S.** (2014), "poverty reduction and agriculture performance: indian experience" The indian Economic
4. **Chauhan, Brij raj and A. Satyanarayana** (2012) : changing villages in india (edited), jaipur : Rawat publication
5. **Chauhan T.S.**(1998), "agriculture geography". academic publication, allahabad
6. **D.S. Chauhan**, Agricultural economics, L.N. Agrawal publication, 1953
7. **Dutta, R.A. and K. Kapadia**, (2011), possibilities and constraints in increasing pulses production in rajasthan and impacts of national food security mission on pulses, research report no. 140, agro-economic research centre, S.p. University, v.v. nagar.
8. **District Statistical Outline Nagaur** 1997 & 2015, Directorate of Economics & Statistics, Rajasthan, Jaipur.
9. **Economic review of Rajasthan** 2014-15 & 2015-16
10. **Majid Hussian**, 1999 "Systematic Agricultural Geography" Rawat publication, Jaipur and New Delhi -P 222-241
11. **Rathore, M.S.**(2004), State level analysis of drought policies and impacts in Rajasthan, india. working paper 93, Drought series paper no. 6, international water management institute
12. **Sadhu & Singh**, Fundamental of Agricultural Economics, Himalaya publishing house.
13. **Singh, Jasbir, Dhillon, S.S.**, 1984, "Agricultural geography" by Singh J and Dhillon S.S., tata McGraw Hill Publishing Company Ltd, New Delhi.

Mo. 9783309065
maheshc649@gmail.com

Site Museum at World Heritage Site in India: A Critical Analysis

Prof. Devendra Kumar Gupta

Professor, Department of Ancient Indian History, Culture &
Archaeology, Gurukul Kangri University, Haridwar, Uttarakh

Ms. Kisha Shanker

Research Scholar, Department of Ancient Indian History, Culture &
Archaeology, Gurukul Kangri University, Haridwar, Uttarakhand

“People without the knowledge of their past, origin and culture is like a tree without roots”

- Marcus Garvey

These words by a famous Jamaican political activist hold so much depth in terms of the heritage foundation for any country in the world. Tourists, Adventurers, Globetrotter alike have all heard of UNESCO World Heritage Site (WHS), being designated by UNESCO bring immense international eminence to that particular place. This brings a constructive influence on many aspect of the way a community develops especially the one associated with the site in multifaceted manner. Education, economic growth and community engagement are the areas where this aspect is treasured and tend to be enhanced more than those where heritage items have no link with the community. In this regard, museums come into attention as they have to synchronize with the representative communities to remain relevant in today's world. This article will focus on the site museums which are at the World Heritage Sites in India and critically analyse the various components of it.

In India, the museum movement started in late eighteenth century. However references like ‘Alekhyaagriha’ (*alekhya* means ‘a picture or painting’ and *griha* means ‘Ghar or house’ and ‘*Chitraûâlâ*’ meaning Picture Gallery can be found in the ancient texts. Moreover various Sanskrit plays, viz., *Pratima Natakam* by *Bhasa* and *Naisadhivacarita* of *Sriharsa* (Mahakavya) (Biswas, 2011) belonging to 12th century A.D. respectively speak of the permanent and mobile exhibition galleries attached to the royal courts. Artistic representation of the Jataka on Bharhut railings and torana of Sanchi and sometimes on the exterior walls of temple gives sufficient evidence to the concept of open air museums as early as 2nd Century BC. Also, the audio-visual shows and *pattachitras* (scroll paintings) were intended basically for public enjoyment and instruction which is interestingly one of the important functions of the modern museum.

In modern times, the value attributed to the in situ display is the vital concept of archaeological sites. The idea of shielding the structure and preserving the display of the excavated ruins is not new as well. It can be well understood that the idea and settings of archaeological site museum in practice are far earlier in place than the term itself. One such example from the western world are remains of Roman mosaic pavement is protected by vernacular houses built of stone and timber and thatched roofs in about 1814 and open to public since then (Dongming Xu, 2018).

The site museums of India especially located at the World Heritage Site form a distinct set by themselves and differ from other museums such as district, state and national museums of India. These museums being invariably attached to WHS represents the specific cultural repository at an archaeological monument or site where they preserve the antiquities resulting from the excavation, exploration and conservation of the site. The sole purpose of having these museums is that the objects can be studied and displayed in their natural context having their ecological background retained. Hence, the term 'site museum' implies for archaeological aspects as well as geographical and historical context of the place in its totality (Sharma, 1998). The last 100 years have been most significant for the growth of museum in India. The first such substantial work on museums was done by S.F. Markham and H. Hargreaves in the year 1936 by a grant from Carnegie Corporation, New York to make a survey of Indian museums. The report prepared by them after visiting the one hundred and five museums which were taken into consideration is said to be the first standard work of its kind. (Markham & Hargreaves, 1936).

Subsequently, the museum scenario in India completely changed with the appointment of John Marshall in Archaeological Survey of India (ASI); he was responsible for setting up a numerous site museums in India under the direct command of ASI. The first such site museum long before it was designated a WHS was set up in Agra (1906) followed by Khajuraho (1910), Red fort (1911), Nalanda (1917), Taxila (1918), Sanchi (1919), Mohenjodaro, Harappa (1926) etc. (Chandrasekharan, 2017) Although after the partition in 1947, Taxila, Mohenjodaro and Harappa were gone in Pakistan and after that slowly the pace of setting up more such museums was felt and under the tenure of Mortimer Wheeler who established a separate branch in ASI specifically dedicated to museums many such museums were established.

The power of museums located at World Heritage Sites is immense, it can attract plethora of visitors from different walks of life as these sites have the most major footfall because of their international prominence. However, when compared to their western counterpart museums where people lined up for several hours for entry still it's a distant path for India. Why making a trip to a museum still an uninspiring prospect for most? The multitude reasons can come into picture. The location of museums is fairly distant from the site, for example in Khajuraho, the site and museums are at a distance of 500m and lacks accessibility. In addition

there is hardly any information about the museum at the site itself. Even a signage is absent. How can a site museum attract visitors when there is dearth of basic information related to it? The same goes with site museum at World Heritage Site of Bodh Gaya. One has to really struggle to find the museum and after once entered all you can experience is a doomy static arrangement of the railings in two rooms. The apathy after visiting the museum stays with you for long. In this century of technology when social media is an important platform for marketing, most of the museum website is in dormant condition hardly a handful have their presence on social media and that too rarely updated. In this scenario, appealing visitors to museums is a strenuous task.

There is a deep rooted reason why museum abroad like Louvre drew 9.6 million visitors in 2019 with fairly high priced entry ticket (approximately INR 1100) and museums in India run by government recorded less than 1.5 million visitors despite offering tickets at just INR 20. The most basic issue is lack of will by authorities followed by lack of resources. In 2010, UNESCO brought out a report on the terrible conditions at India's top eight museums citing sub – standard maintenance among other various issues. This dejected state of museums in India is nothing new. In the 12th Plan period (2012-2017) some new schemes were introduced by Ministry of Culture for improvisation in museum functioning and specific advancement in the area of management in the 14 point Museum Reform Agenda.

As technology being the most significant aspect of modern society, the focus was on overall museum digitization, to create a national database of all antiquities, provide enhanced accessibility to diverse visitors as the focus of using technology in museum is more about being accessible and less about being innovative. The pivot is on scientific documentation work for the museum collection along with use of standard software being used by renowned museums around the world. Another important facet includes upgradation of museum website, Development of interactive information kiosks etc.

The concerning issues with which site museums at World Heritage Sites deals with in spite of receiving funds are:

1. Lack of autonomy, archaic policies; no public private partnership is encouraged, Ignorance of administration and government towards museums
2. Lack of skilled manpower; almost every site museum I visited during my course of field work, expressed this concern
3. Lack of expertise; no proper training for museum professionals
4. No upgradation of museums; should be make people friendly, use of technology to make the display more interactive
5. Sub standard maintenance, lightning, signages, etc.

Site museums located at WHS can prompt visitors to learn about the history of a region and other aspects which can stimulate curiosity and draw compassion and respect towards different cultures. These museums also connects museum professionals, archaeologist, historians and the general public to re-discover historical

linkages between different sites through workshops, exhibitions and research projects. There are around 70000 museums around the world and among them 8000 museums are located in cities or sites classified as World heritage (UNESCO- World Heritage Centre - World Heritage and Museums (unesco.org)). However, the sad reality is that many site related museums and interpretation centers as they currently stand, lack the capacity both financial and human with little room for interpretation. In this case, museums in South Asia are far behind especially in India. Taj Mahal which is one of the worlds most visited WHS, lacks majorly in terms of infrastructure and maintenance of its site museum. This situation is in such drastic reverse with the counterparts of site museums located at World Heritage Site in the western world. In that part of the world, even the smallest of site have such flourishing and interactive museum which caters to need the need of visitors to stimulate varied experience by engaging themselves in the museum premises with diversified exhibits.

Conclusion

Museums like all social and cultural spaces have been constantly changing and evolving. The evolutionary process can be summarized thus from a cultural repository to a space of informal education by multifarious means. The site museums located near the World Heritage Site hold significant potential to uplift the whole experience of the visitor of visiting the site in various capacities. Thus, the limitations with which we deal with concerning our museums should be removed. First and foremost the museum should be accessible and within the reach of the site. Secondly, by involving people it can also build a smooth synchronize relationship with the community as well. As we all know India's history and rich culture are immensely diverse but many of its museums follow a standard template that needs to be changing every site, every museum is different from other. Barring a few exception like Site Museum at Sanchi, no other museum at WHS continuously evaluating the need and expectations of the visitors.

The reason of getting a very tepid response for their exhibitions in a museum is not evaluating your visitors, their expectations, etc. The WHS are place of international attention, we should make our museums at these sites thriving and in this regard involvement of community in terms of tourists as well as local people is quintessential.

Another aspect which needs focus is the redesigning of the old spaces and creating new ones to make the experience more captivating for the visitors. This requires use of manpower resources and properly trained museum professional which most of the site museums are facing issues with. These site museums have the bright prospect to serve as a living emblem of our prosperous culture and varied heritage provided we create the veracious environment for them to thrive.

BD-294, Avantika, Ghaziabad, U.P.
Mob. 704234810
kishashanker24@gmail.com

Impact of Covid-19 on Goods & Services Tax (GST) Collection: A Study

Prof. (Dr.) Narendra Kumar Thapak
Supervisor

Vice Chancellor, LNCT University, Bhopal

Sushil Kumar Singh
Research Scholar

The School of Legal Studies
LNCT University, Bhopal

The statement of the great Greek philosopher Heraclitus that change the only permanent thing in this world. If you understand in the light of the above statement, then today Goods and Service Tax (GST) has become synonymous with the word change. 44th GST council meetings till June 2021 and more than a thousand amendments confirm this. The single indirect mechanism of the effect of collection and distribution of Goods and Service Tax (GST) can also be seen contained in it. Goods and Service Tax (GST) is a new economic model of the country which came into force on 1st July 2017 in which continuous improvement is going on. How much was the GST collection affected in the era of Covid-19. In this paper, a analysis of the impact of Covid-19 On Goods and Service Tax (GST). GST is implemented in about 150 countries of the world and all efforts are being made to achieve its objective in proportion to the situation there. GST has completed 4 years in India from March-April 2020 with the objective of analyzing the status of GST collection due to the effect of Corona and a comparative study of what has been the status of collection in its first financial year. The presence of Kovid-19 is still in the country, due to which understanding, analysis and moving towards conclusions about the challenges regarding GST is its basic premise.

1. Introduction

1.1 **Concept :** GST is an indirect tax which means Goods and Services Tax. It is levied on the sale of goods and services. In GST there is no distinction between goods and services for the purpose of taxation. After the implementation of this arrangement, octroi, central sales tax (CST), state level sales tax or VAT, entry tax, lottery tax, stamp duty, telecom license fee, turnover tax, sales tax on use of electricity, etc. Taxes are abolished.

1.2 **Requirement of GST:** The term GST refers to the tax levied on goods and services. It is such an indirect taxation which is fixed at the national level on the manufacture, sale and consumption of goods as well as services. Its basic

objective is to include indirect taxation as a single tax and to establish the system of One Nation, One Tax.

1.3 GST Taxation System: Goods and Services Tax is an indirect system. In this system, there has been a separation between the central government and various state governments regarding tax. Although it has been named as One Nation, One Tax. The Department of Revenue under the Government of India, Ministry of Finance is solely responsible for the computation of tax. The last two decades saw tremendous reforms in the taxation system in India, apart from rationalization of taxes, simplification of various laws of taxation etc. However, the process of continuous amendment in the Goods and Services Tax, implemented from July 1, 2017 through the GST Council, remains in motion.

1.4 Rate of GST: An attempt has been made to make GST just by imposing lower tax on essential items and higher tax on luxury and less important items. Zero tax has been fixed on raw materials like cereals and fresh vegetables etc. Education and health facilities are kept out of tax. The GST Council has approved a total of 5 slabs of GST for different types of goods.

- * Zero percent GST: The most essential goods and services for life like grains, salt, quality and fresh vegetables etc.
- * 5% GST: Goods and services of such general necessities of life as sugar, oil, spices, tea, coffee, fertilizers etc.
- * 12 percent GST: Items of daily consumption like snacks, toothpaste, medicines etc.
- * 18 per cent GST: There are many stages of life and in proportion to them, there is trading of goods and services. Items that are used by people living on a moderate level like detergent, mineral water, ice cream, shampoo, refrigerator etc.
- * 28 percent GST: Tax on goods and services falling in the casual and harmful category like pan masala, auto mobile, stay in five star hotel etc.

1.5 Types of GST : There are three types of taxes in GST.

(A) Central Goods and Services Tax (CGST) : Under this, revenue is collected by the central government.

(B) State Goods and Services Tax (SGST) : Under this, revenue is collected by the state governments.

(C) Integrated Goods and Services Tax (IGST): It means a tax levied on the supply of any goods/services in the course of inter-state trade or commerce. IGST also applies to the import of goods and services into India. The basic concept is also that any supply of goods or services in Indian territory shall be deemed to include inter-state trade or commerce, and transactions that resemble the import and export of goods and services in the course of inter-state trade or commerce. have to supply.

2. Constitution (122nd Amendment) Bill, 2014 : Historical Overview

The Bill amend the Constitution to make way for the goods and service tax. Both the Union and State government have the legislative powers to make the laws on GST, although it is only the Parliament which can levy an integrated GST on the interstate supply of goods and services, and imports. By the 80th Constitutional Amendment Act of 2000 and the 88th Constitutional Amendment Act 2003, the scheme of tax revenue sharing between the center-state was changed decades ago in which Article 268D was added which was related to service tax. Later, by the 101st Constitutional Amendment, new Articles 246A, 269A and 279A were included and Article 268 was abolished. Significantly, in the case of state business, tax is collected by the central government under Article 269A, while it is later distributed to the states.

3. Federal Structure and GST

A new economic law Goods and Services Tax (GST) came into force on July 1, 2017 exactly 4 years ago by subsuming many indirect taxes in the country. It also included the provision of compensation for five years to compensate the revenue tax due to the states from this single tax system, for which a fund was created, which is collected from the cess of up to 15 percent. It is worth mentioning that even before the implementation of GST, there was an attempt to agree between the central and state governments on how the revenue received through this would be divided between the center and the states. It may be noted that earlier such revenue was distributed on the basis of the recommendations of the Finance Commission. An important reference to GST has been that due to the introduction of this system, many states are involved in the apprehension that their income may be less than this and this apprehension is also true. However, to deal with such a situation, the Center had assured the states that their losses would be compensated by the year 2022. But the investigation shows that the central government is not fully able to fulfill the dues in the matter of settlement. It is also to be understood that last year, on the revenue shortfall of Rs 2 lakh 35 thousand crore, the Central Government had suggested the states to borrow to meet this shortfall, due to which the lack of consent can be seen in the states. In the meantime, the government had suggested two options, the first is that the state governments will borrow half of the total revenue to compensate for the revenue and its principal and interest will be paid in future from the compensation cess to be levied on luxury goods and demerit items. The second option was that the state governments would borrow the entire loss amount, but in that case the principal would be compensated by cess, but they would have to pay a large part of the interest on their own. The first option was accepted by the BJP-ruled and their coalition governments, but the remaining 10 states rejected it.

4. Financial Provision in Constitution

* Article 275 empowers Parliament to make agreements to make suitable grants to such States which, in the eyes of Parliament, require assistance.

- * Articles 286, 287, 288 and 289 forbade the central and state governments from levying taxes on certain goods by each other.
- * Articles 292 and 293 also provide for taking loans from the Union and State Governments respectively.
- * It is worth mentioning that there is a division of powers between the Union and the States, it can be seen in the 7th Schedule of the Constitution under the Union, State and Concurrent List. GST is based on the principle of One Nation, One Tax which is a single indirect tax collection system.

5. Data Collection (Secondary Data)

Monthly GST Collection (In Crore) April 2019 to March 2020

Month	GST Collection	Month	GST Collection
April	113865	October	95379
May	100289	November	103491
June	99939	December	103184
July	102083	January	110828
August	98202	February	105366
September	91916	March	97597

Monthly GST Collection (In Crore) April 2020 to June 2021

Month	GST Collection	Month	GST Collection
April	32172	December	115174
May	62152	January	119875
June	90917	February	113143
July	87422	March	123902
August	86449	April	141384
September	95480	May	102709
October	105155	June	92849
November	104963		

Source : (It is the sum total of CGST, SGST and IGST and Cess in the data.)

Example of Collection of May 2021 (CGST, SGST, IGST and Cess Data)

According to the Finance Ministry, the total GST collection in May stood at Rs 1,02,709 crore. The share of Central GST (CGST) stood at Rs 17,592 crore, State GST (SGST) at Rs 22,653 crore and Integrated GST (IGST) at Rs 53,199 crore. Of this, Rs 26,002 crore was raised on import of goods, while the share of cess stood at Rs 9,265 crore. Of the cess, Rs 868 crore was collected on import of goods.

Last year, economic activities were affected by the national lockdown due to the Kovid-19 epidemic. This also led to a fall in the GST collection. However, the GST collection for the month of May has been lower than the record of Rs

1.41 lakh crore in April 2021.

6. FINDINGS

- * Month of April 2021 shows highest collection while compare with month of April 2020 as well financial year 2020-2021 and month of April 2019.
- * Month of May 2021 shows highest collection while compare with May 2020 as well May 2019.
- * Month of June 2021 shows highest collection while compare with month of June 2020 but less than month of June 2019.
- * Month of July 2020 shows lowest collection while compare with Month of July 2019.
- * Month of August 2020 shows lowest collection while compare with Month of August 2019.
- * Month of September 2020 shows highest collection while compare with Month of September 2019.
- * Month of October 2020 shows highest collection while compare with Month of October 2019.
- * Month of November 2020 shows highest collection while compare with Month of November 2019.
- * Month of December 2020 shows highest collection while compare with Month of December 2019.
- * Month of January 2021 shows highest collection while compare with Month of January 2020.
- * Month of February 2021 shows highest collection while compare with Month of February 2020.
- * Month of March 2021 shows highest collection while compare with Month of March 2020.

7. SUGGESTIONS :

1. The economic policy of the government should be more clear regarding GST collection.
2. The Government of India should develop more simplification in the GST rules and reduce the slabs as well.
3. There is also a great need for awareness in the matter of GST.
4. In the era of Covid-19, first reduction in GST and then increase shows economic dynamism. The government should maintain this momentum.

8. CONCLUSION :

Due to lockdown in the initial days of the covid-19, the government has collected total gross GST revenues of Rs 11,36,804 lakh crore during April 2020 to March 2021, with respect to the total GST collection of Rs 12,22,139 lakh crore in 2019-20. In the lockdown months of April and May 2020, GST revenues had fallen suddenly by 50% on the year. In the Second wave of Covid-19 and Lockdown month April 2021, there was a record collection of the entire GST call

segment. Whereas in April 2020, the record was the lowest collection. The collection in May 2021 was Rs 1,02,709 lakh crore. The total GST collection in May 2020 is Rs 62,152 lakh crore while in May 2019, Rs. 1,00,289 lakh crore and after the second phase of Corona, the GST collection in May 2021 stood at Rs 2,02,709 lakh crore. The impact of GST on collections in the entire Covid period does not appear to be widespread, but it has been there for a few months. However there is some difference on the total GST collection also.

REFERENCES

1. Bird, Richard M. (2012). The GST/HST : Creating an integrated Sales Tax in a Federal Country. The School of Public Policy, SPP Research Papers, 5(12), 1-38.
2. Garg, Girish (2014), Basic Concepts and Features of Good and Services Tax in India. International Journal of scientific research and Management.
3. Kelkar, Vijay (2009). GST Reduces Manufacturing Cost and Increases Employment. Times of India.
4. Thirteen Finance Commission (2009) Report of the Task Force on Goods and Services Tax, New Delhi.
5. Chanchal kumar Sharma : Implimenting VAT in India : Implications of Federal Polity , Indian Journal of Political Science 915 – 933 (Oct – Dec.2005)
6. Entry 54 , Schedule VII , Constitution of India 1950
7. V.S. Datey , Indirect Taxes : Problems and Solutions, 2nd edition 2006
8. Budget Speech 2006 – 07 , Available at : indiabudget.nic.in/ub2006-07/bs/speech.html.
9. Pandey J.N. : Constitutional Law of India, (Central Law Agency, Allahabad, 56 edn., 2019)
10. National Academy of Customs, Excise and Narcotics, Faridabad, April 2017.

ढाई आखर प्रेम के

अवनीश सिंह चौहान

आचार्य ओशो ने कहा है—‘प्रेम में तुम न रहो, प्रेम रहे।’ यानी कि प्रेम की उस अवस्था में पहुँचना कि कर्ता को अपना भान न रहे—वह भूल जाए अपने-आपको, भूल जाए अपने भौतिक स्वरूप को, देह को और बस याद रहे तो प्रेम। प्रेम की यह है उच्चावस्था। इस अद्भुत प्रेम-मग्न अवस्था को उद्घाटित करता मूर्धन्य साहित्यकार शचींद्र भटनागर का गीत-संग्रह ‘ढाई आखर प्रेम के’ में 67 रचनाएँ संगृहीत हैं, जिसमें उनके जीवन के विभिन्न कालखंडों की प्रेमानुभूतियों को अवरोही क्रम में सहेजा गया है। शचींद्र जी का यह गीत-संग्रह भावकों को जहाँ प्रेम की अनूठी खुशबू से परिचय कराता है, वहीं जीवन को सुवासित करने हेतु अनुपम संदेश भी देता है। उनका यह संदेश उनकी अनवरत प्रेम-साधना का सुफल ही है किंतु प्रेम को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर साधना करना इतना आसान भी नहीं है। इसलिए समय-समय पर उनकी इस पावन साधना में कई अवरोध आए, कष्ट आए, किंतु उनका धैर्य कभी नहीं टूटा, उनका आत्मविश्वास कभी नहीं डिगा, क्योंकि उन्हें पता है कि साधना में साधक को तपना ही पड़ता है—‘इतना तप लेने दो मुझको/ यह जीवन कुंदन बन जाए/ श्वास-श्वास चंदन बन जाए।’

स्वभाव से साधु इस कवि की सोच का दायरा बहुत बड़ा है क्योंकि उसमें सहज रूप से ‘स्व’ से ‘सर्व’ की भावना अपना आकार ले चुकी है।

मुझे न लाओ उस उपवन में, जिसमें केवल आकर्षण हो,
मुझे न दो तुम ऐसा पारस, लौह जिसे छूकर कंचन हो
वह पारस दो, जिसे परस कर, माटी भी कंचन बन जाए
हर बंजर उपवन बन जाए।

कुछ इसी तरह की सुंदर अभिलाषा डॉ॰ शिवबहादुर सिंह भदौरिया के लोकप्रिय गीत ‘नदी का बहना मुझमें हो’ में भी की गई है—मेरी कोशिश है/ कि नदी का बहना मुझमें हो/ जहाँ कहीं हो/ बंजरपन का—/ मरना मुझमें हो/ नदी का बहना मुझमें हो। उक्त पंक्तियों में भदौरिया जी जहाँ ‘बंजरपन’ के मरने की बात करते हैं, वहीं भटनागर जी ‘बंजर’ के उपवन में तब्दील हो जाने की बात करते हैं। दोनों रचनाकारों के मंतव्यों में बड़ी साम्यता है और इस प्रकार दोनों ही रचनाकार जगत के कल्याण की ही बात करते हैं—कभी परमार्थ के माध्यम से, तो कभी प्रेम के माध्यम से। कहने का आशय यह है कि प्रेम में ही परमार्थ निहित है और परमार्थ में प्रेम। बाह्य सौंदर्य क्षणिक होता है और उसका आकर्षण अस्थायी, कवि यह बात भली-भाँति जानता है, तभी तो वह मन की आँखों से प्रेम के उस शाश्वत स्वरूप का दीदार करना चाहता है जो जीवन को एक नया आयाम दे सकने की पूरी सामर्थ्य रखता हो—

रूप दिखाओ, जो भीतर की
आँखों का अंजन बन जाए
अक्षय आकर्षण बन जाए।

कवि की प्रिया-प्रियतम से यह गुहार आखिर किसलिए है? ताकि प्रेम का यह आयाम समाज के सामने एक आदर्श बनकर सामने आए-ऐसा आदर्श, जिसे लोग जानें, समझें और जीवन में उतारें। साथ ही वे यह भी महसूस करें कि प्रेम कोई फैशन नहीं है, सामयिक चलन नहीं है कि जब मन में आए, जिस पर मन आए, व्यक्ति प्यार करने लगे और जब जी भर जाए तो वह मुँह फेरकर बैठ जाए और झट से कह दे-‘गुड बाय, गर्ल फ्रेंड’, ‘बाय फ्रेंड’ या ‘गो टु हैल!’ सोदेश्य या स्वार्थ पर आधारित ऐसा प्रेम कुछ समय के लिए ही हो सकता है, इसमें नित्य तीव्रता और समर्पण का अभाव होना स्वाभाविक ही है। कवि यह सब भली-भाँति जानता है और इसलिए प्रिया-प्रियतम से उसका यही कहना है-

यहाँ किसको समय है/ प्यार से देखे
तुम्हारी ओर पल-भर भी/ तुम्हारी बात तो है दूर
सुन पाता नहीं कोई/ यहाँ अपना मुखर स्वर भी
समय बदला हुआ है
मीत/ मत छोड़ो/ मधुर संगीत लहरी अब
धरा स्वर से/ सजाने की सनातन सौम्य अभिलाषा
न कोई समझ पाएगा।

यह सच है कि हममें से कई लोग अपने हृदय की गहराइयों में उतर नहीं पाते, अपने अंतस की आवाज को सुन नहीं पाते और इसीलिए प्यार में ही नहीं, जीवन-व्यवहार में भी असफल हो जाते हैं। इसका एक बड़ा कारण यह भी है-‘हमारी दृष्टि पैनापन/ पुरातन खो चुकी अपना’ तथा ‘स्वनिर्मित पंथ पर हम/ भूमि से आकाश तक को/ नापने में व्यस्त हैं इतने/ सहज संवेदना की/ सोधती अमराइयों में घूमना संभव न हो पाता।’ इस दृष्टि से शेक्सपीयर का मानना-‘प्रेम आँखों से से नहीं, हृदय से देखता है’ काफी तर्कसंगत लगता है किंतु आज की स्थिति उलटी-पलटी है। आज प्रेम ने हृदय से कम, आँख या दिमाग से देखना ज्यादा प्रारंभ कर दिया है, जिसका परिणाम हम सबके सामने है।

इस भौतिक संसार में प्रेम के दो रूप-वियोग और संयोग अपना रस अपने-अपने ढंग से बिखेरते रहे हैं। कवि यह सब जानता है और शायद इसीलिए इस संग्रह में दोनों ही रूपों का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। कवि का वियोगी मन प्रिय के जाने पर कैसा महसूस करता है, जरा देखें-

तुम्हें गए कुछ दिन बीते हैं
पर मुझको अरसा लगता है

* * *

गुमसुम हैं सारी दीवारें
छत भी है रोई-रोई-सी
आंगन के गमले में तुलसी
रहती है खोई-खोई-सी

* * *

द्वार किसी निर्जन तट वाले
सूखे सरवर-सा लगता है।

गीतकार का यह भाव सहृदयों को पूरी तरह से संवेदित करता है, किंतु उसकी इस अभिव्यक्ति में लेस-मात्र शिकायत, झुँझलाहट या खीज दिखाई नहीं पड़ती। हाँ, यह सच है कि प्रिय की अनुपस्थिति उसकी आँखों को द्रवित जरूर कर रही है और इसीलिए वह बेचैनी में, अकुलाहट में, पीड़ा में कह उठता है—‘तुम क्या गए/ कि भीगी पलक पवन सोया है/ मन रोया है।’ प्रेम की इन पावन एवं उदात्त अनुभूतियों से ओतप्रोत यह रचनाकार निराश नहीं है, बल्कि उसका स्वर पूरी तरह से आशावादी है। वह संपूर्ण विश्व को प्यार का संदेश देता हुआ बड़ी साफगोई से अपना विश्वास प्रकट करता है—

विश्व की सारी दिशाएँ, एक होकर अब मिलेंगी
जाति की संकीर्णताएँ, टूट जाएँगी, मिटेंगी
अब ना कोशों में पराया, शब्द कोई भी रहेगा
विश्व भर अपनत्वपूरित, प्यार का संदेश देगा।

संपूर्ण विश्व के मंगल की कामना करने वाले इस कवि की अपनत्वपूरित इच्छा है कि ‘प्यार की पुरवाई’ उसके घर भी डोले और फिर से उसका आँगन, छत, दीवारें, तुलसी खिल-खिल उठे। इसलिए जब (एक गीत में) प्रिय का आगमन होता है, मिलन की घड़ी आती है, प्रेमी भावुक हो उठता है और उसकी संवेदना तरल हो जाती है—‘तुम आए/ तो सुख के फिर आए दिन/ बिन फागुन ही अपने फगुनाए दिन।’ कहीं यह ‘कृष्ण’ का ‘राधा’ से मिलन जैसा भाव तो नहीं? यदि हाँ, तो डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र जी यहाँ बरबस याद आते हैं—‘एक प्रतिमा के क्षणिक संसर्ग से/ आज मेरा मन स्वयं देवल बना/ मैं अचानक रंक से राजा हुआ/ छत्र-चामर जब कोई आँचल बना।’ (शिखरणी)। किंतु इस मिलन में प्रेमी अपना विवेक नहीं खोता, बल्कि वह न केवल अपने-आपको, अपनी प्रिय को बड़े प्यार से समझाए-बुझाए रखता है, कवि कहता भी है—‘मत बहकी-बहकी बात करो/ मन में मत झंझावत करो/ ना जाने पिंजरे की मैना/ कब द्वार खोल उड़ जाएगी।’

जल की तरह निर्मल एवं पारदर्शी भावनाओं को उकेरते ये मर्मस्पर्शी गीत कवि के रागात्मक आयाम से न केवल परिचय कराते हैं, बल्कि उनकी कहन, उनके शब्द भावक को प्रेम का सुंदर पाठ भी पढाते हैं—एक ऐसा पाठ जो बताता है कि प्रेम आदमी को आदमी बनाता है, उसकी कार्यक्षमता एवं खूबसूरती को बढ़ाता है और उसकी ऐसी दुनिया के निर्माण में सहायक बनता है जहाँ मनुष्यता के मीठे एवं मोहक स्वरो में गीत गाए जाते हैं। यही है प्रेम का व्यापक स्वरूप—दो प्रेमियों के निजी रागों से ऊपर उठकर सबको अपने में समाहित कर लेने की चाहत या कि इन सबमें अपने को समाहित करने की सुखद लालसा। प्रख्यात आलोचक/नवगीतकार दिनेश सिंह जी के शब्दों में कहूँ तो—‘यहाँ यह ढाई आखर वाला प्रेम सारे शास्त्रों के सार तत्त्व रूप में प्रस्तुत हुआ है...यह प्रेम इस अर्थ में जीवन जगत के प्रति संवेदनात्मक रवैया की सीख से है।’ इस सीख को सीख लेने पर जो चेतना आती है, जो परिष्कार होता है, जो स्थिति बनती है उसे बाबा कबीरदास जी कुछ इस प्रकार से व्यंजित करते हैं—‘ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पंडित होय।’

समीक्षित कृति : **ढाई आखर प्रेम के**, रचनाकार : **शर्चींद्र भटनागर**, प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ०प्र०), प्रकाशन वर्ष : 2010, मूल्य : 200/- (दो सौ रुपए), समीक्षक : **अवनीश सिंह चौहान**

केंद्रीय हिंदी संस्थान

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा-282005

वेबसाइट : www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई० में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र—दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य

■ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन ■ विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन ■ अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण ■ संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या सदस्यता ग्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना ■ समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फैलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पदक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य

शिक्षणपरक कार्यक्रम :

(1) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण, (2) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (3) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (4) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (5) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुप्रयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)

अनुसंधानपरक कार्यक्रम :

(1) हिंदी शिक्षण की अधुनातन प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (2) हिंदी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिरेकी अध्ययन, (3) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुप्रयुक्त अनुसंधान, (4) हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (5) हिंदी का समाज भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (6) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य। अनुसंधानपरक कार्यों के दौरान द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण।

शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास :

(1) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यालयों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण, (2) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिरेकी व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कोशों का निर्माण, (3) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (4) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (5) दृश्य-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (6) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/ त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन :

हिंदीभाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिरेकी अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोशविज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन। अब तक 200 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका-गवेषणा, संवाद पथ, समन्वय दक्षिण, समन्वय पश्चिम, प्रवासी जगत, समन्वय पूर्वोत्तर, शैक्षिक उन्मेष, भावक, संस्थान समाचार एवं दो छात्र पत्रिका 'हिंदी विश्व भारती', तथा 'समन्वय' का प्रकाशन किया जाता है।

पुस्तकालय :

भाषाविज्ञान, अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकों का विशाल संग्रह उपलब्ध है। लगभग 75 जर्नल, शोधपरक पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय :

हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकरूपता लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संस्थान से संबद्धता।

योजनाएँ :

भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो एवं कैंडी में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम का 2007-08 से प्रारंभ ■ अफगानिस्तान के नानारहर विश्वविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी०ए० का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ, ■ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवाकिया, यू०एस०ए०, यू०के०, मॉरिशस, बेल्जियम, रूस, जापान, उज्बेकिस्तान एवं कजाकिस्तान आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी ■ हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कॉर्पोरा परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोकसाहित्य परियोजना तथा लघु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

श्री अनिल शर्मा 'जोशी'

उपाध्यक्ष, कें०हिं०शि०मं०

ई-मेल : vicechairmankhs@gmail.com

प्रो० बीना शर्मा

निदेशक

ई-मेल : directorkhs1960@gmail.com